बी.एड. द्वितीय वर्ष

# निर्देशन और परामर्श

## (GUIDANCE AND COUNSELLING)

**GEDE-18**

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

***Reviewer Committee***

1. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Lata Malviya
   Professor
   I.E.S. University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Vandana Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

***Advisory Committee***

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Jyoti S. Parashar
   Assistant Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Vandana Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Lata Malviya
   Professor
   I.E.S. University, Bhopal (M.P.)

**COURSE WRITERS**

**Prof. Meenu Agrawal,** Principal, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar
**Dr Rakhi Mittal,** Associate Professor, GDM Girls PG College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
**Unit** (2.2)
**Dr. Rakhi Mittal,** Associate Professor, GDM Girls PG College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
**Units** (1.0-1.1, 1.2.3, 1.4-1.4.1, 1.5, 1.6-1.12, 2.0-2.1, 2.3, 2.4, 2.5.1, 2.5.2, 2.6.2, 2.7-2.11)
**Dr. Kirti Agrawal,** Director and Chairperson, Smt. Vimla Devi Education Society
**Unit** (1.4.2)
**S.S Chauhan,** Professor and Dean, Faculty of Education, Himachal Pradesh University, Shimala
**Unit** (2.5.4)
**Shubh Lakshmi Upadhyay,** Academic Author, M.A, B.Ed
**Units** (1.2-1.2.2, 1.3-1.3.3, 2.5, 2.5.3, 2.6-2.6.1)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

# SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

## निर्देशन और परामर्श

| Syllabi | Mapping in Book |
|---|---|
| **इकाई–1 :** निर्देशन और परामर्श – निर्देशन : संकल्पना, लक्ष्य, उद्देश्य, कार्य और सिद्धांत – परामर्श : अर्थ और दृष्टिकोण, व्यक्तिगत और समूह परामर्श – एक परामर्शदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका और योग्यता, व्यावसायिक नैतिकता और आचार संहिता; कक्षा में निर्देशन और व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम – कक्षा में निर्देशन – व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम – व्यक्तिगत मार्गदर्शन कार्यक्रम; निर्देशन और परामर्श : तकनीक और प्रक्रिया – निर्देशन और परामर्श में प्रयुक्त तकनीक एवं प्रक्रियाएं – मानकीकृत परीक्षण के उपयोगकर्ताओं की जिम्मेदारियां; व्यावसायिक सूचना; समूह निर्देशन – समूह निर्देशन की विभिन्न गतिविधियां – समूह गतिविधियों की सीमाएं; समूह परामर्श – समूह परामर्श के चरण – विशेष परिस्थितियों में परामर्श। | **इकाई 1** : निर्देशन और परामर्श : एक परिचय **(पृष्ठ 3–248)** |
| **इकाई–2 :** अभिवृत्ति के विकास हेतु कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण; अभिवृत्ति प्रारूप – अभिवृत्ति प्रारूप – अभिवृत्ति प्रारूप के चरण – अभिवृत्ति प्रारूप के प्रकार – अभिवृत्ति योजना में शिक्षक एवं माता–पिता की भूमिका; अभिवृत्ति विकास – अभिवृत्ति विकास एवं मानवीय आवश्यकताएं – अभिवृत्ति विकास की अवधारणा – विभिन्न विद्वानों के मत में व्यक्तित्व विकास एवं अभिवृत्ति विकल्प – प्रमुख और माध्यमिक मान्यताओं के बीच एक एकीकरण के रूप में व्यावसायिक विकल्प – अभिवृत्ति विकास का सामाजिक शिक्षण सिद्धांत; विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों का मार्गदर्शन – असामान्य बालकों की समस्याओं के समाधान संबंधी प्रावधान – राज्य सरकारों द्वारा मुहैया करवाए जाने वाले लाभ और योजनाएं – दिव्यांग कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रमुख योजनाएं एवं दिव्यांग जन अधिनियम 1995 – प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालक; छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं : सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं – छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं – सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं, वंचित समूहों जैसे एससी, एसटी और लड़कियों की सामाजिक–भावनात्मक समस्याएं। | **इकाई 2** : अभिवृत्ति विकास और छात्रों का मार्गदर्शन **(पृष्ठ 249–366)** |

# विषय–सूची

**परिचय** 1

**इकाई 1 निर्देशन और परामर्श : एक परिचय** 3–248

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 निर्देशन और परामर्श
1.2.1 निर्देशन : संकल्पना, लक्ष्य, उद्देश्य, कार्य और सिद्धांत
1.2.2 परामर्श : अर्थ और दृष्टिकोण, व्यक्तिगत और समूह परामर्श
1.2.3 एक परामर्शदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका और योग्यता, व्यावसायिक नैतिकता और आचार संहिता
1.3 कक्षा में निर्देशन और व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम
1.3.1 कक्षा में निर्देशन
1.3.2 व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम
1.3.3 व्यक्तिगत मार्गदर्शन कार्यक्रम
1.4 निर्देशन और परामर्श : तकनीक और प्रक्रिया
1.4.1 निर्देशन और परामर्श में प्रयुक्त तकनीक एवं प्रक्रियाएं
1.4.2 मानकीकृत परीक्षण के उपयोगकर्ताओं की जिम्मेदारियां
1.5 व्यावसायिक सूचना
1.6 समूह निर्देशन
1.6.1 समूह निर्देशन की विभिन्न गतिविधियां
1.6.2 समूह गतिविधियों की सीमाएं
1.7 समूह परामर्श
1.7.1 समूह परामर्श के चरण
1.7.2 विशेष परिस्थितियों में परामर्श
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 2 अभिवृत्ति विकास और छात्रों का मार्गदर्शन** 249–366

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अभिवृत्ति के विकास हेतु कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण
2.3 अभिवृत्ति प्रारूप
2.3.1 अभिवृत्ति प्रारूप
2.3.2 अभिवृत्ति प्रारूप के चरण
2.3.3 अभिवृत्ति प्रारूप के प्रकार
2.3.4 अभिवृत्ति योजना में शिक्षक एवं माता–पिता की भूमिका
2.4 अभिवृत्ति विकास
2.4.1 अभिवृत्ति विकास एवं मानवीय आवश्यकताएं
2.4.2 अभिवृत्ति विकास की अवधारणा

2.4.3 विभिन्न विद्वानों के मत में व्यक्तित्व विकास एवं अभिवृत्ति विकल्प
2.4.4 प्रमुख और माध्यमिक मान्यताओं के बीच एक एकीकरण के रूप में व्यावसायिक विकल्प
2.4.5 अभिवृत्ति विकास का सामाजिक शिक्षण सिद्धांत
2.5 विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों का मार्गदर्शन
2.5.1 असामान्य बालकों की समस्याओं के समाधान संबंधी प्रावधान
2.5.2 राज्य सरकारों द्वारा मुहैया करवाए जाने वाले लाभ और योजनाएं
2.5.3 दिव्यांग कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रमुख योजनाएं एवं दिव्यांग जन अधिनियम 1995
2.5.4 प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालक
2.6 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं : सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं
2.6.1 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं
2.6.2 सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं, वंचित समूहों जैसे एससी, एसटी और लड़कियों की सामाजिक–भावनात्मक समस्याएं
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

# परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'निर्देशन और परामर्श' का लेखन विश्वविद्यालय के बी.एड. द्वितीय वर्ष (उत्तरार्द्ध) के निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार किया गया है।

मनुष्य को विभिन्न परिस्थितियों में कई विषयों पर निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। न केवल शिक्षा के क्षेत्र में अपितु व्यवसाय के क्षेत्र में भी यह आवश्यकता निरंतर रहती है। कभी–कभी यह चयन विकल्पों पर भी आधारित होता है। यह आवश्यक है कि विकल्प का चयन मनुष्य जीवन के विकास की दिशा में सहायक हो। यह अनिवार्य नहीं है कि सभी के लिए चयन करना तथा निर्णय लेना स्वयं से संभव हो। इस स्थिति में व्यक्ति को उचित चयन हेतु अन्य लोगों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति को बुद्धिमतापूर्ण चयन करने हेतु बाहरी व्यक्तियों द्वारा सहयोग या प्रशिक्षण प्राप्त होने की प्रक्रिया निर्देशन है। निर्देशन और परामर्श की आवश्यकता का अनुभव सदा से ही किया जाता है। किंतु वर्तमान समय के आधुनिक जीवन में इसकी आवश्यकता बहुत अधिक अनुभव की जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशन और परामर्श से संबद्ध विषयों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय विश्लेषण से पूर्व, उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए'स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने हेतु प्रश्न दिए गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशन और परामर्श से संदर्भित अहम विषयों का सांगोपांग समायोजन किया गया है।

अध्ययन की सुगमता के लिए पुस्तक में दो इकाइयों को समायोजित किया गया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

पहली इकाई निर्देशन और परामर्श की आधारभूत समझ प्रदान करने वाली है। जिसमें कक्षा में निर्देशन, व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रमों, निर्देशन और परामर्श की तकनीक और प्रक्रियाओं, व्यावसायिक जानकारी तथा सामूहिक निर्देशन और परामर्श आदि विषयों का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई अभिवृत्ति विकास और छात्रों के मार्गदर्शन पर आधारित है। जिसमें कार्य की प्रकृति और अभिवृत्ति विकास के प्रति दृष्टिकोण, अभिवृत्ति प्रारूप और अभिवृत्ति विकास, विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों का मार्गदर्शन, छात्रों की व्यवहारगत समस्याएं, सामाजिक–आर्थिक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याओं का अध्ययन किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा को सरलतम रखते हुए यह ध्यान रखा गया है कि छात्रों को उक्त विषयों का सम्यक ज्ञान हो सके। इन इकाइयों के अध्ययन से विद्यार्थी इन विषयों से भली–भांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्धन करने में सफल होगी।

# इकाई 1 निर्देशन और परामर्श : एक परिचय

टिप्पणी

## संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 निर्देशन और परामर्श
1.2.1 निर्देशन : संकल्पना, लक्ष्य, उद्देश्य, कार्य और सिद्धांत
1.2.2 परामर्श : अर्थ और दृष्टिकोण, व्यक्तिगत और समूह परामर्श
1.2.3 एक परामर्शदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका और योग्यता, व्यावसायिक नैतिकता और आचार संहिता
1.3 कक्षा में निर्देशन और व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम
1.3.1 कक्षा में निर्देशन
1.3.2 व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम
1.3.3 व्यक्तिगत मार्गदर्शन कार्यक्रम
1.4 निर्देशन और परामर्श : तकनीक और प्रक्रिया
1.4.1 निर्देशन और परामर्श में प्रयुक्त तकनीक एवं प्रक्रियाएं
1.4.2 मानकीकृत परीक्षण के उपयोगकर्ताओं की जिम्मेदारियां
1.5 व्यावसायिक सूचना
1.6 समूह निर्देशन
1.6.1 समूह निर्देशन की विभिन्न गतिविधियां
1.6.2 समूह गतिविधियों की सीमाएं
1.7 समूह परामर्श
1.7.1 समूह परामर्श के चरण
1.7.2 विशेष परिस्थितियों में परामर्श
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

## 1.0 परिचय

बदलते समय के साथ–साथ निर्देशन (मार्गदर्शन) एक गंभीर औपचारिक शब्द के रूप में उभर कर सामने आया है, हालांकि इसकी उपस्थिति उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव समाज की। वस्तुतः मानव समाज की परिकल्पना ही 'मार्गदर्शन' के इर्द–गिर्द रची बसी दिखाई देती है। मार्गदर्शन जिसे हम सरल भाषा में सलाह कह सकते हैं, के जरिए ही मनुष्य ने एक–दूसरे की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना सीखा होगा और इसी निरंतर चलने वाली परस्पर पूर्ति से समाज की एक मजबूत नींव पड़ी होगी। संभवतः मनुष्य ने एकत्र होकर समूह में इसीलिए रहना आरंभ किया होगा क्योंकि उसे एक–दूसरे के मार्गदर्शन एवं परामर्श की निरंतर आवश्यकता पड़ती रहती होगी, यथा वन्य जीवों, कठोर मौसम आदि से रक्षा तथा शिकार व भोजन संग्रहण से आगे चलकर मनोरंजन तक।

किन्तु जैसे–जैसे हम जटिल सभ्यताओं की ओर बढ़ते गए, हमारी मार्गदर्शन संबंधी आवश्यकताएं भी जटिल और विस्तृत होती चली गईं। इसी मांग की पूर्ति के लिए 'मार्गदर्शन' आज एक स्वतंत्र अध्ययन व शोध विषय के रूप में हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है।

व्यावहारिक जीवन में निर्देशन और मार्गदर्शन शब्दों को अंतरपरिवर्तनीय रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अतः दोनों ही शब्दों से समान अभिप्राय लिया जाए ऐसी प्रार्थना है।

इस इकाई में निर्देशन और परामर्श के अर्थ, प्रयोजन, सिद्धांत, आवश्यकता, उद्देश्य, कार्य आदि का अध्ययन किया जा रहा है।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निर्देशन और परामर्श की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- कक्षा में दिए जाने वाले निर्देशन तथा व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम के स्वरूप एवं महत्व को जान पाएंगे;
- निर्देशन और परामर्श की तकनीक और प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे;
- व्यावसायिक सूचना तथा समूह निर्देशन और परामर्श की प्रकृति तथा महत्व का अध्ययन कर पाएंगे।

## 1.2 निर्देशन और परामर्श

उपर्युक्त विषयों का विस्तार से अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

### 1.2.1 निर्देशन : संकल्पना, लक्ष्य, उद्देश्य, कार्य और सिद्धांत

निर्देशन या (मार्गदर्शन) में शिक्षा की समस्त प्रक्रिया शामिल है। मार्गदर्शन शब्द सभी प्रकार की शिक्षा से जुड़ता है– औपचारिक, अनौपचारिक, व्यावसायिक शिक्षा आदि। मार्गदर्शन का उद्देश्य ही है व्यक्ति की सहायता करना ताकि वह अपनी विभिन्न परिस्थितियों में भावनात्मक रूप से समायोजन/तालमेल कर सके। इसलिए व्यक्ति का मार्गदर्शन उपयुक्त चयन और उनमें समायोजन बनाने के लिए किया जाता है।

गुड के अनुसार, "मार्गदर्शन एक गतिशील अंतर्वैयक्तिक संबंध की प्रक्रिया है जिसे व्यक्ति के मूल स्वभाव एवं आचरण को प्रभावित करने के लिए तैयार किया गया है।" इस परिभाषा में अंतर्वैयक्तिक संबंधों पर बल दिया जाता है, जो समाज में व्यक्ति की उपलब्धियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मार्गदर्शन के माध्यम से ही वांछनीय अभिवृत्तियों और आदतों को विकसित करने में व्यक्ति की सहायता की जाती है।

इस तरह से मार्गदर्शन का सामान्य अर्थ है– निर्देशित करना, निर्दिष्ट करना, बतलाना या मार्ग दिखाना।

**टिप्पणी**

मार्गदर्शन व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों और अवस्थाओं के लिए बहुत जरूरी है। आज के इस आधुनिक समय में मानव जीवन में विभिन्न अवस्थाओं तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रायः सभी को अपने सामने मौजूद विकल्पों में से कुछेक विकल्पों के चयन की जरूरत पड़ती है। इन विकल्पों के चयन के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे जीवन में संतोष, तालमेल, अच्छी सेहत तथा प्रगति में सहायक हों। ऐसे समय में व्यक्ति को अन्य लोगों से विचार विमर्श करने की जरूरत महसूस होती है। ऐसी जरूरतें सभी युगों में विद्यमान रही हैं किंतु आधुनिक समय में जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण ऐसे बाहरी सहयोग की आवश्यकता अब और भी अधिक अनुभव की जा रही है जो कि बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करने एवं सही व सटीक निर्णय करने में व्यक्ति को समर्थ बनाए। इस प्रक्रिया के लिए मार्गदर्शन सहायक सिद्ध होता है।

वस्तुतः व्यक्ति को अपने परिवार, मित्र, अध्यापक एवं अन्य शुभेच्छु, अनुभवी एवं वरिष्ठ लोगों से सहयोग प्राप्त होता रहता है किंतु ऐसे लोगों द्वारा दिया जाने वाला सहयोग बहुधा सीमित आधार पर दिया जाता है तथा साथ ही अपूर्ण, अनुपयुक्त और अनुचित कोटि का होता है। इस अपूर्णता, अनुपयुक्तता और अनुचितता का बोध परामर्श देने वाले एवं लेने वाले को भविष्य में हो या न हो, लेकिन दोनों ही हालातों में तब तक व्यक्ति का इतना नुकसान हो चुका होता है, जिसकी भरपाई नहीं की जा सकती। अतः मार्गदर्शन एवं परामर्श हेतु प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक की भूमिका विकसित एवं विकासशील समाज में सर्वत्र स्वीकार की जाती है।

इस तरह से निःसंदेह, मार्गदर्शन का मूल कार्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जिन्हें अपनी समस्या के समाधान के लिए सहायता की आवश्यकता है। इस प्रकार से मार्गदर्शन की आवश्यकता व्यक्ति के जीवन की सभी अवस्थाओं में होती है और आज के इस अति आधुनिक समाज में तो मार्गदर्शन की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानवीय संभावनाओं के विकास के लिए मार्गदर्शन को एक उपाय के रूप में अंगीकार किया जाए।

**मार्गदर्शन का सामान्य अर्थ**— मार्गदर्शन का सामान्य अर्थ है— निर्दिष्ट करना, बताना और मार्ग दिखाना।

**मार्गदर्शन का अर्थ**— सामान्यतः मार्गदर्शन को एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसके आधार पर किसी एक या अनेक व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। मार्गदर्शन के आधार पर ही व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, कौशलों एवं व्यक्ति से संबंधित विशेषताओं का ज्ञान हो जाता है जिससे वह स्वयं में निहित विशेषताओं का समुचित उपयोग करने में सक्षम हो जाता है।

इस प्रकार से मार्गदर्शन का अर्थ निर्देश देना नहीं है और न ही इसके द्वारा एक व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरे व्यक्ति पर लादना होना चाहिए। यह दूसरे व्यक्ति के लिए किया जाने वाला निर्णय नहीं है क्योंकि वह तो उसे स्वयं ही करना चाहिए। इसके

**टिप्पणी**

अलावा यह दूसरे के जीवन भार को अपने ऊपर लेकर चलना भी नहीं है। वास्तविक अर्थों में मार्गदर्शन एक ऐसी सहायता है, जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा विभिन्न आयु वर्ग के लोगों को उनके जीवन में कार्यों के कुशल प्रबंधन दृष्टिकोण के विकास, निजी निर्णय करने तथा स्वयं की जिम्मेदारी उठाने में सक्षम बनाने हेतु उपलब्ध कराई जाती है। इस प्रकार से मार्गदर्शन का उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करना ही नहीं है, बल्कि किसी व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाना है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान करने में स्वयं ही सक्षम हो सके। इसलिए अनेक विद्वानों ने मार्गदर्शन को एक ऐसी विशिष्ट सेवा के रूप में परिभाषित किया है जिसके द्वारा जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

### मार्गदर्शन एक सतत प्रक्रिया है

हमारे समाज में मार्गदर्शन के प्रति लोगों के भिन्न–भिन्न विचार हैं। कुछ विद्यालयों में अब अत्यधिक सुसंगठित और लगभग सफलतापूर्वक संचालित कार्यक्रम चलते हैं जबकि कुछ अन्य विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवाएं नाममात्र को भी नहीं मिलती हैं और कुछ विद्यालयों में तो केवल कक्षा में कुछ अनौपचारिक मार्गदर्शन या परामर्श दिया जाता है जबकि मार्गदर्शन कार्यक्रम ज्यादातर स्कूलों और स्कूल प्रणालियों में संगठित किया जा रहा है। लेकिन आज के इस समय में छात्रों को जितने मार्गदर्शन की आवश्यकता है उसकी तुलना में उनकी संख्या/मात्रा बहुत ही कम है।

शिक्षित और सुसंगठित मार्गदर्शन के लिए धन की आवश्यकता होती है जो अभी भी उपलब्ध नहीं है और मार्गदर्शन में सक्षम प्रशिक्षित व्यक्तियों का अभी भी अभाव है और स्कूलों के प्रशासकों ने तो इस विषय में अभी भी अपना उत्तरदायित्व नहीं समझा है जिसके फलस्वरूप बहुत सारे विद्यार्थियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है और इन समस्याओं का निदान सही समय पर न हो पाने के कारण वो गलत रास्ते पर चले जाते हैं और कभी–कभी तो अपनी जिंदगी को भी जोखिम में डाल देते हैं। किंतु परिस्थितियों के फलस्वरूप वर्तमान समय में मार्गदर्शन की रीतियों का बहुत से प्रशासक मूल्यांकन करने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप वर्तमान कार्यक्रमों में सुधार और विस्तार हो रहा है।

इस प्रकार से कुछ लोग ये सोचते हैं– एक व्यक्ति को अपने जीवन में पहली बार किस आयु में मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है? और किस आयु में पहुंचकर मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती?

क्या हमें मार्गदर्शन की सेवाओं को केवल उन व्यक्तियों या नवयुवकों तक सीमित कर देना चाहिए जो जीवन में गंभीर समस्याओं से ग्रस्त हैं?

क्या किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन के संकटकाल में ही मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है?

मार्गदर्शन का अंतिम लक्ष्य क्या है?

टिप्पणी

यह लक्ष्य व्यक्ति को कब और कैसे प्राप्त हो सकता है?

इन प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर सामान्य नहीं है क्योंकि सभी व्यक्तियों के जीवन अनुभव समान नहीं होते। विशेषकर तेजी से बदलते इस वर्तमान समाज में तो ऐसा हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए– मार्गदर्शन के लिए हम दो व्यक्तियों को लेते हैं और उन्हें निर्देशित करते हुए उन्हें उनकी समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कोशिश करते हैं लेकिन दोनों व्यक्तियों के लिए निर्देशित परिस्थितियां एक समान नहीं होंगी क्योंकि दोनों व्यक्तियों के जीवन अनुभव एक समान नहीं होते हैं। इसलिए मार्गदर्शन की जो रीतियां एक व्यक्ति की सहायता करते या निर्देशित करते समय प्रभावशाली प्रतीत हो रही होंगी, वहीं दूसरे व्यक्ति के मामले में वो प्रभावहीन भी हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए– एक बालक जो कि हाई स्कूल का छात्र था जो कि बुद्धिमान एवं भलिभांति संतुलित व्यक्तित्व वाला छात्र था जो कि अपनी कक्षा में तथा अध्यापकों के बीच भी काफी लोकप्रिय था। एक स्कूल के परामर्शदाता ने उसे अपने कार्यालय में बुलाया और पूछा कि बताओ तुम्हें किसी प्रकार की समस्या तो नहीं है तो लड़के ने कहा कि मेरी तो कोई समस्या ही नहीं है। उस परामर्शदाता ने आग्रह किया कि सोचो और बताओ क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की समस्याएं होती हैं और उनके समाधान में मैं तुम्हारी मदद करना चाहती हूं। जब इस असंतोषजनक साक्षात्कार के पश्चात लड़का अपनी कक्षा में लौटा तो उसने अपने अध्यापक से कहा कि संभवतः मेरी 'समस्या' यह है कि मेरी कोई समस्या ही नहीं है।

इस अनुभव के विरुद्ध एक ऐसी श्रेष्ठ लड़की का अनुभव है जिससे कॉलेज में, जहां से वह स्नातक हुई थी, उसके पूर्व हाई स्कूल के मार्गदर्शन कार्यक्रम के विषय में कुछ पूछा गया। उसका उत्तर था कि हमारे यहां मार्गदर्शन कार्यक्रम नहीं था, लेकिन डीन सहित प्रत्येक व्यक्ति सहृदय मित्रवत थे और एक दूसरे की सहायता के लिए हमेशा तत्पर थे। इसलिए वास्तव में इस स्कूल में मार्गदर्शन कार्यक्रम इतना सुसंगठित था और इतनी सरलता से चलता था कि बहुत से छात्रों को यह भी ज्ञात नहीं था कि वे भारी मात्रा में सावधानीपूर्वक नियोजित मार्गदर्शन प्राप्त कर रहे हैं।

लेकिन कुछ विवादास्पद बात यह भी है कि जिस व्यक्ति को लगातार मार्गदर्शन सेवाएं मिलती है उस पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है। इस पर एक समूह कहता है कि निरंतर मिलने वाला मार्गदर्शन व्यक्ति की अपनी प्रबंधन शक्ति को दुर्बल कर देता है। मार्गदर्शन का अंतिम लक्ष्य व्यक्ति को आत्म मार्गदर्शन विकसित करने में पर्याप्त सहायता पहुंचाना है ताकि एक वयस्क के रूप में उसे किसी भी समस्या को सुलझाने में बाहरी सहायता की कोई आवश्यकता न हो, या हो भी तो कम से कम हो। इन सब में कुछ भिन्न दृष्टिकोण भी मिलता है कि यदि सब नहीं तो बहुत से व्यक्तियों को अपने जीवन में किसी न किसी प्रकार के मार्गदर्शन की आवश्यकता हो सकती है। हाल ही में तुलसा, ओकलहामा में छात्र कर्मचारी और विशेष सेवाओं के सहकारी सुपरिंटेंडेंट बी. एल. शेफर्ड ने बताया है कि–

(1) मार्गदर्शन में तत्कालिक उद्देश्य ही यही होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को जब समस्या उत्पन्न हो तभी उसका सामना करने और उसको सुलझाने में उसे सहायता प्रदान किया जा सके।

**टिप्पणी**

(2) किसी भी मार्गदर्शन का अंतिम लक्ष्य आत्ममार्गदर्शन ही है।

इस विचार पर तो कोई विवाद ही नहीं हो सकता है कि मार्गदर्शन के तात्कालिक और दीर्घकालीन दोनों ही लक्ष्य होते हैं।

## मार्गदर्शन : प्रयोजन एवं सिद्धांत

मार्गदर्शन का प्रयोजन व्यक्ति को योग्यताओं, अभिरुचियों एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढालने में सहायता करना है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इसका तात्पर्य वांछित दिशा में विकास करने में व्यक्ति की सहायता करना है और इस बदलते समय और समाज की आवश्यकताओं तथा मांगों के अनुकूल स्वयं को ढालना है।

प्रारंभिक विद्यालय स्तर पर मार्गदर्शन का प्रयोजन घर, विद्यालय, धर्म और समकक्ष संबंधों जैसी प्राथमिक समूह शक्तियों के एकत्रीकरण के लिए विद्यार्थियों की सहायता करना है। ये वो शक्तियां होती हैं जो विद्यार्थियों की किशोरावस्था के लिए आधार बनाती हैं। इन शक्तियों का प्रयोग करके व्यक्ति अपने जीवन को सफल एवं सामंजस्यपूर्ण बनाता है।

माध्यमिक विद्यालय स्तर पर मार्गदर्शन का प्रयोजन है– उन विशिष्ट शक्तियों के विभिन्न पहलुओं पर बल देना जो विद्यार्थियों के ज्ञान, स्वीकरण और उनकी दिशा को प्रभावित करते हैं। इसमें शैक्षिक योजना, रोजगार चयन, अंतःवैयक्तिक संबंध शामिल हैं। अतः वैयक्तिक स्वीकरण के क्षेत्रों में अपनी क्षमताओं और अवसरों के अनुसार अपने विकास के लिए विद्यार्थियों को सेवाएं प्रदान की जाती है।

इस प्रकार से निर्देशन का प्रयोजन ही अधिक से अधिक वैयक्तिक संतुष्टि एवं सामाजिक उपयोगिता को सुनिश्चित करना है जिसमें विद्यार्थी, अध्यापक और अभिभावक आदि शामिल हैं। इन सभी विभिन्न व्यक्तित्व वाले आत्म–स्थितिपरक संबंधों, अभिभावकों एवं स्वयं को समझने हेतु व्यक्ति की क्षमता में सुधार करना भी इसका उद्देश्य है।

## विद्यार्थियों के लिए योगदान

1. विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरुचियों और कमियों के बारे में अधिक जानकारी देकर उन्हें स्वयं को समझने में सहायता करना।
2. अन्य सभी लोगों से बेहतर संबंध बनाना और उस माहौल को समझना जिसमें वे रहते हैं।
3. रोजगार संबंधी विषयों के बारे में विद्यालय द्वारा सर्वाधिक जानकारी उपलब्ध कराना।

4. अपनी अभिरुचियों, योग्यताओं का पता लगाना और कार्यशील समाज के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानना और उनकी योग्यताओं का अधिक से अधिक उपयोग करना।



## अध्यापक के लिए योगदान

1. मार्गदर्शन जानकारियों सेवाकालीन शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से अपने विद्यार्थियों से अध्यापकों को संबंधित जानकारियों को बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। विद्यालय उपबोधन अध्यापकों को परीक्षण कार्यक्रमों का संचालन करने और परीक्षाओं के परिणामों की व्याख्या करने में सहायता प्रदान करता है। यह परीक्षा परिणाम वह सूचना देते हैं जो अध्यापकों को उनके विद्यार्थियों के कक्षा व्यवहार और कार्य निष्पादन को बेहतर रूप से समझने में उनकी सहायता करते हैं जिससे अध्यापक और छात्र का एक अच्छा व्यावहारिक संबंध स्थापित हो जाता है और अध्यापक छात्र से संबंधित जानकारी के बारे में भलीभांति जान जाता है।
2. विद्यार्थियों की विशेष अभिरुचियों, क्षमताओं और पूर्व अनुभवों संबंधी आंकड़े मार्गदर्शन संकाय द्वारा संचयी अभिलेख पर उपलब्ध कराए जाते हैं। विद्यार्थियों के शारीरिक, चिकित्सीय इतिहास, पारिवारिक पृष्ठभूमि, शैक्षणिक अभिलेख, मानकीकृत परीक्षाओं में प्राप्तांक, वैयक्तिक विशेषताएं आदि तथ्य विद्यार्थी को बेहतर शिक्षण प्रदान करने में अध्यापक की सहायता करते हैं।
3. मार्गदर्शन कार्यक्रम अभिभावकों के लिए लाभदायक होता है क्योंकि अपने बालक की बुद्धि, योग्यताओं, अभिरुचियों और क्षमताओं की स्पष्ट जानकारी से उन्हें अपने बच्चों तथा उनकी क्षमताओं को ठीक से पहचानने में मदद मिलती है।
4. मार्गदर्शन समस्त समुदाय समष्टि को बेहतर मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने में सहायता करता है।
5. मार्गदर्शन का प्रयोजन ही है पूरे विद्यालय की कई प्रकार से मदद करना, जिससे विद्यालय के विद्यार्थियों की अभिरुचि और अभिक्षमता के आधार पर उपबोधन करके उन्हें सही पाठ्यक्रम चुनने में उपयुक्त सहायता प्रदान की जा सके।
6. विद्यालयी कार्यक्रम के उन पहलुओं पर प्रशासन संबंधी जानकारी देना जो विद्यार्थियों के रोजगार एवं व्यक्तित्व निर्माण से संबंधित है।

मोटे तौर पर स्कूल मार्गदर्शन कार्यक्रम का संबंध उस प्रत्येक बच्चे के मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व विकास से है जिसके संपर्क में स्कूल होता है। मार्गदर्शन तो शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में ही निहित है। मार्गदर्शन का अंतिम लक्ष्य ही है सुगठित व्यक्तित्व। मार्गदर्शन के कार्यक्रम का प्रयोजन ही है आत्ममार्गदर्शन। इसलिए प्रत्येक स्कूल के अध्यापक का दायित्व है कि वह लड़के व लड़कियों के मार्गदर्शन में सहायता प्रदान करे। जो व्यक्ति मार्गदर्शन के कार्यक्रम में भाग लेने का दायित्व संभालता है उसे प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं और समस्याओं को खोजने में सहायता प्रदान करनी चाहिए और उसकी समस्याओं का समाधान करने में सहायक होना चाहिए। मार्गदर्शन कार्यक्रम के दो अंग है– एक तो प्रत्येक बच्चे को सुस्थापित

अथवा मॉडल (नमूने) के अनुकूल तालमेल बिठाने में सहायता प्रदान करना और दूसरे उन मॉडलों (नमूनों) को इस प्रकार रखना जिससे पृथक–पृथक बच्चों की आवश्यकता अधिक अच्छे रूप में पूरी हो सके।

**टिप्पणी**

मार्गदर्शन का प्रयोजन ही समस्त नागरिकों के व्यक्तित्व और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देना है। सामाजिक अभिकरण के रूप में औपचारिक या स्कूल शिक्षा की संस्थाएं अपने सेवा कार्यों के क्षेत्र का विस्तार कर रही है। निःसंदेह इसका प्रारंभिक कार्य प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं, अभावों, मांगों, इच्छाओं को सामाजिक रूप से स्वीकार्य रीति से पूरा करना है तथा साथ ही उसे ज्ञान, चातुर्य, निपुणता और शक्ति प्राप्त करने में बचपन से ही अवसर प्रदान करना है।

मार्गदर्शन प्रयोजन की व्यवस्थाएं व्यक्ति की मार्गदर्शन संबंधी आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। यही समाज के हित में भी है कि उसके लिए ऐसे व्यक्ति की सेवाएं उपलब्ध की जाएं जो उसकी कठिनाइयों में सहायता करने के लिए विशेष रूप से योग्य हो। मार्गदर्शन का एक प्रमुख कार्य सामूहिक स्थितियों में अथवा व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा भी परामर्श देना है। साथ ही मार्गदर्शन के ऐसे चरण भी हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वित होते हैं। इन सबके अतिरिक्त माता–पिता और समाज के अन्य सदस्यों के अलावा स्कूल का प्रत्येक कर्मचारी भी मार्गदर्शन निर्दिष्ट दायित्वों को किसी न किसी रूप में ग्रहण करता है।

### मार्गदर्शन की सफलता हेतु आवश्यक मान्यताएं

जीवन में मार्गदर्शन का महत्व बहुत अधिक है और इस मार्गदर्शन की कल्पना में दूरदर्शिता के उपयोग को सम्मिलित करने की आवश्यकता भी है ताकि उन परिस्थितियों पर यथासंभव नियंत्रण प्राप्त किया जा सके जो व्यक्ति को परिस्थितियों से तालमेल बिठाने के लिए सहायता प्राप्त करने हेतु विवश कर देती है। जब विघ्नकारी अथवा अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां व्यवहार के संतोषजनक रूपों में हस्तक्षेप करती हैं तो प्रशिक्षित मार्गदर्शक का दायित्व बन जाता है कि वे अपेक्षित सेवा प्रदान करें। मार्गदर्शन कार्य की सफलताओं के लिए कुछ मान्यताएं अनिवार्य मानी गयी हैं जो निम्नवत हैं–

- मार्गदर्शन सेवा को ऐसे गिने–चुने व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि समस्त अवस्थाओं के समस्त व्यक्तियों तक उसका विस्तार करना चाहिए ताकि वे उससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ उठा सकें।
- मार्गदर्शन व्यक्ति की गरिमा, योग्यता, व्यक्तित्व एवं आवश्यकता के अनुसार व्यक्तिगत सहयोग प्राप्त करने के अधिकार के आधार पर प्रदान किया जाता है।
- मार्गदर्शन छात्र केंद्रित होता है। यह छात्र के अधिक से अधिक विकास से निहित होता है और अंतर्निहित सामर्थ्य अनुसार व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों हेतु पूर्णतम सिद्धि के लिए प्रयास करता है।
- मार्गदर्शन उतना ही महत्वपूर्ण, अच्छा और प्राचीन है जितनी की हमारी शिक्षा– लेकिन इसकी दृष्टि आधुनिक है, विशेषकर–

- o विद्यार्थी के जीवन के उन क्षेत्रों के संबंध में जिनका विकास विद्यालय की जिम्मेदारी मानी जाती है।
- o इन लक्ष्यों की संप्राप्ति हेतु प्रयुक्त की जाने वाली तकनीकी की दृष्टि से।
- o छात्रों के लिए मार्गदर्शन उतना ही आवश्यक है जितनी कि शिक्षा।

**टिप्पणी**

- मार्गदर्शन सतत एवं अनुक्रमिक शैक्षणिक प्रक्रिया है। मार्गदर्शन शिक्षा का समाविष्ट अंग है। इसे शिक्षा का परिधीय संलग्नक नहीं मानना चाहिए।
- मार्गदर्शन समाज और व्यक्ति दोनों के प्रति जिम्मेदार होता है।
- मार्गदर्शन की उन्मुखता सहयोग की ओर होती है बाध्यता की ओर नहीं। इस प्रकार से मार्गदर्शन का रूप प्रबोधक होता है। इसमें जोर–जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं होता।
- मार्गदर्शन द्वारा प्रदान की जाने वाली सभी सेवाओं पर सभी विद्यार्थियों का अधिकार होता है। मार्गदर्शन द्वारा विद्यार्थियों के इस अधिकार का सम्मान किया जाना चाहिए।
- मार्गदर्शन एक सतत प्रक्रिया है, परंतु जीवन के कुछ पल नाजुक होते हैं जिसमें मार्गदर्शन विवेकपूर्ण निर्णय लेने, नियोजन, व्याख्या और समायोजन स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है।
- मार्गदर्शन की मांग स्वाभाविक होती है कि सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों में आधुनिक मनोवैज्ञानिक तकनीकों की सहायता से व्यक्ति का व्यापक मूल्यांकन किया जाए। मार्गदर्शन की सहायता प्रदान करने से पूर्व व्यक्ति को भली प्रकार से समझना महत्वपूर्ण है।
- मार्गदर्शन की जिम्मेदारी का कार्य ऐसे लोगों को सौंपना चाहिए जो स्वाभाविक रूप से ऐसे कार्य हेतु प्रतिभा संपन्न हों तथा जिनके पास इसका आवश्यक प्रशिक्षण और अनुभव उपलब्ध हो।
- मार्गदर्शन प्रदान करना विशेषज्ञों के किसी एक विशेष गुट का एकाधिकार नहीं है। इस कार्य हेतु सभी का सहयोग वांछित है और सभी संबंधित व्यक्तियों को अपनी–अपनी जिम्मेदारी के क्षेत्र में अपनी–अपनी निपुणता के स्तर पर कार्य करना चाहिए।
- मार्गदर्शन का केंद्र बिंदु विद्यार्थी है तथा उसकी सर्वोत्तम सिद्धि और स्वआत्मीकरण (actualization) प्राप्त करने हेतु सहायता प्रदान करनी चाहिए। व्यक्ति विशेष या विद्यालय की किसी एकल समस्या का समाधान करने की दिशा में मुख्य ध्यान केंद्रित नहीं किया जाता है।
- मार्गदर्शन छात्रों और शिक्षा पुंज के बीच की स्वस्थ मध्यस्थकारी एजेंसी है।
- मार्गदर्शन शिक्षा का वैयक्तिकरण और समाजीकरण करने वाला तत्व है।
- मार्गदर्शन कार्यक्रम का प्रभावशीलता की दृष्टि से सतत वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है।

**टिप्पणी**

- मार्गदर्शन दृश्य घटना विज्ञान (Phenomenalogy) को व्यवहार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मॉडल के रूप में स्वीकार करता है।
- यद्यपि कुछ बातों में समस्त मनुष्य एक समान होते हैं, फिर भी किसी बच्चे, नवयुवक या वयस्क की सहायता करने या उसका मार्गदर्शन करने का यत्न करने से पूर्व व्यक्तिगत भेदों को समझना और उन पर विचार–विमर्श करना आवश्यक होता है।
- वर्तमान सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक उथल–पुथल ऐसे अनेक त्रुटिपूर्ण समन्वय के तत्वों को जन्म दे रहे हैं जिनका सही समस्यात्मक हल निकालने के लिए अनुभवी और पूर्णतया प्रशिक्षित मार्गदर्शन परामर्शदाताओं तथा समस्या ग्रस्त व्यक्ति के मध्य सहयोग की अपेक्षा करते हैं।
- संगठित मार्गदर्शन कार्यक्रम व्यक्ति और समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार लचीला होना चाहिए।

मार्गदर्शन की अनिवार्य मान्यताओं, बुद्धिमता एवं अनुभवपूर्ण नेतृत्व का प्रयोग मार्गदर्शन में अत्यंत महत्वपूर्ण है। "बहुधा ऐसा कहा जाता है कि जैसा आचार्य होता है, वैसा ही विद्यालय होता है।" संगठित मार्गदर्शन पर भी यही बातें लागू होती हैं। संगठन की पूर्णता, उपकरणों की विशालता, रिकॉर्डों की अधिकता, मार्गदर्शन प्रपत्र और प्रतिवेदन तथा मार्गदर्शन कर्मचारियों का विशेष प्रशिक्षण ये सब मिलकर भी सफल मार्गदर्शन के संपूर्ण कार्यक्रम का निर्माण नहीं करते। इन सभी बातों का विशेष महत्व होते हुए भी मार्गदर्शन का मूल उस भावना में समाहित है जिससे सेवाएं दी जाती हैं। प्रयत्न की सहभागिता और उद्देश्य हेतु लगन उन समस्त व्यक्तियों को प्रेरित करती है, जो मार्गदर्शन के कार्य सहभागी होते हैं। इनमें प्रशंसकों, अध्यापकों और विशेषज्ञों के साथ–ही–साथ व्यक्तिगत सहायता और परामर्श प्राप्त करने वाले भी सम्मिलित हैं।

मार्गदर्शन कर्मचारी, मार्गदर्शन के वांछनीय परिणाम तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि वे संपूर्ण व्यक्तित्व पर उस सही रूप में विचार नहीं करते, जिसमें कि वह वातावरण जन्य समस्त परिस्थितियों से प्रभावित होता है। क्योंकि अब तक तो परामर्शदाता या मार्गदर्शन कर्मचारी नवयुवकों को ही शैक्षणिक रूप से और कुछ व्यावहारिक रूप से सहायता देने में अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय और सफल रहे हैं। परंतु घर और समाज के साथ श्रेष्ठ तालमेल बिठाने के लिए मार्गदर्शन ने इस दिशा में बहुत कम कार्य किया है। बल्कि उन स्कूलों में भी यही स्थिति है जहां मार्गदर्शन सेवाओं का संगठन वर्तमान दशाओं और आवश्यकताओं की दृष्टि में रखकर किया गया है।

स्कूलों में चलने वाले मार्गदर्शन सेवाओं के संचालन से मूल मान्यताओं का बुद्धिमतापूर्ण प्रयोग केवल उन नवयुवकों अथवा वयस्कों के लिए ही मूल्यवान नहीं होता जिनके लाभ के लिए वह किया जाता है अपितु उनके माता–पिता स्कूलों के कर्मचारी और समस्त समुदायों के लिए भी लाभदायक होता है।

### मार्गदर्शन का उद्देश्य

मैकडोनॉल्ड के मतानुसार मार्गदर्शन का उद्देश्य शैक्षिक कार्यक्रमों के लक्ष्यों को प्राप्त करने की अपेक्षा वांछनीय योग्यताओं व कौशलों को उपलब्ध करने में विद्यार्थियों और अध्यापकों की सहायता करना है। उनके शब्दों के अनुसार– "मार्गदर्शन एक सौकर्य सेवा है, यह शैक्षणिक कार्यक्रमों के उद्देश्यों को पूरा करने का दायित्व नहीं लेता, बल्कि यह विद्यार्थियों और कार्यकर्ताओं को उनकी आवश्यकताओं और योग्यताओं के सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्यक्रमों का चयन करने तथा ऐसे अनुदेशकों का पता लगाने में सहायता करता है जो उनकी व्यक्तिगत अपेक्षाओं के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण हों और कार्यकलापों को खोजने में ऐसे साधन उपलब्ध कराने पर ध्यान देते हों, जो उन्हें उनकी क्षमताओं को जानने में सहायता करेंगे।"

मार्गदर्शन के उद्देश्य के संबंध में जोन्स ने लिखा है– "मार्गदर्शन का आधारभूत उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति में अपनी स्वयं की समस्याओं का समाधान करने और अपने स्वयं के अनुकूलनों को प्राप्त करने की योग्यता का अपने क्षमता की सीमा तक विकास करना है।" इसी के आधार पर मार्गदर्शन के प्रमुख उद्देश्य हैं जो निम्न हैं–

1. व्यक्ति में आत्म–मार्गदर्शन की शक्ति का विकास करना।
2. व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, रुचियों और क्षमताओं को विकसित करने में सहयोग देना।
3. आत्ममार्गदर्शन एवं आत्मविकास की ओर ले जाना।
4. व्यक्ति को अपनी निहित शक्तियों तथा योग्यताओं से परिचित कराना।
5. प्रत्येक व्यक्ति को उसके क्षेत्र संबंधी चुनाव करने में सहायता देना।
6. हर व्यक्ति को उसकी अपनी क्षमता के अनुसार अधिकतम विकास करने तथा उस क्षमता के अनुसार समाज को योगदान देने में सहयोग करना।
7. व्यक्ति को यथासंभव अपने वातावरण के साथ संतोषजनक सामंजस्य स्थापित करने में सहायता देना।
8. व्यक्ति को अपने स्वयं के निर्णय ले पाने में सक्षम बनाना तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता देना है।

ये सभी सामान्य उद्देश्य हैं लेकिन क्रिब्बिन (Cribbin) ने मार्गदर्शन के उद्देश्यों को परम उद्देश्यों (Ultimate Aims) और समीपस्थ उद्देश्यों (Proximate Aims) के रूप में दो वर्गों में विभाजित किया है–

## आधुनिक युग में मार्गदर्शन का महत्व

आधुनिक युग की बढ़ती हुई जटिलताओं और वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण मार्गदर्शन की आवश्यकता निरंतर ही बढ़ती जा रही है। आधुनिक युग में मार्गदर्शन का महत्व निम्नलिखित कारणों से है जो इस प्रकार है–

1. **शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन**– स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा में मनोविज्ञान के प्रभाव को स्वीकार किया जाने लगा है। इसी के फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्यों में

क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है, बल्कि बालक का बहुमुखी विकास करना है, जो कि शिक्षा का सर्वोत्तम विकास भी है। बालक का ये बहुमुखी विकास उसी दशा में संभव है जब उन्हें उचित परामर्श दिया जाए और यह कार्य केवल मार्गदर्शन के द्वारा ही संभव हो सकता है।

2. **रूढ़िवादी दृष्टिकोण**– स्वतंत्रता के बाद भी भारत की अधिकांश जनता का दृष्टिकोण बहुत अधिक रूढ़िवादी और परंपरागत है। आज भी देश के अधिकांश राजनीतिज्ञ एवं कुछ अल्प बुद्धि वाले राजनीतिक लोग छात्रों और जनता को गुमराह करते हैं। उन्हें धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया करते हैं। अतः इन सभी परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए व्यवस्थित मार्गदर्शन की आवश्यकता है, जिससे समाज में व्यक्ति का विकास सही दिशा में हो सके।

3. **पाठ्यक्रम का नवीन स्वरूप**– माध्यमिक शिक्षा आयोग के सुझावों के कारण विभिन्न नवीन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गई है। जिससे शिक्षा को नवीनतम रूप प्रदान किया जाए, जिसमें छात्रों को सात समूहों में से किसी एक समूह को चुनने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। ऐसी स्थिति में उन्हें मार्गदर्शन प्रदान करना बहुत आवश्यक हो जाता है।

4. **विद्यालयों का नवीन स्वरूप**– स्वतंत्रता के पश्चात भारत देश में अनेक प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की गयी थी। इन सभी नवीन विद्यालयों तथा उनमें पढ़ाए जाने वाले विषयों की जानकारी के लिए मार्गदर्शन का आयोजन बहुत आवश्यक है जिससे विद्यालय में विषय संबंधित एवं करियर संबंधी सभी समस्याओं का हल विद्यार्थी को प्राप्त हो सके, और वो विकास की ओर अग्रसर हो सके।

5. **बेरोजगारी, गरीबी एवं निम्न जीवन स्तर**– देश में तीव्र गति से बढ़ती हुई महंगाई तथा बेरोजगारी के कारण जनता का जीवन स्तर अत्यंत निम्न हो गया है। और औद्योगिक नगरों में तो निम्नवर्गीय परिवारों एवं श्रमिकों का जीवन स्तर और भी अधिक विकृत है, इस कारण से समाज में बाल–अपराध कुसमायोजन ने अनेक जटिलताओं और अपराधों को जन्म दिया है। अतः इन सभी के निराकरण के लिए उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है जिससे वो अपनी जिंदगी में ऊपर उठ सकें और अपना विकास कर सकें।

6. **महिलाओं की स्थिति में बदलाव**– आज के इस नवीन युग में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है जिससे वो जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर रही हैं और खुद को परिस्थिति के अनुसार ढाल और बदल रही हैं। आज वो घर से बाहर निकल सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए अपनी जिम्मेदारियां निभा रही है। लेकिन इनके लिए रोजगार एवं घरेलू जिम्मेदारियों के मध्य संतुलन बनाये रखने के लिए मार्गदर्शन की नितांत आवश्यकता है जिससे कि वो आसमान की ऊंचाइयों को छू सके।

7. **मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मार्गदर्शन का महत्व**– आज के मनुष्य को भावनात्मक समस्याएं कई तरह से प्रभावित करती हैं जिससे कि उनकी मानसिक शांति में बाधा उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में मार्गदर्शन के द्वारा भावनात्मक समस्याओं का पता लगाया जाता है जिससे व्यक्ति की अस्थिरता या बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

इस प्रकार मार्गदर्शन का जीवन में बहुत महत्व है। इसे समझने के लिए वर्जीनिया विश्वविद्यालय के शिक्षकों के एक प्रतिनिधि समूह ने जीवन की आवश्यताओं की पूर्ति हेतु मार्गदर्शन के महत्व को समझाया है कि वो कैसे आवश्यक हैं–

- प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक स्थान हो जहां कि वह व्यक्तिगत प्रसन्नता व आनंद प्राप्त कर सके।
- नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने हेतु।
- एक व्यक्ति के रूप में मान्यता एवं सम्मान अर्जित करने हेतु।
- व्यक्ति को यह अनुभव दिलाने हेतु कि वह जिस समूह का अंग है उसके प्रति वो कुछ योगदान कर रहा है।
- व्यक्ति को अपने आपको समझ पाने तथा अपनी योग्यताओं, अपनी सीमाओं और अपनी अंतर्निहित सामर्थ्य को पहचान पाने में सक्षम बनाने हेतु भी।
- अपने विकास के अवसरों और अपनी योग्यता क्षमता एवं अनुभव का उपयोग करने हेतु।
- स्नेह, लगाव और दूसरों के लिए समझ का विकास करने हेतु।
- समाज में हो रहे परिवर्तनों के प्रति समायोजन के लिए अपने संसाधनों के विकास और आत्म–मार्गदर्शन हेतु।

## शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक मार्गदर्शन की आवश्यकता और प्रक्रिया

### मार्गदर्शन की आवश्यकता

पाश्चात्य समय में, जब समाज बहुत कम जटिल था उस समय यदि किसी समुदाय या परिवार में किसी सदस्य को किसी प्रकार की समस्या होती थी तो परिवार का मुखिया अथवा समुदाय का नेता उसका मार्गदर्शन कर देता था। लेकिन इस प्रकार का यह मार्ग दर्शन समस्या की गहरी और पूरी जानकारी के बिना तात्कालिक परामर्श होता था यद्यपि यह किसी भी प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण के बिना ही होता था। इस मार्गदर्शन का आधार अनुभव होता था। इस प्रकार का मार्गदर्शन देना उन अध्यापकों और अभिभावकों का अधिकार क्षेत्र होता था, किंतु यह सहायता मदद के बजाय भ्रामक होती थी, लेकिन अब समाज में विभिन्न परिवर्तनों के कारण ऐसा संभव भी नहीं है, इसलिए व्यक्ति के मार्गदर्शन के लिए व्यावसायिक रूप से या अन्य किसी रूप से व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

मैथ्यूसन के मतानुसार– आवश्यता के चार मूलभूत क्षेत्र हैं, जैसे– स्वयं को समझने की आवश्यकता, परिस्थिति की मांगों के अनुसार समायोजन करना, भावी

दशाओं के लिए स्वयं को ढालना अर्थात (तैयार करना) और स्वपूर्ति करना एवं वैयक्तिक क्षमताओं को विकसित करना। इसलिए मार्गदर्शन की आवश्यकता मनुष्य को पड़ती है जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है–

**टिप्पणी**

### (क) समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से मार्गदर्शन की आवश्यकता

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से मार्गदर्शन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से पड़ती है–

1. **समाज का जटिल स्वरूप**– बीसवीं शताब्दी में समाज में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं, जिससे समाज के आर्थिक, राजनीतिक एवं व्यावसायिक ढांचे में विभिन्न प्रकार के बदलाव हुए। इसलिए इस बदलते हुए सामाजिक वातावरण में व्यक्ति के विकास को उचित एवं सही दिशा प्रदान करने में मार्गदर्शन की अहम भूमिका की आवश्यकता पड़ती है।
2. **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन**– आज के इस भौतिकवादी युग में प्राचीन मूल्यों एवं परंपराओं के प्रति नवयुवकों की निष्ठा निरंतर कम होती जा रही है, लेकिन नये मूल्य भी निर्धारित नहीं हो पा रहे हैं। ऐसी कठिन परिस्थितियों में मार्गदर्शन की आवश्यकता और बढ़ जाती है।
3. **जटिल नगरीय जीवन**– आज व्यक्ति ग्रामीण परिवेश एवं माहौल को छोड़कर रोजगार की तलाश में नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इसी के परिणामस्वरूप नगरों की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है, जिससे आवास, रोजगार और जीवन यापन के साधनों की समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इन्हीं कारणों ने मार्गदर्शन की आवश्यकता को और अधिक बढ़ा दिया है।
4. **महिलाओं के लिए रोजगार**– आज के इस वर्तमान समय में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अब वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर रही है। अतः महिलाओं के लिए रोजगार एवं घरेलू जिम्मेदारियों के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए भी मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

### (ख) व्यक्ति की दृष्टि से भी मार्गदर्शन की आवश्यकता

व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। सर्वांगीण विकास ही आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य है। इसके लिए आवश्यक दशाओं की व्यवस्था व्यक्ति निर्देशक होकर कर सकता है, क्योंकि हर व्यक्ति एक–दूसरे से मानसिक, संवेगात्मक एवं शारीरिक आदि दशाओं में भिन्न होता है। इस प्रकार कोई भी दो व्यक्ति पूरी तरह से समान नहीं होते हैं। उनकी रुचियों, अभिरुचियों एवं दृष्टिकोणों में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। इसलिए व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों, स्वभाव तथा क्षमताओं के अनुरूप शैक्षिक एवं व्यावसायिक तथा अन्य सभी क्षेत्रों में उचित समायोजन के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है।

### (ग) शैक्षणिक दृष्टि से मार्गदर्शन की आवश्यकता

विद्यालयों के शैक्षणिक कार्यक्रम की विभिन्नताओं की विस्तृत सीमा से समायोजन करने के लिए प्रत्येक छात्र की विभिन्न आवश्यकताओं तथा याग्यताओं की अधिक जानकारी

आवश्यक है जो कि विद्यालय में केवल विशिष्ट मार्गदर्शन सेवा का आरंभ करके ही संभव हो सकता है।

### (घ) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मार्गदर्शन की आवश्यकता



भावनात्मक समस्याएं व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करके उसकी मानसिक शांति में बाधा उत्पन्न करती है। अतः मार्गदर्शन की सहायता के द्वारा भावनात्मक बाधाओं का पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार से भावनात्मक अस्थिरता या बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

### (ङ) धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से मार्गदर्शन की आवश्यकता

सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तनों के प्रभाव से धार्मिक रीति–रिवाजों में बदलाव आता जा रहा है जिससे हमारा नैतिक स्तर भी गिरता जा रहा है। इन बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में मार्गदर्शन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### (च) रोजगार एवं व्यावसायिक दृष्टि से मार्गदर्शन की आवश्यकता

पहले के युगों में विभिन्न रोजगारों के अवसरों के बारे में अधिक जागरूकता नहीं थी। पहले एक किसान का बेटा कृषि व्यवसाय ही अपनाता था और वकील का बेटा वकालत करता था चाहे उनकी अभिक्षमता व अभिरुचि उस व्यवसाय के लिए हो या न हो। मार्गदर्शन के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यताओं, अभिरुचियों और अभिक्षमताओं के अनुसार व्यवसाय या कोर्स चयन में उनकी सहायता की जा सकती है।

राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देश संघ (NVGA) के अनुसार "अपनी समन्वित व पर्याप्त छवि और कार्यक्षेत्र में भूमिका को स्वयं विकसित तथा स्वीकार करने और वास्तविकता की तुलना में इस अवधारणा की जांच व्यक्ति की संतुष्टि के साथ करते हुए समाज को लाभ पहुंचाने की प्रक्रिया में व्यक्ति की सहायता करना मार्गदर्शन है।"

## मार्गदर्शन के कार्य

मार्गदर्शन जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए आवश्यक है, जैसे– शिक्षा, व्यवसाय, पारिवारिक एवं वैवाहिक समायोजन तथा स्वास्थ्य आदि जिसके बारे में पहले भी जान चुके हैं लेकिन इसका जीवन में कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। यह तो मात्र एक प्रक्रम है जिसका उद्देश्य ही सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति के वांछित विकास में सहायता पहुंचाना है। यह प्रक्रिया निरंतर ही गतिशील रहती है। मार्गदर्शन की प्रकृति ही है कि वो व्यक्ति के वांछित विकास में उसकी सहायता करे। इसकी यह प्रक्रिया मनुष्य के स्वभाविक विकास में मदद करती है। मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति को इस प्रकार की सहायता पहुंचाई जाती है कि इससे व्यक्ति स्वयं को समझे साथ ही अपनी क्षमताओं, रुचियों तथा अन्य योग्यताओं का अधिकतम संभावित उपयोग अपने विकास में कर सके और अपने समय के परिवेश में आनी वाली विभिन्न परिस्थितियों में अपना समायोजन कर सके। मार्गदर्शन के सहयोग से व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपनी समस्याओं का समाधान खोजते हुए विभिन्न परिस्थितियों में बुद्धिमतापूर्वक निर्णय ले सकता है तथा अपनी अधिकतम संभावित क्षमता के अनुसार समाज को अपना योगदान दे सकता है।

टिप्पणी

यही मार्गदर्शन का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार भी है। यही व्यक्ति को मानव व्यवहार और सामाजिक दायित्व का बोध कराता है। मार्गदर्शन की प्रकृति को उसके कार्यों के संदर्भ में भली भांति समझा जा सकता है। जेरान तथ रिक्सियों के अनुसार, मार्गदर्शन निम्नलिखित आठ कार्य करते हैं–

1. व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, अभिरुचियों, तथा अभिवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता पहुंचाते हैं।
2. व्यक्ति की सहायता इस उद्देश्य से करना कि वह अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को समझे, स्वीकार करे और उन्हें काम में लाए।
3. अपनी मानसिक क्षमताओं के संदर्भ में व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को जान सके, इसके लिए उसकी सहायता करना।
4. व्यक्ति को ऐसे अवसर उपलब्ध कराना जिससे कि वह अपने कार्य क्षेत्र एवं शैक्षिक प्रयासों के विषय में और अधिक सीख सके।
5. वांछित मूल्यों के विकास में व्यक्ति की सहायता करना।
6. व्यक्ति को ऐसे अनुभव प्राप्त करने में सहायता करना जो कि उसकी निर्णय शक्ति में वृद्धि करते हैं।
7. व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करना कि वह उतना अच्छा आदमी बन जाए जितने की क्षमता उसमें है।
8. व्यक्ति को अधिक–से–अधिक आत्म निर्देशित बनाने में सहायता देना।

इस तरह से मार्गदर्शन व्यक्ति में निहित संभावनाओं के अनुसार उसके पूर्ण विकास पर ही बल देता है। मार्गदर्शन की प्रक्रिया का संबंध जीवन से है और जीवन में व्यक्ति के विकास में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के संपर्कों का योगदान रहता है।

## मार्गदर्शन की बढ़ती हुई मांग को प्रभावित करने वाले कारक

आज की इस अति आधुनिक विश्व की बढ़ती जटिलताओं, वैयक्तिक विभिन्नताओं एवं विभिन्न प्रकार की मानवीय समस्याओं के कारण मार्गदर्शन की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यहां हम उन अनेक कारणों को जानेंगे जिनसे आधुनिक विश्व की जटिलताओं में और भी वृद्धि हो रही है। इनमें कुछ प्रमुख कारक हैं, जिनके कारण मार्गदर्शन सेवाओं की आवश्यकता को प्रमुखता के साथ रेखांकित किया जा रहा है जो इस प्रकार है–

1. जनसंख्या वृद्धि– यह मार्गदर्शन की आवश्यकता के सर्वाधिक प्रमुख कारणों में से एक प्रमुख कारण है। जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों यथा शिक्षा और व्यवसाय में उतने अवसरों की उपलब्धता में विस्तार नहीं हुआ है इसलिए सभी को अवसर प्राप्ति हेतु संघर्ष करना पड़ता है। अतः एक अच्छा मार्गदर्शन व्यक्ति को इन प्रतिकूल परिस्थितियों में अच्छी पूर्व तैयारी करने और अपने गंतव्य मार्ग पर अग्रसर होने में सहायता प्रदान करता है, जिससे

टिप्पणी

व्यक्ति अपने जीवन में अवसरों का अधिकतम लाभ उठा सके और उसे सफल बना सके।

2. शहरीकरण जो कि अत्यधिक जनसंख्या भार को झेलता है– हर मनुष्य अपने रोजगार और शिक्षा हेतु शहर की ओर उन्मुख होता है जबकि वहां उन्हें अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। वहां व्यक्ति एक अच्छे भविष्य की चाह में संघर्ष आरंभ कर देता है लेकिन नगरीय जीवन में शीघ्र ही मनोरंजन क्रीड़ा, स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि के नये समायोजनात्मक संकट प्रकट होने लगते हैं।
3. शिक्षा के क्षेत्र में भारी बदलाव के कारण विशिष्टताओं के नये क्षेत्र खुलते जा रहे हैं और अनेक पुरानी विधाएं तथा मान्यताएं अपनी उपयोगिता खोती जा रही हैं जिसके कारण उस क्षेत्र से जुड़ने जा रहे लोगों को अपने भविष्य की सुरक्षा एवं शिक्षा के नये आयामों की प्राप्ति हेतु नये उपाय खोजने की आवश्यकता होती है जो कि एक सही मार्गदर्शन से ही प्राप्त हो सकता है।
4. आज के इस वैश्विक युग में व्यावसायिक क्षेत्रों में नयी चुनौतियों का सामना करने हेतु लोगों से उत्कृष्ट कार्य निष्पादन की अपेक्षा की जाती है। कोई भी व्यक्ति अथवा वर्ग सर्वोत्कृष्ट कार्य निष्पादन कर सके इसके लिए विभिन्न अवस्थाओं और अवसरों हेतु मार्गदर्शन वांछित हो जाता है।
5. मानवीय कार्यों में सहयोग के लिए व्यक्ति ने जिस तरह के घरेलू उपकरण और अन्य संसाधन जुटा लिए हैं तथा आर्थिक क्रियाकलाप के प्रारूपों में जैसे परिवर्तन हुए हैं उनके फलस्वरूप आज बहुसंख्यक लोगों के पास आराम के समय में वृद्धि हुई है जिसके उपयुक्त ढंग से नीति विकास, सामुदायिक उत्थान अथवा आत्मिक प्रसन्नता के क्षेत्र में उपयोग हेतु मार्गदर्शन की आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है। इस मार्गदर्शन की सहायता से लोग सही निर्णय लेने में सक्षम हो पाते हैं।
6. कुछ विशेष वर्गों के व्यक्तियों के लिए जैसे विकलांगों, बाल अपराधियों आदि। इन विशेष वर्गों की समस्याओं के समाधान हेतु मार्गदर्शन की आवश्यकता सर्वोपरि है क्योंकि एक सही मार्गदर्शन के माध्यम से इन व्यक्तियों को भी समाज में एक सही पहचान मिलने में मदद मिलती है।
7. समाज में नैतिकता का संकट भी इतना बड़ा संकट है कि व्यक्ति औचित्य और अनौचित्य के विवाद का समाधान ही नहीं कर पाता। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति की दुविधा कम करने हेतु मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है।
8. एक कल्याणकारी राज्य व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिए अधिकतम विकास सुनिश्चित करने की चेष्टा करता है अतः दोनों पक्षों को एक साथ लाभ दिलाने के लिए व्यापक रूप में मार्गदर्शन सेवाओं को उपलब्ध कराना महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मार्गदर्शन एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो बाल्यावस्था से मृत्युपर्यंत चलती रहती है और इसका मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति का विकास

करना ताकि वो सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सके। परिवार, विद्यालय, उद्योग, समुदाय इन सभी क्षेत्रों में मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

टिप्पणी

## मार्गदर्शन के प्रकार

मार्गदर्शन को एक आंदोलन के रूप में व्यक्ति के व्यावसायिक एवं समायोजनात्मक विकास हेतु आरंभ किया गया था, किंतु धीरे–धीरे मार्गदर्शन के क्षेत्र का विस्तार होता गया और मार्गदर्शन शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बन गया। इसकी भूमिका का भी विस्तार हो गया। मार्गदर्शन से व्यक्ति का संपूर्ण विकास संभव है। मार्गदर्शन व्यक्ति की पूर्णता के साथ, उसके समग्र विकास के साथ, उसकी प्रसन्नता के साथ तथा समाज में व्यक्ति के महत्वपूर्ण बनने के उद्देश्य के साथ जुड़ गया है। इस तरह से मार्गदर्शन के कार्य क्षेत्रों का विकास कई दिशाओं में संपन्न हुआ और आज मार्गदर्शन हर एक क्षेत्र के लिए नितांत आवश्यक माना जाने लगा है क्योंकि यह जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित है। आधुनिक चलन (Modern trends) के अनुसार मार्गदर्शन को छः प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं–

1. शैक्षिक मार्गदर्शन (Educational Guidance)
2. व्यावसायिक मार्गदर्शन (Vocational Guidance)
3. व्यक्तिगत मार्गदर्शन (Personal Guidance)
4. विकासात्मक मार्गदर्शन (Developmental Guidance)
5. उपव्यावसायिक मार्गदर्शन (Avocational Guidance)
6. स्वास्थ्य मार्गदर्शन (Health Guidance)

डब्ल्यू. एम. प्रोक्टर के अनुसार मार्गदर्शन के विभिन्न प्रकार हैं–

1. शैक्षिक मार्गदर्शन
2. व्यावसायिक मार्गदर्शन
3. सामाजिक और नागरिक क्रियाकलापों में मार्गदर्शन
4. स्वास्थ्य और भौतिक क्रियाकलापों में मार्गदर्शन
5. अवकाश समय के सदुपयोग में मार्गदर्शन
6. चरित्र निर्माण क्रियाकलापों में मार्गदर्शन।

जॉन एम. ब्रेमर के अनुसार मार्गदर्शन दस प्रकार का होता है, जो इस प्रकार है–

1. शैक्षिक मार्गदर्शन
2. व्यावसायिक मार्गदर्शन
3. धार्मिक मार्गदर्शन
4. गृह संबंधों के लिए मार्गदर्शन
5. नागरिकता के लिए मार्गदर्शन
6. अवकाश और मनोरंजन के लिए मार्गदर्शन

7. निजी कल्याण में मार्गदर्शन
8. सही कार्य करने में मार्गदर्शन
9. विचारशीलता और सहयोग में मार्गदर्शन
10. हितकारी और सांस्कृतिक क्रिया में मार्गदर्शन।

पैटर्सन तथा अन्य ने मार्गदर्शन के पांच प्रकार बतलाए जो इस प्रकार हैं–

1. शैक्षिक मार्गदर्शन
2. व्यावसायिक मार्गदर्शन
3. निजी मार्गदर्शन (जिसमें सामाजिक, भावात्मक, संवेगात्मक ओर अवकाश समय मार्गदर्शन शामिल है)
4. स्वास्थ्य मार्गदर्शन
5. आर्थिक मार्गदर्शन

इन सभी में से मुख्यतः छह प्रकार को अलग किया गया है जो इस प्रकार हैं–

### 1. शैक्षिक मार्गदर्शन

शैक्षिक मार्गदर्शन, मार्गदर्शन का एक महत्वपूर्ण प्रकार है किंतु यह व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत मार्गदर्शन की सीमाओं को भी स्पर्श करते हुए चलता है जिससे कि छात्र का अधिक से अधिक विकास हो। मायर्स के अनुसार, "शैक्षिक मार्गदर्शन छात्र के विकास अथवा शिक्षा हेतु अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए, छात्रों के विभिन्न गुणों एवं विकास के अवसरों पर विभिन्न समूहों के बीच संबंध स्थापित करने वाला प्रक्रम है।"

जोन्स के अनुसार, "शैक्षिक मार्गदर्शन का संबंध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यचर्याओं, पाठ्यक्रमों के चुनने एवं शिक्षालय के जीवन से संबद्ध समायोजनाओं के लिए अपेक्षित है।"

रूथ स्ट्रैंग के अनुसार, "शैक्षिक मार्गदर्शन का उद्देश्य व्यक्ति को उचित पाठ्यक्रमों के विवरण एवं उसमें प्रगति करने में सहायता देना है।"

इस तरह से हम कह सकते हैं कि शैक्षिक मार्गदर्शन का संबंध केवल छात्रों की शिक्षा विषयक बातों से ही है, न कि उनके वैयक्तिक और व्यावसायिक मामलों से। शैक्षिक मार्गदर्शन से आशय उस मार्गदर्शन से है जो पाठ्य विषयों का चयन करने, शिक्षा में सफलता प्राप्त करने एवं अध्ययन के समय आने वाली विभिन्न समस्याओं के समाधान में सहायता देता है। इसलिए मार्गदर्शन छात्रों के लिए नितांत आवश्यक है क्योंकि आज के इस आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में नये शोध कार्यों तथा जीवन की बदलती हुई आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप अनेक नए क्षेत्रों का उदय हुआ है तथा अल्प विकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों के सामने भी शिक्षा से संबंधित समस्या प्रकट होती है। इस तरह के छात्रों के पास उपयुक्त मार्गदर्शन का अभाव है। ये छात्र सफलता और समायोजन से वंचित रह जाते हैं।

शैक्षिक मार्गदर्शन की स्थिति की व्याख्या करते हुए हम यह देख सकते हैं कि इसका केंद्र बिंदु एवं आधार छात्र ही होता है। शैक्षिक मार्गदर्शन का क्षेत्र छात्र एवं उसके परिवेश के बीच स्थापित संबंध से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों एवं समस्याओं के निदान तथा उपचार के लिए दी जाने वाली सहायता तक ही सीमित है। लेकिन आज के शैक्षणिक मार्गदर्शन का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया जिसे समझने एवं शैक्षिक कार्यक्रमों की बुद्धिमत्तापूर्वक योजना बनाने में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है।

आज से कुछ समय पूर्व तक प्रारंभिक विद्यालय हो या माध्यमिक, विद्यालय छात्र को शिक्षण सुविधा प्रदान करने में ही अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति समझते थे, लेकिन आज के इस परिवर्तित युग में ऐसा समझना एक भूल है क्योंकि आज शिक्षा का अर्थ छात्र को केवल पढ़ाना, लिखाना या गणित का ज्ञान देना ही नहीं है। आज का संपूर्ण राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण बदल गया है। अतः इस परिवर्तित वातावरण के साथ–साथ शिक्षा को भी परिवर्तित करना है और समय की मांग के अनुसार छात्रों को शिक्षित करना है। इसलिए आज के शिक्षा के लक्ष्यों में भी काफी परिवर्तन हुए जिससे शैक्षिक आवश्यकताएं भी जटिल होती जा रही हैं। अतः शैक्षिक दृष्टि से शैक्षिक मार्गदर्शन नितांत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो गया है ताकि प्रत्येक छात्र के व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके।

### 2. व्यावसायिक मार्गदर्शन

व्यावसायिक मार्गदर्शन वह प्रक्रिया है जो छात्र या व्यक्ति को किसी व्यवसाय का चुनाव करने तथा उसके लिए तैयारी करने आदि में सहायता प्रदान करता है।

सन् 1937 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय व्यावसायिक मार्गदर्शन संघ (नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोसिएशन) द्वारा अपनाये गए सिद्धांतों के अनुसार "व्यावसायिक मार्गदर्शन व्यक्ति को किसी व्यवसाय के चुनाव करने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने एवं प्रगति करने में सहायता प्रदान करने का प्रक्रम है। इसका संबंध मुख्य रूप से भविष्य की योजनाएं बनाने एवं जीवनचर्या के निर्माण हेतु किए जाने वाले निर्णयों एवं विकल्प के चुनावों में व्यक्ति को सहायता प्रदान करने से है। ये निर्णय एवं वैकल्पिक चुनाव संतोषजनक व्यावसायिक सामंजस्य बनाने के लिए आवश्यक हैं।

सन् 1949 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) ने व्यावसायिक मार्गदर्शन का अर्थ समझाते हुए बताया है कि "व्यावसायिक मार्गदर्शन, व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसाय के अवसरों के साथ उनके संबंध को ध्यान में रखते हुए उन्हें व्यवसाय के वरण एवं उसकी प्रगति में आने वाली समस्याओं को सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं।"

मार्गदर्शन के क्षेत्र में कार्य करने वाले एक विद्वान सुपर ने भी व्यावसायिक मार्गदर्शन की परिभाषा इन शब्दों में की है, "किसी भी व्यक्ति को अपने (स्वयं का) एवं व्यवसाय जगत के बीच अपनी भूमिका एवं संपर्याप्त चित्र (एडीक्वेट) बनाने एवं उसे स्वीकार करने तथा वास्तविक स्थिति के बीच इस अवधारणा की जांच करने एवं उसे

टिप्पणी

स्वयं के संतोष तथा समाज के लाभ हेतु वास्तविकता में बदलने के लिए सहायता प्रदान करने के प्रक्रम को व्यावसायिक मार्गदर्शन कहते हैं।"

एक अन्य विद्वान मायर्स के अनुसार, "व्यावसायिक मार्गदर्शन मूलतः युवकों की अमूल्य क्षमताओं तथा विद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान किए जाने वाले महंगे प्रशिक्षण को संरक्षित करने का प्रयत्न है। यह मानवीय संसाधनों में से सर्वाधिक कीमती संसाधन को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति को वहां (उस क्षेत्र में) निवेश करने और उपयोग करने में सहयोग प्रदान करता है जहां उसे अपने लिए सर्वाधिक प्रसन्नता एवं संतुष्टि प्राप्त हो तथा समाज को सर्वाधिक लाभ हो।"

व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण आधार है व्यक्तियों के बीच में पाई जाने वाली भिन्नताएं। यदि समाज में सभी व्यक्ति समान होते तो सामान्य एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता का दूसरा आधार है– व्यवसाय में अनेकरूपता। किस प्रकार का व्यवसाय किस व्यक्ति के अनुरूप होगा यह निर्णय करने के लिए एक व्यवस्थित मार्गदर्शन कार्यक्रम की आवश्यकता पड़ती है। हर व्यवसाय की प्रकृति भिन्न होने के कारण भी व्यवसायिक मार्गदर्शन आवश्यक है।

आज के निरंतर परिवर्तनशील युग और समाज में व्यावसायिक मार्गदर्शन की पहले से अधिक आवश्यकता है क्योंकि आज के इस आधुनिक युग में हर क्षेत्र में व्यवसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति का विकास समुचित रूप से होता है और उसे प्राप्त मार्गदर्शन से रुचि एवं क्षमता के अनुसार व्यवसाय के वरण में सफलता मिलती है तो उसका सर्वांगीण विकास होता है। फलस्वरूप वह समाज का एक अच्छा सदस्य बनता है।

इस प्रकार इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक मार्गदर्शन का उद्देश्य ही है– व्यक्ति, समाज तथा व्यावसायिक संगठनों के हितों की रक्षा करना। जहां व्यक्ति की प्रगति महत्वपूर्ण है वहीं पर समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति, राष्ट्रीय मांग की पूर्ति भी समान रूप में महत्वपूर्ण है। यदि दोनों पक्षों के मध्य उपयुक्त सामंजस्य स्थापित नहीं होता है तो दोनों पक्षों को हानि होती है और उनकी प्रगति बाधित होती है। इस प्रकार से व्यावसायिक मार्गदर्शन व्यक्ति और समाज की सहायता करता है।

### 3. व्यक्तिगत मार्गदर्शन

शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन की तरह व्यक्तिगत मार्गदर्शन भी मार्गदर्शन के प्रकारों में से एक प्रकार है। व्यक्तिगत मार्गदर्शन व्यक्तिगत जीवन से संबंधित होते हैं, जैसे– सामाजिक, पारिवारिक, शारीरिक एवं मानसिक। इन सभी क्षेत्रों में जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं, वे व्यक्ति के जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में बाधा का कार्य करती हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए जो भी सहायता पहुंचाई जाती है उसे व्यक्तिगत मार्गदर्शन कहा जाता है।

**टिप्पणी**

डॉ. सीताराम जयसवाल के अनुसार, "व्यक्तिगत मार्गदर्शन एक ऐसी सहायता है जो व्यक्ति को अपनी संवेगात्मक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को हल करने में दी जाती है। अतः व्यक्तिगत मार्गदर्शन के अंतर्गत जीवन की वे सभी समस्याएं आती हैं जिन्हें शैक्षिक या व्यावसायिक मार्गदर्शन के अंतर्गत स्थान प्राप्त नहीं है।

सी.वी. गुड के अनुसार, "व्यक्ति मार्गदर्शन मार्गदर्शन का वह रूप है जिसका प्रयोजन व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत आदतों, प्रवृत्तियों और जटिल व्यक्तिगत समस्याओं के हल में सहायता देता है।"

व्यक्तिगत मार्गदर्शन का संबंध मानसिक स्वास्थ्य से है क्योंकि आज के आधुनिक जीवन की जटिलताओं के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में समायोजनात्मक समस्याएं उत्पन्न होती हैं इसलिए व्यक्ति को इन समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु अनेक प्रकार के निर्णय भी लेने होते हैं। इसके लिए हमें किसी निर्देशक की भी आवश्यकता पड़ती है जो हमें इन व्यक्तिगत समस्याओं से बाहर निकाल सके। रॉबर्ट एच. मैथ्यूसन के अनुसार, "व्यक्तिगत मार्गदर्शन व्यक्तियों के चयन करने, नियोजन और समायोजन तथा प्रभावशाली आत्म मार्गदर्शन करने तथा व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का सामना करने में प्रदान किए जाने वाले व्यवस्थित व्यावसायिक सहयोग की प्रक्रिया है।"

इस प्रकार से इन परिभाषाओं एवं तथ्यों से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत मार्गदर्शन, स्वास्थ्य, संवेगात्मक, समायोजन, सामाजिक समायोजना, मनोरंजन तथा अवकाश में की जाने वाली क्रियाओं और समस्याओं से संबंधित है। वर्मा एवं उपाध्याय के अनुसार– व्यक्ति के जीवन को आनंदप्रद बनाने के लिए और उपयुक्त स्वास्थ्य, संवेग, सामाजिक सभी प्रकार की समस्याओं में समाधान के लिए जो भी सहायता की जाती है वह व्यक्तिगत मार्गदर्शन है। इस तरह से व्यक्तिगत मार्गदर्शन स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्रियाओं, नैतिक विकास की क्रियाओं, सामाजिक और नागरिक समस्याओं एवं अवकाश के सदुपयोग की क्रियाओं से संबंध रखता है।

इससे स्पष्ट है कि व्यक्तिगत मार्गदर्शन का उद्देश्य है कि व्यक्ति अपने जीवन की विपरीत परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करे और अपने जीवन में बहुमुखी विकास कर सके।

### 4. विकासात्मक मार्गदर्शन

मार्गदर्शन के प्रकारों में से एक प्रकार है– विकासात्मक मार्गदर्शन। रूथ स्ट्रैंग के अनुसार, किशोरों की प्रमुख आवश्यकता अपने अंदर परिपक्वता का सर्वोत्तम विकास करना होता है। ये सभी आवश्यकताएं व्यक्ति के अपने सर्वोत्तम विकास की आवश्यकता में से ही उपजती हैं। व्यक्तिगत मार्गदर्शन जहां यह प्रयत्न करता है कि व्यक्ति परिवेश में ठीक बैठ सके वही विकासात्मक मार्गदर्शन व्यक्ति को अपने सर्वोत्तम ढंग से विकसित होने में सहयोग देता है।

टिप्पणी

हेविंगर्स्ट ने किशारों के लिए ऐसे 10 विकासात्मक लक्ष्यों को निर्धारित किया है जिससे उन्हें विकास हेतु निर्देशात्मक सहयोग मिल सके।

1. अपने आयु वर्ग के लोगों के साथ नये तथा अधिक उपयुक्त संबंधों को विकसित करना।
2. अपने शरीर के संरचनात्मक गठन को स्वीकार करना।
3. नर एवं नारी की सामाजिक भूमिकाओं को अर्जित करना।
4. आर्थिक स्वतंत्रता का भरोसा अर्जित करना।
5. माता–पिता तथा अन्य वयस्कों से सांवेगिक रूप में स्वतंत्रता अर्जित करना।
6. व्यवसाय का चयन करना तथा उसकी तैयारी आरंभ करना।
7. विवाह एवं पारिवारिक जीवन हेतु तैयारी करना।
8. उन बौद्धिक क्षमताओं और सम्प्रत्ययों को विकसित करना जो नागरिक दक्षताओं के लिए आवश्यक हैं।
9. सामाजिक दृष्टि से जिम्मेदार व्यवहार को विकसित करना।
10. मूल्यों की प्रणाली तथा नैतिक ढांचे को अर्जित करना।

इस प्रकार इन तथ्यों से स्पष्ट है कि विकासात्मक मार्गदर्शन का उद्देश्य है व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करना। विकासात्मक मार्गदर्शन व्यक्ति के सामाजिक तथा व्यक्तित्व विकास संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति में भी मदद करता है। इस तरह से व्यक्ति का समस्त विकास एवं समाज और परिवार के प्रति उचित जिम्मेदारी इन, सभी का निर्वहन ठीक से हो– इसके लिए उसके व्यक्तित्व का सही विकास बहुत आवश्यक है क्योंकि व्यक्तित्व का सही विकास न हो तो वो इन सारी जिम्मेदारियों का सही प्रकार से निर्वाह नहीं कर पाएगा।

### 5. उपव्यावसायिक मार्गदर्शन

मार्गदर्शन के इस प्रकार को उपव्यावसायिक मार्गदर्शन के अतिरिक्त अवकाश काल मार्गदर्शन या मनोरंजन मार्गदर्शन भी कहा जा सकता है। व्यक्ति के जीवन में प्रतिदिन कुछ घंटे, या सप्ताह अथवा माह में कुछ ही दिन बिना तनाव फुर्सत के पल होते हैं, जब उसे अपनी दैनिक व्यस्तता से अवकाश प्राप्त रहता है जिसमें वह मनोरंजन प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के कार्य करता है। हर व्यक्ति का अपना अवकाश काल बिताने का अलग ढंग होता है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि वह अपने अवकाशकाल को कितना उपयोगी एवं सुखदायी बनाता है इसका महत्व उसके कार्यकाल के लिए भी होता है।

यदि मनुष्य फुर्सत के क्षणों को प्रभावशाली ढंग से मनोरंजन, शौक, शारीरिक, सामाजिक प्रकार की गतिविधियों में व्यतीत करे तो अवश्य ही उसे सुख की अनुभूति होगी तथा समाज के अन्य वर्गों को भी लाभ पहुंचेगा। इससे समय का सदुपयोग होने की अनुभूति अर्जित होती है तो कार्य के समय व्यक्ति के निष्पादन स्तर में भी सुधार होता है। इसलिए इस प्रकार के सुझावों के लिए उपव्यावसायिक मार्गदर्शन महत्वपूर्ण है।

उपव्यावसायिक मार्गदर्शन के अभाव में उन व्यक्तियों के लिए समायोजनात्मक समस्याएं उत्पन्न होती है जिनके पास अवकाश या फुर्सत के समय की अधिकता होती है। उपव्यावसायिक या अवकाश काल मार्गदर्शन का क्षेत्र मनोरंजन मार्गदर्शन के क्षेत्र से व्यापक और विस्तृत होता है। मनोरंजन मार्गदर्शन का मुख्य उद्देश्य होता है मनोरंजन के प्रकार का चयन करना जबकि उपव्यावसायिक मार्गदर्शन देते समय सबसे पहले यह देखा जाता है कि व्यक्ति अपने अवकाश का उपयोग मनोरंजन, शौक या सामाजिक कार्य हेतु अथवा किसी अन्य रूप में करना चाहता है। व्यक्ति को ऐसे कार्यकलापों का चयन करना होता है जो उसकी क्षमताओं एवं विशेषताओं के अनुसार हो। यहां उपव्यावसायिक मार्गदर्शन में व्यक्ति को स्वयं अपने बारे में तथा विविध प्रकार के कार्यकलापों के बारे में जानने में भी सहयोग प्रदान करता है।

इस प्रकार उपव्यावसायिक मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुसार कार्यकलापों को करने की जानकारी एवं सहयोग प्राप्त होता है।

### 6. स्वास्थ्य मार्गदर्शन

मार्गदर्शन के प्रकारों में से स्वास्थ्य मार्गदर्शन एक महत्वपूर्ण प्रकार है क्योंकि आज के आधुनिक जीवन की बदलती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वास्थ्य मार्गदर्शन महत्वपूर्ण है। आधुनिक जीवन शैली एवं आधुनिक रहन–सहन व परिवेश और शहरी वातावरण के कारण स्वास्थ्य के क्षेत्र में कई नई प्रकार की शारीरिक परेशानियों का उदय हुआ है इसलिए इन परेशानियों से बचाव हेतु तथा उपचार हेतु हमें स्वास्थ्य का सही ख्याल रखने के लिए भी मार्गदर्शन की जरूरत पड़ती है। स्वास्थ्य मार्गदर्शन में निम्न उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया है–

1. स्वास्थ्य मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति को ऐसी जीवन शैली की सलाह देना जिसमें खान–पान, रहन–सहन, कार्य, विश्राम और व्यायाम आदि का बेहतरीन संतुलन बनाते हुए वह अपने परिवेश में स्वस्थ रहे।
2. विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाव की विधियों से व्यक्ति को परिचित कराना और उन्हें अपनाने के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहित करना, जैसे– टीकाकरण के बारे में जानना और उसे अपनाने के लिए निर्देशित करना, पोलियो की दो बूंद के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित करना। ऐसी कई तरह की बीमारियां हैं जिसके लिए लोगों में जागरूकता की आवश्यकता है।
3. STD, AIDS– ये सब यौन रोग है जिनके फैलाव का मुख्य आधार अनुचित व्यवहार है अतः युवकों को उपयुक्त जीवन शैली के चयन में सहायता देनी चाहिए, जो कि स्वास्थ्य निर्देशक के लिए आवश्यक है।
4. रोग होने पर उसका उपचार कैसे किया जाए, उपचार कहां से कराया जाए आदि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने तथा विकल्पों का चयन करने में व्यक्ति की सहायता करना स्वास्थ्य निर्देशक का दायित्व है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वास्थ्य निर्देशक से हमें अपने आप को स्वस्थ रखने के तरीकों का पता चलता है और अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में इसकी आवश्यकता

पड़ती है। स्वास्थ्य मार्गदर्शन के द्वारा छात्रों को भी स्वस्थ जीवन के विषय में जानकारी दी जाती है, जिससे छात्र उत्तम स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं और उसे अपने जीवन में उतारते हैं। इसी के द्वारा छात्रों को प्राथमिक उपचार की भी जानकारी दी जाती है जिससे कभी भी दुर्घटना घटने पर तथा छोटी–मोटी चोट लगने पर सही प्राथमिक उपचार कर सकें।

## मार्गदर्शन और शिक्षा का सहसंबंध

मार्गदर्शन का जीवन में कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। मार्गदर्शन सेवाएं पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग मानी जाती हैं। आज से कुछ समय पूर्व मार्गदर्शन सेवाओं को विद्यालय पद्धति में विस्तार कार्यकलाप माना जाता था और इसे विद्यालयों के लिए बिल्कुल अनावश्यक एवं अनुपयुक्त माना जाता था। लेकिन शिक्षकों और जनप्रतिनिधियों द्वारा विस्तृत और उपयुक्त मूल्यांकनों द्वारा मार्गदर्शन सेवाओं को स्वीकार कर लिया गया है। इसे शैक्षिक प्रक्रिया के लिए प्रमुख एवं महत्वपूर्ण माना गया है।

कहा जा सकता है कि मार्गदर्शन सेवाएं पूरे शैक्षिक प्रयास का मुख्य और अभिन्न अंग हैं किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये सेवाएं अध्यापन अथवा प्रशासन के समरूप हैं अथवा इनका स्थान ले सकती हैं या इनकी प्रतिस्थानी हैं।

मार्गदर्शन सेवाओं की अपनी स्वयं की पहचान है। मार्गदर्शन अध्यापन व प्रशासन के कुछ पक्षों के बीच तीव्र सीमांकन रेखाओं की अपेक्षा अंतःसंबंध के क्षेत्र हैं। क्योंकि एक अच्छा अध्यापक मार्गदर्शन के अनेक कार्य संपादित करता है अन्य बातों के साथ–साथ वह न केवल उपलब्धि बल्कि समायोजन में विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा और कठिनाइयों को समझने के लिए मूल्यवान सूचना एवं उपयोगी जानकारी भी प्रदान करता है।

शिक्षा और मार्गदर्शन एक दूसरे से सह संबंधित हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि शिक्षा में मार्गदर्शन सम्मिलित है। सभी तरह का मार्गदर्शन शिक्षा है, परंतु शिक्षा के कुछ पहलू मार्गदर्शन नहीं है। दोनों का उद्देश्य एक जैसा हो सकता है, जैसे– व्यक्ति का विकास। परंतु प्रयोग की जाने वाली इनकी विधियां भिन्न होती है।

इस प्रकार से मार्गदर्शन और शिक्षा का सह संबंध है और मार्गदर्शन शिक्षा का अभिन्न अंग है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने में सहायक होते हैं।

## समूह मार्गदर्शन : संकल्पना, आवश्यकता, महत्व और प्रमुख बिंदु

मार्गदर्शन व्यक्तिगत रूप एवं समूह रूप दोनों ही प्रकार से दिया जा सकता है। इस मार्गदर्शन के अन्तर्गत वे क्रियाएं ही सम्मिलित हैं जो समूह परिस्थितियों में की जाती है। समूह मार्गदर्शन का उद्देश्य अपने सदस्यों को वांछित अनुभव प्राप्त करने में सहायता करना है ताकि समूह के सभी व्यक्तियों एवं छात्रों को शैक्षिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के निर्णय विवेकपूर्ण ढंग से लेने में मदद मिल सके। इस प्रकार की क्रियाओं से धन एवं समय दोनों की ही बचत होती है और एक दूसरे के प्रति पारस्परिक सहयोग की भावना भी उत्पन्न होती है जो समाज के लिए उपयोगी है।

इस तरह से समूह कार्यविधि जीवन की जनतांत्रिक पद्धति की विशेषता है। इसलिए समूह कार्यविधि अधिकाधिक लोकप्रिय मार्गदर्शन की पद्धति बनती जा रही है। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता और लेखक जो व्यक्तिगत स्थितियों में परामर्श देने का कार्य कर रहे हैं, वे भी इन मार्गदर्शन कर्मचारियों के मुख्य कार्यों का दिग्दर्शन कराते हैं क्योंकि मार्गदर्शन पर ध्यान दिए बिना व्यक्तिगत एवं समूह दोनों ही मार्गदर्शन सही दिशा की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है। मार्गदर्शन में कुछ ऐसे मार्गदर्शन कार्य हैं जिन्हें यदि 'व्यक्ति केन्द्रित' के स्थान पर 'समूह केन्द्रित' कर दिया जाए तो वो अधिक लाभदायक हो सकते हैं। जैसे–समूह चर्चा। किसी भी समस्या का हल इससे अधिक सरलता से निकल आता है।

**समूह मार्गदर्शन** : समूह मार्गदर्शन वह मार्गदर्शन है जो एक समूह, विशेष समूह या विद्यार्थी समूह के लिए दिया जाता है जैसे कक्षा में किया गया मार्गदर्शन जहां कि एक समूह बनाकर कार्य किया जाता है।

बेनेट Bennet के अनुसार– "समूह मार्गदर्शन शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया है और इसका संबंध निम्नलिखित बातों से है–

1. एक समान आयु के व्यक्तियों को छोटे समूहों में अन्तःक्रिया करने का अवसर प्रदान करना।
2. समूह के सदस्यों को अपनी दैनिक संवेगात्मक समस्याओं के समाधान करने में सहायता प्रदान करना।
3. समूह के सदस्यों का निरन्तर परिवर्तित होने वाले संसार में एक–दूसरे के मूल्यों एवं विश्वासों को भी निर्धारित करने में सहायता देना।
4. समूह के सदस्यों की अन्तःक्रिया का निरीक्षण करके उनके चरित्र, व्यवहार, मूल्यों, विश्वासों, भावनाओं एवं दृष्टिकोण आदि का ज्ञान प्राप्त करके उनमें परिवर्तन करना। समूह मार्गदर्शन में एक समूह की विभिन्न समस्याएं भी ली जा सकती हैं। मार्गदर्शन के आधार पर समूह के सदस्यों की मानसिक योग्यता का मूल्यांकन करके अपने व्यवसाय का चुनाव किया जाता है। वे उसका उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं तथा उसमें प्रवेश करने के लिए कार्य आरम्भ करते हैं।

मार्गदर्शन समूह के सदस्यों का नेतृत्व करता है। सदस्यों को उनकी समस्याओं से संबंधित सूचनाएं देता है उन्हें उस पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है अथवा उनके विचारों को मौन रूप से सुनता है।

## समूह मार्गदर्शन की आवश्यकता

समूह–मार्गदर्शन के अन्तर्गत मार्गदर्शन के वे क्रियाकलाप आते हैं जो समूह परिस्थिति में किए जाते हैं और उनका उद्देश्य अपने सदस्यों को वांछित अनुभव प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना है। अर्थात् दूसरे अर्थों में कहें तो (समूह मार्गदर्शन सही) ढंग से निर्णय लेने में सदस्यों की सहायता करता है।

इस प्रकार अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो समूह मार्गदर्शन का तात्पर्य है– व्यक्ति विशेष को समूह के अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों में मार्गदर्शन प्रदान करना। उदाहरण

के लिए विद्यालयों में नवप्रवेशार्थियों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम तथा वृत्ति उपबोधक द्वारा कक्षा की परिस्थिति में वृत्ति वार्ता करना। ये सब समूह मार्गदर्शन के कुछ उदाहरण हैं।

**टिप्पणी**

कभी–कभी हमारे मन में ये बातें आती हैं कि समूह–मार्गदर्शन क्यों दिया जाता है? छात्रों को एक–एक करके ही मार्गदर्शन क्यों न दिया जाए? इत्यादि और इससे छात्रों को क्या लाभ पहुंचता है? इत्यादि।

समूह मार्गदर्शन के कार्यों का निश्चित और अन्तिम लक्ष्य है आत्म बोध और दूसरे के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना। जिन व्यक्तियों को अपने कार्यों का प्रबन्ध करने के लिये दूसरों की सहायता की आवश्यकता है, उन्हें भी इसके बारे में जानकारी अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। इसके लिए जब तक अभिभावकों, अध्यापकों और निर्देशकों में सही समझदारी का समन्वय न हो तब तक प्रभावशाली सहायता प्रदान करना भी असम्भव एवं कठिन हो जाता है। इसलिए मार्गदर्शन देने वाले व्यक्ति को सभी के बारे में जानकारी होनी आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में पूर्ण जानकारी होने पर ही समूह मार्गदर्शन सफल एवं क्रियान्वित होता है।

इस तरह जो विद्यालय समूह–मार्गदर्शन को प्रोत्साहन देते हैं वहां उस विद्यालय के छात्र इन कार्यक्रमों में भाग लेकर निम्नलिखित रूप से खुद को लाभान्वित कर सकते हैं।

1. उनके विभिन्न अनुभव क्षेत्रों में समायोजन करने में सहायता देने वाली सूचनाएं इसके अंतर्गत आती हैं–
   (क) शैक्षिक प्रगति के अवसर
   (ख) व्यावसायिक अवसर तथा व्यावसायिक तैयारी
   (ग) अवकाश के क्षणों की गतिविधियां
   (घ) सामाजिक तथा नागरिक परिस्थितियों के बारे में।
2. इसी प्रकार से सभी छात्रों के समूह में होने से विकास की ओर अग्रसर सहयोगी जीवन का अनुभव प्राप्त करने की दिशा में–
   (क) छात्रों में पहल करना
   (ख) अच्छी खेल भावना युक्त जीवन पद्धति को विकसित करना
   (ग) इसके द्वारा अपने को तथा समाज को अच्छी तरह से समझना
   (घ) दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखना
3. व्यक्ति विशेष या छात्रों की योग्यताओं एवं अभिरुचियों का विकास होता है–
   (क) समूह परियोजनाओं में बराबर की सहभागिता
   (ख) विभिन्न प्रकार के छात्रों के बारे में जानकारी प्राप्त होना
   (ग) छात्रों द्वारा प्रवर्तित/शुरू की गई क्रियाओं का आयोजन
   (घ) विद्यालय के अंदर और बाहर विशेष सेवाओं से संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन

**टिप्पणी**

## समूह मार्गदर्शन का लाभ

समूह मार्गदर्शन सभी क्षेत्रों में दिया जा सकता है और इससे समय एवं धन की बचत भी होती है लेकिन समूह मार्गदर्शन केवल छात्रों को ही नहीं बल्कि हर उम्र के लोगों को दिया जाता है और यह उनकी आवश्यकता के अनुसार भी दिया जा सकता है। समूह मार्गदर्शन के निम्न लाभ हैं जो इस प्रकार हैं–

1. समूह मार्गदर्शन कई प्रकार की क्रियाओं के लिए बहुत ही उपयुक्त है। जैसे यथावृत्ति के बारे में या नवागंतुक छात्रों को विद्यालय की जानकारी देना हो। इन परिस्थितियों में व्यक्तिगत मार्गदर्शन देना समय नष्ट करना ही होगा।
2. समूह मार्गदर्शन के द्वारा छात्रों और मार्गदर्शन सेवा कर्मियों के मध्य एक ऐसा संबंध स्थापित हो जाता है जिससे जरूरत पड़ने पर दूसरे प्रकार की मार्गदर्शन सेवाओं का मार्ग प्रशस्त होने में सहायता मिलती है।

   उदाहरण के लिए 10+2 के छात्र विद्यालय के उपबोधक की सहायता से अपने लिए उपयोगी पुस्तकों का चयन करते हैं तथा वे उपबोधक की ही सहायता से अपने लिए उपयोगी पुस्तकों का चयन करते हैं जिससे छात्रों के समूहों को उत्तरोत्तर सहायता मिलती रहती है।
3. समूह मार्गदर्शन से अनुभवों अथवा अपरिचित परिस्थितियों के बारे में जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए 10+2 में प्रवेश लेने वाले छात्रों को उस समय अच्छा लगता है जब उपबोधक उन्हें उन विद्यालयों के बारे में पूर्व जानकारी दे देता है। तब छात्र जान जाते हैं कि इन विद्यालय में कौन–कौन सी सुविधाएं उपलब्ध हैं तथा यहां के क्या नियम है तथा उनसे विद्यालय को क्या–क्या अपेक्षाएं है। ये सारी जानकारी समूह मार्गदर्शन के द्वारा ही छात्रों को कक्षा में दी जाती है।
4. समूह मार्गदर्शन व्यक्तिगत परामर्श का मार्ग प्रशस्त कर देता है और इस मार्गदर्शन से छात्र और उपबोधक (निर्देशित करने वाला) दोनों के ही समय और श्रम की बचत होती है जिससे कक्षा का माहौल भी अच्छा बना रहता है। उदाहरण के लिए– कल्पना कीजिए कि यदि चालीस छात्रों की कक्षा में प्रत्येक छात्र को पृथक–पृथक रूप से समय प्रबंधन की बात बताई जाए तो यह कार्य कितना उबाऊ हो जाएगा।
5. समूह मार्गदर्शन से सामान्य समस्याओं पर समूह ध्यान केन्द्रित होता है। समूह में होने पर व्यक्ति विशेष की समस्या का समाधान बड़ी सरलता एवं तत्परता से हो जाता है। यदि वह स्वयं अकेला ही उसका हल ढूंढने लगे तो उसे अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई होगी।
6. समूह मार्गदर्शन से ये जागरूकता विकसित होती है कि जो भी समस्या है वह किसी व्यक्ति विशेष के लिए नई नहीं है। समूह के अन्य सदस्यों से भी वह

समान रूप से संबंधित है जिससे वह समूह में समस्या की चर्चा तनावमुक्त होकर करता है और संवेगात्मक तनावों से मुक्त हो जाता है। समूह में चर्चा करने पर जो सुझाव दिए जाते हैं वे सभी के लिए ग्राह्य एवं मान्य होते हैं।

**टिप्पणी**

7. समूह–मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति विशेष को वास्तविक समूह जीवन जीने का अवसर उपलब्ध होता है। वहां वह यह सीखता है कि अन्य व्यक्तियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। समूह परिस्थिति में छात्र को विद्यालयी जीवन के विभिन्न प्रकार के समूह अनुभवों को अपेक्षाकृत अधिक पास से अनुभव करने के अवसर प्राप्त होते हैं। ये अवसर सामाजिक रूप से स्वीकृत रीति से छात्रों को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने में सहायक होते हैं। यहीं वे दूसरे के दृष्टिकोण का आदर करना भी सीखते हैं।
8. इससे उपबोधक को छात्रों के साथ अपने संबंधों को मधुर बनाने में भी सहायता मिलती है।
9. समूह मार्गदर्शन के दौरान मुक्त एवं अनौपचारिक वातावरण होता है जो उपबोधक को समूह–चर्चा का एक ऐसा सुयोग अवसर प्रदान करता है जिसमें वह छात्रों को समूह परिस्थिति में प्रतिक्रिया करते हुए देखता है और इसी प्रकार से वो हर छात्र के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर लेता है और उनकी विशेषताओं एवं उनकी कमजोरियों को भी जान जाता है जो अन्यथा संभव नहीं हो पाता। क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष के साथ उपबोधन सत्र में दोनों के ही व्यवहार में कृत्रिमता आ जाती है। इसके अतिरिक्त उपबोधक छात्रों के अंत:क्रियात्मक व्यवहारों के रंग–ढंग को भी समझने में सक्षम नहीं होता है। इस प्रकार की कुछ विशेष परिस्थितियों में समूह–मार्गदर्शन की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

## समूह मार्गदर्शन की उपयोगिता

समूह मार्गदर्शन आज सभी क्षेत्रों में दिये जा रहे हैं। इसलिए इनकी उपयोगिता बढ़ गयी है–

1. इससे एक निश्चित समूह, समाज या बहुसंख्यक व्यक्ति एक साथ लाभान्वित हो सकते हैं।
2. इसके द्वारा शैक्षिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक किसी भी क्षेत्र में मार्गदर्शन दिया जा सकता है।
3. स्वास्थ्य मार्गदर्शन की प्रक्रिया भी समूह–मार्गदर्शन द्वारा आसानी से दी जा सकती है।
4. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों (उपलब्धि परीक्षा, अभिरूचि परीक्षा, रुचि परीक्षा) मानदण्ड, मूल्यांकन, रेटिंग स्केल एवं निदानात्मक परीक्षणों आदि के द्वारा एक बड़े समूह की क्षमताओं योग्यताओं तथा कुशलताओं का अध्ययन किया जाता है।
5. अल्प समय में ही एक बड़े समूह को अपेक्षित दिशा में निर्देशित किया जा सकता है।

6. आर्थिक एवं विधिक समस्याओं के समाधन के लिए भी समूह मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

## कक्षा में समूह मार्गदर्शन हेतु प्रमुख बिंदु

टिप्पणी

यदि समूह मार्गदर्शन को प्रभावी ढंग से आयोजित करना है तो कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है जिससे समूह–मार्गदर्शन प्रभावी बन सके। ये बिंदु निम्न हैं–

1. समूह मार्गदर्शन एक टीम कार्य है अर्थात मिलजुल कर करने का काम है। इसमें छात्रों, अध्यापकों तथा विद्यालयी प्रशासनिक स्टाफ (कार्यकर्ता) सभी का सहयोग अपेक्षित है।
2. मार्गदर्शन पाने वाला दल, समूह की आवश्यकताएं और समस्याएं समान होनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कक्षा VI के छात्रों से 'प्रभावी करियर योजना' विषय पर कक्षा वार्ता की जाती है तो यह प्रयास निरर्थक सिद्ध होगा क्योंकि इस कक्षा के आयु वर्ग के बच्चे इतने छोटे होते हैं कि यह विषय उनकी समझ से बाहर होता है।
3. समूह मार्गदर्शन विद्यालय की निरंतर चलने वाली क्रिया होनी चाहिए ताकि छात्र इससे हमेशा लाभान्वित होते रहें और अपनी समस्याओं का निदान समूह रूप में कर सकें।
4. दल के सभी सदस्यों की इसमें सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए। प्रायः इस प्रकार की विधियों का प्रयोग करना चाहिए जिससे छात्र उत्कंठित होकर प्रश्न पूछकर महत्वपूर्ण विषयों को समझ सकें। उदाहरण के लिए जब कक्षा वार्ताओं का आयोजन किया जाए तब प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी अनुभव व्यक्त करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।
5. जब समूह मार्गदर्शन के द्वारा सभी कक्षा में अपने निजी अनुभव एक दूसरे से बांटते हैं तो उनके अंदर की झिझक भी दूर होती है और उनके अंदर धीरे–धीरे आत्मसम्मान जागृत होने लगता है।
6. समूह का आकार अधिक भीड़–भाड़ वाला नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे सही प्रकार की बातों का आदान–प्रदान नहीं हो पाता है।
7. यह व्यक्तिगत मार्गदर्शन का स्थानांतरण नहीं है, अपितु ये दोनों ही प्रकार परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं।
8. समूह मार्गदर्शन के द्वारा भावात्मक दृष्टि से अव्यवस्थित छात्रों को अपनी स्थिति समझने योग्य बना सकता है।

## विद्यालयों में मार्गदर्शन कार्यक्रम का संगठन

मार्गदर्शन व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों और अवस्थाओं के लिए आवश्यक है, किन्तु मुख्यतः मार्गदर्शन को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में माना गया है। इसलिए विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवा अति आवश्यक है। मार्गदर्शन को विद्यालय के सामान्य जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है। यह कोई वस्तु या सामान नहीं है जिसे विद्यालय के किसी कक्ष या कोने में खोजा जा सके। मार्गदर्शन एक ऐसा कार्यक्रम है

टिप्पणी

जो विद्यालय के सभी प्रकार की गतिविधियों का आवश्यक अंग है। मार्गदर्शन के कार्यक्रमों में शिक्षक की कुछ–न–कुछ सुनिश्चित जिम्मेदारी होती है। इसके साथ–साथ विद्यालय के अन्य कर्मियों एवं व्यवस्थापकों की भी एक सुनिश्चित सी जिम्मेदारी होती है। विद्यालय के बाहर स्थित माता–पिता एवं सामुदायिक संगठनों के बिना भी मार्गदर्शन के लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। इस तरह से मार्गदर्शन एक ऐसा प्रकार्य अथवा कार्यक्रम है जिसमें सभी की भागीदारी होती है इसलिए यह एक निश्चित नीति (Policy) के अनुरूप संगठित (Organised) और प्रशासित (Administered) होना चाहिए।

वस्तुतः शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है छात्रों का सर्वांगीण विकास करना क्योंकि शिक्षा हमारे जीवन का आधार स्वरूप है। इस प्रक्रिया में विद्यालय संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और छात्रों का ज्यादा से ज्यादा विकास इन्हीं के सानिध्य में रहते हुए होता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। वैसे तो शिक्षक का प्रमुख कार्य शिक्षण कराना है परन्तु केवल शिक्षण कार्य में ही लगे रहकर वांछित विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न कर पाना कठिन है।

क्योंकि जब तक एक शिक्षक को यह ज्ञात नहीं होगा कि अधिगम एवं समायोजन से संबंधित समस्याएं कौन–सी है; कौन–सा छात्र इन समस्याओं के समाधान के अभाव में पीछे रह गया है तथा उसे किस प्रकार की सहायता प्रदान की जा सकती है; तब तक वह अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। यदि शिक्षण एवं अधिगम का प्रक्रिया का वस्तुनिष्ठ रूप में विश्लेषण किया जाए तो हम सहजता से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि विद्यालयों में शिक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण मार्गदर्शन की प्रक्रिया है। इसलिए इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवाओं को ध्यान में रखते हुए इसे प्रमुख स्थान दिया जाए और इसकी महत्ता को समझा जाए। इसके लिए विद्यालय मार्गदर्शन सेवा संगठनों के विभिन्न पक्षों से परिचित होना आवश्यक है इसी के आधार पर विद्यालयी छात्रों की समस्याओं के बारे में उचित सहायता का प्रावधान तथा उसका व्यावहारिक क्रियान्वयन सम्भव है।

## विद्यालय मार्गदर्शन संगठन के मुख्य कार्य

मार्गदर्शन सेवा का क्षेत्र असीमित है लेकिन विद्यालय जीवन से संबंधित कतिपय ऐसे विशिष्ट कार्य होते हैं जिन पर मार्गदर्शन सेवाएं ही ध्यान देती है क्योंकि एक छात्र को शिक्षण के समय अध्यापक रोजाना देखता है और उसकी गतिविधियों पर भी ध्यान देता है। इसलिए एक सही मार्गदर्शन के द्वारा छात्र को सही दिशा दी जा सकती है। इसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा रहा है–

1. मार्गदर्शन सेवा छात्रों के स्वास्थ्य संबंधी कार्य करता है और उसे निर्देशित करता है कि हम किस प्रकार से स्वस्थ रहे– क्योंकि एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग का वास होता है जिससे छात्र स्वस्थ रहे।
2. मार्गदर्शन सेवा छात्रों से संबंध अभिलेख छात्रों की प्रगति एवं मूल्यांकन से संबंधित सूचनाओं तथा अन्य विवरण को समुचित एवं व्यवस्थित ढंग से रखती है।

3. छात्रों को सामाजिक समायोजन, पारिवारिक समस्याओं एवं अवकाश संबंधी मार्गदर्शन प्रदान करना ताकि छात्र सभी संगठनों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके और अवकाश के समय का सही सदुपयोग कर सके।
4. मार्गदर्शन सेवा संगठन को स्वस्थ संस्था के गुणों, उद्देश्यों, कर्मचारियों की संख्या, आर्थिक साधन तथा आकार के अनुरूप होना चाहिए।
5. छात्रों के शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों, एवं उनके कारणों का विश्लेषण करके विद्यार्थियों को शैक्षिक मार्गदर्शन प्रदान करना मार्गदर्शन सेवा का एक अन्य विशिष्ट कार्य है।
6. मार्गदर्शन सेवा का अन्य विशिष्ट कार्य है– प्रशासनिक कठिनाइयों को दूर करना, छात्रावास में भोजन आदि की व्यवस्था करना तथा छात्रों को मिल–जुलकर साथ रहने की अच्छी आदतों का विकास करना।
7. छात्रावास से संबंधित व्यवस्था आदि में ध्यान रखना।

मार्गदर्शी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह अति आवश्यक हो जाता है कि मार्गदर्शन कार्यक्रम ढंग से संगठित हो। यह संगठन और प्रशासन कुछ मौलिक सिद्धांतों के अनुसार ही होने चाहिए। सिद्धांत विद्यालय के स्वरूप के अनुरूप होने चाहिए तथा इन सिद्धांतों के निर्धारण में छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

## मार्गदर्शन कार्यक्रमों के संगठन संबंधी आवश्यकताएं

मार्गदर्शन कार्यक्रमों के संगठन हेतु वांछित यांत्रिकी का वर्णन करने से पूर्व बच्चों की आवश्यकताओं के बारे में संक्षिप्त पुनर्विचार करना उपयोगी होता है क्योंकि बच्चों को मार्गदर्शन के द्वारा ही सही राह पर अग्रसर किया जा सकता है। मार्गदर्शन की आवश्यकता केवल स्कूल तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि वे उसका पालन हमेशा करते हैं और एक कुशल व्यक्ति बनते हैं।

बच्चों की मार्गदर्शन संबंधी प्रमुख आवश्यकताएं निम्न हैं–

1. बच्चों के अन्दर ऐसी क्षमताओं का विकास करना जो उन्हें अपने बारे में, विद्यालय, व्यवसाय एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों के बारे में विश्वसनीय सूचना अर्जित करने हेतु उन्हें समर्थ बनाएं जिससे वो अपना विकास कर सकें।
2. बच्चों को उपयोगी अनुभव, प्राथमिक प्रयत्न, परिवेश के अन्वेषण, नई रुचियों के विकास तथा अपनी क्षमताओं की पहचान हेतु अवसर उपलब्ध कराना चाहिए और प्रयत्नपूर्वक उन्हें इन कार्यों के लिए प्रेरित करना चाहिए।
3. बच्चों को सहानुभूति, प्रबुद्ध परामर्श तथा सतर्कतापूर्ण देखभाल की आवश्यकता होती है।
4. बच्चों को इस उम्र में ऐसे मित्र की आवश्यकता होती है जो सक्षम, प्रशिक्षित तथा सहायता देने के लिए उपलब्ध हो तथा जिसके पास बच्चे सहायता पाने के लिए स्वतंत्रतापूर्वक बेहिचक जा सकें।

5. बच्चों को सहायता देने वाले मार्गदर्शक को मृदुभाषी होना चाहिए जो बच्चों से स्नेहपूर्वक उनकी समस्याओं को जान सके और उनकी समस्याओं को दूर कर सके।
6. शैक्षिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग की आवश्यकता होती है।

**टिप्पणी**

इस प्रकार से छात्रों को मार्गदर्शन की बहुत आवश्यकता होती है और सही मार्गदर्शन पाकर व्यक्ति भविष्य में अच्छा इंसान बन जाता है इसलिए अध्यापक का मूल उद्देश्य तो शिक्षा प्रदान करना ही है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य छात्रों का अधिक से अधिक विकास करना है। आज के इस विकसित समाज में विद्यालयों को सभी अवस्थाओं पर मार्गदर्शन सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए।

इस प्रकार बच्चों की उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय परिवेश और वांछित बाहरी तत्वों के बीच उपयुक्त समन्वय की आवश्यकता है और इस समन्वय हेतु संगठन तथा प्रशासन की एक उपयुक्त रूपरेखा होनी चाहिए। आर्थर जोन्स का मत है कि बच्चे के मार्गदर्शन संबंधी कार्यक्रमों में सदैव मार्गदर्शन प्राप्त करने वाले बच्चे को ही केन्द्र में रखा जाना चाहिए अन्यथा कार्यकुशलता के लिए मूल लक्ष्य या प्रकार्य की ही अनदेखी हो जायेगी।

## मार्गदर्शन सेवाओं को संगठित करने के आधार

1. **कार्यक्रम का उद्देश्य**– मार्गदर्शन सेवा के लिए कार्यक्रम बनाने से पूर्व यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि कार्यक्रम का संगठन किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जा रहा है क्योंकि उद्देश्यों के अभाव में कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो पाता है। अतः मार्गदर्शन सेवाएं अथवा कार्यक्रम विद्यालयों को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों को खोजने का प्रयास करते हैं।
2. **कार्यक्रम के कार्य**– कार्यक्रम के उद्देश्य निर्धारण के पश्चात् कार्यों को सुनिश्चित किया जाता है। इन कार्यों का लक्ष्य होता है निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति।
3. **उत्तरदायित्व का निर्धारण**– विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त होने पर ही मार्गदर्शन कार्यक्रम सफल बन पाता है। इसलिए मार्गदर्शन कार्यक्रम के सफल बनाने के लिए, शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समस्त शिक्षकों की मार्गदर्शन में रुचि होना एवं योग्यताओं के संबंध में उन्हें सही जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि शिक्षकों की रुचियों एवं योग्यताओं के आधार पर ही उन्हें उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं।
4. **कार्यक्रम का मूल्यांकन**–मार्गदर्शन सेवाओं को संगठित करने का कार्यक्रम प्रारंभ करने के पश्चात् कार्यक्रम की प्रगति एवं उपयुक्तता का मूल्यांकन करना भी अति महत्वपूर्ण है क्योंकि छात्रों की आवश्यकताओं मार्गदर्शन विधियों एवं सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन होते रहने के कारण मार्गदर्शन भी परिवर्तित होता रहता है। अतः मार्गदर्शन कर्मचारियों को समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों के प्रति सचेत करते रहना चाहिए। इस प्रकार मार्गदर्शन कार्यक्रम

आवश्यकता के अनुसार एवं नयी परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित किया जा सकता है।

**टिप्पणी**

इन विचारों के अतिरिक्त मार्गदर्शन कार्यक्रमों के संगठन और प्रशासन हेतु रेबर, एरिम्सन और ज्मिथ ने कुछ सिद्धांतों को सूचिबद्ध किया है जो निम्नवत हैं—

(i) मार्गदर्शन सेवा की उत्पत्ति उस विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की रुचियों आवश्यकताओं और उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए जिसके लिए उसकी रचना की गई है।

(ii) मार्गदर्शन सेवा बच्चों के सर्वोपयुक्त विकास के लिए प्रदान की जानी चाहिए कुसमायोजन का समाधान इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। मार्गदर्शन सेवा निरन्तर तथा सभी के लिए होनी चाहिए।

(iii) मार्गदर्शन का संबंध व्यक्ति की समग्रता (व्यक्ति तथा उसका समग्र परिवेश, उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं और समस्याओं सहित) के साथ होना चाहिए।

(iv) इसका लक्ष्य समस्याओं का समाधान ही नहीं बल्कि समस्याओं का परिहार और समस्याओं से बचाव भी होना चाहिए।

(v) मार्गदर्शन द्वारा व्यक्ति के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और अवस्थाओं में सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

(vi) मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा विशेषज्ञों के सहयोग से अन्य कार्मिकों की सेवा की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(vii) मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा व्यक्ति को शैक्षिक एवं रोजगार संबंधी अवसरों दोनों के बारे में सही सूचनाओं को उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(viii) पूरा का पूरा मार्गदर्शन व्यक्ति के आत्मज्ञान और आत्म–मार्गदर्शन के सुधार और विकास की दिशा में होना चाहिए।

(ix) इसे विद्यालय के सभी सदस्यों के सहकारात्मक सहयोग और रुचियों के आधार पर संगठित किया जाना चाहिए।

(x) इसमें दीर्घकालिक मार्गदर्शन हेतु प्रिंसिपल द्वारा नेतृत्व तथा विद्यालय और समुदाय के सभी अभिकरणों के बीच समन्वय की व्यवस्था होनी चाहिए।

(xi) किसी भी मार्गदर्शन सेवा का विकास उन सेवाओं के बीच में से होना चाहिए जिनका वर्तमान समय में अस्तित्व है। विद्यालय पृष्ठभूमि की अद्वितीय परिस्थितियों के अनुरूप उसका अनुकूलन होना चाहिए।

## मार्गदर्शन सेवा संगठन की विशेषताएं

मार्गदर्शन सेवा संगठन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. मार्गदर्शन कार्यक्रम शिक्षकों की रुचियों, छात्रों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के ज्ञान पर ही आधारित होना चाहिए।
2. मार्गदर्शन सेवाएं निवारक होनी आवश्यक है ताकि आरम्भ में छात्र के समुचित समायोजन के लिए प्रयास किया जाए।

3. मार्गदर्शन प्रदाता को इस प्रतीक्षा में नहीं रहना चाहिए कि छात्र के कुसमायोजन होने पर ही सहायता प्रदान की जाए।
4. मार्गदर्शन कार्यक्रम के लिये प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को ही व्यवस्थित मार्गदर्शन कार्यकम का नेतृत्व करना चाहिए।
5. मार्गदर्शन कार्यक्रम में सभी के समन्वित प्रयास एवं सहयोग से मार्गदर्शन कार्यक्रम सफल हो सकता है। छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने के लिए नैदानिक सेवायें, स्वास्थ्य सेवायें, परिवार कल्याण विभाग इत्यादि की सहायता ली जा सकती हैं।
6. मार्गदर्शन कार्यक्रम के संगठन के लिए प्रथम महत्वपूर्ण कार्य कार्यक्रम के उद्देश्य को निर्धारित करना है क्योंकि इसके अभाव में मार्गदर्शन कार्यक्रम असफल हो जाता है।
7. मार्गदर्शन कार्यक्रम में मार्गदर्शन सेवाओं का गठन छात्रों की आवश्यकताओं को समझने तथा उनकी संतुष्टि में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता है इसीलिए मार्गदर्शन सेवाओं को भी निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

## विद्यालयी मार्गदर्शन में होने वाली क्रियाएं

किसी भी मार्गदर्शन कार्य के सरल और सफल संचालन के लिए यह अनिवार्य है कि हम मार्गदर्शन में होने वाली क्रियाओं के समन्वय के द्वारा ही उसे सफल रूप से क्रियान्वित कर सकते हैं।

विद्यालय मार्गदर्शन में होने वाली क्रियाएं निम्नवत हैं–

1. **सूचना–संग्रह और प्रसार**– मार्गदर्शन कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न विषयों (जिनमें मार्गदर्शन देना है) से संबंधित सूचनाओं का संग्रह किया जाता है और विभिन्न प्रकार की पत्र–पत्रिकाओं, लघु पुस्तिकाओं, संकेत चिह्नों और प्रदर्शनी आदि के द्वारा उनका प्रचार और प्रसार किया जाता है।
2. **संस्थाओं से संपर्क**– इसके अंतर्गत विद्यालय को एक ओर तो शिक्षा संस्थाओं से संपर्क रखना होता है तो दूसरी ओर विभिन्न व्यावसायिक केन्द्रों, औद्योगिक संस्थाओं, सेवा कार्यालयों और चिकित्सालयों आदि से संपर्क रखना होता है जिससे उनके यहां की प्रगति और वहां से प्राप्त होने वाले अवसरों तथा प्रतिबन्धों के विषय में आधुनिकतम सूचनाएं मिलती रहें।
3. **परीक्षण तथा अध्ययन**– विद्यालयों में जिन्हें मार्गदर्शन देना होता है उनका पहले मानसिक, व्यक्तिगत संबंधी, रुचि विषयक, अभिवृत्ति विषयक तथा अन्य आवश्यक परीक्षण करते हैं; उनके संबंध में निकट सम्बन्धियों तथा अभिभावकों से परामर्श लेकर जानकारी प्राप्त करते हैं। और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि देखते

टिप्पणी

हैं तत्पश्चात साक्षात्कार द्वारा उनकी विशेषताओं को जानकर एक स्पष्ट चित्र तैयार करते हैं।

4. **मार्गदर्शन देना**— परीक्षणों के आधार पर प्राप्त सामग्री का विश्लेषण करके सभी सम्भावनाओं पर विचार करने के पश्चात् ही मार्गदर्शन दिया जाता है जिससे मार्गदर्शन चाहने वाले व्यक्ति का सही मार्गदर्शन हो सके।
5. **प्रवेश एवं कालान्तर अध्ययन**— मार्गदर्शन के बाद उन्हें आवश्यक तैयारी के साथ उस उपयुक्त पाठ्यक्रम अथवा व्यवसाय में जाने की जानकारी देते हुए उन्हें प्रेरित करते हैं। उनके प्रवेश करने के बाद उनसे सम्पर्क बनाये रखते हैं और यह भी देखते हैं कि जिस मार्ग पर उन्हें भेजा गया है (अर्थात् व्यवसाय में) उसमें उन्हें कहां तक सफलता मिल रही है।

यही क्रियाएं व्यक्ति विशेष अथवा छात्रों को मार्गदर्शन देने में भी होती हैं। जिन्हें मार्गदर्शन देना है उनका विभिन्न प्रकार से परीक्षण करके उनकी क्षमता, रुचि, प्रवृत्ति और विशेष गुणों के बारे में आश्वस्त होने के बाद उनकी शैक्षिक उपलब्धि देखते हैं तथा साथ ही शिक्षकों और अभिभावकों से भी सुझाव लेते हैं।

इन सभी के बाद व्यक्ति की स्वयं की इच्छाओं को जानने के लिए साक्षात्कार भी करते हैं जिससे सही मार्गदर्शन प्राप्त हो सके और इन परिस्थितियों के विश्लेषण के बाद मार्गदर्शन का अध्ययन कालांतर चलता है।

## विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवा हेतु सुझाव

छात्रों की उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, विद्यालय में मार्गदर्शन सेवा होना अति आवश्यक है जिससे छात्रों का उचित विकास सम्भव हो सके। मार्गदर्शन कार्यक्रम के द्वारा छात्रों का शैक्षिक एवं रोजगार संबंधी समस्याओं का निदान विद्यालय में ही हो जाता है। विद्यालयों में मार्गदर्शन की व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. **आर्थिक भार**— हमारे विद्यालयों की आर्थिक दशा अगर उतनी अच्छी न हो तो मार्गदर्शन सेवा के संगठन और उसके कार्यक्रम के आयोजन में सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक समय व्यय न हो अन्यथा यह व्यवस्था भार बन जाएगी और मार्गदर्शन सेवा सुधार रूप से नहीं चल पाएगा।
2. **अधिक से अधिक छात्रों को अवसर मिले**— हमारे विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवा का आयोजन इस प्रकार से किया जाए कि उसके द्वारा अधिक से अधिक छात्र लाभान्वित हो सकें और उनको सही मार्गदर्शन प्राप्त हो सके।
3. **मार्गदर्शन अथवा शैक्षिक कार्यक्रम में संतुलन**— मार्गदर्शन संबंधी क्रियाओं का आयोजन शैक्षिक कार्यक्रमों के मार्ग में बाधक न हो अपितु उनमें इस प्रकार का संतुलन हो कि दोनों साथ—साथ चलते रहें तथा एक—दूसरे के पूरक बनें।
4. **सहकारिता**— मार्गदर्शन की क्रिया में सम्पूर्ण विद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी का सहयोग अति आवश्यक है। यदि इसका संबंध कुछेक लोगों से ही होगा तो शेष कर्मचारी रुचि नहीं लेंगे और सम्भव है कि वे बाधा भी पैदा करें। ऐसी स्थिति

में पूरी व्यवस्था उपहासास्पद बन जाएगी और लाभ के स्थान पर हानि अधिक होगी। अतः सबका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। सभी लोगों को सच्चे हृदय से अपना सहयोग देना चाहिए जिससे मार्गदर्शन कार्यक्रम सुचारु रूप से चल सके।

**टिप्पणी**

5. **विद्यालय की वर्तमान परिस्थितियां**– विद्यालय की परिस्थितियां सारी व्यवस्थाओं के अनुकूल है अथवा नहीं इसका भी ध्यान रखना आवश्यक होगा क्योंकि किसी भी कार्यक्रम की पूर्व तैयारी आवश्यक है नहीं तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।
6. **मार्गदर्शन में अध्यापकों की भूमिका**– मार्गदर्शन कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि शिक्षकों का विश्वासपूर्ण सहयोग न प्राप्त हो। अतः इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों का विश्वासपूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाए जिससे मार्गदर्शन आसान एवं सुचारु रूप से क्रियान्वित हो सके।

टैक्सलर तथा नार्थ लिखते हैं–''नवयुवकों को स्वयं को समझने के लिए, सभी कार्य क्षेत्रों की विषय वस्तु को अपनी क्षमताओं और सीमाओं के संदर्भ में देखने के लिए और नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भविष्य में विकसित होने वाले रोजागारों के लिए (जबकि सैकड़ों अन्य लोग निरर्थक या कम महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेते हैं) विस्तृत क्षमताओं और दक्षताओं के विकास की आवश्यकता को स्वीकार करने हेतु सहायता देने के कार्य में अध्यापकों एवं परामर्शदाताओं के लिए अपने प्रयत्नों को संयुक्त करने की जरूरत है। यह मूलतः एक अधिगम दशा है तथा किसी अन्य की तुलना में उस मार्ग को बेहतर प्रशस्त कर सकता है जिसके माध्यम से छात्र अपने भविष्य में झांक सकता है।''

वैसे तो अध्यापक का प्रथम उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य होता है– छात्र का अधिकतम सम्भव विकास करना और मार्गदर्शन शिक्षा के इस व्यापक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है। इसलिए यदि एक शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों की सिद्धि चाहता है तो उसकी भूमिका मार्गदर्शन कार्मिक की हो जाती है। और एक मार्गदर्शन कार्मिक के रूप में शिक्षक की अनेक भूमिकाएं हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **मार्गदर्शन हेतु विद्यार्थियों की क्षमताओं और विशेषताओं का मूल्यांकन**– मार्गदर्शन हेतु व्यक्ति के व्यवहार के बारे में जानना आवश्यक होता है इसलिए छात्र जितना समय कक्षाओं में व्यतीत करता है उतने समय तक तो वो अध्यापक के ही अवलोकन में रहता है। इसलिए अध्यापक मार्गदर्शन प्रदाता के रूप में एक छात्र के बारे में सभी प्रकार की सूचनाएं संकलित कर लेता है जैसे– नेतृत्व, जिम्मेदारी, सामाजिकता, रुचियां, अरुचियां, अनुशासन, मूल्य और अभिवृत्तियां, कार्य की विभिन्न परिस्थितियों से समन्वय, क्षमताएं, व्यवहारगत दोष और समस्याएं इत्यादि।

   इस तरह अध्यापक विद्यार्थी के बारे में सूचनाएं संकलित करके उपयोग हेतु उसे परामर्शदाता को प्रेषित कर सकता है।

**टिप्पणी**

2. **मार्गदर्शन हेतु सूचना सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– अपनी शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं को स्वरूप प्रदान करने के लिए बच्चों को पाठ्यक्रमों, रोजगार के अवसरों, प्रशिक्षण की सुविधाओं, रोजगार तथा व्यवसायों की योग्यता संबंधी मांग आदि के बारे में भी अध्यापक सूचना एकत्रित करके छात्रों को दे सकते हैं।

3. **अध्यापकों की पूर्वाभिमुखीकरण में भूमिका**– विद्यालय प्रांगण में आने वाले नव प्रविष्ट के बारे में परिचय प्राप्त करने तथा उसका सबके साथ समायोजन स्थापित करने की स्थिति में अध्यापक विद्यार्थी को विद्यालय के विभिन्न कक्षों, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, परम्पराओं और नियमों आदि का परिचय दे सकते हैं जिससे कि छात्र शीघ्रतापूर्वक नये परिवेश के साथ समायोजित हो सके।

4. **विकासात्मक–मार्गदर्शन सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास। जिससे छात्रों का स्वयं के प्रति और समाज के प्रति एक वास्तविकतापूर्ण दृष्टिकोण बन सके। इसके लिए विद्यार्थियों के अन्दर जिम्मेदारी स्वीकारने तथा पहल करने की प्रवृत्ति, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, स्वतन्त्र चिंतन के सामर्थ्य के साथ–साथ अपनी कमियों को स्वीकारने की प्रवृत्ति आदि का विकास होना चाहिए। ऐसी प्रवृत्तियों को विकसित करने में अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

5. **परामर्श सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– विद्यार्थियों को स्वयं बारे में तथा परिवेश के बारे में सूचनाएं प्राप्त होती है लेकिन इसके पश्चात् भी शैक्षिक, व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक जीवन लक्ष्यों के निर्धारण हेतु सक्षम व्यक्ति से परामर्श की आवश्यकता होती है जो उन्हें विकल्पों के स्वतन्त्रतापूर्वक चयन हेतु समर्थ बना सकें। इसक लिए अध्यापक ही एक सही मार्गदर्शक साबित होता है। जोन्स ने– इस विषय में कहा है कि "अध्यापक की यह भूमिका उपचारात्मक नहीं होती तथापि वह विद्यार्थियों को और अच्छा समायोजन स्थापित करने में सहयोग प्रदान कर सकता है।

6. **विशिष्ट छात्रों एवं समस्याग्रस्त छात्रों की पहचान में अध्यापक की भूमिका**– विद्यालय की सभी कक्षाओं में अक्सर छात्रों की दो श्रेणियां होती है– पहली श्रेणी में मेधावी एवं विशिष्ट योग्यता वाले छात्रों की पहचान करके उनके सामर्थ्य के विकास एवं उनकी पृथक समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता होती है और इस कार्य को अध्यापक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है।

   दूसरी श्रेणी में थोड़ी कम बुद्धि या मन्द बुद्धि वाले अथवा समस्यात्मक श्रेणी के छात्र होते हैं। इनके लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है और जो छात्र समस्यात्मक श्रेणी के होते हैं उन्हें बाल मनोपचार केन्द्र द्वारा सलाह लेकर सुधारा जा सकता है अध्यापक ऐसे छात्रों की पहचान आसानी से कर सकते हैं।

7. **मार्गदर्शन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में अध्यापक की भूमिका**– मार्गदर्शन की अन्य विभिन्न सेवाओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता द्वारा विद्यार्थियों के लिए विकसित किए गये कार्यक्रमों को अध्यापकों की सक्रिय भागीदारी के

बिना कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। छात्र विशेष के लिए विकसित प्रशिक्षण, सुधारात्मक पाठ्यक्रम, सम्बद्ध अनुभव उपलब्ध कराने के लिए कार्यक्रम, अधिगम के लिए अनुकूल परिस्थितियों की योजना आदि के सही संचालन के लिए अध्यापकों के सहयोग की आवश्यकता होती है। आवश्यक होने पर इन कार्यक्रमों को सही रूप से संचालित करने हेतु अध्यापकों को समर्थ बनाने के लिए भी विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है।

8. **कार्यक्रम मूल्यांकन एवं शोधकार्य में अध्यापकों की भूमिका**— मार्गदर्शन कार्यक्रम के समापन पर अध्यापक उसकी सफलता एवं विद्यार्थियों को प्राप्त लाभ के सन्दर्भ में तथा कार्यक्रम मूल्यांकन करने में भी सहयोग प्रदान करते हैं। छात्रों के लिए अध्यापक हमेशा तत्परता के साथ उनके विकास हेतु अपना सहयोग प्रदान करता है— भविष्य में सुधार के लिए, विद्यार्थियों के व्यवहार के और तथ्यपरक विश्लेषण के लिए भी सूचनाओं के संकलन में भी हमेशा अध्यापकों की भागीदारी अपेक्षित होती है। ताकि छात्र हमेशा ही सफलता की ओर अग्रसर रहे।

## मार्गदर्शन कार्यक्रम में अभिभावकों अथवा माता–पिता की भूमिका

मार्गदर्शन का कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि अभिभावकों का उसमें विश्वास न हो और वह उसके लाभ से परिचित न हो। क्योंकि किसी भी बच्चे के विकास में माता–पिता की सर्वाधिक रुचि होती है। वे बच्चे के पालन–पोषण के साथ ही उसके शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तित्व संबंधी विकास के लिए हमेशा ही प्रयत्नशील रहते हैं इसलिए बच्चों के मार्गदर्शन में माता–पिता एवं अभिभावकों की भूमिका सर्वोपरि होती है और यदि वो निर्देशकों को आवश्यक सहयोग प्रदान करे तो बच्चा जल्द ही लक्ष्य निर्धारित कर लेता है और अपने पाठ्यक्रम पर ध्यान देने लगता है।

1. **व्यक्ति अनुसूची सेवा या मूल्यांकन सेवा में माता–पिता की भूमिका**— जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि मार्गदर्शन सेवा का मूल आधार व्यक्ति होता है और मार्गदर्शन सेवा का मूल आधार व्यक्ति के बारे में प्राप्त की जाने वाली सूचनाएं होती हैं। व्यक्ति की क्षमताओं रुचियों, अरुचियों, विशेषताओं और कठिनाइयों को समझे बिना मार्गदर्शन का कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि बच्चों का ज्यादातर समय अभिभावक और माता–पिता के साथ बीतता है अतः बच्चों के बारे में जितनी सूचनाएं माता–पिता के पास होती हैं उतनी अन्यत्र सम्भव ही नहीं है। इसलिए इनका सही से मूल्यांकन माता–पिता ही कर सकते हैं।

2. **सूचना सेवा में माता–पिता की भूमिका**— मार्गदर्शन कार्यक्रम में व्यक्ति के अतिरिक्त व्यक्ति के परिवेश से संबंधित सूचना भी मार्गदर्शन कर्मी के लिए आवश्यक होती है। जहां विद्यालयों में साधन का अभाव हो वहां विद्यालय अपने विद्यार्थियों के माता–पिता और अभिभावकों का उपयोग संसाधन व्यक्ति के रूप में करके विद्यार्थी समूहों के साथ उनकी वार्ता आयोजित कर सकते हैं जहां पर

**टिप्पणी**

अभिभावक और माता–पिता अपने शैक्षिक एवं व्यावसायिक अनुभवों के वर्णन के द्वारा विद्यार्थियों को सूचना–सम्पन्न बनाने में सहायक हो सकते हैं।

3. **कार्य स्थल संबंधी अनुभव प्रदान करने में माता–पिता की भूमिका–** बहुत सारे बच्चों के माता–पिता औद्योगिक संगठनों में आधिकारिक पदों पर अथवा सेवा नियोजक के पद पर होते हैं। ऐसे अभिभावकों और माता–पिता के साथ विद्यालय का संपर्क होता है। अपने विद्यालय के बच्चों को विभिन्न कार्य स्थलों पर कार्यों को सम्पादित करने की वास्तविक दशाओं के बारे में अनुभव उपलब्ध कराने में ये अभिभावक सहायक सिद्ध होंगे जो कि बच्चों के व्यावसायिक एवं व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।
4. **बच्चों के लिए विशिष्ट अनुभवों के आयोजन में माता–पिता की भूमिका–** बच्चों की कुछ समस्याओं हेतु माता–पिता का मात्र इतना सहयोग वांछित होता है कि सुधारात्मक पाठ्यक्रम प्रदान करने वाली संस्थाओं या बाल निर्देशित केन्द्र जैसी जगहों पर बालकों को भेजें या लेकर जाएं।
5. **विकासात्मक मार्गदर्शन के कार्यान्वयन में माता–पिता की भूमिका–** माता–पिता अपने बच्चे के बहुमुखी विकास के लिए यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। वो अपने बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास, परिवार एवं समाज में समायोजन हेतु उपयुक्त व्यवहार के लिए और सभी के उचित विकास हेतु प्रयास करते हैं। इन सभी के विकास के लिए मार्गदर्शन कार्यक्रम आवश्यक होता है। इसलिए मार्गदर्शन कार्यक्रम के सहयोग से कार्यरत माता–पिता स्वयं भी इस विषय में आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारों एवं विधियों का परिचय प्राप्त करके बच्चों के विकास संबंधी लक्ष्यों की पूर्ति में पहले से बेहतर ढंग से कार्य कर सकते हैं। माता–पिता के सम्पर्क में आकर मार्गदर्शन प्रदान करने वाले परामर्शदाता उन्हें यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि वे अपने बच्चों पर अनुपयुक्त बोझ एवं आकांक्षाओं को न थोपें और वे बच्चों को लोकतांत्रिक शैली में अपनी क्षमताओं और रुचियों आदि का विकास करने हेतु उन्हें सहयोग दें। अनुशासन का विकास आत्मानुशासन के रूप में किया जाना चाहिए।
6. **शैक्षिक एवं व्यावसायिक लक्ष्यों के निर्धारण में माता–पिता की भूमिका–** माता–पिता पाठ्यक्रमों एवं विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के विविध पक्षों के बारे में आवश्यक सूचनाओं को संभावित स्रोतों से संकलित करने के पश्चात् बच्चों को प्रदान करके उनके शैक्षिक एवं व्यावसायिक लक्ष्यों के निर्धारण में मदद कर सकते हैं। इस तरह से माता–पिता बच्चों के साथ सक्रिय रूप में भागीदारी निभाकर उन्हें लक्ष्यों के बारे में मनन करने और निष्कर्ष तक पहुंचने में लोकतांत्रिक शैली में सहयोग दे सकते हैं।
7. **मार्गदर्शन कार्यक्रम के मूल्यांकन में माता–पिता की भूमिका–** मार्गदर्शन कार्यक्रम के संबंध में माता–पिता विचार व्यक्त करके कार्यक्रम के मूल्यांकन और सुधार में सहयोग प्रदान कर सकते हैं। वे यह सूचना दे सकते हैं कि मार्गदर्शन कार्यक्रम ने उन्हें और उनके बच्चों को किस प्रकार लाभान्वित किया है। कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए क्या परिमार्जन या सुधार

किया जाना चाहिए? सर्वोत्तम रूप में उनका सहयोग कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इसका मूल्यांकन करके माता–पिता यथा सम्भव मार्गदर्शन में सहायता कर सकते हैं।

टिप्पणी

8. **मार्गदर्शन कार्यक्रम में प्रधानाचार्य की भूमिका**– प्रधानाचार्य के ऊपर विद्यालय की समस्त क्रियाओं की सफलता निर्भर होती है। यदि प्रधानाचार्य योग्य, अनुभवी, परिश्रमी, जिज्ञासु शिक्षाविद् और प्रगतिशील है और यदि उसमें जनतन्त्रीय आधार पर क्रियाओं के संचालन की क्षमता है तो वह विद्यालय अवश्य प्रगतिशील होता है। प्रधानाचार्य छात्रों का हितचिन्तक होता है और छात्रों का सर्वाधिक हित मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा उचित मार्गदर्शन दे सकता है। इसलिए प्रधानाचार्य का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह इसमें रुचि ले और मार्गदर्शन कार्य–संचालन में पूर्ण सहयोग प्रदान करे जिससे छात्रों का सर्वोत्तम विकास हो सके। प्रधानाचार्य द्वारा निम्नलिखित रूप में सहायता प्राप्त हो सकती है।

(क) प्रधानाचार्य को चाहिए कि शिक्षकों में मार्गदर्शन कार्यक्रम के प्रति रुचि उत्पन्न करे जिससे मार्गदर्शन कार्यक्रम सही रूप से कार्यान्वित हो सके।

(ख) मनोविज्ञान केन्द्र से सम्पर्क बनाए रखें तथा उसके सहयोग से कार्यक्रम को आगे बढ़ाएं जिससे छात्रों का सर्वोत्तम विकास हो सके।

(ग) अपने विद्यालय के शिक्षकों को मार्गदर्शन संबंधी प्रशिक्षण गोष्ठी तथा वर्कशॉप आदि में भेजें जिससे वो मार्गदर्शन कार्यक्रम संबंधी जानकारी जुटा पाएं तथा जिससे छात्रों एवं मार्गदर्शन कर्ता के बीच समन्वय स्थापित कर सके।

(घ) मार्गदर्शन की उपयोगिता से स्वयं आश्वस्त होकर कार्यक्रम में सक्रिय रूप से भाग लें और अन्य लोगों को भी प्रेरित करें। व्यर्थ की आलोचना एवं उपहास न करें।

(ङ) मार्गदर्शन कार्यक्रम के अनुरूप ही पर्यटन आदि सहशैक्षिक क्रियाओं का आयोजन करें।

(च) समय–समय पर इस मार्गदर्शन कार्यक्रम से संबंधित चलचित्र, व्याख्यान, गोष्ठी, प्रदर्शनी आदि का आयोजन करवाना चाहिए जिससे छात्रों का अधिकतम विकास सम्भव हो सके।

(छ) संरक्षकों को इस कार्यक्रम से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वो इससे लाभान्वित हो सके।

(ज) मार्गदर्शन कार्यक्रम के द्वारा शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं से छात्रों को परिचित कराना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रधानाचार्य के सहयोग से मार्गदर्शन कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है और वह स्वयं विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेते हैं तो निश्चय ही उनके सहयोगी शिक्षक भी उन कार्यक्रमों में भाग लेंगे और कार्यक्रम को पूर्ण सफल बनाया जा सकेगा जिससे छात्रों का भविष्य सुखद होगा।

**टिप्पणी**

## शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन

व्यक्तियों और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए, समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए अथवा अपने लक्ष्यों के निर्धारण के लिए बाहर से किसी अनुभवी व्यक्ति या सामाजिक संस्था अथवा धार्मिक गुरु का सहयोग हो पाता था।

किन्तु आज के इस आधुनिक युग में मार्गदर्शन प्रक्रिया के द्वारा संगठित रूप में मार्गदर्शन प्रदान किया जा रहा है, परन्तु संगठित रूप से मार्गदर्शन प्राप्त करने की प्रक्रिया का आरम्भ व्यावसायिक मार्गदर्शन के रूप में ही हुआ था। परन्तु कुछ समय पश्चात् से ही माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत मार्गदर्शन का आरम्भ हुआ। मार्गदर्शन प्रक्रिया के तकनीकी एवं संगठनात्मक प्रणालियों के क्षेत्र में विकास के फलस्वरूप ही प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में भी मार्गदर्शन कार्यक्रमों को अपनाया गया है।

आज के इस विकसित समाज में सभी प्रकार के स्कूलों में सभी आयु वर्गों के लिए मार्गदर्शन की सेवाएं प्रदान की जा रही है क्योंकि हर स्तर के विद्यार्थियों की दशाएं एक दूसरे से पृथक होती हैं। इसलिए प्राथमिक, माध्यमिक एवं कॉलेज के स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं में मार्गदर्शन कार्यक्रम के प्रकार्य, मार्गदर्शन कार्य तथा संगठनात्मक स्वरूप आदि में बहुत अन्तर होता है। इसलिए निम्न तीनों ही स्तरों पर मार्गदर्शन सेवाओं के स्वरूप का अलग–अलग वर्णन वांछनीय हो जाता है जो इस प्रकार से हैः

## प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवा

प्राथमिक कक्षाओं में कक्षाध्यापक अध्यापन के साथ–साथ परामर्शदाता की भी भूमिका निभाता है। और इन कक्षाओं के शिक्षक अपने विद्यार्थियों को समझने में उनके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होता है। भारत जैसे देश में जहां अध्यापक और छात्र का अनुपात बहुत विषम है, जिससे उन्हें हर छात्र के साथ सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई होती है।

जबकि अमेरिका में प्राथमिक विद्यालयों में आज से 50 वर्ष पूर्व लगभग 3000 पूर्णकालिक परामर्शदाता कार्य कर रहे थे और यह वहां के लिए अनापेक्षित भी था क्योंकि वहां पर तीन सौ से अधिक छात्रों की संख्या वाले सभी विद्यालयों में एक पूर्णकालिक परामर्शदाता कार्यरत होता था। भारत में मार्गदर्शन के आन्दोलन की शुरुआत बहुत पहले ही हो गयी थी परन्तु अनेक कारणों से यह महत्वपूर्ण सेवा कुछ महत्वपूर्ण महानगरों में स्थित विशिष्ट श्रेणी के विद्यालयों में ही सिमट कर रह गयी। ऐसी स्थिति में प्राथमिक विद्यालय में मार्गदर्शन स्वाभाविक रूप से विदेशी सम्प्रत्यय प्रतीत होगा।

फिर भी प्राथमिक स्तर पर शिक्षक मार्गदर्शन कार्यकर्ता, विद्यालय, चिकित्सा सेवा के कर्मचारी एवं विद्यालय समाज–सेवक के कार्यों में तालमेल की नितान्त आवश्यकता है। जिससे ये अध्ययन एवं परीक्षणों के द्वारा बच्चों को आरम्भिक शिक्षा के लिए आवश्यक कौशल को भली प्रकार सीखने, आधारभूत ज्ञान प्राप्त करने, विद्यालय के कार्य के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने में, एवं समाज के रीति–रिवाज के अनुसार अपने आपको ढालने में सहायता प्रदान कर सके। इसके साथ–ही–साथ बच्चों

के शारीरिक विकास, संवेगात्मक स्थिरता एवं विद्यालय समायोजना में भी सहायता पहुंचा सके।

टिप्पणी

## प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर विद्यार्थियों की प्रकृति

प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आयु और विकास की दृष्टि से इनकी तीन अवस्थायें होती है। वैसे तो बाल्यकाल में विकास तीव्र गति से होता है लेकिन बाल्यकाल के अन्तर्गत ही 4 से 6 वर्ष के आयु वर्ग के के.जी. (प्री प्राइमरी) स्तर के विद्यार्थी कक्षा 1 और 3 तक के विद्यार्थियों से तथा कक्षा 4 व 5 के विद्यार्थियों से भिन्न होते हैं क्योंकि किन्डर गार्डेन स्तर के विद्यार्थी बाल्यकाल की आरम्भिक अवस्था में होते हैं। इन आरम्भिक बाल्यकाल वाले बच्चों के विकास के चार प्रमुख क्षेत्र होते हैं– शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांवेगिक।

कक्षा 1 से 3 तक के विद्यार्थी जिनका आयु वर्ग 6 से 10 वर्ष के मध्य होता है चाक्षुष मांसपेशीय समन्वय (Eye-Hand coordination) में दक्षता प्राप्त करते हैं और मांसपेशियों का बहुलता के साथ उपयोग करते हैं। उन्हें संकलित ऊर्जा के व्यय होने के साधनों की आवश्यकता होने लगती है। ये विद्यालय के कार्य संबंधी मांग तथा शरीर की आराम संबंधी मांग के बीच संतुलन बनाना सीखते हैं। इसलिए इनके साथ शिक्षा प्रदान करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन शारीरिक क्रियाशीलता है और इसी के साथ इन्हें शिक्षा से जोड़ना चाहिए।

कक्षा 5 एवं 6वें स्तर तक के विद्यार्थी उत्तर बाल्यावस्था की अवधि में होते हैं जहां कि वे किशोरावस्था की ओर अग्रसर होते हैं– इस अवधि में बच्चे सक्रिय रहना चाहते हैं। अपनी शारीरिक एवं यौनिक भिन्नता की पहचान भी करते हैं और बच्चे वयस्कों से दूर होने लगते हैं। कार्यकलापों एवं विचारों में स्वतंत्रता इन बच्चों को अधिक प्रिय होती है। इसलिए इस समय बच्चों को घर एवं विद्यालय दोनों ही स्थानों पर सहयोग की आवश्यकता होती है। इस अवस्था के सभी विद्यार्थी अधिगम करना चाहते हैं। उनकी रुचियां व्यापक होती है और वो कार्यकारण संबंधों को सीखना चाहते हैं।

इस प्रकार बच्चों की आदतें एवं प्रकृति संबंधी सारी विशेषताओं और भिन्नताओं की जानकारी माता–पिता, अध्यापक एवं अन्य घर के करीबी लोगों को होती है जिससे वे उसी के अनुरूप अपेक्षाएं रखते हैं। यदि अपेक्षाएं बच्चों के आयु वर्ग या उनकी निजी विशेषताओं के अनुरूप न हों तो बच्चों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः विद्यालय की तरफ से पाठ्यक्रम एवं लक्ष्यों का निर्धारण बच्चों में शैक्षिक एवं व्यावहारिक समस्याओं आदि के संदर्भ में प्रदान किये जाने वाले सहयोग की अभिकल्पना में इस प्रकृति को ध्यान में रखना अति आवश्यक होता है।

## प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन की आवश्यकता

प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन का महत्व सकारात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है जैसे–जैसे बालक का विकास होता है अनेक प्रकार की समायोजनात्मक समस्याओं, त्रुटिपूर्ण आदतों तथा सांवेगिक संकटों के समाधान हेतु अभिकल्पित किया जाता है लेकिन प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर उन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न किया जाता है जिनके माध्यम से संकटों और समस्याओं से बचाव होता है तथा व्यक्ति में सकारात्मक पक्षों का समावेश होने लगता है।

इसलिए प्राथमिक विद्यालय में मार्गदर्शन सेवा अध्यापकों में उपर्युक्त अध्यापन शैली विकसित करने हेतु बालको को, वे जैसे हैं वैसे, स्वीकार करने हेतु बालकों की सृजनात्मकता और नेतृत्व क्षमता को विकसित करने हेतु आवश्यक है।

**टिप्पणी**

## प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन के प्रकार्य

प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में मार्गदर्शन का उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व में विकास तथा अधिगम संबंधी सम्भावनाओं को विकसित करना जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके।

न्यूयॉर्क शहर में प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन कार्यक्रम को अधोवर्णित मुख्य उद्देश्य और लक्ष्यों के चतुर्दिक अभिकल्पित किया गया था इनका उल्लेख क्रो. एण्ड क्रो ने अपने पुस्तक में किया है तथा इसका मूल स्रोत (Curriculum Bulletin, (Number 13, pp 6-7 1955–56) है–

1. अध्यापकों, माता–पिता, मार्गदर्शन प्रदाताओं तथा विद्यालय के प्रशासनिक कर्मचारियों के सहयोग के द्वारा छोटे बच्चों में सांवेगिक समस्याओं की उत्पत्ति से बचाव करना।
2. जब किसी भी बालक का अधिगम किसी विशिष्ट क्षेत्र में हो जोकि दोषपूर्ण हो और ये पता चले कि कमी बालक के सांवेगिक समस्याओं के कारण है तब बालक को सहायता प्रदान करना चाहिए।
3. सांवेगिक समस्या वाले बच्चों की पहचान हेतु अध्यापकों की सहायता करना जिससे उन बालकों को उपयुक्त सहायता केन्द्र तक भेजा जा सके।
4. विद्यालय तथा परिवार के बीच सहज संचार माध्यम बनाने के रूप में सेवा देना।
5. माता–पिता को बाल विकास, विद्यालय, अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम के बारे में सूचना देना।
6. अध्यापकों को उपलब्ध मार्गदर्शन सामग्री के बारे में नवीनतम सूचना देना एवं विद्यालय के अन्दर उन सामग्रियों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना।
7. अध्यापकों को बच्चों के पूर्वाभिमुखीकरण हेतु सहयोग देना तथा बच्चों को उच्चतर कक्षाओं के लिए तैयार करना।
8. माता–पिता एवं अभिभावकों को बच्चों के अध्ययन एवं मार्गदर्शन हेतु उपलब्ध और उपयुक्त उपकरणों/परीक्षणों के साथ परिचित कराना।
9. उच्चतर कक्षाओं (7 और 8) के छात्रों को विद्यालयों में पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय से संबंधित सूचना उपलब्ध कराना।
10. विद्यार्थियों के बारे में कक्षाओं में प्राप्त होने वाली सूचनाओं के अतिरिक्त पूरक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए विकसित परीक्षण कार्यक्रमों के बारे में अध्यापकों का पूर्वाभिमुखीकरण करना।
11. जरूरतमंद छात्रों के लिए शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचना चाहने वालों के लिए व्यक्तिगत परामर्श सत्रों की व्यवस्था करना।

12. विद्यालय के बाहर उपलब्ध विशिष्ट प्रकार की सेवाओं की उपलब्धता हेतु सम्पर्क सूत्र का कार्य करना।
13. संकाय में होने वाली गोष्ठियों, मार्गदर्शन कार्यशाला, क्लासरूम डेमो स्टेशन आदि के माध्यम से आध्यापकों को तकनीकी सूचना तथा मार्गदर्शन तकनीकों के बारे में सूचना प्रदान करना।
14. अन्य विभागों एवं अभिकरणों के साथ मानसिक आरोग्य कार्यक्रमों के लिए सहयोग देना।

**टिप्पणी**

उपर्युक्त वर्णनों में ऐसी बातों को सम्मिलित किया गया है जिनका उद्देश्य आध्यापकों और माता–पिता को बच्चों और विद्यार्थियों के हितार्थ और अधिक समर्थ बनाना है जिससे उनका सही विकास हो सके। आधुनिक युग के संदर्भ में प्रारंभिक विद्यालयों में जाने वाले बच्चों का व्यक्तिगत विकास, सांवेगिक स्थिरता में बने रह पाने और कुण्ठाओं का सामना करने में संदर्भ होने हेतु तथा लक्ष्यों का निर्धारण करके उनकी प्राप्ति एवं सिद्धि हेतु माता–पिता अध्यापक एवं परामर्शदाता के मध्य सह संबंध की आवश्यकता होती है जिससे बच्चों का विकास सही दिशा में हो सके।

आज के इस आधुनिक युग में बच्चे ऐसे परिवारों, ऐसे माता–पिता और ऐसी जीवन शैली के मध्य विकसित हो रहे हैं जहां माता–पिता के पास भी बच्चों के लिए समय का अभाव ही है। जिसके कारण बच्चे अपनी भावनाओं, अनुभूतियों एवं अनुभवों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि क्योंकि माता–पिता के पास उन्हें सुनने और समझने का समय ही नहीं है। तथा संयुक्त परिवार की कमी के कारण वो वृद्धजनों से प्राप्त सुरक्षा और सांवेगिक संरक्षण से भी वंचित है। ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि से निकले हुए बच्चों को बाहर की दुनिया में भी अतिरिक्त समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके बाद आज के इस प्रतिस्पर्धा वादी युग में माता–पिता की अपेक्षाएं भी बढ़ गयी हैं। इसके साथ ही साथ आज का विद्यालय भी अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करने हेतु बच्चों से उच्चतम निष्पादन चाहते हैं। इन सब के बाद संचार के नवीन साधन, टेलीविजन, फोन, नेटवर्क इत्यादि सभी अपने ढंग से समस्याओं को बढ़ा रहे हैं। जिससे आज का बच्चा जल्द ही पथभ्रम की स्थिति में आ जाता है इसलिए मार्गदर्शन की आवश्यकता आज के युग में और बढ़ जाती है।

## प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन के विशिष्ट पक्ष

प्राथमिक स्तर पर बच्चों के जीवन में अनेक महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। प्रथम बार विद्यालय में प्रवेश उसके जीवन की एक विशेष घटना होती है। वह पहली बार अपने परिवार के सुरक्षित, संरक्षित परिवेश से बाहर निकलकर पूर्णतः एक अपरिचित माहौल में प्रविष्ट करता है जहां उसे कुछ कार्य भी सम्पादित करने होते हैं। शैक्षिक अधिगम के अतिरिक्त उसे अनुशासन का अधिगम भी सीखना होता है। इसलिए विद्यालयी परिवेश के प्रति पूर्वाभिमुखीकरण की आवश्यकता इस अवस्था में विशेषतः सार्थक सिद्ध होती है।

प्राथमिक विद्यालय के पश्चात् दूसरे उच्च स्तरीय विद्यालय की ओर जाना छात्र के लिए एक नए मोड़ के समान होता है। जहां एक वरिष्ठ छात्र पुनः नये परिवेश का

टिप्पणी

कनिष्ठ छात्र बन जाता है। इसलिए क्रो एण्ड क्रो पूर्व किशोरावस्था वाले इन विद्यार्थियों के लिए इस नये अनुभव हेतु पूर्व तैयारी पर बल देते हैं।'' इस पूर्वाभिमुखीकरण की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने कुछ सुझाव दिये हैं। उनके अनुसार प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर पर या माध्यमों हेतु छात्रों को यथासमय मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए– इसके लिए (1) बच्चों के माध्यमिक प्रांगण तक जाने तथा (2) माध्यमिक विद्यालय स्तर के अध्यापकों के प्राथमिक विद्यालयों में आने और बच्चों से मिलने जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना जरूरी होता है।

विषयों के चयन के लिए उपर्युक्त परीक्षणों के माध्यमों से बुद्धि रुचि, उपलब्धि व्यक्तिगत एवं अधिगम हेतु तैयारी के बारे में बच्चों को वस्तुनिष्ठ सूचना उपलब्ध कराना चाहिए।

बच्चों के विकास से संबंधित सूचनाओं का संचयी अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए जो सभी के लिए उपयोगी है।

सामान्य परीक्षा कार्यक्रम के पश्चात् अनेक विद्यार्थी अगली कक्षाओं के लिए प्रोन्नत कर दिये जाते हैं लेकिन इन विद्यार्थियों में कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं जिनमें अधिगम की कमी होती है और ये बालक जब अपनी कमियों के साथ अगली कक्षाओं में जाते है तब पाठ्यक्रम के साथ उनके उचित समायोजन की आवश्यकता बढ़ जाती है। ऐसे बालकों के लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम की व्यवस्था वांछित हो जाती है। जिन बच्चों को पाठ्यक्रम समझने में कठिनाई होती है तथा जो ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते उनके लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम के माध्यम से आवश्यक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है।

विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थी एक समुदाय का अंग होता है समुदाय अथवा समाज के साथ विद्यार्थी का सम्पर्क उसके व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक होता है।

छात्र की शिक्षा तथा व्यक्तित्व का विकास विद्यालय अध्यापक एवं माता–पिता की संयुक्त जिम्मेदारी होती है और इस जिम्मेदारी के सम्पादन के लिए सभी पक्षों के बीच सहयोगात्मक संबंधों की स्थापना जरूरी है।

इस प्रकार से प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर पर सक्रिय मार्गदर्शन कार्यक्रमों में कार्यरत परामर्शदाता की भूमिका अत्यन्त व्यापक होती है। सामान्य रूप से विभिन्न पक्षों के मध्य सहयोग की स्थापना तथा अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सहयोग देने के अतिरिक्त यह व्यक्तित्व एवं अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रशासन, शैक्षिक मार्गदर्शन, मानसिक आरोग्य, पूर्वाभिमुखीकरण, जनसम्पर्क आदि अनेक प्रकार के क्षेत्रों में भी कार्य करता है।

## माध्यमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन

माध्यमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन का क्षेत्र प्राथमिक विद्यालयों की अपेक्षा कहीं व्यापक होता है अध्यापक विषयवार कक्षाओं में पढ़ाते हैं इसलिए बच्चों से इनका अधिक सम्पर्क नहीं हो पाता है इसलिए इसी कारण से माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवा में विशिष्टीकृत कर्मचारियों (Specialized Workers) की सेवा की अधिक आवश्यकता पड़ती है। विद्यार्थियों के शैक्षिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं निजी समस्याओं का

समाधान करने हेतु अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों एवं व्यापक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। भारत में मार्गदर्शनयुक्त विद्यालयों की संख्या कुछ ही है जो गिने चुने शहरों में ही हैं। चूंकि मार्गदर्शन कार्यक्रम की योजना और प्रारूप शैक्षिक अवस्थाओं तथा उस आयु विशेष के बच्चों एवं विद्यार्थियों के अनुरूप विकसित किया जाता है जिससे उनका पूर्ण विकास हो सके।

पूर्व माध्यमिक स्तर जूनियर हाई स्कूल अर्थात 6, 7 व 8 की अवस्था आती है इन विद्यालयों की पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आवश्यकताएं कुछ अलग हो जाती हैं। इस प्रकार से माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन कार्यक्रम की योजना संगठन और सक्रियता विद्यालयों के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है। माध्यमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन कार्यक्रम के स्वरूप प्रकार्यों क्षेत्रों उपयुक्त संगठनात्मक प्रारूप के वर्णन से पूर्व इस स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों का संक्षिप्त वर्णन वांछित है।

माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विशेषता– माध्यमिक कक्षाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की आयु 13 से 15 वर्ष की होती है। किशारों की समस्याओं एवं विशेषताओं का विस्तृत वर्णन विद्यार्थीगण विकासात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत प्राप्त कर सकते हैं। माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. इस समय के किशोर लंबाई, भार और शरीर के गठन की दृष्टि से युवावस्था का रूप ग्रहण करने लगते है।
2. किशारों में अंग विकास होने लगता है।
3. इस आयुकाल में बालकों में माता–पिता एवं अभिभावकों पर निर्भरता छोड़कर अपने निर्णय के लिए स्वतंत्रता की प्रवृत्ति विकसित होती हुई दिखाई देती है।
4. माध्यमिक स्तर का विद्यार्थी सामयिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के बारे में तथा उन घटनाओं से अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में भी चिंतित होने लगते हैं।
5. विद्यार्थीगण अपनी शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम के चयन को व्यावसायिक रुचियों से तथा संभावनाओं से जोड़ने लगते हैं।
6. इस वर्ग के विद्यार्थीगण अपनी व्यापक गतिविधियों हेतु अपने सहपाठियों की संस्तुति चाहते हैं। अतः अपने कार्यकलापों और लक्ष्यों को अपने आयुवर्ग तथा कक्षा के अन्य मित्रों के विचारों के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन उपर्युक्त विशेषताओं के अनुसार ही इन विद्यार्थियों की निर्देशात्मक आवश्यकताएं होती हैं जिनकी पूर्ति हेतु मार्गदर्शन प्रदान करने की व्यवस्था विद्यालय के स्तर पर की जानी चाहिए ताकि छात्रों को उनकी आवश्यकता के अनुसार मार्गदर्शन व्यवस्था प्राप्त हो सके।

**माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थियों की निर्देशात्मक आवश्यकता** : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की प्रमुख आवश्यकताएं व्यक्तिगत विकास, शिक्षा एवं समायोजनात्मक लक्ष्यों से जुड़ी हुई होती हैं। इस अवस्था में शैक्षिक विकल्प भी प्रस्तुत होते हैं जिनका चयन करना होता है और उन्हीं के आधार पर अपना व्यावसायिक चयन भी निर्भर करता है।

**टिप्पणी**

1. **शिक्षा संबंधी निर्देशात्मक आवश्यकताएं** : माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक मार्गदर्शन से संबंधित आवश्यकताओं के अंतर्गत विद्यालयी समायोजन, अधिगम समस्याएं विषय संबंधी विकल्प माध्यमिक स्तर के पश्चात् विषयों, पाठ्यक्रमों कॉलेजों के चयन की समस्या तथा आगे के भविष्य के लिए शिक्षा से जुड़े व्यवसाय जैसी आवश्यकताएं सम्मिलित होती हैं।

   माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर विद्यार्थियों को अपनी कक्षाओं के अतिरिक्त पुस्तकालयों एवं विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाओं के साथ समायोजित होना पड़ता है। अब उसे विभिन्न कक्षाओं में जाना पड़ता है विभिन्न प्रयोगशालाओं की अलग–अलग कार्यदशाओं का सामना करना पड़ता है।

   अधिगम में कमजोर कुछ विद्यार्थी अध्ययन छोड़कर व्यवसाय की ओर जाने लगते हैं क्योंकि जैसे–जैसे विद्यार्थी एक–एक कक्षा आगे बढ़ने लगता है वैसे–वैसे विद्यार्थी की शैक्षिक सफलता की संभावना घटती जाती है तथा उन्हें लगता है कि असफलता से अच्छा है कि शिक्षण छोड़कर किसी उद्योग या व्यवसाय को चुन लिया जाए ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा क्षेत्र में सफलता एवं उसके साथ समायोजन हेतु यथासंभव मार्गदर्शन सेवाओं के माध्यम से सहयोग दिया जाना चाहिए।

   अधिगम संबंधी समस्याएं प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर तक ही देखी जाती है लेकिन माध्यमिक स्तर पर अधिगम संबंधी कठिनाइयां अनेक रूपों में विद्यार्थी को प्रभावित करती है जैसे– पढ़ने में कठिनाई, पढ़ने और समझने की मंद गति की समस्या भाषायी त्रुटियां विभिन्न विषयों के लिए रुचि एवं अरुचि तथा अभिसमता में अंतर इस प्रकार से मार्गदर्शन के द्वारा विद्यार्थी की अधिगम कठिनाई के कारणों को जानकर उसके निवारण उपाए किए जाने की आवश्यकता होती है।

   माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थी को विभिन्न विषय संवर्गों कला, विज्ञान, गणित, विज्ञान जीवशास्त्र, वाणिज्य आदि के विकल्प का चयन करना होता है। इस चयन में विद्यार्थी की क्षमताओं एवं विशेषताओं, अगली कक्षाओं में इन विषयों अथवा संबंधित पाठ्यक्रमों में प्रवेश प्राप्त होने की संभावना, व्यवसाय के क्षेत्रों में विषय/पाठ्यक्रम की मांग और आपूर्ति, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों इन सभी कारकों को ध्यान में रखना होता है। माध्यमिक स्तर के बाद विद्यार्थी हेतु वाणिज्यिक संस्थाओं, तकनीकी संस्थानों, अन्य महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में प्रवेश की क्या संभावनाएं हैं? इन सभी की जानकारी प्राप्त होनी चाहिए जिसके लिए मार्गदर्शन आवश्यक है।

2. **व्यक्तिगत विकास संबंधी निर्देशात्मक आवश्यकताएं** : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यक्तिगत क्षेत्र में मार्गदर्शन संबंधी आवश्यकताएं मुख्यतः सांवेगिक, शारीरिक और सामाजिक विकास से संबंधित होती हैं।

   यद्यपि छात्रों के लिए विद्यालयीय जीवन की किसी भी अवस्था में सांवेगिक समस्याएं प्रकट होती हैं। किंतु माध्यमिक अवस्था में शारीरिक परिपक्वता की गति, यौनिक इच्छाओं, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण जैसे कारणों से सांवेगिक

**टिप्पणी**

समस्या की गंभीरता उत्पन्न होती है तथा इसी के परिणामस्वरूप असमायोजन एवं अप्रसन्नता में वृद्धि होती है। इसलिए इन सभी विद्यार्थियों को सांवेगिक विकास की दिशा में मार्गदर्शन कार्य के माध्यम से सहयोग की आवश्यकता होती है।

किशोर छात्रों की समायोजन संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं जैसे– तेज गति से शारीरिक परिवर्तन, विभिन्न अंगों में परिवर्तन, थकान एवं तन्द्रा जो दैहिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती है। अतः इस विषय में सूचना एवं निर्देशात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है।

इस समय किशोर विद्यार्थियों की सामाजिक क्रियाशीलता अत्यंत विस्तृत हो जाती है। विद्यालय प्रांगण के अंदर अध्यापक, पुस्तकाल और प्रयोगशाला कर्मचारी, सहपाठी विपरीत लिंगी किशोर तथा विद्यालय के बाहर खेलकूद क्लब और अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों के साथ सामाजिक संपर्क बनता है।

इस प्रकार इस समय प्राप्त होने वाला सहयोग मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में संकटों से बचाव करने में सहायक सिद्ध होता है और उचित प्रकार की समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओं के अधिगम द्वारा व्यावसायिक जीवन के क्षेत्र में सफलता संतुष्टि और समायोजन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होता है।

3. **विद्यार्थी को विद्यालयों के क्रियाकलापों एवं विद्यालयों के क्षेत्रों का परिचय** : प्रारंभ में जब विद्यार्थी नए विद्यालयों में प्रवेश लेता है तो उसे प्रवेश से संबंधित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, साथ ही साथ उसे नए–नए साथियों के बीच एवं अध्यापकों के बीच भी समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। उस छात्र के लिए विद्यालय का वातावरण तथा पाठ्यक्रम भी नया होता है। इन सबसे परिचित होने के लिए विद्यार्थी को कुछ प्रारंभिक परिचय की आवश्यकता होती हे जो उसे मार्गदर्शन सेवा के द्वारा प्राप्त होती है और वह उनसे परिचित हो जाता है।

4. **पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप** : बच्चों के समुचित विकास के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का महत्व बहुत अधिक है। वाद–विवाद छात्र क्लब, विद्यार्थियों को सामाजिक सेवाओं आदि के लिए प्रेरित करना एवं उसके आयोजन में तथा आवश्यकतानुसार उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करने का कार्य मार्गदर्शन सेवा का है।

5. **विद्यार्थियों की प्रगति का व्यक्तिगत लेखा–जोखा रखना** : मार्गदर्शन सेवा के कर्मचारियों एवं परामर्शदाआताओं का कर्तव्य है कि वे विभिन्न विषयों में तथा विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों की प्रगति का लेखा–जोखा रखें जिससे उनके शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक मार्गदर्शन में सुविधा हो सके।

6. **विद्यालय में घर के सदस्यों से विद्यार्थी मार्गदर्शन में सहायता प्राप्त करना** : परामर्शदाता अपने कार्य में तभी सफल हो सकता है जब वह विद्यार्थी के विद्यालय एवं विद्यालय से बाहर सभी क्रियाकलापों से परिचित रहे। माध्यमिक स्तर पर विद्यालय की मार्गदर्शन सेवा का कर्तव्य है कि वह घर के सदस्यों का

टिप्पणी

सहयोग मार्गदर्शन कार्यों से प्राप्त करें तथा विद्यालय और पारिवारिक लोगों को इसकी आवश्यकता के प्रति जागरूक करें।

7. **अध्यापन एवं मार्गदर्शन सेवा के कार्यकताओं में आपसी सहयोग :** माध्यमिक स्तर पर ही क्या सभी स्तरों पर अध्यापक एवं परामर्शदाता का सहयोग बालक की समस्याओं में समुचित मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है। माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थी के व्यावसायिक लक्ष्यों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है ताकि उसका पूर्ण विकास हो सके।

   माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी स्तर पर किशोरावस्था अथवा युवा वर्ग अपने भावी जीवन के लक्ष्य का निर्धारण करते हैं। बड़े होकर उन्हें क्या करना है क्या बनना है इसकी रूपरेखा माध्यमिक स्तर पर उचित मार्गदर्शन के द्वारा ही सही निर्धारित हो पाती है।

### 1. माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक मार्गदर्शन के उद्देश्य

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी को शैक्षिक मार्गदर्शन के माध्यम से अधोवर्णित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विद्यार्थी को सहायता दी जाती है जिससे उसका पूर्णतः विकास हो सके।

1. विद्यार्थियों को अपनी क्षमताओं और विशेषताओं, बुद्धि, रुचि, अभिप्रेरणा, अभिक्षमता, अभिवृत्तियों एवं नेतृत्व की क्षमता के मूल्यांकन के लिए सहायता देना।
2. विद्यालयों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में उपलब्ध विविध प्रकार के पाठ्यक्रम संबंधी जानकारी उपलब्ध कराना।
3. अपनी क्षमताओं एवं विशेषताओं के आधार पर यह निर्धारित करना कि कौन–सी संस्था और कौन सा पाठ्यक्रम उसके लिए उपयुक्त होगा।
4. अच्छी अध्ययन शैली एवं अध्ययन आदतों के विकास में सहायता देना जिससे विद्यार्थी को वर्तमान पाठ्यक्रम में सफलता की प्राप्ति हो।
5. विद्यालय की भौतिक संरचना, कक्षा और उसके बाहर के विद्यालयी परिवेश तथा पाठ्यक्रम के साथ समायोजित होने में सहायता करना।
6. पाठ्यक्रम के अतिरिक्त विद्यार्थी को अन्य अधिगम क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने के लिए उस दिशा में विद्यार्थी को सक्रिय करना।
7. अध्ययन के अगले चरणों के लिए पाठ्यक्रमों की उपयुक्तता की जांच परख करना और उसे विद्यार्थी के लिए संभव बनाने हेतु ट्राई–आउट कोर्स के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने में सहायता देना।
8. हाई स्कूल के पश्चात् यदि विद्यार्थी इण्टरमीडिएट कक्षा के लिए दूसरे विद्यालय में जाना चाहता है तो विद्यालय के बारे में उचित एवं सही सूचना संकलित करने में सहायता देना।
9. हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट के पश्चात् कठिन प्रवेशों को सरल बनाने के लिए किसी अच्छे कोचिंग इंस्टीट्यूट के बारे में सहज सूचना प्राप्त करने में मदद करना।

**टिप्पणी**

### 2. माध्यमिक स्तर पर व्यक्तिगत मार्गदर्शन के उद्देश्य

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी को किशोरावस्था से संबंधित, शारीरिक, दैहिक और मानसिक परिवर्तनों के कारण अनेक व्यक्तिगत समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा उन्हीं के अनुसार मार्गदर्शन के इस क्षेत्र में निम्न प्रकार के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं जो इस प्रकार हैं–

1. शारीरिक, दैहिक एवं मानसिक परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए विद्यार्थी को सहयोग देना।
2. अध्ययन एवं अन्य मानसिक क्रियाओं में रुचि तथा उत्साह बनाए रखने के लिए भी विद्यार्थियों को सहयोग देना।
3. किशोर विद्यार्थियों को निर्भरता से आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को अपनी क्षमताओं को उसकी अधिकतम सीमा तक उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा यह स्वीकार करने में सहयोग देना कि सभी लोग एक जैसे प्रखर बुद्धि वाले नहीं होते हैं।
5. विद्यार्थियों को विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण और उससे उत्पन्न तनावों का सामना करने में मदद देना।
6. विद्यार्थियों को सुरक्षा के उपायों के बारे में समुचित जानकारी देना।
7. व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु परामर्श देना।

### 3. माध्यमिक स्तर पर स्वास्थ्य मार्गदर्शन के उद्देश्य

माध्यमिक विद्यालय के स्तर पर पाठ्यक्रम के विभिन्न अंग– स्वविज्ञान, विज्ञान, समाज विज्ञान और साहित्य विषयों के विभिन्न पाठों के माध्यम से भी विद्यार्थियों को स्वास्थ्य के विविध पक्षों के बारे में शिक्षित किया जाता है और मार्गदर्शन कार्यक्रम के माध्यम से भी स्वास्थ्य के क्षेत्र में निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी सहयोग दिया जाता है।

1. विद्यार्थियों को स्वस्थ जीवन के लिए अच्छी जीवन शैली और पौष्टिक भोजन करने की सलाह दी जाती है।
2. छात्रों को विद्यालय द्वारा दिए जा रहे शारीरिक प्रशिक्षण तथा स्वास्थ्य विकास के कार्यक्रमों के साथ सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरित करना।
3. छात्रों को अपनी शारीरिक क्षमताओं और कमियों को समझने एवं उन्हें स्वीकार करने के लिए सहयोग देना जिससे वो अपनी शारीरिक क्षमताओं से अवगत हो सकें।
4. ऐसे कार्यक्रम एवं विषयों के बारे में छात्रों को सूचित करना जिनका उद्देश्य अच्छे स्वास्थ्य का विकास हो।
5. ऐसे समस्त विषयों से परिचित कराना या जानकारी जिनसे स्वास्थ्य के लिए खतरा संभावित है।

**टिप्पणी**

6. विद्यालय में विद्यार्थियों को खेल–कूद, योगा जैसे कार्यक्रमों में भागीदारी निभाने के लिए हमेशा प्रोत्साहित करना।
7. स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का यथाशीघ्र समाधान या उपचार प्राप्त करने की दिशा में सहयोग देना।

### 4. माध्यमिक स्तर पर व्यावहारिक मार्गदर्शन के उद्देश्य

किसी भी व्यक्ति के जीवन में शैक्षिक एवं व्यावसायिक रुचियों के लिए योग्यता, क्षमता तथा विशेषताओं में साम्य होता है इसलिए शैक्षिक अवस्था में ही व्यावसायिक लक्ष्यों का चयन और चयनित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रशिक्षणात्मक तैयारी आरंभ हो जाती है। माध्यमिक विद्यालयों में विशेषकर इण्टरमीडिएट स्तर पर जहां माध्यमिक शिक्षा परिषद् शैक्षिक विकल्पों का अवसर प्रदान करती है यहां से व्यावसायिक मार्गदर्शन कार्यक्रम का आरंभ हो जाता है यहां से तैयारी की दृष्टि से इस मार्गदर्शन केंद्र का महत्व आरंभ हो जाता है क्योंकि शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत मार्गदर्शन के क्षेत्रों का एक–दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध होता है, इस प्रकार से माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक मार्गदर्शन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. विद्यार्थियों को व्यावसायिक/औद्योगिक जगत के बारे में अवगत कराना और उसके अनुसार अवसरों और उसकी मांग की संरचना से परिचित कराना।
2. विद्यार्थियों को ये बताने में सहयोग देना कि किस प्रकार के व्यवसाय में वस्तुतः क्या जिम्मेदारियां निभानी हैं।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न कार्यस्थलों पर कार्य की दशा संबंधी परिस्थितियों का अनुभव सहयोग देना।
4. विद्यार्थी को ये जानने में सहयोग देना कि किस प्रकार के व्यवसाय क्षेत्र में व्यक्तित्व संबंधी कैसी क्षमताएं और विशेषताएं अपेक्षित है उसके अनुसार मार्गदर्शन देना।
5. विद्यार्थी को अपनी योग्यता एवं क्षमता और विशेषताओं को पहचानने में सहयोग देना।
6. विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं और विशेषताओं के अनुसार उपयुक्त व्यावसायिक लक्ष्य के निर्धारण हेतु परामर्श देना।
7. विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के लिए अधकचरे प्रशिक्षण वाले मार्ग के विरुद्ध सतर्क करना।
8. विद्यार्थियों को यह बताना कि सफलता परिश्रम के मार्ग से ही प्राप्त होती है लक्ष्य व्यवसाय के अवसर प्राप्त करने का हो या व्यवसाय में सफलता अर्जित करने का हो परिश्रम और समर्पण ही उन्हें आगे ले जाएगा।

### 5. माध्यमिक स्तर पर उपव्यावसायिक मार्गदर्शन के उद्देश्य

शिक्षा तथा व्यवसाय में अनेक घंटे तक कार्य करना पड़ता है अतः कुछ समय अवकाश के लिए निर्धारित होना जिससे हम में पुनः शक्ति और स्फूर्ति का संचार हो सके इन्हीं अवकाशों के समय का सही ढंग से सदुपयोग करने पर हमें शारीरिक एवं मानसिक

स्फूर्ति प्राप्त होती है तथा हमारे व्यक्तित्व का सही विकास होता है। खेल–कूद, मनोरंजन तथा विभिन्न प्रकार के शौकों के द्वारा विद्यार्थियों में भी अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है और शैक्षिक स्फूर्ति, स्वास्थ्य का विकास होता है और शैक्षिक स्फूर्ति, स्वास्थ्य स्पर्धा तथा समायोजन की स्थापना में भी सहायता प्रदान होती है इस प्रकार माध्यमिक स्तर पर उपव्यावसायिक मार्गदर्शन के निम्नांकित उद्देश्य हैं जो इस प्रकार हैं–

1. अवकाश के समय उपयोग जो स्वस्थ मनोरंजन के द्वारा होता है इसके लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।
2. विद्यार्थियों को शौकों (Hobbies) के विकास हेतु उन्हें अनुभवों के अवसर प्राप्त करने में भी सहायता प्रदान करना।
3. विद्यार्थियों को अपनी रुचि पहचानने हेतु भी सहायता करना।
4. विद्यार्थियों को विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर उपलब्ध विविध प्रकार की सुविधाओं से अवगत कराना।
5. किशोर विद्यार्थियों को अवकाश अवधि का सदुपयोग करने के लिए योजना के निर्माण के लिए और उसके कार्यान्वयन में सहयोग देना।

## 1.2.2 परामर्श : अर्थ और दृष्टिकोण, व्यक्तिगत और समूह परामर्श

मनुष्य सभ्य समाज का प्राणी है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से पीड़ित व्यक्ति की सहायता करने की ओर उन्मुख रहता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग से पहले धर्मगुरु, झांड़–फूंक विशेषज्ञ, अल्प शिक्षित आदि ही चिन्हित एवं समस्याग्रस्त लोगों की सहायता करते आए हैं। फ्रॉयड द्वारा मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत और तकनीक के विकास के पश्चात इस क्षेत्र में एक क्रांति आयी। मानव व्यवहार की गहराई तथा व्यवहार के अचेतन निर्धारकों के बारे में मानवीय बोध में वृद्धि आने के फलस्वरूप लोगों के व्यक्तित्व एवं व्यवहार संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु, व्यक्तित्व के विकास के लिए जीवन में उपयुक्त लक्ष्यों के चयन और सिद्धि के लिए अन्य व्यक्तियों के माध्यम से सहायता दिया जाना एक संगठित प्रक्रिया के रूप में रूपांतरित हो गया।

बीसवीं शताब्दी में असामान्य मनोविज्ञान, मनोरोग शास्त्र, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा व मार्गदर्शन एवं परामर्श के रूपों में मनोविज्ञान की अनेक शाखाओं का विकास हुआ।

**परामर्श का अर्थ**– परामर्श शब्द दो व्यक्तियों से संबंध रखता है परामर्शदाता तथा परामर्शप्रार्थी या परामर्श चाहने वाला। परामर्श चाहने वाले की कुछ समय समस्याएं होती है जिनको वह अकेला बिना किसी राय या सुझाव के पूरा नहीं कर सकता है। इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए उसे मनोवैज्ञानिक राय की आवश्यकता होती है और यही मनोवैज्ञानिक राय या सुझाव ही परामर्श कहलाता है। जो कि परामर्शदाता द्वारा दिये जाते हैं।

इससे अन्य शब्दों में कहें तो परामर्शदाता परामर्श चाहने वाले व्यक्ति की समस्या या कठिनाई को समझने का प्रयास करता है तथा उससे विचारों का आदान प्रदान

करके उसकी समस्याओं का समाधान करने में सहायता प्रदान है और इस प्रकार की सहायता ही परामर्श कहलाती है।

टिप्पणी

इसे समझाने के लिए विभिन्न विद्वानों ने परामर्श की कुछ परिभाषाएं दी हैं जो इस प्रकार हैं–

1. वेबस्टर शब्दकोश– "पूछताछ, पारस्परिक तर्क–वितर्क या विचारों का पारस्परिक आदान–प्रदान ही परामर्श है।"
2. बर्नार्ड तथा फूलमर– "बुनियादी तौर पर परामर्श के अंतर्गत व्यक्ति को समझना और उसके साथ कार्य करना होता है जिससे उसकी अनन्य आवश्यकताओं, अभिप्रेरणाओं और समताओं की जानकारी हो और फिर उसे इनके महत्व को जानने में सहायता दी जाए।"
3. जोन्स के अनुसार– "साक्षात्कार के समान ही परामर्श में एक व्यक्ति का अन्य से आमने–सामने का संबंध होता है। परामर्श मार्गदर्शन की विधि है जो व्यक्ति को सफल तथा संतोषजनक जीवन यापन करने के लिए अपने आपको अपनी समताओं और कुशलताओं को अपने वातावरण को एवं अपने अवसरों और संभावनाओं को समझने में सहायता देने का प्रयत्न करती है।"
4. सीताराम जायसवाल के अनुसार– "निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि परामर्श का मूल तत्व दो व्यक्तियों के बीच ऐसा संपर्क है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को स्वयं को समझने में सहायता देता है।"
5. रॉबिन्सन के अनुसार– "परामर्श शब्द दो व्यक्तियों के संपर्क की उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिसमें एक व्यक्ति को उसके स्वयं के एवं वातावरण के मध्य प्रभावशाली समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है।"
6. रूप स्ट्रैग के अनुसार– "परामर्श प्रक्रिया एक संयुक्त अन्वेषण है। परामर्श सेवा का सार तत्व यह है कि परामर्श प्राप्त करने वाला व्यक्ति स्वयं को पूर्णतः अभिव्यक्त करने, अपने लक्ष्यों के बारे में स्पष्टीकरण प्राप्त करने, लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अपनी क्षमताओं के विषय में आत्मविश्वास अर्जित करने एवं समस्याओं के प्रकट होने पर उनके समाधान हेतु संसाधनों और विधियों के बारे में जानने हेतु स्वतंत्रता का अनुभव करता है।"
7. क्रो एण्ड क्रो के अनुसार– "साक्षात्कार परामर्श का केन्द्र बिंदु है।" वस्तुतः साक्षात्कार व्यक्ति के साथ उसके शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोरंजनात्मक या अन्य योजनाओं को प्रभावित करने वाली उसकी किन्हीं व्यक्तिगत सामर्थ्यों और सीमाओं के बारे में विचार करने, सामर्थ्यों का विकास करने और कमियों को दूर करने की संभव विधियों की दिशा में चिंतन को उन्मुख करने के लिए विचार करने का अवसर प्रदान करता है।"

## परामर्श की आवश्यकता

बाल्यकाल से वयस्क अवस्था तक विकास की प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण एवं सुनिश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक माना जाता है। सभी व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता, सक्षमता, ज्ञान, आत्मबोध परिवेशीय सूझ–बूझ एवं जानकारी

टिप्पणी

तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से प्रभावशीलता का विकास भी आवश्यक समझा जाता है। इस विकास की पूरी प्रक्रिया की अवधि में अनेक संक्रमण काल आते हैं। अनेक प्रकार की दुविधाएं प्रकट होती है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने पड़ते हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करना पड़ता है तथा विकास के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं, कठिनाइयों और समस्याओं को दूर भी करना पड़ता है इस प्रक्रिया को अधिक सहज और सफल बनाने के लिए मार्गदर्शन परामर्श की आवश्यकता पड़ती है।

परामर्श की आवश्यकता के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रकट किए हैं जिनमें हार्डी और क्रो एवं क्रो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के अनुसार परामर्श की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से पड़ती है जो निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों को अपना अधिकतम विकास करने में सहायता देने के लिए परामर्श आवश्यक होता है।
2. छात्रों की वर्तमान समस्याओं के हल में सहायता देने के लिए भी आवश्यक है।
3. छात्रों को वांछित या आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करने में सहायता देने के लिए भी आवश्यक है।
4. विशेष योग्यताओं तथा सही दृष्टिकोण को प्रोत्साहित एवं विकसित करने के लिए भी आवश्यक है।
5. शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन की योजना बनाने में परामर्श की आवश्यकता पड़ती है।
6. छात्रों को इस प्रकार की सहायता देना कि वे स्वयं अपना मूल्यांकन कर सके।
7. छात्रों को अपनी शिक्षा से अधिकतम लाभ उठाने की क्षमता प्रदान करने के लिए।
8. छात्रों को इस प्रकार का परामर्श देना कि वे अपने लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से समझ सकें।
9. व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से वैयक्तिक एवं व्यावसायिक समायोजन करने में सहायता देना।
10. व्यक्ति के अंदर की क्षमताओं के विकास रूप देने के लिए भी परामर्श की आवश्यकता पड़ती है।

रॉबिन्सन (1950) के अनुसार– "परामर्श सामान्य व्यक्तियों को सहायता देने की प्रणाली है। सामान्य व्यक्ति परामर्शन के फलस्वरूप अपना अधिक अच्छा समायोजन स्थापित कर पाते हैं तथा उनकी परिपक्वता, स्वतंत्र जिम्मेदारी और व्यक्तित्व संगठन में परामर्श के माध्यम से वृद्धि दृष्टिगोचर होती है।"

थार्न के अनुसार– "परामर्श मनोचिकित्सा का सामान्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलन है। परामर्श से संबंधित समस्याएं मुख्यतः चेतन स्तर की होती है और ऐसी समस्याओं में भावात्मक पक्ष का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि एक विद्यार्थी की पाठ्यक्रम चयन की समस्या मात्र संज्ञानात्मक प्रकार की हो ऐसी संभावना अधिक है।"

**टिप्पणी**

इस प्रकार स्पष्ट है कि मार्गदर्शन के क्षेत्र में लक्ष्यों की प्राप्ति परामर्श द्वारा ही संभव है क्योंकि परामर्श के द्वारा ही परामर्शप्रार्थी को आत्मबोध की प्राप्ति होती है तथा समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक क्षमताओं के विकास एवं व्यक्तिगत कमियों को दूर करने में सहायता मिलती है।

परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों का प्रयोग करके व्यक्ति के जीवन को सहज उद्देश्यपूर्ण एवं संतोषप्रदायी बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

मायर्स के अनुसार– "वस्तुतः परामर्श साक्षात्कार व्यक्ति के साथ उसके शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोरंजन संबंधी या अन्य योजनाओं को प्रभावित करने वाले उसके किन्हीं व्यक्तिगत सामर्थ्यों और सीमाओं के बारे में विचार करने एवं सामर्थ्यों का विकास करने व सीमाओं को समाप्त करने की संभव विधियों की दिशा में चिंतन की ओर उन्मुख करने के लिए विचार करने का अवसर प्रदान करता है।"

स्मिथ के अनुसार– "परामर्श एक प्रक्रिया है जिसमें परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी को चयन योजना से संबंधित तथ्यों की व्याख्या करने या सामायोजन जो उसे स्थापित करने की आवश्यकता होती है, के लिए सहायता देता है।"

पेपिन्सकी एंड पेपिन्सकी के अनुसार– "परामर्श वह अन्तःक्रिया है जो परामर्शप्रार्थी और परामर्शदाता के नाम से पुकारे जाने वाले दो व्यक्तियों के मध्य व्यावसायिक पृष्ठभूमि में घटित होता है तथा परामर्शप्रार्थी के व्यवहार में परिवर्तन आरंभ करने और उसके अनुरक्षण को सहज बनाता है।"

पैटर्सन के अनुसार– "परामर्श और मनोचिकित्सा प्रक्रिया में एक या अनेक क्लाइंट और चिकित्सक के मध्य अन्तर्वैयक्तिक संबंधों की स्थापना होती है जिसमें चिकित्सक मानव व्यक्तित्व के बारे में व्यवस्थित ज्ञान के आधार पर क्लाइंट के मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने हेतु मनोवैज्ञानिक विधियों की सेवा लेता है।"

कॉलिन फेल्थम के अनुसार– "परामर्श और मनोचिकित्सा में समानताएं अधिक और भिन्नताएं अत्यंत न्यून है। इसलिए मनोचिकित्सा और परामर्श को भेदपरक रूप में देखने की तुलना एक ही प्रणाली के रूप में देखना श्रेयस्कर और लाभकारी है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से परामर्श के संबंध में निम्न बिंदु प्रकट होते हैं जो इस प्रकार हैं–

1. परामर्श एक प्रक्रिया है।
2. परामर्श परामर्शप्रार्थी दोनों के मध्य अन्र्तक्रियात्मक संबंध है।
3. परामर्श एक सतत प्रक्रिया है जिसमें अनेक अनुक्रमिक गतिविधियां संपन्न होती हैं।
4. परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रशिक्षण, मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार और अनुभव के आधार पर सहायता देता है।
5. परामर्श प्रक्रिया परामर्शप्रार्थी के लिए अधिगम परिस्थितियां उत्पन्न करती है जिसके द्वारा व्यक्ति के संज्ञान, अनुभूति, अनुक्रिया अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में परिवर्तन उत्पन्न करने में व्यक्ति को लोकतांत्रिक सहायता प्राप्त होती है।

6. परामर्श का स्वरूप– विकासात्मक, निरोधात्मक तथा उपचारात्मक होता है।
7. परामर्श का कार्य घर, विद्यालय, उद्योग, चिकित्सालय, सामाजिक और सामुदायिक केंद्र जैसी विभिन्न परिस्थितियों में इसे संपन्न किया जाता है।
8. परामर्श व्यक्ति के हित के लिए ही मूलतः उन्मुख होता है।
9. परामर्श के संरचना की विशेषताएं हैं– स्नेह, स्वतःस्फूर्त रुचि और बोध।
10. परामर्श प्रक्रिया में सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और सम्मान तथा आदर को महत्व दिया जाता है।
11. परामर्श प्रक्रिया की अनेक अवस्थाएं होती हैं जैसे– आयोजन तैयारी आरंभिक, मध्यवर्ती, समापन और अनुवर्ती।
12. एक व्यवसाय वृत्ति के रूप में परामर्श के क्षेत्र में आचार संहिता का पालन किया जाता है। यह आचार संहिता सदैव सामाजिक आचार–संहिता के अनुरूप हो यह आवश्यक नहीं है।
13. परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के व्यवहार के बारे में निर्णय नहीं करता है।
14. परामर्शन परामर्शप्रार्थी के आत्मविश्वास, आत्मबोध, आत्ममार्गदर्शन आत्मसिद्धि, आत्मनिर्णय और आत्म उन्नयन का विकास करने में सहायक होता है।
15. परामर्श के द्वारा व्यक्ति का जीवन सार्थक बन जाता है।
16. परामर्श का उद्देश्य भविष्य की समस्याओं का निरोध करने तथा भविष्य की समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्ति को समर्थ बनाना है।
17. परामर्श भविष्य की समस्याओं के समाधान के लिए भी आवश्यक होता है।
18. व्यक्ति की परामर्श संबंधी आवश्यकताओं में विविधता होती है। परामर्शप्रार्थी की आवश्यकताओं के अनुसार परामर्शदाता, चिकित्सक, मनोचिकित्सक, विधि विशेषज्ञ, अध्यापक, सामाजिक कार्यकर्ता राजनेता या अन्य अनुभवी व्यक्ति हो सकते है। किंतु जहां उद्देश्य क्षेत्र संज्ञान, अनुभूति व व्यवहार से संबंधित हो वहां मनोवैज्ञानिक ज्ञान और प्रशिक्षण प्राप्त परामर्शदाता सहायक होता है। इस प्रकार से परामर्शदाता और मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता के पृथक वर्ग हैं।

    इस प्रकार से स्पष्ट है कि परामर्श की संपूर्ण प्रक्रिया में परामर्शदाता की प्रमुख भूमिका होती है।

## परामर्श के प्रकार

परामर्श किसी भी क्षेत्र के लिए प्राप्त किया जा सकता है। परामर्श के अनेक प्रकार हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **नैदानिक परामर्श**– "पेपिंस्की के अनुसार– नैदानिक परामर्श का संबंध व्यक्ति के सामान्य कार्य व्यापार संबंधी असमायोजनों से है।" इसमें व्यापार संबंधी समस्याओं के निदान हेतु परामर्श किया जा सकता है अथवा नयी प्रकार की व्यवसाय संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती है और आवश्यकता पड़ने पर साधारण कार्य व्यापार संबंधी असमायोजन का निदान एवं उपचार भी किया जाता है।

टिप्पणी

2. **मनोवैज्ञानिक परामर्श**– इसमें परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी व्यक्ति को उसकी दमित भावनाओं एवं संवेगों को अभिव्यक्त करने में सहायता करता है। और परामर्शप्रार्थी की कठिनाइयों को समझने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे परामर्शप्रार्थी की मानसिक भावनाओं को समझा जा सके और उसका उपचार किया जा सके।
3. **छात्र परामर्श**– छात्र परामर्श का संबंध शैक्षिक जीवन को प्रभावित करने वाली समस्याओं से होता है जिसमें उसके शैक्षिक एवं करियर संबंधी सभी समस्याओं का हल सुझाया जाता है जिससे छात्र के संपूर्ण व्यक्तित्व का सही एवं पूर्ण विकास हो सके।
4. **सामाजिक परामर्श**– यह व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने के लिए दिया जाता है। इसमें यह बताया जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसको इस समाज में कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसमें व्यक्ति में ऐसे सामाजिक भावों के बारे में परामर्श दिया जाता है जिससे व्यक्ति के अंदर सामाजिक कुशलताओं का विकास करने में सहयोग मिलता है।
5. **वैवाहिक परामर्श**– वैवाहिक परामर्श में व्यक्ति को जीवन साथी चुनने में तथा विवाह के पश्चात उठने वाली समस्याओं के निदान हेतु परामर्श दिया जाता है और उन्हें इन समस्याओं का सामना करने के लिए मानसिक बल दिया जाता है। इस परामर्श में सदा यह सोचा जाता है कि वैवाहिक जीवन सफल हो और उनके संबंधों में विघटन की समस्या न हो।
6. **धार्मिक परामर्श**– धार्मिक परामर्श में व्यक्ति को धार्मिक एवं आध्यात्मिक मामलों में परामर्श दिया जाता है जिससे धर्म से संबंधित समस्याओं का निवारण होता है।
7. **व्यावसायिक परामर्श**– परामर्श में व्यक्तिगत परामर्श के बाद व्यवसायिक परामर्श ही महत्वपूर्ण परामर्श है। इसमें व्यक्ति की व्यवसाय संबंधी समस्याओं का निवारण किया जाता है। एक शिक्षाशास्त्री के अनुसार व्यावसायिक परामर्श व्यक्ति के उन समस्याओं को अपना केंद्र बनाता है जो किसी व्यवसाय के चुनाव या उसके लिए तैयारी करते समय उसके सम्मुख आती है।
8. **व्यक्तिगत परामर्श**– इसमें व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं का निवारण किया जाता है इस परामर्श का प्रमुख उद्देश्य होता है– व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत व्यवहार को सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनाने में सहायता प्रदान करना और इसमें व्यक्ति की व्यक्तिगत पारिवारिक स्थिति आदि पर भी विचार किया जाता है।
9. **स्वास्थ्य परामर्श**– इसमें व्यक्ति को स्वास्थ्य संबंधी परामर्श दिया जाता है और इससे व्यक्ति को स्वास्थ्य संबंधी कई महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त भी कराई जाती है जो उसके भविष्य के लिए उपयोगी होती है।
10. **सामूहिक परामर्श**– परामर्श तो वैयक्तिक ही होता है लेकिन कुछ विद्वान जैसे– मूरों तथा फ्रीमैन जैसे विद्वान सामूहिक परामर्श को भी महत्व देते हैं। इन

टिप्पणी

विद्वानों ने परामर्श को मार्गदर्शन के प्रमुख अंग के रूप में स्वीकार किया है अतः इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस परामर्श में समूह तथा उसकी प्रक्रिया का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समूह के आपसी संबंधों के आधार पर समूहों के प्रकार का अध्ययन किया जाता है तथा समान आयु के व्यक्तियों को छोटे समूहों में बांटकर अंतःक्रिया करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इन्हीं समूहों में परामर्शदाता समूह के सदस्यों को अपनी प्रतिदिन की संवेगात्मक समस्याओं का समाधान करने में भी सहायता करता है।

## परामर्श के मुख्य बिंदु एवं क्षेत्र विस्तार

परामर्श सामान्य व्यक्तियों को सहायता देने की प्रणाली है। वास्तव में परामर्श की सफलता पर्याप्त सीमा तक परामर्श की कुशलता, प्रतिभा तथा ज्ञान पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में कहें तो परामर्श की संपूर्ण प्रक्रिया परामर्शदाता के कार्य, उसके कौशल तथा उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। इसलिए परामर्श कोई सामान्य कार्य नहीं है। इसके लिए कुछ मुख्य बिंदुओं को अपनाना आवश्यक हो जाता है।

कुप्पुस्वामी ने परामर्श के मुख्य बिंदुओं को चार भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार से हैं–

1. परामर्श प्रदान करने का स्थान
2. परामर्श प्रदान करने की अवधि
3. परामर्शदाता का आचरण
4. परामर्शदाता के उत्तरदायित्व या कर्तव्य।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर श्रेष्ठ परामर्श हेतु कुछ बातें निर्धारित की गई हैं जो इस प्रकार से हैं–

1. परामर्श हमेशा यथासंभव शांत और एकांतपूर्ण स्थान पर ही दिया जाना चाहिए।
2. परामर्श कक्ष में आवश्यकता से अधिक फर्नीचर नहीं होना चाहिए।
3. कक्ष का वातावरण परामर्शदाता तथा परामर्शप्रार्थी दोनों को शांति एवं सुविधा प्रदान करने वाला होना चाहिए।
4. जिस समय परामर्श प्रक्रिया चल रही हो उस समय कक्ष में किसी भी अन्य व्यक्ति का प्रवेश नहीं होना चाहिए।
5. परामर्श की अवधि 30–40 मिनट से अधिक की नहीं होनी चाहिए।
6. कुछ विशेष परिस्थितियों में ही अवधि को बढ़ाया या घटाया जा सकता है।
7. परामर्शदाता को परामर्शप्रार्थी द्वारा बतायी गयी बातों को किसी और से नहीं कहना चाहिए।
8. परामर्शदाता को परामर्शप्रार्थी का यथासंभव विश्वास प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
9. परामर्श प्रदान करने में कभी भी शीघ्रता नहीं दिखानी चाहिए।

टिप्पणी

10. परामर्शदाता को परामर्शप्रार्थी से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।
11. परामर्शदाता को अपने व्यवहार में नम्रता तथा सहानुभूति रखनी चाहिए।
12. परामर्शदाता का कर्तव्य है कि वह परामर्शप्रार्थी की प्रत्येक बात को शांति एवं धैर्यपूर्वक सुने।
13. परामर्शदाता को चाहिए कि वो परामर्शप्रार्थी को धैर्य बंधाये।

इस प्रकार परामर्शदाता को बड़े ही धैर्यपूर्वक अपने कार्य को करना चाहिए जिससे उसका परामर्श सही दिशा एवं लक्ष्य को प्राप्त करे। इस प्रकार से परामर्श का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।

प्रारंभ में परामर्शदाता के स्थान पर 'मार्गदर्शन विशेषण' शब्द का प्रयोग किया जाता था, परंतु 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण से 'परामर्शदाता' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

जोन्स के विचार में "परामर्शदाता वह है जो परामर्श का कार्य करता है।" इनके अनुसार एक परामर्शदाता को अनेक प्रकार के कार्य तथा जिम्मेदारियां नहीं सौंपनी चाहिए क्योंकि परामर्शदाता का कार्य केवल परामर्श देना ही होना चाहिए।

## परामर्श के क्षेत्र विस्तार

परामर्श का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है इसलिए परामर्शदाता के सहयोग की आवश्यकता घर, विद्यालय, व्यवसाय, कार्यस्थल, चिकित्सालय, आवासीय संरक्षण केंद्र, सामुदायिक केंद्र और स्वयं सेवी संस्थानों सब जगहों पर पड़ती है। इसलिए इन समस्त केंद्रों पर सुप्रशिक्षित या अल्प–प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की पूर्णकालिक एवं अल्पकालिक सेवाएं ली जाती हैं। इस प्रकार से परामर्शदाता के रूप में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों के लिए रोजगार के अवसर ऐसे सभी स्थलों पर उपलब्ध हो सकते हैं। हमारे जीवन में सभी आयु अवस्थाओं में परामर्श की आवश्यकता पड़ती है इन्हीं आवश्यकताओं के आधार पर परामर्शदाता के क्षेत्र निर्धारित किये गये हैं।

1. **परिवार**– परिवार का जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि पारिवारिक माहौल ही तनावग्रस्त हो तो जीवन में सांवेगिक तनाव की अधिकता हो जाती है। कितने तो परिवार परामर्श के बाद भी टूट जाते हैं क्योंकि आज के इस आधुनिक तनाव भरी जिंदगी में पति–पत्नी के वैवाहिक संबंध तुरंत ही विच्छेद के बिंदु पर पहुंच जाते हैं। इसलिए वैवाहिक परामर्श को परिवार के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। और इस वैवाहिक परामर्श की तीन अवस्थाएं मानी गयी हैं जो इस तरह से हैं– विवाह के पूर्व परामर्श, अच्छे वैवाहिक संबंधों के लिए परामर्श और तनावपूर्ण संबंधों में से तनाव को घटाने के लिए परामर्श। विवाह में यौनिक संबंधों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है और जब इससे संबंधित समस्याएं प्रकट होती हैं तब विशिष्ट प्रकार के परामर्श की आवश्यकता होती है। विवाह से पूर्व परामर्श उपर्युक्त जीवन साथी की खोज से संबंधित प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होता है। तनावग्रस्त वैवाहिक संबंधों में परामर्श संकटकालीन आपद हस्तक्षेप के जैसा होता है।

वैवाहिक संबंधों के अतिरिक्त बच्चों के व्यक्तित्व से संबंधित भी समस्याएं होती हैं जैसे– जिद्दी एवं अनुशासनहीनता वाला स्वभाव। इसके समाधान के लिए भी माता–पिता को परामर्श की आवश्यकता होती है।

**टिप्पणी**

वृद्धावस्था से संबंधित संवेगात्मक और अन्य समस्याओं के निराकरण के लिए भी परामर्श सेवा की आवश्यकता होती है। बाल्यावस्था और किशोरावस्था की समस्याओं के संदर्भ में परामर्श का स्वरूप उपचारात्मक हो सकता है। ऐसी अनेक समस्याएं परिवार में होती है। जिनका संबंध व्यक्ति के विकास, समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान, संकटकालीन हस्तक्षेप और उपचार से हो सकता है।

2. **शैक्षिक संस्थान**– माध्यमिक एवं प्राथमिक विद्यालय सहित सभी शिक्षण संस्थानों में परामर्श सेवा की आवश्यकता पड़ती है। इस परामर्श कार्य के द्वारा ही छात्र अपनी कुशलता अनुसार व्यवसाय का चयन करते हैं। जोन्स के अनुसार परामर्शदाता का उत्तरदायित्व है कि वह प्रत्येक छात्र को अपनी शैक्षिक, व्यावसायिक और वैयक्तिक समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने और उनको हल करने में सहायता दे। सभी बच्चों और किशोरों को विकासात्मक संवेगात्मक और समायोजनात्मक सभी समस्यात्मक क्षेत्रों में परामर्श की आवश्यकता होती है।
3. **कार्य स्थल**– कार्यस्थलों पर सेवायोजक कर्मचारियों के लिए परामर्श प्रक्रिया का विभिन्न समस्याओं और लक्ष्यों के लिए उपयोग करते हैं। सेवायोजक कर्मचारियों के आपसी संबंधों, कार्य स्थल पर तनावग्रस्तता, दुर्घटना और दुर्घटना के पश्चात उत्पन्न संकट, कर्मचारी छंटनी जैसी समस्याओं का सामना करने के लिए भी परामर्श सेवा का उपयोग करते हैं।
4. **प्राथमिक उपचार केंद्र**– मनोचिकित्सक से प्राथमिक उपचार के रूप में भी परामर्श लिया जाता है और चिकित्सक के पास भी प्राथमिक उपचार के रूप में ही परामर्श लिया जाता है जैसे– परिवार नियोजन से संबंधित और निःसंतान माता–पिता के लिए भी प्राथमिक उपचार केंद्र व परामर्श की आवश्यकता होती है।
5. **आवासीय संरक्षण केंद्र**– आवासीय श्रेणी के स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले संरक्षण केंद्रों पर उपचार के अतिरिक्त रोगी (क्लाइंट) परामर्शप्रार्थी की व्यापक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। ऐसी आवश्यकताओं के अंतर्गत परामर्श की आवश्यकता भी सम्मिलित होती है। कैंसर, हृदयरोग, गुर्दे की बीमारी, कुष्ठरोग, अपंगता, हिंसा के शिकार बच्चे और अपराधी आदि लोगों की देखभाल में चिकित्सक सामाजिक कार्यकर्ता, मनोचिकित्सक, पुनर्वास कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षित आदि सभी को परामर्शदाता की सम्मिलित एवं समन्वित प्रयत्न की आवश्यकता होती है।
6. **सामुदायिक केंद्र**– सामुदायिक केंद्रों के माध्यम से विद्यालय और कार्यालय परिवेश के बाहर स्थित किशारों, युवक–युवतियों, समाज के निर्बल वर्ग के लोगों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के प्रयत्न की अवधि में उनके लिए परामर्श की आवश्यकता का भी अनुभव किया जाता है।

ये सामुदायिक केंद्र लोगों की मनोरंजन और शौक की पूर्ति में सहायक होते हैं। परामर्श सेवा उपयुक्त मनोरंजन एवं शौक के विकास चयन और पूर्ति के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करती है।



7. **मनोशैक्षिक मार्गदर्शन एवं उपचार केंद्र**– मनोचिकित्सालयों में मनोपचार एवं परामर्शन के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का अनुप्रयोग आरंभ हुए सौ से भी अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब मानसिक स्वास्थ्य के प्रति रोग निरोधात्मक दृष्टिकोण अपनाने के अतिरिक्त व्यक्ति के व्यक्तित्व का सकारात्मक दिशा में विकास करने का प्रयास किया जाता है। यहां पर उद्देश्य लक्षणों को दूर करना नहीं (जब कोई भी समस्या न हो तब भी व्यक्ति पर ध्यान देना) विकास किया जाना भी उद्देश्य होता है। इस श्रेणी के मार्गदर्शन एवं उपचार केंद्रों पर अभिभावकत्व एवं मातृत्व से संबंधित योग्यताओं एवं गुणों, सामाजिक दक्षता, तनाव प्रबंधन, प्रतिरोध जीवनोपयोगी गुणों, दक्षताओं के विकास, शिथलीकरण, प्रशिक्षण, निश्चयात्मकता, स्वाग्रहीपन प्रशिक्षण, वैवाहिक संबंध समृद्धीकरण जैसी अनेक प्रशिक्षण योजनाओं के अंतर्गत परामर्श सेवा की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के संज्ञान व्यवहार और अन्तर्वैयक्तिक व्यवहारों के उन्नयन में जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए नये जीवन दर्शन और व्यवहार के विकास पर भी बल दिया जाता है।
8. **स्वयंसेवी संस्थाएं**– अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं पीड़ित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए समन्वित सेवाएं प्रस्तुत करती हैं। इन सेवाओं के अंतर्गत परामर्श को एक प्रमुख सेवा के रूप में परामर्शप्रार्थी को उपलब्ध कराया जाता है।

उपर्युक्त किया गया वर्णन एक व्यवस्थित सेवा के रूप परामर्श का कार्यक्षेत्र प्रस्तुत करता है। इन सभी क्षेत्रों में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं के लिए रोजगार के अवसर भी प्राप्त हो सकते हैं और ये अपने परामर्श से लोगों को समस्यामुक्त कर सकते हैं।

एस. एन. राव (1982) के अनुसार मध्यवर्ती लक्ष्यों का वर्णन परामर्शप्रार्थी द्वारा परामर्श की आवश्यकता का अनुभव अन्तर्निहित कारणों के माध्यम से होता है और तात्कालिक एवं मध्यस्थलाकारी लक्ष्य परामर्शदाता के द्वारा स्थापित किये गये वर्तमान अभिप्राय मंशा के रूप में समझा जा सकता है।

क्योंकि परामर्श का लक्ष्य अत्यंत व्यापक होता है इसलिए परामर्श के उद्देश्यों की व्यापकता एवं पारस्परिक अंतःसंबंधों के कारण उद्देश्यों को सूचीबद्ध करना जटिल कार्य है जिससे परामर्श अति आवश्यक हो जाता है।

## परामर्श की प्रक्रिया

परामर्श प्रक्रिया विभिन्न लक्ष्यों के संदर्भ में एक सूत्र में बंधी होती है। परामर्श की प्रक्रिया में अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग में कुछ मध्यवर्ती लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रक्रिया लक्ष्यों का स्वरूप इस प्रकार का होता है कि आरंभिक लक्ष्य को अर्जित किए बिना अगले लक्ष्य को अर्जित नहीं किया जा सकता है। इसलिए

परामर्श की प्रक्रिया को कुछ सुनिश्चित चरणों के माध्यम से सुनिश्चित क्रम में अग्रसर होना चाहिए।

**टिप्पणी**

परामर्श की प्रक्रिया के कुछ प्रमुख चरण होते हैं। परामर्श के चरण परामर्श के क्षेत्र पर निर्भर होते हैं। परामर्श की प्रक्रिया शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन और व्यक्गित समायोजनात्मक समस्याओं के लिए भिन्न हो सकती है। परामर्श की प्रक्रिया को निम्न चरणों द्वारा समझा जा सकता है–

1. जिस व्यक्ति को परामर्श लेना है उसे परामर्श की आवश्यकता का बोध होना चाहिए। व्यक्ति को अपने व्यवहार में किसी समस्या और बाहरी सहायता की आवश्यकता का अनुभव होना चाहिए। अनेक व्यक्तियों के व्यवहार में कतिपय समायोजनात्मक समस्याएं व्याप्त होती हैं किंतु उन्हें अपनी समस्या का आभास नहीं होता है। ऐसी स्थिति में कोई निकटवर्ती उसे अभिप्रेरित करता है।
2. व्यक्ति और परामर्शदाता के मध्य प्रथम प्रत्यक्ष संपर्क विभिन्न दृष्टियों से महत्वपूर्ण होता है। इसमें आकर्षण, विकर्षण, आशा, निराशा और एक–दूसरे के बारे में विश्वासों का बीजारोपण होता है। व्यक्ति अपनी समस्याओं और अपेक्षाओं को परामर्शदाता के समक्ष प्रस्तुत करता है तथा परामर्शदाता व्यक्ति के साथ परामर्श प्रक्रिया से संबंधित कार्य योजना और लक्ष्यों का निर्धारण करता है। इसमें परामर्शप्रार्थी उच्च मात्रा में आंतरिक प्रतिरोध, आशंका, असमंजस को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त कर सकता है। यह दशा परामर्शदाता के लिए चुनौती भरी होती है, उसे परामर्श संबंधों का उचित रूप में विकास का कार्य सतर्कतापूर्वक आरंभ करना होता है। परामर्शदाता द्वारा परामर्शप्रार्थी को उसकी अपेक्षाओं और समस्याओं के संदर्भ में आश्वस्त करता है।
3. परामर्शप्रार्थी द्वारा परामर्शदाता से मुलाकात के पश्चात अपनी समस्या को साझा किया जाता है। परामर्शदाता व्यक्ति की जानकारी एकत्रित करता है और उसे पूरी परामर्श प्रक्रिया  समझाता है।
4. परामर्श प्रक्रिया के दौरान परामर्शप्रार्थी से परामर्शदाता द्वारा आवश्यक प्रश्न पूछे जाते हैं और धैर्य के साथ उसे सुना जाता है। व्यक्ति अपनी अनुभूतियों, मनोभावों आदि को परामर्शदाता को बताता है।
5. परामर्शदाता द्वारा लक्ष्य और सैद्धांतिक उपागम के संदर्भ में उपयुक्त कार्य योजना का विकास किया जाता है। कार्य योजना परामर्शदाता की समझ और परामर्श उपागम के अनुसार विभिन्न रूपों में हो सकती है। व्यक्ति अपनी भावनाओं, अनुभूतियों, अनुक्रिया प्रणालियों; परिवेश की संरचना, उसमें व्याप्त व्यवधान और अवसर का अन्वेषण करता है। परामर्शदाता परिमार्जन हेतु अनुबंध, पुनः प्रशिक्षण, आदि योजनाओं पर विचार किया जाता है।
6. इसके पश्चात परामर्श मूल्यांकन में यह ज्ञात किया जाता है कि परामर्श प्रक्रिया के निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति परामर्श कार्यक्रम में निहित कार्य योजनाओं द्वारा किस सीमा तक संभव हो पाई है। परामर्श कार्यक्रम की प्रभावोत्पादकता का मूल्यांकन उसकी गुणवत्ता और उपयोगिता में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होता

है। परामर्श की प्रक्रिया और परिणाम का मूल्यांकन मनोचिकित्सा एवं परामर्श का अभिन्न अंग होता है।

7. परामर्श प्रक्रिया के अंत में अपेक्षा की जाती है कि व्यक्ति को पुनः परामर्श की आवश्यकता नहीं होगी। इस संभावना को ध्यान में रखते हुए कुछ अंतराल के बाद पुनः संपर्क स्थापित किया जाना सुनिश्चित किया जाता है जिसमें वास्तविक जीवन में प्राप्त हुए लाभ से सफलता का मूल्यांकन किया जाता है और आवश्यकतानुसार पुनः परामर्श के माध्यम से लाभ को और अधिक मजबूत बनाया जाता है।



## परामर्श की विशेषताएं

वैसे तो मार्गदर्शन एवं परामर्श दोनों एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं लेकिन मार्गदर्शन एवं परामर्श को कुछ विद्वानों ने तो समानार्थी भी माना है। वैसे तो परामर्श एक प्रकार की सलाह है और इसमें कुछ विशेषता होनी चाहिए जिससे यह प्रभावी हो सके। परामर्श की कुछ विशेषताएं हैं जो निम्न हैं–

1. बरनार्ड के अनुसार– "परामर्श विशेष रूप से मानव संबंधों के भावात्मक पक्षों को स्पष्ट करता है।"
2. रेन के अनुसार– "परामर्श व्यक्तिगत होता है, सामूहिक नहीं होता। सामूहिक परामर्श अर्थहीन और अस्वाभाविक है। दोनों में सामंजस्य नहीं है। व्यक्तिगत परामर्श पुनरुक्ति है, यह सदा व्यक्तिगत होता है।"
3. विली तथा एण्ड्रयु के अनुसार– "परामर्श पारस्परिक रूप से सीखने की प्रक्रिया है जिसमें दो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं– एक ढूंढने वाला तथा दूसरा प्रशिक्षित व्यक्ति।"
4. ब्रीवर के अनुसार– "परामर्श विचार–विमर्श तथा मित्रतापूर्ण वाद–विवाद है। इसमें विचार लादने की चेष्टा नहीं की जाती।"
5. जोन्स के अनुसार– "परामर्श द्वारा किसी छात्र की समस्या का समाधान नहीं किया जाता वरन् उसे समाधान करने योग्य बना दिया जाता है।"

   इस तरह से हम कह सकते हैं कि परामर्श केवल सलाह मात्र नहीं इसमें परामर्शदाता परामर्श देते समय व्यक्ति के लिए खुद ही किसी प्रकार का निर्णय नहीं लेता है। वरन व्यक्ति को ही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है और उसे उस कार्य के लिए सलाह देता है और तब उसकी परामर्श की प्रक्रिया उसी समय समाप्त नहीं हो जाती है, और इस तरह से परामर्श प्राप्त करने वाले को परामर्शदाता किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायता दे देता है। व्यक्ति की इस प्रकार मदद हो जाती है और वह समस्या से उबर जाता है। इस प्रकार से परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी को सही मार्ग निर्देशित करता है। उस पर चलना परामर्शप्रार्थी का कार्य होता है जो वही करता है।

## परामर्श के उद्देश्य

परामर्श के अत्यंत व्यापक उद्देश्य हैं। परामर्श का अभीष्ट उद्देश्य है व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का विकास, उसकी क्षमताओं का विकास तथा उसको आत्मसिद्धि की दिशा

में सहयोग प्रदान करना जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। इस प्रकार परामर्श के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

रोलामे के अनुसार– "परामर्श का उद्देश्य परामर्शप्रार्थी को सामाजिक दायित्वों को स्वीकार करने में सहायता देना तथा उसे साहस देना जिससे कि उसमें हीनभावना का उदय न हो।"

रूथ स्ट्रैंग के अनुसार– "परामर्श का उद्देश्य है आत्मपरिचय या आत्मबोध।"

डन्समूर के अनुसार– "परामर्श का उद्देश्य है छात्र को अपनी कठिनाइयों को हल करने की योजना बनाने में सहायता देना है।"

रॉबर्ट्स के अनुसार– "परामर्श का उद्देश्य परामर्श लेने वाले को अपनी शैक्षिक, व्यावसायिक और वैयक्तिक समस्याओं को समझने में सहायता देना है।"

1. **मानसिक स्वास्थ्य**– उपर्युक्त परिभाषाओं से भी स्पष्ट है कि परामर्श का मुख्य उद्देश्य है मानसिक स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करना। कुछ मानसिक परामर्शदाता मानसिक स्वास्थ्य के सकारात्मक लक्ष्यों को सामने रखकर उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सहायता प्रदान करते हैं। किंतु परामर्शदाता लक्ष्यों के बारे में अनिश्चयात्मकता रखते हुए चिंता एवं सांवेगिक तनाव जैसी समस्याओं के परिहार पर ध्यान केंद्रित करते हैं। लेकिन मनुष्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य ही सर्वोपरि होता है क्योंकि इसके बिना कोई भी स्वास्थ्य लाभप्रद नहीं हो सकता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना परम उद्देश्य है।
2. **मानव संसाधन का संवर्धन**– व्यक्ति की परिवेशीय संरचना और विशेषताओं के बारे में जानकर उसकी मदद करना जिससे वह संबंधों में दक्षता, सकारात्मक दृष्टिकोण, समस्याओं का समाधान इत्यादि के द्वारा अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके क्योंकि सूझ–बूझ, दृढ़ निश्चयात्मकता, अपनी क्षमताओं और सीमाओं की पहचान भी व्यक्ति के लिए आवश्यक है जिससे उसे प्रसन्नता एवं सफलता की प्राप्ति होती है। परामर्श का मुख्य उद्देश्य यही है कि व्यक्ति को भविष्य के लिए निजी संसाधनों की दृष्टि से संपन्न करें।
3. **संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास सहज बनाना**– मानवतावादी मनोदर्शन यह मानता है कि व्यक्ति घर, परिवार, समाज और संस्कृति में अपनी मनोबाधाओं के कारण प्रकार्यात्मक दृष्टि से एक पूर्ण व्यक्ति के रूप में कार्य संपादित नहीं कर सकता है और उसके अंदर अंतःनिहित क्षमताओं का भी विकास नहीं हो पाता है। लेकिन परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति में एक ऐसे परिवेश की रचना की जाती है जिससे व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रता और सुरक्षा का अनुभव करता है। इस प्रकार का परिवेश व्यक्ति की अंतर्निहित सामर्थ्य के अधिकतम संभव विकास में सहायक होकर व्यक्ति को प्रकार्यात्मक दृष्टि से संपूर्ण व्यक्ति एवं सफल व्यक्ति बनाने में मदद करता है।
4. **स्व–आत्मीकरण**– रॉजर्स (1951–1959) के अनुसार प्राणी के अंदर अनुभवशील स्व–आत्मीकरण की मूल प्रवृत्ति होती है। व्यक्ति स्व के अनुरक्षण की चेष्टा करता है। स्व–आत्मीकरण की प्रवृत्ति के कारण ही प्राणी परिवेश के उन पक्षों

टिप्पणी

पर ध्यान देता है जिसमें व्यक्ति के लिए पूर्णता की दिशा में अग्रसर होने की संभावना निहित होती है। स्व–आत्मीकरण या पूर्ण मानव के रूप में विकसित होना व्यक्ति का एक मात्र लक्ष्य होता है किंतु कभी–कभी माता–पिता एवं अभिभावकों द्वारा बच्चों का नकारात्मक मूल्यांकन किए जाने के कारण इस प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। परामर्श एवं मनोपचार का उद्देश्य व्यक्ति को बिना किसी शर्त के सकारात्मक सम्मान का अनुभव उपलब्ध कराना होता है जिससे व्यक्ति के लिए स्व–आत्मीकरण संभव हो सके।

राजर्स की भांति गोल्डस्ट्रीन (1939) भी स्व–आत्मीकरण पर बल देते हैं। गोल्डस्ट्रीन स्व–आत्मीकरण, आत्मसिद्धि एवं अंतर्निहित क्षमताओं के विकास पर पूर्ण बल देते हैं।

5. **आत्म सिद्धि**– गोल्डस्टीन के अनुसार व्यक्ति की सभी आवश्यकताएं जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की अभिव्यक्ति मात्र ही होती है। सर्वोच्च लक्ष्य, अभिप्रेरणा, स्व–आत्मीकरण या आत्मसिद्धि होती है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति क्षमताओं से अपनी सिद्धि मार्ग को प्राप्त करने का प्रयास करता है और इसी के अनुसार व्यक्ति की क्षमताओं उसकी वरीयताओं और उसके कार्य के अनुसार उसको जाना जाता है। लेकिन सभी की अंतःनिहित क्षमताएं विभिन्न प्रकार की होती हैं। इसलिए परामर्श प्रक्रिया का उद्देश्य व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को उसकी क्षमताओं की दिशा में सहायता देना होता है।

   इस प्रकार परामर्श का उद्देश्य व्यक्ति के संपूर्ण विकास में मदद करना है। परामर्श के लक्ष्यों का सीधा संबंध व्यक्ति की आयु, रुचियों अनुभवों और समस्याओं के साथ ही होता है जिससे व्यक्ति अपनी रुचियों एवं कुशलताओं को समझकर अपना पूर्ण विकास कर सके।

## 1.2.3 एक परामर्शदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका और योग्यता, व्यावसायिक नैतिकता और आचार संहिता

इन आवश्यक दक्षताओं के विकास के लिए विशेष शिक्षण–प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। परामर्शदाता से आशा की जाती है कि उसे मनोविज्ञान के अतिरिक्त समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, समाज कार्य का भी आधारभूत ज्ञान होना चाहिए। इन सभी मापदंडों पर शिक्षक खरे उतरते हैं।

गुड ने 1945 में अपने शैक्षिक शब्दकोष में परामर्श के अर्थ के अंतर्गत ज्ञानात्मक सामग्री, तत्काल निर्णय लेने और बाहरी साधनों के प्रयोग पर जोर देते हुए लिखा – "परामर्श अकेले और व्यक्तिगत रूप से शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत समस्याओं में सहायता प्रदान करना है, जिससे सभी संबंधित तथ्यों का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है और इन समस्याओं का समाधान प्रायः विशेषज्ञों, स्कूलों, सामुदायिक साधनों और व्यक्तिगत साक्षात्कारों की सहायता से किया जाता है, जिसमें परामर्श प्राप्तकर्ता को अपने निर्णय स्वयं लेना सिखाया जाता है।"

एक शिक्षक जब परामर्शदाता की भूमिका में रहता है तो उसकी जिम्मेदारियां और भी बढ़ जाती हैं उसमें निम्न योग्यताएं होनी आवश्यक हैं–

**टिप्पणी**

1. विद्यार्थियों की समस्या को समझना
2. समस्या समाधान में सहायता करना
3. विद्यार्थी के साथ मधुर संबंध बनाना
4. सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता
5. व्यवसाय दिशा–मार्गदर्शन में निपुणता
6. परामर्श सेवाओं का मूल्यांकन करने की क्षमता रखना।

## परामर्शदाता की मुख्य दक्षताएँ

परामर्शदाता के रूप में शिक्षक में कई दक्षताओं में निपुणता होनी चाहिए। परामर्श सेवा के प्रति पर्याप्त रुचि, बौद्धिक क्षमताएं, सामाजिक सम्बंधों की परिपक्वता, अन्य व्यक्तियों के प्रति संवेदनशीलता, शांतचित्त प्रवृत्ति आदि कौशल भी होना चाहिए। शिक्षक का कार्य क्षेत्र में अनुभव उसकी सेवा की प्रमाणिकता होती है। शिक्षक को परामर्शदाता के रूप में शिक्षण–प्रशिक्षण निम्न तीन बिंदुओं में बताया जा सकता है :

अ) सामान्य/आधारभूत शैक्षणिक योग्यता (न्यूनतम मनोविज्ञान स्नातक)

ब) परामर्श के क्षेत्र में शिक्षण–प्रशिक्षण

स) दक्षता का विकास एवं संदर्भित विषय में प्रशिक्षण

## शिक्षक परामर्शदाता की विशेषताएं

1. **विशिष्ट ज्ञान एवं वैयक्तिक वैशिष्ट्य**– एक शिक्षक परामर्शदाता से सांस्कृतिक एवं आर्थिक जगत का सामान्य ज्ञान और व्यावसायिक जानकारी की भी अपेक्षा की जाती है। इसके साथ ही उसमें सहानुभूति, सहिष्णुता, वस्तुगतता, सन्तुलित व्यक्तित्व, विवेकशीलता, उत्साही जैसे वैयक्तिक गुण भी होने चाहिए।
2. **परामर्शप्रार्थी की वैयक्तिक स्वायत्ता का सम्मान**– परामर्शदाता को यह समझना चाहिए कि परामर्शप्रार्थी के अपने सम्बन्ध में उसको स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है इतना ही नहीं वह परामर्शदाता से सहायता लेने से इनकार भी कर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि परामर्शप्रार्थी परामर्शदाता की सहायता को अपने विवेक के अनुरूप उपयोग करें।
3. **विद्यार्थियों को स्वयं को समझने में सहायता करना** – परामर्श के श्रेष्ठ स्वरूप में विद्यार्थी को अपनी समस्या पर केन्द्रित होकर उसे समाधान में प्रयत्नशील होना चाहिए। तभी वह उसे अपने जीवन का अंश बना सकेगा। जब परामर्शप्रार्थी को यह महसूस होने लगता है कि परामर्शदाता उसके व्यक्तित्व को आदर तथा महत्व प्रदान कर रहा है तभी वह स्वयं को अपेक्षाकृत खुलकर व्यक्त करने लगता है, उसका संकोच दूर हो जाता है।

4. **नैतिक व्यवहार एवं लचीलापन** – परामर्शदाता शिक्षक के व्यवहार में लचीलेपन के साथ–साथ नैतिक गुणों का समावेश भी होना चाहिए, क्योंकि परामर्श क्षेत्र में अधिक सम्भावना होती है कि परामर्शदाता को विद्यार्थियों की गोपनीयता से भी अवगत होना होता है। जब तक परामर्शप्रार्थी व्यक्ति को परामर्शदाता पर पूर्ण विश्वास नहीं होगा तब तक वह अपने भाव तथा विचारों को परामर्शदाता के सामने निःसंकोच खुलकर व्यक्त नहीं करेगा। परामर्शदाता को रूढ़िवादी या अधिक दृढ़ स्वभाव का नहीं होना चाहिए।

5. **व्यवस्थित चिंतन एवं तार्किकता** – परामर्शदाता में भावनात्मक समझ तथा वैचारिक समझ भी होनी चाहिए। परामर्शदाता का संचार स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वह अपने आपको परामर्शप्रार्थी के साथ भावनात्मक एवं वैचारिक दोनों स्तरों पर जोड़ सकें। परामर्शदाता को बौद्धिक रूप से भी कुशाग्र होना अति आवश्यक होता है। उसे प्रत्येक घटना या परिस्थिति के साथ अपना अनुभव जोड़ने की कुशलता भी होनी चाहिए।

6. **विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना** – शिक्षक परामर्शदाता का प्रमुख लक्ष्य है – विद्यार्थियों के अधिगम को परिष्कृत करके उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सहायता प्रदान करना। विद्यार्थी को स्वयं अपनी अभिरूचियों, योग्यताओं एवं विशेषताओं के विषय में जानने की जिज्ञासा रहती है। इसे सकारात्मक दृष्टिकोण से परिवर्तित करने की क्षमता शिक्षक में होती है। विद्यार्थियों में सीखने के माध्यम से उनके व्यवहार में सुधार लाना परामर्शदाता का कार्य है।

7. **विद्यार्थी को सामाजिक और व्यावसायिक जागरूकता प्रदान करना** – परामर्शदाता का प्रमुख लक्ष्य है विद्यार्थी को समाज के साथ वातावरण में ढालना। शिक्षक परामर्शदाता को विद्यार्थियों की व्यावसायिक चिंताओं का समाधान करने के क्षेत्र में उचित मार्गदर्शन करना होता है। उनकी प्रतिभा के अनुसार व्यवसाय के क्षेत्र चयन में सहायता प्रदान करता है साथ ही शिक्षक परामर्शदाता नागरिकों के उत्तरदायित्वों आदि के विषय से इन सूचनाओं में समाज में हो रहे नवीनीकरण सामाजिक मूल्य परिवर्तनों की जानकारी प्रदान करता है।

8. **निर्णय प्रक्रिया में परामर्शदाता सलाहकार की भूमिका** – परामर्शदाता एक उत्तम सलाहकार के रूप में कार्य करता है। वह विद्यार्थी को उत्तम निर्णय लेने अनुमानित निर्णय लेने, सूचनाओं को प्राप्त करने के विषय में तथा अन्य किसी मदों से संबधित विषयों पर सलाह देता है तथा उचित निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है।

9. **गोपनीय विचार विमर्श से समस्या समाधान** – परामर्शदाता विद्यार्थी से संबंधित जानकारी हासिल करने के लिए विषयों के अतिरिक्त अन्य लोगों से भी गोपनीय ढंग से वार्तालाप कर सकता है। यह बातचीत परामर्श की ही प्रक्रिया होगी। परामर्शदाता विद्यार्थी के मित्रों, माता–पिता, रिश्तेदार, शिक्षकों आदि से

विचार–विमर्श करता है। यह गोपनीय विचार–विमर्श इस उद्देश्य से किया जाता है ताकि विद्यार्थी की समस्या का समाधान प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सके।



**टिप्पणी**

## अपनी प्रगति जांचिए

1. मार्गदर्शन का सामान्य अर्थ है–
   (क) निर्देशित करना (ख) निर्दिष्ट करना
   (ग) मार्ग दिखाना (घ) उपर्युक्त सभी
2. मार्गदर्शन का उद्देश्य है–
   (क) आत्म–मार्गदर्शन की शक्ति का विकास
   (ख) योग्यताओं, रुचियों और क्षमताओं के विकास में सहयोग
   (ग) निहित शक्तियों तथा योग्यताओं से परिचय
   (घ) उपर्युक्त सभी
3. मार्गदर्शन की बढ़ती मांग को प्रभावित करने वाला कारक है–
   (क) जनसंख्या वृद्धि (ख) शहरीकरण
   (ग) शिक्षा के क्षेत्र में भारी बदलाव (घ) उपर्युक्त सभी
4. मार्गदर्शन के प्रमुख प्रकारों में सम्मिलित हैं–
   (क) शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन
   (ख) व्यक्तिगत एवं विकासात्मक मार्गदर्शन
   (ग) उपव्यावसायिक एवं स्वास्थ्य मार्गदर्शन
   (घ) उपर्युक्त सभी
5. समूह मार्गदर्शन के प्रमुख लाभ हैं–
   (क) नवागंतुक छात्रों को विद्यालय की जानकारी
   (ख) छात्रों और मार्गदर्शन उपबोधकों के मध्य संबंध स्थापना
   (ग) अन्य के अनुभवों अथवा अपरिचित परिस्थितियों की जानकारी
   (घ) उपर्युक्त सभी
6. विद्यालयी मार्गदर्शन में होने वाली प्रमुख क्रियाएं हैं–
   (क) सूचना संग्रह और प्रसार (ख) परीक्षण तथा अध्ययन
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
7. निम्न में से किस कारण से परामर्श की आवश्यकता होती है?
   (क) अधिकतम विकास
   (ख) वर्तमान समस्याओं के हल में सहायता

टिप्पणी

(ग) विशेष योग्यताओं एवं सही दृष्टिकोण वर्धन हेतु
(घ) उपर्युक्त सभी

8. निम्न में से कौन परामर्श का प्रकार है?
(क) नैदानिक एवं मनोवैज्ञानिक परामर्श
(ख) छात्र एवं सामाजिक परामर्श
(ग) वैवाहिक एवं धार्मिक परामर्श
(घ) उपर्युक्त सभी

## 1.3 कक्षा में निर्देशन और व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम

उपर्युक्त विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

### 1.3.1 कक्षा में निर्देशन

निर्देशन व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों और अवस्थाओं के लिए आवश्यक है, किन्तु मुख्यतः निर्देशन को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में माना गया है। इसलिए विद्यालयों में निर्देशन सेवा अति आवश्यक है। निर्देशन को विद्यालय के सामान्य जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है। यह कोई वस्तु या सामान नहीं है जिसे विद्यालय के किसी कक्ष या कोने में खोजा जा सके। निर्देशन एक ऐसा कार्यक्रम है जो विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों का आवश्यक अंग है। निर्देशन के कार्यक्रमों में शिक्षक की कुछ–न–कुछ सुनिश्चित जिम्मेदारी होती है। इसके साथ–साथ विद्यालय के अन्य कर्मियों एवं व्यवस्थापकों की भी एक सुनिश्चित जिम्मेदारी होती है। विद्यालय के बाहर स्थित माता–पिता एवं सामुदायिक संगठनों के बिना भी निर्देशन के लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। इस तरह से निर्देशन एक ऐसा प्रकार्य अथवा कार्यक्रम है जिसमें सभी की भागीदारी होती है इसलिए यह एक निश्चित नीति (Policy) के अनुरूप संगठित (Organised) और प्रशासित (Administered) होना चाहिए।

वस्तुतः शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है छात्रों का सर्वांगीण विकास करना क्योंकि शिक्षा हमारे जीवन का आधार स्वरूप है। इस प्रक्रिया में विद्यालय संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और छात्रों का ज्यादा से ज्यादा विकास इन्हीं के सान्निध्य में रहते हुए होता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। वैसे तो शिक्षक का प्रमुख कार्य शिक्षण है परन्तु केवल शिक्षण कार्य में ही लगे रहकर वांछित विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न कर पाना कठिन है।

जब तक एक शिक्षक को यह ज्ञात नहीं होगा कि अधिगम एवं समायोजन से संबंधित समस्याएं कौन–सी हैं; कौन–सा छात्र इन समस्याओं के समाधान के अभाव में पीछे रह गया है तथा उसे किस प्रकार की सहायता प्रदान की जा सकती है; तब तक वह अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। यदि शिक्षण एवं अधिगम का प्रक्रिया का वस्तुनिष्ठ रूप में विश्लेषण किया जाए तो हम सहजता से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि विद्यालयों में शिक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण निर्देशन की प्रक्रिया

है। इसलिए इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं को ध्यान में रखते हुए इसे प्रमुख स्थान दिया जाए और इसकी महत्ता को समझा जाए। इसके लिए विद्यालय निर्देशन सेवा संगठनों के विभिन्न पक्षों से परिचित होना आवश्यक है इसी के आधार पर विद्यालयी छात्रों की समस्याओं के बारे में उचित सहायता का प्रावधान तथा उसका व्यावहारिक क्रियान्वयन सम्भव है।

## विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन के मुख्य कार्य

निर्देशन सेवा का क्षेत्र असीमित है लेकिन विद्यालय जीवन से संबंधित कतिपय ऐसे विशिष्ट कार्य होते हैं जिन पर निर्देशन सेवाएं ही ध्यान देती है क्योंकि एक छात्र को शिक्षण के समय अध्यापक रोजाना देखता है और उसकी गतिविधियों पर भी ध्यान देता है। इसलिए एक सही निर्देशन के द्वारा छात्र को सही दिशा दी जा सकती है। इसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा रहा है–

1. निर्देशन सेवा छात्रों के स्वास्थ्य संबंधी कार्य करता है और उसे निर्देशित करता है कि हम किस प्रकार से स्वस्थ रहे– क्योंकि एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग का वास होता है जिससे छात्र स्वस्थ रहे।
2. निर्देशन सेवा छात्रों से संबंध अभिलेख छात्रों की प्रगति एवं मूल्यांकन से संबंधित सूचनाओं तथा अन्य विवरण को समुचित एवं व्यवस्थित ढंग से रखती है।
3. छात्रों को सामाजिक समायोजन, पारिवारिक समस्याओं एवं अवकाश संबंधी निर्देशन प्रदान करना ताकि छात्र सभी संगठनों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके और अवकाश के समय का सही सदुपयोग कर सके।
4. निर्देशन सेवा संगठन को स्वस्थ संस्था के गुणों, उद्देश्यों, कर्मचारियों की संख्या, आर्थिक साधन तथा आकार के अनुरूप होना चाहिए।
5. छात्रों के शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों, एवं उनके कारणों का विश्लेषण करके विद्यार्थियों को शैक्षिक निर्देशन प्रदान करना निर्देशन सेवा का एक अन्य विशिष्ट कार्य है।
6. निर्देशन सेवा का अन्य विशिष्ट कार्य है– प्रशासनिक कठिनाइयों को दूर करना, छात्रावास में भोजन आदि की व्यवस्था करना तथा छात्रों को मिल–जुलकर साथ रहने की अच्छी आदतों का विकास करना।
7. छात्रावास से संबंधित व्यवस्था आदि में ध्यान रखना।

मार्गदर्शी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह अति आवश्यक हो जाता है कि निर्देशन कार्यक्रम ढंग से संगठित हो। यह संगठन और प्रशासन कुछ मौलिक सिद्धांतों के अनुसार ही होने चाहिए। सिद्धांत विद्यालय के स्वरूप के अनुरूप होने चाहिए तथा इन सिद्धांतों के निर्धारण में छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

बच्चों की निर्देशन संबंधी प्रमुख आवश्यकताएं निम्न हैं–

**टिप्पणी**

1. बच्चों के अन्दर ऐसी क्षमताओं का विकास करना जो उसे अपने बारे में, विद्यालय, व्यवसाय एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों के बारे में विश्वसनीय सूचना अर्जित करने हेतु उसे समर्थ बनाएं जिससे वो अपना विकास कर सकें।
2. बच्चों को उपयोगी अनुभव, प्राथमिक प्रयत्न, परिवेश के अन्वेषण, नई रुचियों के विकास तथा अपनी क्षमताओं की पहचान हेतु अवसर उपलब्ध कराना चाहिए और प्रयत्नपूर्वक उन्हें इन कार्यों के लिए प्रेरित करना चाहिए।
3. बच्चों को सहानुभूति, प्रबुद्ध परामर्श तथा सतर्कतापूर्ण देखभाल की आवश्यकता होती है।
4. बच्चों को इस उम्र में ऐसे मित्र की आवश्यकता होती है जो सक्षम, प्रशिक्षित तथा सहायता देने के लिए उपलब्ध हो तथा जिसके पास बच्चे सहायता पाने के लिए स्वतंत्रतापूर्वक बेहिचक जा सके।
5. बच्चों को सहायता देने वाले निर्देशक को मृदुभाषी होना चाहिए जो बच्चों से स्नेहपूर्वक उनकी समस्याओं को जान सके और उनकी समस्याओं को दूर कर सके।
6. शैक्षिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार से छात्रों को निर्देशन की बहुत आवश्यकता होती है और सही निर्देशन पाकर व्यक्ति भविष्य में अच्छा इनसान बन जाता है इसलिए अध्यापक का मूल उद्देश्य तो शिक्षा प्रदान करना ही है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य छात्रों का अधिक से अधिक विकास करना है। आज के इस विकसित समाज में विद्यालयों को सभी आयु वर्गों हेतु निर्देशन सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए।

इस प्रकार बच्चों की उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय परिवेश और वांछित बाहरी तत्वों के बीच उपयुक्त समन्वय की आवश्यकता है और इस समन्वय हेतु संगठन तथा प्रशासन की एक उपयुक्त रूपरेखा होनी चाहिए। ऑर्थर जोन्स का मत है कि बच्चे के निर्देशन संबंधी कार्यक्रमों में सदैव निर्देशन प्राप्त करने वाले बच्चे को ही केन्द्र में रखा जाना चाहिए अन्यथा कार्यकुशलता के लिए मूल लक्ष्य या प्रकार्य की ही अनदेखी हो जाएगी।

## विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं को संगठित करने के आधार

विद्यालयों में प्रत्येक स्तर पर दी जाने वाली निर्देशन सेवाओं को संगठित करने की आवश्यकता पड़ती है। आगे वर्णित बिंदुओं के अंतर्गत इसे समझा जा सकता है–

1. **कार्यक्रम का उद्देश्य**– निर्देशन सेवा के लिए कार्यक्रम बनाने से पूर्व यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि कार्यक्रम का संगठन किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जा रहा है क्योंकि उद्देश्यों के अभाव में कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो पाता है। अतः निर्देशन सेवाएं अथवा कार्यक्रम विद्यालयों को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों को खोजने का प्रयास करते हैं।

2. **कार्यक्रम के कार्य**– कार्यक्रम के उद्देश्य निर्धारण के पश्चात् कार्यों को सुनिश्चित किया जाता है। इन कार्यों का लक्ष्य होता है निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति।
3. **उत्तरदायित्व का निर्धारण**– विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त होने पर ही निर्देशन कार्यक्रम सफल बन पाता है। इसलिए निर्देशन कार्यक्रम के सफल बनाने के लिए, शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए समस्त शिक्षकों की निर्देशन में रुचि होना एवं योग्यताओं के संबंध में उन्हें सही जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि शिक्षकों की रुचियों एवं योग्यताओं के आधार पर ही उनके उत्तरदायित्वों को सौंपा जाता है।
4. **कार्यक्रम का मूल्यांकन**–निर्देशन सेवाओं को संगठित करने का महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्देशन का मूल्यांकन करना है। कार्यक्रम प्रारंभ करने के पश्चात् कार्यक्रम की प्रगति एवं उपयुक्तता का मूल्यांकन किया जाता है क्योंकि छात्रों की आवश्यकताओं निर्देशन विधियों एवं सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन होते रहने के कारण निर्देशन भी परिवर्तित होता रहता है। अतः निर्देशन कर्मचारियों को समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों के प्रति सचेत करते रहना चाहिए। इस प्रकार निर्देशन कार्यक्रम आवश्यकता के अनुसार एवं नई परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित किया जा सकता है।

इन विचारों के अतिरिक्त निर्देशन कार्यक्रमों के संगठन और प्रशासन हेतु विद्वानों द्वारा कुछ प्रमुख बिंदुओं को सूचीबद्ध किया गया है जो निम्नवत हैं–

(i) निर्देशन सेवा की उत्पत्ति उस विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की रुचियों आवश्यकताओं और उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए जिसके लिए उसकी रचना की गई है।

(ii) निर्देशन सेवा बच्चों के सर्वोपयुक्त विकास के लिए प्रदान की जानी चाहिए कुसमायोजन का समाधान इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। निर्देशन सेवा निरन्तर तथा सभी के लिए होनी चाहिए।

(iii) निर्देशन का संबंध व्यक्ति की समग्रता (व्यक्ति तथा उसका समग्र परिवेश, उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं और समस्याओं सहित) के साथ होना चाहिए।

(iv) इसका लक्ष्य समस्याओं का समाधान ही नहीं बल्कि समस्याओं का परिहार और समस्याओं से बचाव भी होना चाहिए।

(v) निर्देशन द्वारा व्यक्ति के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और अवस्थाओं में सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

(vi) निर्देशन कार्यक्रम द्वारा विशेषज्ञों के सहयोग से अन्य कार्मिकों की सेवा की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(vii) निर्देशन कार्यक्रम द्वारा व्यक्ति को शैक्षिक एवं रोजगार संबंधी अवसरों दोनों के बारे में सही सूचनाएं उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

**टिप्पणी**

(viii) संपूर्ण निर्देशन व्यक्ति के आत्मज्ञान और आत्म–निर्देशन के सुधार और विकास की दिशा में होना चाहिए।

(ix) इसे विद्यालय के सभी सदस्यों की सहकारात्मक सहयोग और रुचियों के आधार पर संगठित किया जाना चाहिए।

(x) इसमें दीर्घकालिक निर्देशन हेतु प्रिंसिपल द्वारा नेतृत्व तथा विद्यालय और समुदाय के सभी अभिकरणों के बीच समन्वय की व्यवस्था होनी चाहिए।

(xi) किसी भी निर्देशन सेवा का विकास उन सेवाओं के बीच में से होना चाहिए जिनका वर्तमान समय में अस्तित्व है। विद्यालय पृष्ठभूमि की अद्वितीय परिस्थितियों के अनुरूप उसका अनुकूलन होना चाहिए।

## विद्यालयी निर्देशन सेवा संगठन की विशेषताएं

विद्यालयों में निर्देशन सेवा संगठन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. निर्देशन कार्यक्रम शिक्षकों की रुचियों, छात्रों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के ज्ञान पर ही आधारित होना चाहिए।
2. निर्देशन सेवाएं निवारक होनी आवश्यक है ताकि आरम्भ में छात्र के समुचित समायोजन के लिए प्रयास किया जाए।
3. निर्देशन प्रदाता को इस प्रतीक्षा में नहीं रहना चाहिए कि छात्र के कुसमायोजन होने पर ही सहायता प्रदान की जाए।
4. निर्देशन कार्यक्रम के लिये प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को ही व्यवस्थित निर्देशन कार्यकम का नेतृत्व करना चाहिए।
5. निर्देशन कार्यक्रम में सभी के समन्वित प्रयास एवं सहयोग से निर्देशन कार्यक्रम सफल हो सकता है। छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने के लिए नैदानिक सेवायें, स्वास्थ्य सेवायें, परिवार कल्याण इत्यादि की सहायता ली जा सकती है।
6. निर्देशन कार्यक्रम के संगठन के लिए प्रथम महत्वपूर्ण कार्य कार्यक्रम के उद्देश्य को निर्धारित करना है क्योंकि इसके अभाव में निर्देशन कार्यक्रम असफल हो जाता है।
7. निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशन सेवाओं का गठन छात्रों की आवश्यकताओं को समझने तथा उनकी संतुष्टि में सहायता करने के उद्देश्य से किया जाता है इसीलिए निर्देशन सेवाओं को भी निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

## विद्यालयी निर्देशन में होने वाली क्रियाएं

किसी भी निर्देशन कार्य को सरल और सफल संचालन के लिए यह अनिवार्य है हम निर्देशन मे होने वाली क्रियाओं के समन्वय के द्वारा ही उसे सफल रूप से क्रियान्वित कर सकते हैं।

विद्यालय निर्देशन में होने वाली क्रियाएं निम्नवत हैं–

1. **सूचना–संग्रह और प्रसार**– निर्देशन कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न विषयों (जिनमें निर्देशन देना है) से संबंधित सूचनाओं का संग्रह किया जाता है और विभिन्न प्रकार के पत्र–पत्रिकाओं लघु पुस्तिकाओं, संकेत चिह्नों और प्रदर्शनी आदि के द्वारा उनका प्रचार और प्रसार किया जाता है।
2. **संस्थाओं से संपर्क**– इसके अंतर्गत विद्यालय को एक ओर तो शिक्षा संस्थाओं से संपर्क रखना होता है तो दूसरी ओर विभिन्न व्यावसायिक केन्द्रों, औद्योगिक संस्थाओं, सेवा कार्यालयों और चिकित्सालयों आदि से संपर्क रखना होता है जिससे उनके यहां की प्रगति और वहां से प्राप्त होने वाली अवसरों तथा प्रतिबन्धों के विषय में आधुनिकतम सूचनाएं मिलती रहें।
3. **परीक्षण तथा अध्ययन**– विद्यालयों में जिन्हें निर्देशन देना होता है उनका पहले मानसिक, व्यक्तिगत संबंधी, रुचि विषयक, अभिवृत्ति विषयक तथा अन्य आवश्यक परीक्षण करते हैं; उनके संबंध में निकट संबंधियों तथा अभिभावकों से परामर्श लेकर जानकारी प्राप्त करते हैं और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि देखते हैं तत्पश्चात साक्षात्कार द्वारा उनकी विशेषताओं को जानकर एक स्पष्ट चित्र तैयार करते हैं।
4. **निर्देशन देना**– परीक्षणों के आधार पर प्राप्त सामग्री का विश्लेषण करके सभी सम्भावनाओं पर विचार करने के पश्चात् ही निर्देशन दिया जाता है जिससे निर्देशन चाहने वाले व्यक्ति का सही मार्गदर्शन हो सके।
5. **प्रवेश एवं कालान्तर अध्ययन**– निर्देशन के बाद उन्हें आवश्यक तैयारी के साथ उस उपयुक्त पाठ्यक्रम अथवा व्यवसाय में जाने की जानकारी देते हुए उन्हें प्रेरित करते हैं। उनके प्रवेश करने के बाद उनसे सम्पर्क बनाये रखते हैं और यह भी देखते हैं कि जिस मार्ग पर उन्हें भेजा गया है (अर्थात् व्यवसाय में) उसमें उन्हें कहां तक सफलता मिल रही है।

यही क्रियाएं व्यक्ति विशेष अथवा छात्रों को निर्देशन देने में भी होती हैं। जिन्हें निर्देशन देना है उनका विभिन्न प्रकार से परीक्षण करके उनकी क्षमता, रुचि, प्रवृत्ति और विशेष गुणों के बारे में आश्वस्त होने के बाद उनकी शैक्षिक उपलब्धि देखते हैं तथा साथ ही शिक्षकों और अभिभावकों से भी सुझाव लेते हैं।

इन सभी के बाद व्यक्ति की स्वयं की इच्छाओं को जानने के लिए साक्षात्कार भी करते हैं जिससे सही निर्देशन प्राप्त हो सके और इन परिस्थितियों के विश्लेषण के बाद निर्देशन का अध्ययन कालांतर चलता है।

## विद्यालयों में निर्देशन सेवा हेतु सुझाव

छात्रों की उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, विद्यालय में निर्देशन सेवा होना अति आवश्यक है जिससे छात्रों का उचित विकास सम्भव हो सके। निर्देशन कार्यक्रम के द्वारा छात्रों का शैक्षिक एवं रोजगार संबंधी समस्याओं का निदान विद्यालय में ही हो

जाता है। विद्यालयों में निर्देशन की व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

**टिप्पणी**

1. **आर्थिक भार**– हमारे विद्यालयों की आर्थिक दशा अगर उतनी अच्छी न हो तो निर्देशन सेवा के संगठन और उसके कार्यक्रम के आयोजन में सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक समय व्यय न हो अन्यथा यह व्यवस्था भार बन जाएगी और निर्देशन सेवा सुचारु रूप से नहीं चल पाएगी।
2. **अधिक से अधिक छात्रों को अवसर मिले**– हमारे विद्यालयों में निर्देशन सेवा का आयोजन इस प्रकार से किया जाए कि उसके द्वारा अधिक से अधिक छात्र लाभान्वित हो सके। और उनको सही मार्गदर्शन प्राप्त हो सके।
3. **निर्देशन अथवा शैक्षिक कार्यक्रम में संतुलन**– निर्देशन संबंधी क्रियाओं का आयोजन शैक्षिक कार्यक्रमों के मार्ग में बाधक न हो अपितु उनमें इस प्रकार का संतुलन हो कि दोनों साथ–साथ चलते रहे तथा एक–दूसरे के पूरक बने।
4. **सहकारिता**– निर्देशन की क्रिया में सम्पूर्ण विद्यालय के प्रत्येक कर्मचारी का सहयोग अति आवश्यक है। यदि इसका संबंध कुछेक लोगों से ही होगा तो शेष कर्मचारी रुचि नहीं लेंगे और सम्भव है कि वे बाधा भी पैदा करें। ऐसी स्थिति में पूरी व्यवस्था उपहासास्पद बन जाएगी और लाभ के स्थान पर हानि अधिक होगी। अतः सबका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। सभी लोगों को सच्चे ह्रदय से अपना सहयोग देना चाहिए जिससे निर्देशन कार्यक्रम सुचारु रूप से चल सके।
5. **विद्यालय की वर्तमान परिस्थितियां**– विद्यालय की परिस्थितियां सारी व्यवस्थाओं के अनुकूल है अथवा नहीं इसका भी ध्यान रखना आवश्यक होगा क्योंकि किसी भी कार्यक्रम की पूर्व तैयारी आवश्यक है नहीं तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।
6. **निर्देशन में अध्यापकों की भूमिका**– निर्देशन कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि शिक्षकों का विश्वासपूर्ण सहयोग न प्राप्त हो। अतः इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों का विश्वासपूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाए जिससे निर्देशन आसान एवं सुचारु रूप से क्रियान्वित हो सके।

टैक्सलर तथा नार्थ लिखते हैं–''नवयुवकों को स्वयं को समझने के लिए, सभी कार्य क्षेत्रों की विषयवस्तु को अपनी क्षमताओं और सीमाओं के संदर्भ में देखने के लिए और नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भविष्य में विकसित होने वाले रोजागारों के लिए (जबकि सैकड़ों अन्य लोग निरर्थक या कम महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेते हैं) विस्तृत क्षमताओं और दक्षताओं के विकास की आवश्यकता को स्वीकार करने हेतु सहायता देने के कार्य में अध्यापकों एवं परामर्शदाताओं के लिए अपने प्रयत्नों को संयुक्त करने की जरूरत है। यह मूलतः एक अधिगम दशा है तथा किसी अन्य की तुलना में उस मार्ग को बेहतर प्रशस्त कर सकता है और जिसके माध्यम से छात्र अपने भविष्य में झांक सकता है।''

वैसे तो अध्यापक का प्रथम उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य होता है– छात्र का अधिकतम सम्भव विकास करना और निर्देशन शिक्षा के इस व्यापक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है। इसलिए यदि एक शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों की सिद्धि चाहता है तो उसकी भूमिका निर्देशन कार्मिक की हो जाती है। एक निर्देशन कार्मिक के रूप में शिक्षक की अनेक भूमिकाएं हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **निर्देशन हेतु विद्यार्थियों की क्षमताओं और विशेषताओं का मूल्यांकन**– निर्देशन हेतु व्यक्ति के व्यवहार के बारे में जानना आवश्यक होता है इसलिए छात्र जितना समय कक्षाओं में व्यतीत करता है उतने समय तक तो वो अध्यापक के ही अवलोकन में रहता है। इसलिए अध्यापक निर्देशन प्रदाता के रूप में एक छात्र के बारे में सभी प्रकार की सूचनाएं संकलित कर लेता है जैसे– नेतृत्व, जिम्मेदारी, सामाजिकता, रुचियां, अरुचियां, अनुशासन, मूल्य और अभिवृत्तियां, कार्य के विभिन्न परिस्थितियों से समन्वय, क्षमताएं, व्यवहारगत दोष और समस्याएं इत्यादि।

   इस तरह अध्यापक विद्यार्थी के बारे में सूचनाएं संकलित करके उपयोग हेतु उसे परामर्शदाता को प्रेषित कर सकता है।

2. **निर्देशन हेतु सूचना सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– अपनी शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं को स्वरूप प्रदान करने के लिए बच्चों को पाठ्यक्रमों, रोजगार के अवसरों, प्रशिक्षण की सुविधाओं, रोजगार तथा व्यवसायों की योग्यता संबंधी मांग आदि के बारे में भी अध्यापक सूचना एकत्रित करके छात्रों को दे सकते हैं।

3. **अध्यापकों की पूर्वाभिमुखीकरण में भूमिका**– विद्यालय प्रांगण में आने वाले नए छात्र के बारे में परिचय प्राप्त करने तथा उसका सबके साथ समायोजन स्थापित करने की स्थिति में अध्यापक विद्यार्थी को विद्यालय के विभिन्न कक्षों, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, परम्पराओं और नियमों आदि का परिचय दे सकते हैं जिससे कि छात्र शीघ्रतापूर्वक नये परिवेश के साथ समायोजित हो सके।

4. **विकासात्मक–निर्देशन सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास। जिससे छात्रों का स्वयं के प्रति और समाज के प्रति एक वास्तविकतापूर्ण दृष्टिकोण बन सके। इसके लिए विद्यार्थियों के अन्दर जिम्मेदारी स्वीकारने तथा पहल करने की प्रवृत्ति, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, स्वतन्त्र चिंतन के सामर्थ्य के साथ–साथ अपनी कमियों को स्वीकारने की प्रवृत्ति आदि का विकास होना चाहिए। ऐसी प्रवृत्तियों को विकसित करने में अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

5. **परामर्श सेवा में अध्यापकों की भूमिका**– विद्यार्थियों को स्वयं के तथा परिवेश के बारे में सूचनाएं प्राप्त होती है लेकिन इसके पश्चात् भी शैक्षिक, व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक जीवन लक्ष्यों के निर्धारण हेतु सक्षम व्यक्ति से परामर्श की आवश्यकता होती है जो उन्हें विकल्पों के स्वतन्त्रतापूर्वक चयन हेतु समर्थ बना सकें। इसके लिए अध्यापक ही एक सही मार्गदर्शक साबित होता है। जोन्स ने– इस विषय में कहा है कि ''अध्यापक की यह भूमिका उपचारात्मक

टिप्पणी

नहीं होती तथापि वह विद्यार्थियों को और अच्छा समायोजन स्थापित करने में सहयोग प्रदान कर सकता है।

6. **विशिष्ट छात्रों एवं समस्याग्रस्त छात्रों की पहचान में अध्यापक की भूमिका**– विद्यालय की सभी कक्षाओं में अकसर छात्रों की दो श्रेणियां होती है– पहली श्रेणी में मेधावी एवं विशिष्ट योग्यता वाले छात्रों की पहचान करके उनके सामर्थ्य के विकास एवं उनकी पृथक समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता होती है और इस कार्य को अध्यापक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है।

   दूसरी श्रेणी में थोड़ी कम बुद्धि या मन्द बुद्धि वाले अथवा समस्यात्मक श्रेणी के छात्र होते हैं। इनके लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है और जो छात्र समस्यात्मक श्रेणी के होते हैं उन्हें बाल मनोपचार केन्द्र द्वारा सलाह लेकर सुधारा जा सकता है अध्यापक ऐसे छात्रों की पहचान आसानी से कर सकते हैं।

7. **निर्देशन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में अध्यापक की भूमिका**– निर्देशन की अन्य विभिन्न सेवाओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता द्वारा विद्यार्थियों के लिए विकसित किए गये कार्यक्रमों को अध्यापकों की सक्रिय भागीदारी के बिना कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। छात्र विशेष के लिए विकसित प्रशिक्षण, सुधारात्मक पाठ्यक्रम, सम्बद्ध अनुभव उपलब्ध कराने के लिए कार्यक्रम, अधिगम के लिए अनुकूल परिस्थितियों की योजना आदि के सही संचालन के लिए अध्यापकों के सहयोग की आवश्यकता होती है। आवश्यक होने पर इन कार्यक्रमों को सही रूप से संचालित करने हेतु अध्यापकों को समर्थ बनाने के लिए भी विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है।

## शैक्षिक निर्देशन कार्यक्रम में विद्यालय की भूमिका

निर्देशन के कार्यक्रम में माता–पिता, अध्यापकों एवं परामर्शदाता की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक अवश्य होती है परन्तु विद्यालय और सामुदायिक संस्थाओं से संबंधित अन्य कार्मिकों का सहयोग इनकी भूमिकाओं के निष्पादन हेतु अपरिहार्य रूप से आवश्यक होता है। निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य कर्मी, प्रशासनिक कर्मचारी, सम्पर्क अधिकारी और सेवा योजना अधिकारी आदि सभी सूचनाओं को एकत्र करने तथा वितरित करने में सहायक और मददगार होते हैं। इन सभी के अतिरिक्त व्यावसायिक स्थापना अनुवर्तन और कार्यक्रम मूल्यांकन में भी इन सभी कर्मियों का सहयोग वांछित होता है।

निर्देशन कार्यक्रम में निर्देशन प्रदाताओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। लेकिन निर्देशन प्रदाता कुछ व्यक्ति ही होते हैं जिनकी सदैव ही कुछ सीमाएं होती है। व्यक्ति संस्थाओं की सुव्यवस्था और स्थायित्व तथा विभिन्न प्रकार के संसाधन उपलब्ध कराने की बेहतर क्षमता का स्थान ये ग्रहण नहीं कर सकते इसलिए एक संस्था के रूप में इसका वर्णन किया जाना महत्वपूर्ण हो जाता है।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में उसका विद्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास विद्यालयों में ही होता है। एक छोटा

टिप्पणी

बालक/बालिका ही आगे शिक्षित होकर स्वस्थ समाज का निर्माण करते हैं। विद्यालय का व्यक्ति के जीवन में औपचारिक शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त उसके व्यक्तित्व के विकास में भी समान महत्व होता है। व्यक्ति के रूप के निर्माण में परिवार के बाहर विद्यालय सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक होता है क्योंकि विद्यालय के परिवेश में ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण होता है और जैसा कि पहले बताया गया है कि निर्देशन की प्रक्रिया का स्वरूप भी शैक्षिक है और शैक्षिक संस्थाओं से अलग हटकर निर्देशन कार्यकम की कल्पना भी नहीं की जा सकती है क्योंकि शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा ही लक्ष्यों का चयन किया जाता है ये भी एक शैक्षिक प्रक्रिया है।

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा उसे इस बात का अधिगम करना होता है कि उसके परिवेश, उसकी विशेषताओं तथा क्षमताओं के संदर्भ में कौन सा लक्ष्य अधिक उपयुक्त है। इस तरह से शिक्षा की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होने के अतिरिक्त विद्यालय एक ऐसा मंच या संगठन है जहां निर्देशन प्रदाता एकत्र होते हैं तथा बच्चों के शैक्षिक गुणों के आधार पर उनके व्यवसाय एवं कौशलों का चयन करने में सहायता प्रदान करते हैं। इसलिए विद्यालय अनेक रूपों में निर्देशन कार्यक्रम में सहायक होता है। अग्रलिखित बिंदुओं के माध्यम से इसे समझा जा सकता है–

1. विद्यालय सभी विद्यार्थियों को एक स्थान पर एकत्रित होने का ऐसा अवसर प्रदान करता है जहां विद्यार्थी आपस में सूचनाओं का आदान–प्रदान कर सकते हैं।
2. निर्देशन प्रदाता विद्यालय में एकजुट होकर एक विद्यार्थी को विभिन्न रूपों में सहायता एवं सुविधा भी प्रदान करता है।
3. व्यावसायिक चयन और निर्देशन की प्रक्रिया में बाहरी संस्थाओं जैसे– उद्योग जगत, रोजगार कार्यालय तथा छात्रों के मध्य अन्तःक्रिया सम्भव हो पाती है जिससे कि छात्र लक्ष्य का शीघ्र चयन करके अपने अन्दर की क्षमताओं एवं विशेषताओं का वांछित रूप में विकास कर पाते हैं।
4. निर्देशन के सहयोग से छात्र अपना विकास भविष्य के कर्मचारी (Potential Worker) के रूप में कर पाता है।
5. व्यावसायिक एवं शैक्षिक विशिष्टताओं के सन्दर्भ में विद्यालय शैक्षिक एवं सह–शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन के माध्यम से विद्यार्थियों में रुचियों, क्षमताओं एवं विशेषताओं के विकास में सहायक होता है।
6. विद्यालय व्यक्ति की विकासात्मक पूर्ति के अतिरिक्त संकटकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था भी करता है तथा सांवेगिक प्राथमिक उपचार केन्द्र की भांति कार्य करता है।
7. विद्यालय अपने माध्यम से पढ़ाई छोड़ देने वाले विद्यार्थियों के लिए विशेष निर्देशन कार्यक्रमों का संचालन सम्भव बना सकता है।
8. शैक्षिक कार्यक्रम एवं व्यावसायिक लक्ष्य के चयन के पश्चात् विद्यालय प्रशिक्षु कार्यक्रम (Apprenticeship) के लिए भी व्यवस्था करवाता है।

9. विद्यालय का प्रशासनिक विभाग निर्देशन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु प्रशासनिक सहयोग प्रदान करता है।
10. विद्यालय के अध्यापकों को परामर्शदाता की भूमिका के निर्वहन योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है और इसके लिए विद्यालय निर्देशात्मक उपचार के केन्द्रों की स्थापना करता है।
11. विद्यालय जो कि अपने विद्यार्थियों के मूल्यांकन हेतु आवश्यक परीक्षणों की व्यवस्था करता है तथा सूचनाओं के संग्रहण हेतु सुविधा भी प्रदान करता है।
12. विद्यालय विद्यार्थियों की निर्देशात्मक, विकासात्मक एवं संकटकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समाधान हेतु विद्यार्थी, माता–पिता और समुदाय के बीच एक सेतु का कार्य करता है इसलिए विद्यार्थी के व्यापक हित को सर्वोपरि मानकर वह माता–पिता, समुदाय और पाठ्यक्रम के स्वरूप को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।
13. विद्यार्थियों की सांवेगिक समस्याओं के संदर्भ हेतु परामर्शदाता और माता–पिता के मध्य साक्षात्कार की भी व्यवस्था करता है।
14. विशिष्ट प्रकार की समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु भी विशिष्ट सेवाएं, उपलब्ध कराता है।

**टिप्पणी**

## 1.3.2 व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम

छात्रों को व्यक्तिगत निर्देशन प्रदान करने के लिए प्रायः व्यक्तिगत संपर्क विधियों का प्रयोग किया जाता है जो इस प्रकार है–

वैयक्तिक सम्पर्क विधियां

**वैयक्तिक सम्पर्क विधियां**– प्रत्येक परामर्शप्रार्थी स्वयं से विचार किए हुए व्यवसाय के संबंध में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। परामर्शदाता उसकी रुचि को बनाये रखने के लिए उसे उसके विचार किए गए व्यवसाय के संबंध में सूचना तो देता ही है परन्तु साथ ही प्रार्थी को अपनी क्षमता एवं सम्भावनाओं का उचित मूल्यांकन करने के लिए भी प्रेरित करवाता है। इस तरह परामर्शदाता–

1. सभी छात्रों को विभिन्न व्यवसायों के विषय में जानकारी प्राप्त करवाता है और उनकी सहायता करवाता है।
2. व्यावसायिक सूचना सामग्री के अध्ययन में भी प्रार्थी को यथासम्भव आवश्यकतानुसार सहायता देता है।
3. प्रार्थी के लिए उसकी योग्यता अनुसार कौन–सी व्यावसायिक सूचना अनुपयुक्त या उपयुक्त है इसका निश्चय भी करता है।
4. निर्देशन के द्वारा व्यक्ति की सभी प्रकार की समस्याओं का निदान होता है।

यह तो सत्य ही है कि वैयक्तिक सम्पर्क एवं साक्षात्कार व्यावसायिक जानकारी प्रदान करने का एक प्रभावशाली साधन है किन्तु परामर्श कर्मचारियों का अल्पसंख्या में होना, प्रार्थियों का अधिक संख्या में होना तथा समय एवं धन की कमी आदि कारणों से प्रत्येक

स्थिति में वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करना जटिल हो जाता है। वैयक्तिक सम्पर्क की जटिलता को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक सूचनाएं प्राप्त करने की सामूहिक विधियां विकसित की गई हैं। जिनमें से प्रमुख विधिया निम्नलिखित हैं–



1. सिनेमा या चित्रपट के माध्यम से व्यावसायिक सूचनाएं प्रदान करना।
2. विभिन्न व्यावसायिक सूचनाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना।
3. व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों का आयोजन करना।
4. विभिन्न उद्योगों एवं पदों पर कार्यरत अनुभवी व्यक्तियों को भाषण के लिए आमन्त्रित करना।
5. विद्यालय एवं कक्षाओं में व्यावसायिक सूचना संबंधी नोट, आंकडे, ग्राफिक विश्लेषण तथा पैम्पलेटों का प्रदर्शन करना।
6. प्रमुख स्थलों पर पोस्टरों एवं विज्ञापनों द्वारा व्यावसायिक सूचनाओं का प्रदर्शन करना।
7. रेडियों एवं टेलीविजन के द्वारा व्यावसायिक सूचना प्रदान करना।
8. पाठ्य सहगामी क्रियाओं को माध्यम बनाकर व्यावसायिक सूचना प्रदान करना।
9. व्यावसायिक सूचनाएं प्रदान करने के लिए पृथक कक्षाओं का आयोजन करना।
10. औद्योगिक एवं व्यापारिक संस्थाओं का भ्रमण कराके व्यावसायिक सूचना प्रदान करना।
11. व्यावसायिक सूचना संबंधी प्रदर्शनियों का आयोजन करना।
12. पुस्तकालय को व्यावसायिक सूचना सेवा का आधार बनाना।

इन सभी कार्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय में एक अलग से कक्ष बनाया जा सकता है जिसमें विभिन्न व्यवसायों से संबंधित पुस्तकों, पुस्तिकाओं तथा समाचार पत्रों आदि की व्यवस्था की जा सकती है जिससे इन व्यवसायों के बारे में सही एवं सटीक जानकारियां प्राप्त हो सके।

इसके अतिरिक्त इन दोनों विधियों में प्रायः एक से ही सोपानों का प्रयोग किया जाता है। ये सोपान इस प्रकार से है–

1. **अनुस्थापन वार्तालाप**– परामर्शदाता छात्रों से विभिन्न प्रकार से वार्तालाप करते हैं। वार्तालाप के मध्य छात्रों की रुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं तथा आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त कर तथ्यों का संकलन करता है। इसके साथ–साथ ही वह उनको निर्देशन की आवश्यकता तथा महत्व के विषय के विषय में भी बताता है जिससे वे परामर्श लेने के लिए उत्साहित हो सकें और अपनी समस्याओं के बारे में जानकारी लेते रहें।
2. **साक्षात्कार**– साक्षात्कार के द्वारा छात्रों की योग्यताओं, रुचियों तथा समस्याओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है और उन्हीं के आधार पर निर्देशन दिया जाता है।
3. **मनोवैज्ञानिक परीक्षण**– परामर्शदाता मानसिक योग्यताओं और पाठ्य विषयों में उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के लिए बुद्धि एवं रुचि संबंधी मनोवैज्ञानिक परीक्षण करता है जिससे छात्रों को मानसिक एवं बुद्धि संबंधी ज्ञान प्राप्त कर सके।

4. **प्रश्नावली**– इन विभिन्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए परामर्शदाता उनसे संबंधित अनेक प्रश्नावलियां तैयार करता है और किये गये प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर वह छात्रों की विचारधाराओं तथा आवश्यकताओं से परिचित होता है।
5. **विद्यालय से तथ्यों का संकलन**– छात्रों की रुचियों, आदतों तथा व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं की जानकारी करने के लिए भी परामर्शदाता विद्यालय में संग्रहित संचित अभिलेखों (Cummulative Records) का अध्ययन करता है।
6. **पारिवारिक स्थितियों का अध्ययन**– माता–पिता अपने बालकों की रुचियों, रुझानों तथा आवश्यकताओं के विषय में पर्याप्त जानकारी रखते हैं। इसलिए परामर्शदाता उन सभी से विभिन्न जानकारियों को प्राप्त करके उनके विषय में तथ्यों का संकलन करता है और इन सभी के अतिरिक्त वह परिवारों की आर्थिक और सामाजिक दशाओं के विषय में भी जानकारी प्राप्त करता है।
7. **पार्श्व चित्र**– विभिन्न स्रोतों के द्वारा बालकों के संबंध में जो सूचना एकत्र कर ली जाती है उन्हें एक पार्श्व–चित्र (Profiles) में एकत्र करके रखा जाता और उसमें उसकी जानकारी व्यक्त की जाती है। पार्श्व चित्र को देखकर एक साथ ही बालक के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएं ज्ञात कर ली जाती हैं। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर बालक को सरलता से शैक्षिक या व्यावसायिक निर्देशन दिया जा सकता है।
8. **अनुवर्ती कार्यक्रम**– निर्देशन प्रदान करने के पश्चात् भी यह देखना आवश्यक हो जाता है कि बालकों को जिस क्षेत्र में निर्देशन प्रदान किये गये हैं उनमें संतोषजनक प्रगति की है अथवा नहीं की है। यदि प्रगति असंतोषजनक रहती है तो पुनः उपर्युक्त सोपानों का प्रयोग करके संशोधित निर्देशन देना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि निर्देशन सेवा हेतु सूचना को संकलित करना आवश्यक होता है। कुप्पूस्वामी के अनुसार– "निर्देशन कार्यक्रम में प्रयोग की जाने वाली ऐसी अनेक विधियां हैं जिन्हें उस व्यक्ति से संबंधित सूचनाएं एकत्र करने के लिए काम में लाया जाता है और जिनसे निर्देशन सेवा प्रदान की जाती है।''

## विद्यालयों में विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन

व्यक्तियों और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए, समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए अथवा अपने लक्ष्यों के निर्धारण के लिए बाहर से किसी अनुभवी व्यक्ति या समाजिक संस्था अथवा धार्मिक गुरु का सहयोग हो पाता था।

किन्तु आज के इस आधुनिक युग में निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा संगठित रूप में निर्देशन प्रदान किया जा रहा है, परन्तु संगठित रूप से निर्देशन प्राप्त करने की प्रक्रिया का आरम्भ व्यावसायिक निर्देशन के रूप में ही हुआ था। परन्तु कुछ समय पश्चात् से ही माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन का आरम्भ हुआ। मार्गदर्शन प्रक्रिया के तकनीकी एवं संगठनात्मक प्रणालियों के क्षेत्र में

विकास के फलस्वरूप ही प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में भी निर्देशन कार्यक्रमों को अपनाया गया है।

आज के इस विकसित समाज में सभी प्रकार के विद्यालयों में सभी आयु वर्गों के लिए निर्देशन की सेवाएं प्रदान की जा रही हैं क्योंकि हर स्तर के विद्यार्थियों की दशाएं एक–दूसरे से पृथक होती हैं। इसलिए प्राथमिक, माध्यमिक एवं कॉलेज स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं में निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार्य, निर्देशन कार्य तथा संगठनात्मक स्वरूप आदि में बहुत अन्तर होता है। इसलिए निम्न तीनों ही स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक एवं कालेज) पर निर्देशन सेवाओं के स्वरूप का अलग–अलग वर्णन वांछनीय हो जाता है जो इस प्रकार से है :

## I. प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन

प्राथमिक कक्षाओं में कक्षाध्यापक अध्यापन के साथ–साथ परामर्शदाता की भी भूमिका निभाता है। और इन कक्षाओं के शिक्षक अपने विद्यार्थियों को समझने में उनके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होता है। भारत जैसे देश में जहां अध्यापक और छात्र का अनुपात बहुत विषम है, जिससे उन्हें हर छात्र के साथ सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई होती है।

जबकि अमेरिका में प्राथमिक विद्यालयों में आज से 50 वर्ष पूर्व भी लगभग 3000 पूर्णकालिक परामर्शदाता कार्य कर रहे थे और यह वहां के लिए अनापेक्षित भी था क्योंकि वहां पर तीन सौ से अधिक छात्रों की संख्या वाले सभी विद्यालयों में एक पूर्णकालिक परामर्शदाता कार्यरत होता था। भारत में निर्देशन के आन्दोलन की शुरुआत बहुत पहले ही हो गयी थी परन्तु अनेक कारणों से यह महत्वपूर्ण सेवा कुछ महत्वपूर्ण महानगरों में स्थित विशिष्ट श्रेणी के विद्यालयों में ही सिमट कर रह गयी। ऐसी स्थिति में प्राथमिक विद्यालय में निर्देशन स्वाभाविक रूप से विदेशी सम्प्रत्यय प्रतीत होगा।

फिर भी प्राथमिक स्तर पर शिक्षक निर्देशन कार्यकर्ता, विद्यालय, चिकित्सा सेवा के कर्मचारी एवं विद्यालय समाज–सेवक के कार्यों में तालमेल की नितान्त आवश्यकता है। जिससे ये अध्ययन एवं परीक्षणों के द्वारा बच्चों को आरम्भिक शिक्षा के लिए आवश्यक कौशल को भली प्रकार सीखने, आधारभूत ज्ञान प्राप्त करने, विद्यालय के कार्य के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने में, एवं समाज के रीति–रिवाज के अनुसार अपने आपको ढालने में सहायता प्रदान कर सके। इसके साथ–ही–साथ बच्चों के शारीरिक विकास, संवेगात्मक स्थिरता एवं विद्यालय समायोजना में भी सहायता पहुंचा सके।

### प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक निर्देश की आवश्यकता

प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आयु और विकास की दृष्टि से इनकी तीन अवस्थायें होती हैं। वैसे तो बाल्यकाल में विकास तीव्र गति से होता है लेकिन बाल्यकाल के अन्तर्गत ही 4 से 6 वर्ष के आयु वर्ग के के.जी. (प्री प्राइमरी) स्तर के विद्यार्थी कक्षा 1 और 3 तक के विद्यार्थियों से तथा कक्षा 4 व 5 के विद्यार्थियों से भिन्न

होते हैं क्योंकि किन्डरगार्टन स्तर के विद्यार्थी बाल्यकाल की आरम्भिक अवस्था में होते हैं। इन आरम्भिक बाल्यकाल वाले बच्चों के विकास के चार प्रमुख क्षेत्र होते हैं– शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांवेगिक।



कक्षा 1 से 3 तक के विद्यार्थी जिनका आयु वर्ग 6 से 10 वर्ष के मध्य होता है, चाक्षुष मांसपेशीय समन्वय (Eye-Hand coordination) में दक्षता प्राप्त करते हैं और मांसपेशियों का बहुलता के साथ उपयोग करते हैं। उन्हें संकलित ऊर्जा के व्यय होने के साधनों की आवश्यकता होने लगती है। ये विद्यालय के कार्य संबंधी मांग तथा शरीर की आराम संबंधी मांग के बीच संतुलन बनाना सीखते हैं। इसलिए इनके साथ शिक्षा प्रदान करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन शारीरिक क्रियाशीलता है और इन्हें शिक्षा से जोड़ना चाहिए।

कक्षा 5 एवं 6 तक के विद्यार्थी उत्तर बाल्यावस्था की अवधि में होते हैं जहां कि वे किशोरावस्था की ओर अग्रसर होते हैं– इस अवधि में बच्चे सक्रिय रहना चाहते हैं। अपनी शारीरिक एवं यौनिक भिन्नता की पहचान भी करते हैं और बच्चे वयस्कों से दूर होने लगते हैं। कार्यकलापों एवं विचारों में स्वतंत्रता इन बच्चों को अधिक प्रिय होती है। इसलिए इस समय बच्चों को घर एवं विद्यालय दोनों ही स्थानों पर सहयोग की आवश्यकता होती है। इस अवस्था के सभी विद्यार्थी अधिगम करना चाहते हैं। उनकी रुचियां व्यापक होती हैं और वो कार्यकारण संबंधों को सीखना चाहते हैं।

इस प्रकार बच्चों की आदतें एवं प्रकृति संबंधी सारी विशेषताओं और भिन्नताओं की जानकारी माता–पिता, अध्यापक एवं अन्य घर के करीबी लोगों को होती है जिससे वे उसी के अनुरूप अपेक्षाएं रखते हैं। यदि अपेक्षाएं बच्चों के आयु वर्ग या उनकी निजी विशेषताओं के अनुरूप न हों तो बच्चों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः विद्यालय की तरफ से पाठ्यक्रम एवं लक्ष्यों का निर्धारण बच्चों में शैक्षिक एवं व्यावहारिक समस्याओं आदि के संदर्भ में प्रदान किये जाने वाले सहयोग की अभिकल्पना में इस प्रकृति को ध्यान में रखना अति आवश्यक होता है।

प्राथमिक विद्यालयों में निर्देशन का महत्व सकारात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है। जैसे–जैसे बालक का विकास होता है अनेक प्रकार की समायोजनात्मक समस्याओं, त्रुटिपूर्ण आदतों तथा सांवेगिक संकटों के समाधान हेतु अभिकल्पित किया जाता है लेकिन प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर उन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न किया जाता है जिनके माध्यम से संकटों और समस्याओं से बचाव होता है तथा व्यक्ति में सकारात्मक पक्षों का समावेश होने लगता है। इसलिए प्राथमिक विद्यालय में निर्देशन सेवा अध्यापकों में उपर्युक्त अध्यापन शैली विकसित करने, बालकों को, वे जैसे हैं वैसे स्वीकार करने, बालकों की सृजनात्मकता और नेतृत्व क्षमता को विकसित करने हेतु आवश्यक है।

## प्राथमिक विद्यालयों में निर्देशन के प्रकार्य

प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में निर्देशन का उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व में विकास तथा अधिगम संबंधी सम्भावनाओं को विकसित करना जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके।

टिप्पणी

न्यूयॉर्क शहर में प्राथमिक विद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रम को अधोवर्णित मुख्य उद्देश्य और लक्ष्यों के चतुर्दिक अभिकल्पित किया गया था इनका उल्लेख क्रो. एण्ड क्रो ने अपने पुस्तक में किया है तथा इसका मूल स्रोत (Curriculum Bulletin, (Number 13, pp 6-7 1955–56) है–

1. अध्यापकों, माता–पिता, निर्देशन प्रदाताओं तथा विद्यालय के प्रशासनिक कर्मचारियों के सहयोग के द्वारा छोटे बच्चों में सांवेगिक समस्याओं की उत्पत्ति से बचाव करना।
2. जब किसी भी बालक का अधिगम किसी विशिष्ट क्षेत्र में हो जोकि दोषपूर्ण हो और ये पता चले कि कमी बालक के सांवेगिक समस्याओं के कारण है तब बालक को सहायता प्रदान करना चाहिए।
3. सांवेगिक समस्या वाले बच्चों की पहचान हेतु अध्यापकों की सहायता करना जिससे उन बालकों को उपयुक्त सहायता केन्द्र तक भेजा जा सके।
4. विद्यालय तथा परिवार के बीच सहज संचार माध्यम बनाने के रूप में सेवा देना।
5. माता–पिता को बाल विकास, विद्यालय, अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम के बारे में सूचना देना।
6. अध्यापकों को उपलब्ध निर्देशन सामग्री के बारे में नवीनतम सूचना देना एवं विद्यालय के अन्दर उन सामग्रियों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना।
7. अध्यापकों को बच्चों के पूर्वाभिमुखीकरण हेतु सहयोग देना तथा बच्चों को उच्चतर कक्षाओं के लिए तैयार करना।
8. माता–पिता एवं अभिभावकों को बच्चों के अध्ययन एवं निर्देशन हेतु उपलब्ध और उपयुक्त उपकरणों/परीक्षणों के साथ परिचित कराना।
9. उच्चतर कक्षाओं (7 और 8) के छात्रों को विद्यालयों में पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय से संबंधित सूचना उपलब्ध कराना।
10. विद्यार्थियों के बारे में कक्षाओं में प्राप्त होने वाली सूचनाओं के अतिरिक्त पूरक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए विकसित परीक्षण कार्यक्रमों के बारे में अध्यापकों का पूर्वाभिमुखीकरण करना।
11. जरूरतमंद छात्रों के लिए शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचना चाहने वालों के लिए व्यक्तिगत परामर्श सत्रों की व्यवस्था करना।
12. विद्यालय के बाहर उपलब्ध विशिष्ट प्रकार की सेवाओं की उपलब्धता हेतु सम्पर्क सूत्र का कार्य करना।
13. संकाय में होने वाली गोष्ठियों, निर्देशन कार्यशाला, क्लासरूम डेमो स्टेशन आदि के माध्यम से अध्यापकों को तकनीकी सूचना तथा निर्देशन तकनीकों के बारे में सूचना प्रदान करना।
14. अन्य विभागों एवं अभिकरणों के साथ मानसिक आरोग्य कार्यक्रमों के लिए सहयोग देना।

**टिप्पणी**

उपर्युक्त वर्णनों में ऐसी बातों को सम्मिलित किया गया है जिनका उद्देश्य अध्यापकों और माता–पिता को बच्चों और विद्यार्थियों के हितार्थ और अधिक समर्थ बनाना है जिससे उनका सही विकास हो सके। आधुनिक युग के संदर्भ में प्रारंभिक विद्यालयों में जाने वाले बच्चों का व्यक्तिगत विकास, सांवेगिक स्थिरता में बने रह पाने और कुण्ठाओं का सामना करने, लक्ष्यों का निर्धारण करके उनकी प्राप्ति एवं सिद्धि हेतु माता–पिता अध्यापक एवं परामर्शदाता के मध्य सह–संबंध की आवश्यकता होती है जिससे बच्चों का विकास सही दिशा में हो सके।

आज के इस आधुनिक युग में बच्चे ऐसे परिवारों, माता–पिता और जीवन शैली के मध्य विकसित हो रहे हैं जहां माता–पिता के पास भी बच्चों के लिए समय का अभाव ही है। बच्चे अपनी भावनाओं, अनुभूतियों एवं अनुभवों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि माता–पिता के पास उन्हें सुनने और समझने का समय ही नहीं है। संयुक्त परिवार की कमी के कारण वो वृद्धजनों से प्राप्त सुरक्षा और सांवेगिक संरक्षण से भी वंचित है। ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि से निकले हुए बच्चों को बाहर की दुनिया में भी अतिरिक्त समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके बाद आज के इस प्रतिस्पर्धावादी युग में माता–पिता की अपेक्षाएं भी बढ़ गयी हैं। इसके साथ ही साथ आज का विद्यालय भी अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करने हेतु बच्चों से उच्चतम निष्पादन चाहते हैं। इन सब के बाद संचार के नवीन साधन, टेलीविजन, फोन, नेटवर्क इत्यादि सभी अपने ढंग से समस्याओं को बढ़ा रहे हैं। जिससे आज का बच्चा जल्द ही पथभ्रम की स्थिति में आ जाता है इसलिए निर्देशन की आवश्यकता आज के युग में और बढ़ जाती है।

## प्राथमिक स्तर पर निर्देशन के विशिष्ट पक्ष

प्राथमिक स्तर पर बच्चों के जीवन में अनेक महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। प्रथम बार विद्यालय में प्रवेश उसके जीवन की एक विशेष घटना होती है। वह पहली बार अपने परिवार के सुरक्षित, संरक्षित परिवेश से बाहर निकलकर पूर्णतः एक अपरिचित माहौल में प्रविष्ट करता है जहां उसे कुछ कार्य भी सम्पादित करने होते हैं। शैक्षिक अधिगम के अतिरिक्त उसे अनुशासन का अधिगम भी सीखना होता है। इसलिए विद्यालयी परिवेश के प्रति पूर्वाभिमुखीकरण की आवश्यकता इस अवस्था में विशेषतः सार्थक सिद्ध होती है।

प्राथमिक विद्यालय के पश्चात् दूसरे उच्च स्तरीय विद्यालय में जाना छात्र के लिए एक नए मोड़ के समान होता है। जहां एक वरिष्ठ छात्र पुनः नये परिवेश में कनिष्ठ बन जाता है। इसलिए क्रो एण्ड क्रो पूर्व किशोरावस्था वाले इन विद्यार्थियों के लिए इस नये अनुभव हेतु पूर्व तैयारी पर बल देते हैं। इस पूर्वाभिमुखीकरण की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने कुछ सुझाव दिये हैं। उनके अनुसार, प्राथमिक एवं पूर्व–माध्यमिक स्तर पर या माध्यमों हेतु छात्रों को यथासमय मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए– इसके लिए (1) बच्चों के माध्यमिक प्रांगण तक जाने तथा (2) माध्यमिक विद्यालय स्तर के अध्यापकों के प्राथमिक विद्यालयों में आने और बच्चों से मिलने जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना जरूरी होता है।

**टिप्पणी**

विषयों के चयन के लिए उपर्युक्त परीक्षणों के माध्यमों से बुद्धि रुचि, उपलब्धि व्यक्तिगत एवं अधिगम हेतु तैयारी के बारे में बच्चों को वस्तुनिष्ठ सूचना उपलब्ध कराना चाहिए।

बच्चों के विकास से संबंधित सूचनाओं का संचयी अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए जो सभी के लिए उपयोगी है।

सामान्य परीक्षा कार्यक्रम के पश्चात् अनेक विद्यार्थी अगली कक्षाओं के लिए प्रोन्नत कर दिये जाते हैं लेकिन इन विद्यार्थियों में कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं जिनमें अधिगम की कमी होती है और ये बालक जब अपनी कमियों के साथ अगली कक्षाओं में जाते हैं तब पाठ्यक्रम के साथ उसके उचित समायोजन की आवश्यकता बढ़ जाती है। ऐसे बालकों के लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम की व्यवस्था वांछित हो जाती है। जिन बच्चों को पाठ्यक्रम समझने में कठिनाई होती है तथा जो ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते उनके लिए सुधारात्मक पाठ्यक्रम के माध्यम से आवश्यक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है।

विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थी एक समुदाय का अंग होता है। समुदाय अथवा समाज के साथ विद्यार्थी का सम्पर्क उसके व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक होता है।

छात्र की शिक्षा तथा व्यक्तित्व का विकास विद्यालय अध्यापक एवं माता–पिता की संयुक्त जिम्मेदारी होती है और इस जिम्मेदारी के सम्पादन के लिए सभी पक्षों के बीच सहयोगात्मक संबंधों की स्थापना जरूरी है।

इस प्रकार से प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर पर सक्रिय निर्देशन कार्यक्रमों में कार्यरत परामर्शदाता की भूमिका अत्यन्त व्यापक होती है। सामान्य रूप से विभिन्न पक्षों के मध्य सहयोग की स्थापना तथा अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सहयोग देने के अतिरिक्त यह व्यक्तित्व एवं अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रशासन, शैक्षिक निर्देशन, मानसिक आरोग्य, पूर्वाभिमुखीकरण, जनसम्पर्क आदि अनेक प्रकार के क्षेत्रों में भी कार्य करता है।

## II. माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन

माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन का क्षेत्र प्राथमिक विद्यालयों की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है अध्यापक विषयवार कक्षाओं में पढ़ाते हैं इसलिए बच्चों से इनका अधिक सम्पर्क नहीं हो पाता है। इस कारण माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवा में विशिष्टीकृत कर्मचारियों (Specialized Workers) की सेवा की अधिक आवश्यकता पड़ती है। विद्यार्थियों के शैक्षिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं निजी समस्याओं का समाधान करने हेतु अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों एवं व्यापक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। निर्देशन कार्यक्रम की योजना और प्रारूप शैक्षिक अवस्थाओं तथा उस अवस्था विशेष के बच्चों एवं विद्यार्थियों के अनुरूप विकसित किया जाता है जिससे उनका पूर्ण विकास हो सके।

पूर्व माध्यमिक स्तर जूनियर हाई विद्यालय अर्थात 6, 7 व 8 की अवस्था आती है इन विद्यालयों की पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आवश्यकताएं

कुछ अलग हो जाती हैं। इस प्रकार से माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम की योजना संगठन और सक्रियता विद्यालयों के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

**टिप्पणी**

माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विशेषता– माध्यमिक कक्षाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की आयु 13 से 15 वर्ष की होती है। किशोरों की समस्याओं एवं विशेषताओं का विस्तृत वर्णन विद्यार्थीगण विकासात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत प्राप्त कर सकते हैं। माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. इस आयु के किशोर लंबाई, भार और शरीर के गठन की दृष्टि से युवावस्था का रूप ग्रहण करने लगते है।
2. किशोरों में अंग विकास होने लगता है।
3. इस आयुकाल में बालकों में माता–पिता एवं अभिभावकों पर निर्भरता छोड़कर अपने निर्णय के लिए स्वतंत्रता की प्रवृत्ति विकसित होती हुई दिखाई देती है।
4. माध्यमिक स्तर का विद्यार्थी सामयिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के बारे में तथा उन घटनाओं से अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में भी चिंतित होने लगते हैं।
5. विद्यार्थीगण अपनी शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम के चयन को व्यावसायिक रुचियों से तथा संभावनाओं से जोड़ने लगते हैं।
6. इस वर्ग के विद्यार्थीगण अपनी व्यापक गतिविधियों हेतु अपने सहपाठियों की संस्तुति चाहते हैं। अतः अपने कार्यकलापों और लक्ष्यों को अपने आयुवर्ग तथा कक्षा के अन्य मित्रों के विचारों के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन उपर्युक्त विशेषताओं के अनुसार ही विद्यार्थियों की निर्देशात्मक आवश्यकताएं होती हैं जिनकी पूर्ति हेतु निर्देशन प्रदान करने की व्यवस्था विद्यालय के स्तर पर की जानी चाहिए ताकि छात्रों को उनकी आवश्यकता के अनुसार निर्देशन व्यवस्था प्राप्त हो सके।

## माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थियों की निर्देशात्मक आवश्यकता

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की प्रमुख आवश्यकताएं व्यक्तिगत विकास, शिक्षा एवं समायोजनात्मक लक्ष्यों से जुड़ी हुई होती है। इस अवस्था में शैक्षिक विकल्प भी प्रस्तुत होते हैं जिनका चयन छात्रों को करना होता है और उन्हीं के आधार पर उनका व्यावसायिक चयन भी निर्भर करता है।

1. **शिक्षा संबंधी निर्देशात्मक आवश्यकताएं :** माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन से संबंधित आवश्यकताओं के अंतर्गत विद्यालयी समायोजन, अधिगम समस्याएं विषय संबंधी विकल्प माध्यमिक स्तर के पश्चात् विषयों, पाठ्यक्रमों कॉलेजों के चयन की समस्या तथा आगे के भविष्य के लिए शिक्षा से जुड़े व्यवसाय जैसी आवश्यकताएं सम्मिलित होती हैं।

माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर विद्यार्थियों को अपनी कक्षाओं के अतिरिक्त पुस्तकालयों एवं विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाओं के साथ समायोजित होना पड़ता है। अब उसे विभिन्न कक्षाओं में जाना पड़ता है विभिन्न प्रयोगशालाओं की अलग–अलग कार्यदशाओं का सामना करना पड़ता है।

अधिगम में कमजोर कुछ विद्यार्थी अध्ययन छोड़कर व्यवसाय की ओर जाने लगते हैं क्योंकि जैसे–जैसे विद्यार्थी एक–एक कक्षा आगे बढ़ने लगता है वैसे–वैसे विद्यार्थी की शैक्षिक सफलता की संभावना घटती जाती है तथा उन्हें लगता है कि असफलता से अच्छा है कि शिक्षण छोड़कर किसी उद्योग या व्यवसाय को चुन लिया जाए ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा क्षेत्र में सफलता एवं उसके साथ समायोजन हेतु यथासंभव निर्देशन सेवाओं के माध्यम से सहयोग दिया जाना चाहिए।

अधिगम संबंधी समस्याएं प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर तक ही देखी जाती है लेकिन माध्यमिक स्तर पर अधिगम संबंधी कठिनाइयां अनेक रूपों में विद्यार्थी को प्रभावित करती है जैसे– पढ़ने में कठिनाई, पढ़ने और समझने की मंद गति की समस्या भाषायी त्रुटियां विभिन्न विषयों के लिए रुचि एवं अरुचि तथा अभिसमता में अंतर इस प्रकार से निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी की अधिगम कठिनाई के कारणों को जानकर उसके निवारण उपाय किए जाने की आवश्यकता होती है।

माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थी को विभिन्न विषय संवर्गों कला, विज्ञान, गणित, विज्ञान जीवशास्त्र, वाणिज्य आदि के विकल्प का चयन करना होता है इस चयन में विद्यार्थी की क्षमताओं एवं विशेषताओं, अगली कक्षाओं में इन विषयों अथवा संबंधित पाठ्यक्रमों में प्रवेश प्राप्त होने की संभावना, व्यवसाय के क्षेत्रों में विषय/पाठ्यक्रम की मांग और आपूर्ति, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों इन सभी कारकों को ध्यान में रखना होता है। माध्यमिक स्तर के बाद विद्यार्थी हेतु वाणिज्यिक संस्थाओं, तकनीकी संस्थानों, अन्य महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में प्रवेश की क्या संभावनाएं हैं? इन सभी की जानकारी प्राप्त होनी चाहिए जिसके लिए निर्देशन आवश्यक है।

2. **व्यक्तिगत विकास संबंधी निर्देशात्मक आवश्यकताएं** : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यक्तिगत क्षेत्र में निर्देशन संबंधी आवश्यकताएं मुख्यतः सांवेगिक, शारीरिक और सामाजिक विकास से संबंधित होती हैं।

   यद्यपि छात्रों के लिए विद्यालयीय जीवन की किसी भी अवस्था में सांवेगिक समस्याएं प्रकट होती हैं। किंतु माध्यमिक अवस्था में शारीरिक परिपक्वता की गति, यौनिक इच्छाओं, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण जैसे कारणों से सांवेगिक समस्या की गंभीरता उत्पन्न होती है तथा इसी के परिणामस्वरूप असमायोजन एवं अप्रसन्नता में वृद्धि होती है। इसलिए इन सभी विद्यार्थियों को सांवेगिक विकास की दिशा में निर्देशन कार्य के माध्यम से सहयोग की आवश्यकता होती है।

**टिप्पणी**

किशोर छात्रों की समायोजन संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है जैसे– तेज गति से शारीरिक परिवर्तन, विभिन्न अंगों में परिवर्तन, थकान एवं तन्द्रा जो दैहिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती है। अतः इस विषय में सूचना एवं निर्देशात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है।

इस समय किशोर विद्यार्थियों की सामाजिक क्रियाशीलता अत्यंत विस्तृत हो जाती है। विद्यालय प्रांगण के अंदर अध्यापक, पुस्तकाल और प्रयोगशाला कर्मचारी, सहपाठी विपरीत लिंगी किशोर तथा विद्यालय के बाहर खेलकूद क्लब और अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों के साथ सामाजिक संपर्क बनता है।

इस प्रकार इस समय प्राप्त होने वाला सहयोग मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में संकटों से बचाव करने में सहायक सिद्ध होता है और उचित प्रकार की समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओं के अधिगम द्वारा व्यावसायिक जीवन के क्षेत्र में सफलता संतुष्टि और समायोजन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होता है।

3. **विद्यार्थी को विद्यालयों के क्रियाकलापों एवं विद्यालयों के क्षेत्रों का परिचय** : प्रारंभ में जब विद्यार्थी नए विद्यालयों में प्रवेश लेता है तो उसे प्रवेश से संबंधित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, साथ ही साथ उसे नए–नए साथियों के बीच एवं अध्यापकों के बीच भी समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। उस छात्र के लिए विद्यालय का वातावरण तथा पाठ्यक्रम भी नया होता है। इन सबसे परिचित होने के लिए विद्यार्थी को कुछ प्रारंभिक परिचय की आवश्यकता होती हे जो उसे निर्देशन सेवा के द्वारा प्राप्त होती है और वह उनसे परिचित हो जाता है।

4. **पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप** : बच्चों के समुचित विकास के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का महत्व बहुत अधिक है। वाद–विवाद छात्र क्लब, विद्यार्थियों को सामाजिक सेवाओं आदि के लिए प्रेरित करना एवं उसके आयोजन में तथा आवश्यकतानुसार उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करने का कार्य निर्देशन सेवा का है।

5. **विद्यार्थियों की प्रगति का व्यक्तिगत लेखा–जोखा रखना** : निर्देशन सेवा के कर्मचारियों एवं परामर्शदाआताओं का कर्तव्य है कि वे विभिन्न विषयों में तथा विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों की प्रगति का लेखा–जोखा रखें जिससे उनके शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक निर्देशन में सुविधा हो सके।

6. **विद्यालय में घर के सदस्यों से विद्यार्थी निर्देशन में सहायता प्राप्त करना** : परामर्शदाता अपने कार्य में तभी सफल हो सकता है जब वह विद्यार्थी के विद्यालय एवं विद्यालय से बाहर सभी क्रियाकलापों से परिचित रहे। माध्यमिक स्तर पर विद्यालय की निर्देशन सेवा का कर्तव्य है कि वह घर के सदस्यों का सहयोग निर्देशन कार्यों से प्राप्त करें तथा विद्यालय और पारिवारिक लोगों को इसकी आवश्यकता के प्रति जागरूक करें।

7. **अध्यापन एवं निर्देशन सेवा के कार्यकताओं में आपसी सहयोग :** माध्यमिक स्तर पर ही क्या सभी स्तरों पर अध्यापक एवं परामर्शदाता का सहयोग बालक की समस्याओं में समुचित निर्देशन के लिए आवश्यक है। माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थी के व्यावसायिक लक्ष्यों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है ताकि उसका पूर्ण विकास हो सके।

   माध्यमिक स्तर पर निर्देशन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी स्तर पर किशोरवस्था अथवा युवा वर्ग अपने भावी जीवन के लक्ष्य का निर्धारण करते हैं। बड़े होकर उन्हें क्या करना है और क्या बनना है, इसकी रूपरेखा माध्यमिक स्तर पर उचित निर्देशन के द्वारा ही सही रूप से निर्धारित हो पाती है।

## माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी को शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से अधोवर्णित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विद्यार्थी को सहायता दी जाती है जिससे उसका पूर्णतः विकास हो सके।

1. विद्यार्थियों को अपनी क्षमताओं और विशेषताओं, बुद्धि, रुचि, अभिप्रेरणा, अभिक्षमता, अभिवृत्तियों एवं नेतृत्व की क्षमता के मूल्यांकन के लिए सहायता देना।
2. विद्यालयों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में उपलब्ध विविध प्रकार की पाठ्यक्रम संबंधी जानकारी उपलब्ध कराना।
3. विद्यार्थी की क्षमताओं एवं विशेषताओं के आधार पर यह निर्धारित करना कि कौन–सी संस्था और कौन–सा पाठ्यक्रम उसके लिए उपयुक्त होगा।
4. अच्छी अध्ययन शैली एवं अध्ययन आदतों के विकास में सहायता देना जिससे विद्यार्थी को वर्तमान पाठ्यक्रम में सफलता की प्राप्ति हो।
5. विद्यालय की भौतिक संरचना, कक्षा और उसके बाहर के विद्यालयी परिवेश तथा पाठ्यक्रम के साथ समायोजित होने में सहायता करना।
6. पाठ्यक्रम के अतिरिक्त विद्यार्थी को अन्य अधिगम क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने के लिए उस दिशा में विद्यार्थी को सक्रिय करना।
7. अध्ययन के अगले चरणों के लिए पाठ्यक्रमों की उपयुक्तता की जांच परख करना और उसे विद्यार्थी के लिए संभव बनाने हेतु ट्राई–आउट कोर्स के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने में सहायता देना।
8. हाई स्कूल के पश्चात् यदि विद्यार्थी इण्टरमीडिएट कक्षा के लिए दूसरे विद्यालय में जाना चाहता है तो विद्यालय के बारे में उचित एवं सही सूचना संकलित करने में सहायता देना।
9. हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट के पश्चात् कठिन प्रवेशों को सरल बनाने के लिए किसी अच्छे कोचिंग इंस्टीट्यूट के बारे में सहज सूचना प्राप्त करने में मदद करना।

## III. विश्वविद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रम

विगत कुछ दशकों में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्यों में कुछ व्यापक परिवर्तन घटित हुए हैं। जनसंख्या वृद्धि निरंतर हो ही रही है। उद्योग जगत में स्वचालित मशीनों और कम्प्यूटरों का उपयोग भी निरंतर हो ही रहा है जिससे रोजगार के अवसरों में कमी आई है। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा तथा मांग में कमी आने के कारण उद्योग जगत अपने लाभ बरकरार रखने के लिए कर्मचारियों को कार्य से मुक्त कर रही है। विकास दर में कमी आ रही है, अभीष्ट आर्थिक विकास दर प्राप्त नहीं हो पा रहा है और रोजगार के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभवों की मांग की जा रही है। जिसके कारण आर्थिक, औद्योगिक एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भूमंडलीकरण का प्रभाव दिखाई दे रहा है।

जब कि आज के इस आधुनिक समय में जहां स्नातक और स्नातकोत्तर उपाधि प्रदान करने वाले महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में अध्ययनरत छात्रों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जिसके कारण विद्यार्थियों के सामने शैक्षिक, व्यावसायिक, समायोजनात्मक और अन्य प्रकार के संकट विकराल रूप में विद्यमान हैं।

इस प्रकार से उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों की संख्या तथा ऐसी शिक्षा प्रदान कर रहे संस्थानों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है और शिक्षा के स्वरूप में भी बदलाव आया है। शिक्षा के क्षेत्रों में भी विशेषज्ञता और विशिष्टता की मांग बढ़ रही है जैसे– अभियांत्रिकी, स्वास्थ्य शिक्षा, कम्प्यूटर जर्नलिज्म, फैशन टेक्नोलॉजी, बायोटेक्नोलॉजी, प्रबंधन और अनेक प्रोफेशनल पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने की इच्छा अधिकतम विद्यार्थियों में होती है। जिस कारण से आरंभिक युवावस्था वाले विद्यार्थी अपने करियर के लिए चिंतित देखे जाते हैं। इसलिए कॉलेज/विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षण संस्थानों में ऐसे निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता होती है जो विद्यार्थियों को उनके अध्ययन काल में शैक्षिक, व्यावसायिक, समायोजनात्मक एवं उपव्यावसायिक समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार से उच्च शिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की विशेषताएं इस प्रकार से हैं–

### उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विशेषताएं

उच्च शिक्षण संस्थाओं–महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आवश्यकता उनकी आयु तथा उनके विकासात्मक अवस्था और शिक्षा से ही जुड़ी हुई होती है। इन संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थी उत्तर किशोरावस्था (Late Adolescence) तथा आरंभिक युवावस्था (Early Adulthood) की उम्र में होते हैं। इनमें कुछ प्रमुख विशेषताएं होती हैं जो इस प्रकार से हैं–

1. इस अवस्था के विद्यार्थियों में सांवेगिक अस्थिरता के स्थान पर सांवेगिक स्थिरता पाई जाती है, इनकी रुचियों, जीवन के लक्ष्यों, करियर के संबंध, मैत्री विषयक सूचियों इन सभी अनुक्रमों में एक स्थिरता आ चुकी होती है।
2. इस समय के आरंभिक युवाओं में पहले की तुलना में बेहतर जीवन समायोजन पाया जाता है।

3. माता–पिता के दबावों से अलग हटकर अपने निर्णयों के बारे में स्वतंत्र रूप से विकल्पों को चुनने की क्षमता बढ़ जाती है।
4. इस समय के विद्यार्थियों की प्रमुख समस्याएं व्यक्तिगत आकर्षण, सामाजिक एवं पारिवारिक समायोजन, शैक्षिक सफलता एवं यौनिक संबंधों के बारे में होती है लेकिन ज्यादातर विद्यार्थी इन समस्याओं के समाधान के तरीके सफलतापूर्वक सीख लेते हैं।
5. इस आयु के विद्यार्थियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित होने लगता है।
6. किशोर विद्यार्थियों की तुलना में उत्तरोत्तर इस आयु के युवा विद्यार्थियों का समायोजन ज्यादा बेहतर हो जाता है।
7. इस समय के विद्यार्थी अपने मित्रों का चयन करने में अपने मित्रों की संख्या बढ़ाने की बजाय अपने मित्रों की गुणवत्ता पर अधिक बल देते हैं और गिने–चुने अच्छे मित्रों का चयन करते हैं।
8. इस समय के विद्यार्थी बुद्धि के प्रयोग वाले मनोरंजन के साधन पर जोर देते हैं जैसे– ताश, शतरंज और क्विज आदि। लेकिन इस उम्र में पर्यटन और अन्वेशी दौरे भी आकर्षित करने लगते हैं।
9. इस समय युवाओं में संगीत, नृत्य, साहित्य और टेलिविजन इत्यादि के शौक भी होते हैं और इन सभी से सबंधित महत्वपूर्ण जानकारियों का संकलन भी होता है।
10. इस समय के उत्तर किशोरवय व्यक्तियों में तीन महत्वपूर्ण एवं व्यक्तिगत रुचियां पाई जाती हैं– (i) स्वरंग, (ii) स्वतंत्रता, (iii) जीवन वृत्ति।
11. इस समय के युवाओं का आत्म संप्रत्यय अपेक्षाकृत अधिक स्थाई होता है। इनमें आत्म–उत्साह का स्तर ऊंचा होता है एवं अनुपयुक्तता की अनुभूति कम होती है।
12. शिक्षा के उच्च स्तर पर होने के कारण इनमें रोजगार संबंधी चिंताएं प्रभावी होने लगती हैं।
13. इस समय के युवाओं को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय घटनाएं बहुत प्रभावित करती हैं।

## उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की आवश्यकताएं

निर्देशन संबंधी आवश्यकताएं इस समय के युवाओं को ज्यादा होती है इस निर्देशन क्षेत्रों के द्वारा उन्हें करियर संबंधी एवं व्यवसाय संबंधी जानकारी विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। इस समय के विद्यार्थियों की प्रमुख आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं–

1. **विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन संबंधी आवश्यकताएं** : उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली शिक्षण संस्थानों की समाज एवं उद्योग जगत में अपनी पृथक पहचान होती है। अधिक प्रतिष्ठित संस्थाओं में प्रवेश बहुत कठिन होता है जबकि कुछ अन्य संस्थानों में प्रशिक्षण की गुणवत्ता संदिग्ध होती है। इसी कारण विद्यार्थियों को शिक्षण संस्थानों के बारे में सही सूचना की आवश्यकता होती है।

जैसे एम.सी.ए., एम.बी.ए. इत्यादि। इन सभी के लिए उपर्युक्त संस्थाओं के चयन प्रवेश प्रणाली, शुल्क संरचना तथा अन्य शर्तों के बारे में सूचना की आवश्यकता होती है।

**टिप्पणी**

इन पाठ्यक्रमों के अंतर्गत ही अनेक प्रकार की विशिष्टताओं (स्पेशलाइजेशन) की भी आवश्यकता होती है। ऐसे विकल्पों के बारे में जानकारी के लिए भी विद्यार्थियों में निर्देशन की आवश्यकता बनी रहती है।

उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले अच्छे संस्थानों की संरचना व्यापक एवं जटिल होती है। विद्यार्थियों को भौतिक संरचना, उपलब्ध पाठ्यक्रमों, कार्यरत संकाय सदस्यों के बारे में एवं संस्था में प्राप्त सुविधाओं के बारे में जैसे– छात्रवृत्ति, चिकित्सा सहायता, पुस्तकालय सुविधा, निर्देशन सेवा, अनुशासन, स्थापना सेवा (प्लेसमेंट सर्विस) इनसे संबंधित जानकारियों की आवश्यकता होती है।

2. **समायोजन के क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकताएं** : इस समय के विद्यार्थियों के लिए संस्था की भौतिक संरचना और शैक्षिक परिवेश के सथ समायोजित होने के अतिरिक्त संस्था के सामाजिक परिवेश के साथ भी समायोजन स्थापित करना भी महत्वपूर्ण होता है। इस अवस्था के विद्यार्थियों के लिए कॉलेज, घर तथा समाज सभी जगहों पर अपनी स्वीकृति की आवश्यकता प्रबल होती है। यदि व्यक्ति को कहीं किसी परिवेश में स्वीकार नहीं किया जाता है तो समायोजनात्मक समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं। हरलॉक ने उत्तर किशोरवय एवं आरंभिक युवावस्था वाले लोगों में स्वीकृति अनुमोदन (Aproval), स्नेह (Affection) और उपलब्धि (Achievement) तीन आवश्यकताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। युवाओं की प्रसन्नता की मात्रा इन तीन आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा ही प्रभावित होती है।

3. **व्यावसायिक तैयारी संबंधी आवश्यकताएं** : शिक्षा के सर्वोच्च सोपानों पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए व्यवसाय हेतु तैयारी शिक्षा के अत्यंत महत्वपूर्ण सोपानों में से एक है क्योंकि इस समय के विद्यार्थी व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत होते हैं उन्हें भी रोजगार क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पहले अपने आप को तैयार करना पड़ता है। जबकि सामान्य पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को तो बहुत व्यापक तैयारियां करनी पड़ती हैं।

   इसलिए इस समय विद्यार्थियों को व्यवसाय एवं उद्योग जगत के बारे में यह जानने की आवययकता पड़ती है कि किस प्रकार की विशेषता अथवा अतिरिक्त अध्ययन एवं प्रशिक्षण की मांग इस समय की जा रही है। इस सबके अतिरिक्त विद्यार्थियों को कार्य संबंधी अनुभव की भी आवश्यकता होती है जिससे कि विभिन्न प्रकार के कार्यस्थलों में से किसी भी क्षेत्र में प्रविष्ठ होने से पूर्व उचित दृष्टिकोण का विकास किया जा सके।

   छात्र–छात्राओं के लिए देश में फैली हुई इकाइयों के साथ संपर्क स्थापित करना कठिन होता है। अतः उनको सुविधा के लिए ये आवश्यक हो जाता है कि ऐसे संभावित क्षेत्रों के साथ उनका संपर्क स्थापित कराया जाए जहां उन्हें रोजगार

के अवसर प्राप्त हो सकें। लेकिन आज के इस आधुनिक युग में कई तरह की संस्थाएं– ये कार्य बड़ी ही तल्लीनता के साथ कर रही हैं जिससे युवाओं को किसी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है। समाचार–पत्र, रोजगार समाचार, नेट आदि ये सब युवाओं को उनकी मंजिल तक पहुंचाने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं।

## उच्च शिक्षण संस्थानों में निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य

उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों का प्रथम उद्देश्य होता है व्यावसायिक सफलता। उन विद्यार्थियों का और भी कुछ विशेष उद्देश्य होता है जिसका वर्णन यहां किया जा रहा है–

1. **संस्था के प्रति पूर्वाभिमुखीकरण कार्यक्रम** : पूर्वाभिमुखीकरण कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को संस्था की भौतिक, शैक्षिक और नैतिक संरचना से अवगत कराना होता है। विद्यार्थियों को संस्था में उपलब्ध सुविधाओं एवं सेवाओं का अधिकतम उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा संस्था की व्यवस्था संरचना में विद्यार्थियों को समायोजित होने में सहयोग देना इन कार्यक्रम के निम्नांकित उद्देश्य हैं–

   (i) संस्था में उपलब्ध पुस्तकालय, प्रयोगशाला, उपचार केंद्र, क्रीड़ा क्षेत्र इत्यादि के बारे में विद्यार्थियों को अवगत कराना।

   (ii) संस्था में कार्यरत शिक्षण संकाय की विशेषताओं के बारे में विद्यार्थियों को बताना जिससे कि छात्र उन शिक्षण संसथानों के बारे में जान सकें।

   (iii) शुल्क मुक्ति, छात्रवृत्ति इत्यादि के बारे में छात्रों को बताना।

   (iv) संस्था के नियमों, उपनियमों और संगठनात्मक संरचना के बारे में विद्यार्थियों को जानकारी देना।

   (v) संस्था के अंदर प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु विशेष पाठ्यक्रम, विशेष पत्राचार इत्यादि के बारे में जानकारी देना।

   (vi) संस्था की परंपराओं, संपन्न होने वाले प्रमुख समारोहों, सम्मेलनों, अपेक्षाओं आदि के बारे में भी विद्यार्थी को सूचित करना।

2. **सतत् मूल्यांकन कार्यक्रम** : यह अपेक्षा की जाती है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के माध्यम से छात्रों को अपनी बुद्धि, अभिक्षमता, रुचियों, अभिवृत्तियों, योग्यता और कमियों की जानकारी प्राप्त हुई होगी किंतु इससे पहले उक्त सेवाएं विद्यार्थियों को अनिवार्यतः प्राप्त हुई हों यह कोई आवश्यक नहीं है। जिन छात्रों को पहले मूल्यांकन सेवा का लाभ प्राप्त हुआ हो उनके लिए सतत् मूल्यांकन की आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। संक्षेप में यह कि छात्र संबंधी अभिलेख संचयी के आधार पर तैयार किया जाता है। इन अभिलेखों में एक छात्र के अभिज्ञान, योग्यताओं, सीमाओं, कॉलेज के अंदर तथा

**टिप्पणी**

कॉलेज के बाहर की सांवेगिक एवं सामाजिक शैक्षिक एवं सह–शैक्षिक प्रगति, स्वास्थ्य शौक जैसे विवरण सतत् अभिलेख में होने चाहिए।

3. **व्यावसायिक पूर्वाभिमुखीकरण** : इस कार्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों को व्यावसायिक विकल्पों को चुनने एवं पसंद के रोजगार के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता देना है। इन सभी के प्रशिक्षण आदि के बारे में योजना बनाने में भी सहयोग देने की आवश्यकता है इसके अंतर्गत निम्न उद्देश्य होते हैं जो इस प्रकार हैं–

   (i) उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्र में हो रही घटनाओं तथा उपलब्ध अवसरों के बारे में जानकारी देना।

   (ii) विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक योग्यता और क्षमता के विवरण के अनुसार जानकारी देना।

   (iii) विद्यार्थियों को यह निर्धारित करने में सहयोग देना कि उसे किस व्यवसाय को चुनना चाहिए। इसके लिए उसकी मदद करना कि उन व्यवसायों को प्राप्त करने हेतु उसे क्या तैयारियां करनी होंगी।

   (iv) व्यावसायिक सूचना के लिए विद्यालयों में सूचना बोर्ड की व्यवस्था कराना जहां से ये सूचनाएं विद्यार्थियों को आसानी से उपलब्ध हो सकें।

   (v) व्यवसाय जगत के बारे में उद्यमियों, अधिकारियों और अन्य महत्वपूर्ण अनुभवी व्यक्तियों की वार्ताओं का आयोजन करवाना जिससे विद्यार्थी उस दिशा की ओर उत्साहित होकर अग्रसर हो सकें।

   (vi) करियर सम्मेलनों का आयोजन करवाना जहां एक ही सम्मेलन स्थल पर विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ क्षेत्र विशेष में अपने अनुभवों से विद्यार्थियों को परिचित कराएं जिससे छात्र लाभान्वित हो सकें।

   (vii) व्यावसायिक सूचनाओं के सम्प्रेषण के लिए चलचित्रों एवं स्लाइड जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग करना।

   (viii) औद्योगिक इकाइयों, वाणिज्यिक इकाइयों तथा अन्य कार्यस्थलों के लिए विद्यार्थियों के टूर का आयोजन करवाना जिससे कि विद्यार्थियों को कार्य करने की दशाओं के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हो सके।

4. **सामाजिक निर्देशन कार्यक्रम** : युवाओं को शिक्षा ग्रहण करते समय भी और ग्रहण करने के पश्चात् भी अनिवार्यतः सभी लोगों में सामाजिक दक्षता की आवश्यकता होती है। निर्देशन कार्यक्रम के माध्यम से अच्छे गुणों के विकास का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक निर्देशन कार्यक्रम के द्वारा विद्यार्थी इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की चेष्टा में भी सहयोग देता है। साथ ही–

   (i) विद्यार्थियों में परोपकारी अभिवृत्तियों का निर्माण हो इस हेतु भी सही मार्गदर्शन दिया जाता है।

(ii) सहयोग की अभिवृत्ति विकसित करने में भी सहायता दी जाती है।

(iii) समाज का जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए भी सहयोग प्रदान किया जाता है।

(iv) कार्य किसी भी प्रकार का हो, उसे निष्ठा लग्न एवं जिम्मेदारी के साथ निभाया जाए यह अभिवृत्ति विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

(v) अच्छी आदतों शिष्टाचार एवं संतुलन का विकास किया जाता है।

5. **कार्य स्थापन सेवा :** शिक्षा के उच्च संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए कार्य स्थापन सेवा अत्यंत अपरिहार्य सेवा है। इसीलिए विद्यार्थी उन संस्थानों में प्रवेश लेना ज्यादा पसंद करते हैं जहां ऐसी सेवाएं उपलब्ध होती हैं। इस कार्यक्रम के संचालन हेतु उपाय निम्न प्रकार से हैं–

(i) उद्योग जगत के साथ संस्था के अच्छे संबंध स्थापित करने पड़ते हैं क्योंकि संस्था में अध्ययनरत विद्यार्थियों के स्तर, उनके अध्ययन स्तर, प्रशिक्षण की संपूर्ण गुणवत्ता आदि की सूचना देकर संस्थान उन इकाइयों को आमंत्रित करता है जहां विद्यार्थियों के लिए उचित रोजगार उपलब्ध है।

(ii) इन आयोजनों के साथ विद्यार्थियों के साक्षात्कार का आयोजन कराना तथा विद्यार्थियों को सेवा के अवसर सुनिश्चित करने में सहायता देना।

(iii) सेवायोजन कार्यालयों के साथ सहयोग स्थापित करना जिससे छात्रों के विकास में मदद हो सके।

(iv) अध्ययन करते समय विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट आवंटित करके उन्हें कार्य अनुभव अर्जित करने में सहायता प्रदान करना।

(v) प्रोजेक्ट कार्यों द्वारा छात्रों के उच्च से उच्चतम विकास में मदद करना।

इस प्रकार इन तथ्यों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों एवं कॉलेज और विश्वविद्यालयों के स्तर पर निर्देशन के स्वरूप में बहुत अधिक अंतर तो नहीं होता है, फिर भी उच्चतम स्तरों पर इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है और उन्हें अपने अधिकतम विकास के लिए निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है जिससे वो अपने भविष्य में लक्ष्य के उद्देश्य को पाने में सफल हो सकें और उनका विकास हो सके।

### 1.3.3 व्यक्तिगत मार्गदर्शन कार्यक्रम

पिछली एक सदी में शिक्षा के क्षेत्र में जितने प्रयोग हुए हैं उतने शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में हुए हों। इसी कारण विद्यालयों के स्वरूप एवं उनके उत्तरदायित्वों में समय के साथ–साथ अब काफी अंतर आ चुका है। स्थिति यह है कि विद्यालय का काम अब छात्रों के ज्ञान में बढ़ोत्तरी तक ही सीमित नहीं रह गया है। विद्यालयों ने अपने उत्तरदायित्व की सीमा में छात्र के संपूर्ण व्यक्तित्व से लेकर वर्तमान व भविष्य तक को समेट लिया है। एक छात्र आगे चलकर किस तरह देश और समाज में अपनी भूमिका

**टिप्पणी**

अदा करेगा, वह किस तरह अपने व्यक्तित्व को निर्मित करेगा, वह किन–किन उत्तरदायित्वों का निर्वहन करेगा और किस सीमा तक करेगा, ये सभी पक्ष अब विद्यालय के ऊपर निर्भर करने लगे हैं। जाहिर है विद्यालय या महाविद्यालय अब ज्ञान बांटने भर के स्थान नहीं रह गए हैं बल्कि यहां छात्र के व्यक्तित्व का संपूर्ण शिल्प तैयार किया जाता है।

इन्हीं कारणों से विद्यालयों में निर्देशन सेवा का महत्व अब काफी बढ़ गया है और इसने काफी जटिल रूप धारण कर लिया है। विद्यालय में प्रधानाचार्य से लेकर शिक्षकों तक सभी की भूमिका महत्वपूर्ण हो चली है। विद्यालयों में अब मनोवैज्ञानिकों की उपस्थिति आरंभ हो चुकी है, जो छात्र और शिक्षक दोनों के मानसिक व बौद्धिक धरातल की खोज पड़ताल में सक्रिय रूप से संलग्न रहते हुए उन्हें अपनी मदद उपलब्ध कराते हैं।

इतना ही नहीं, विद्यालयों ने यह भी समझ लिया है कि अभिभावकों को विद्यालय प्रांगण के भीतर समय–समय पर अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज करानी होगी ताकि शिक्षक व अभिभावक मिलकर छात्रों के व्यक्तित्व व भविष्य निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सफलतापूर्वक निभा सकें। विद्यालयों में निर्देशन सेवा संगठनों की आवश्यकता, सिद्धांतों, चरणों और विश्वविद्यालयों आदि में निर्देशन का अध्ययन किया जा रहा है।

मार्गदर्शन आमतौर पर एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है, चाहे वह शैक्षिक हो या व्यावसायिक मार्गदर्शन। मूल रूप से मार्गदर्शन एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है। इसलिए, 'व्यक्तिगत मार्गदर्शन' शब्द छात्रों के लिए बहुत भ्रमित करने वाला है। लेस्टर डी। क्रो और एलिस क्रो ने इस शब्द को अधिक स्पष्ट रूप से समझाने की कोशिश की है।

''सही ढंग से व्याख्या की गई 'व्यक्तिगत मार्गदर्शन' का अर्थ किसी व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यवहार और व्यवहार के विकास में बेहतर समायोजन की दिशा में मदद करना है।''

व्यक्तिगत मार्गदर्शन का क्षेत्र व्यक्तिगत समायोजन है। व्यक्तिगत मार्गदर्शन जीवन स्थितियों में 'आत्म–अवधारणा' और व्यक्तिगत समायोजन को विकसित करने में मदद करता है, शिक्षा या व्यवसाय या जीवन की स्थिति के किसी अन्य क्षेत्र से संबंधित हो सकता है। एक व्यक्ति का व्यक्तिगत समायोजन भी शिक्षा और व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करता है। यह एक व्यक्ति का स्वास्थ्य, सामाजिक, भावनात्मक या मानसिक क्षेत्रों में कुप्रबंधन है।

यह उनके अध्ययन और उनके व्यवसाय में दक्षता पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। जीवन साथी की व्यक्तिगत समस्याओं–पसंद, दोस्तों की पसंद, अवकाश समय गतिविधि, और संगठन के संबंध स्थापित करने, खेल और खेल आदि के चयन के लिए उपाय या समाध ाान प्राप्त करना अधिक कठिन है। किशोरावस्था की समस्याओं के लिए व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है । किसी व्यक्ति की समायोजन समस्याओं के लिए व्यक्तिगत मार्गदर्शन आवश्यक है।

**टिप्पणी**

व्यक्तिगत मार्गदर्शन की जरूरतों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया गया हैः

1. यह व्यक्तिगत समायोजन के लिए आवश्यक है।
2. यह व्यक्तिगत क्षमता विकसित करने के लिए आवश्यक है।
3. यह पारस्परिक तनावों और संघर्षों से बचने के लिए आवश्यक है।
4. इसका उपयोग पारिवारिक जीवन और व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन के बीच सामंजस्यपूर्ण वातावरण स्थापित करने के लिए किया जाता है।
5. आपातकालीन और सामान्य स्थितियों के दौरान आवश्यक धैर्य और शिष्टता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है।
6. यह व्यक्तिगत मामलों या व्यक्तिगत समस्याओं के संबंध में निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है।
7. यह व्यक्ति के जीवन में सुख, शांति और संतुष्टि की भावना लाता है।

   व्यक्तिगत मार्गदर्शन जीवन, स्वास्थ्य, सामाजिक, भावनात्मक और मानसिक क्षेत्रों में उत्कृष्टता, संतुष्टि, शांति और समायोजन लाने के लिए जीवन के विभिन्न पहलुओं या क्षेत्रों से संबंधित है। यह व्यक्ति में आत्मविश्वास विकसित करने में मदद करता है।

### व्यक्तिगत मार्गदर्शन के उद्देश्यः

व्यक्तिगत मार्गदर्शन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैंः

1. किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं की समझ का विश्लेषण करने में व्यक्ति की मदद करना।
2. अपने वातावरण और संभावनाओं के ऊपर संवेदनशील बनाने के लिए निष्पक्ष रूप से।
3. समाज में परिवार, स्कूल, व्यवसाय और समायोजन से संबंधित अपनी समस्याओं को हल करने के लिए व्यक्ति की सहायता करना।
4. किसी व्यक्ति की समायोजन क्षमता बढ़ाने के लिए।
5. व्यक्तिगत जटिलता और समाधान बोलने के कारणों को समझने के लिए।
6. अपने परिवार के सदस्यों के रिश्तेदारों के साथ अच्छे संबंध विकसित करने में मदद करने के लिए उनके साथ दुर्व्यवहार करना और उनकी भूमिका को बेहतर तरीके से निभाना है।
7. विभिन्न जीवन स्थितियों में समझ और अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए ताकि वह नई स्थितियों में उत्कृष्टता और समायोजन ला सके।

## व्यक्तिगत मार्गदर्शन की प्रक्रियाः

यह एक व्यक्तिगत मार्गदर्शन है और आवश्यकता–आधारित भी है। व्यक्तिगत मार्गदर्शन के लिए निम्न चरणों का उपयोग किया जाता है:

1. पहला कदम व्यक्ति के साथ तालमेल स्थापित करना है ताकि वह अपनी समस्या को खुलकर व्यक्त कर सके।
2. विश्वसनीय और वैध उपकरण और तकनीकों को नियुक्त करके व्यक्ति की रुचि, व्यक्तित्व विशेषताओं और कुप्रबंधन के क्षेत्र के बारे में जानकारी एकत्र की जाती है।
3. विश्लेषण उसकी जरूरतों और उसकी समस्याओं के लिए किया जाता है। प्रोजेक्टिव तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो कुछ शारीरिक परीक्षण किया जा सकता है।
4. विश्लेषण व्यक्ति को उसकी समस्या को हल करने में मदद करने के लिए मार्गदर्शन या परामर्श देने के लिए मूल प्रदान करता है।
5. मार्गदर्शन या परामर्श प्राप्त करने के लिए निर्णय लेने के लिए व्यक्ति को जागरूकता दी जाती है।
6. समस्याओं का कभी–कभी सम्मेलन तकनीक का उपयोग करके व्यक्ति के साथ चर्चा की जाती है।
7. व्यक्ति की मदद के लिए व्यक्ति की समस्या को विशेषज्ञों की एक टीम की आवश्यकता हो सकती है।
8. अनुवर्ती मार्गदर्शन के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए व्यक्तिगत मार्गदर्शन का अंतिम चरण है।

   व्यक्तिगत मार्गदर्शन का मुख्य उद्देश्य नैदानिक और उपचार है, इसलिए, व्यक्तिगत मार्गदर्शन में अनुवर्ती आवश्यक कदम है

## निर्देशन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में समुदाय की भूमिका

निर्देशन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में विद्यालय परिवेश से बाहर भी जरूरतमंद युवकों के हितों के लिए सामुदायिक संस्थाओं की भूमिका जरूरी है। इन संस्थाओं की भागीदारी से अनेक युवकों का जीवन सफल हो पाता है।

आज के इस निर्देशन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सभी समुदायों में अनेक संस्थायें युवकों और जरूरतमंद लोगों के कल्याण हेतु अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का संचालन करती हैं। आज के इस आधुनिक युग में उद्योग जगत और उनसे संबंधित संगठन बच्चों, युवकों और विकलांग व्यक्तियों के व्यावसायिक स्थापना (Vocational-Placement) तथा व्यावसायिक पुनर्वास (Vocational Rehabilitation) के लिए अपना योगदान देते हैं। शासकीय सहयोग से स्थापित अनेक प्रकार की कल्याणकारी संस्थाएं इन क्षेत्रों में कार्य करती है इसलिए कुछ विद्यालयों का संचालन भी सामुदायिक कल्याणकारी संस्थाओं के

**टिप्पणी**

द्वारा किया जाता है। इन विद्यालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी इन्हीं सामुदायिक संस्थाओं द्वारा की जाती है। इसलिए परिवार–विद्यालय–समुदाय के मध्य निर्देशन कार्यान्वयन हेतु सहयोग एवं सहकार अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। यदि हम सामुदायिक स्तर पर बच्चों और युवकों में विकसित होने वाली समायोजनात्मक समस्याओं के बचाव के लिए हस्तक्षेप नहीं करते हैं तो बालकों और युवकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास का कार्य अधूरा रह जाता है जिससे विद्यालय के स्तर पर किए गए निर्देशन कार्य का प्रभाव निरोधक या उपचारात्मक होने के स्थान पर मात्र प्रशामक रह जाता है। इसलिए निर्देशन कार्यक्रमों के द्वारा सामुदायिक सहयोग एवं भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न एवं प्रयास किए जाने चाहिए। इस प्रकार से सामुदायिक संस्थाओं की प्रमुख भूमिकाएं निम्नवत हैं–

1. समाज में उपलब्ध शैक्षिक, सामुदायिक, आर्थिक, मनोरंजनात्मक एवं अन्य अवसरों के बारे में सूचना उपलब्ध कराना।
2. युवकों और अन्य वर्गों के व्यक्तियों को उपलब्ध अवसरों का यथासम्भव उपयोग करने हेतु सहायता प्रदान करना जिससे वो उनका लाभ उठा सकें।
3. मानसिक एवं शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध कराना और उन्हें उनकी जानकारी प्राप्त करवाना।
4. सांवेगिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों के माध्यम से विशेषज्ञ सेवाओं को उपलब्ध कराना।
5. जरूरतमंद लोगों के लिए उपयुक्त व्यावसायिक अवसरों की तलाश करना।
6. पारिवारिक, व्यावसायिक, वैवाहिक एवं सामाजिक इन सभी में समायोजन स्थापित करने हेतु सहयोग प्रदान करना।
7. विद्यालयों के निर्देशन कार्यक्रम के कार्यान्वयन हेतु सहायता प्रदान करना।
8. विद्यालयों में भौतिक संरचना की स्थापना हेतु भी सहायता प्रदान करना।
9. विद्यालयों तथा अन्य सामुदायिक संस्थाओं के बीच सहयोग की स्थापना करना
10. समाज के विभिन्न वर्गों के बालकों एवं युवकों की समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग प्रदान करना।
11. माता–पिता, अध्यापकों एवं सामुदायिक नेतृत्व के बीच सहयोग का विकास करना ताकि पारस्परिक सहयोग से विकास सम्भव हो।
12. व्यावसायिक सेवा केन्द्रों की स्थापना करना।
13. व्यावसायिक पुनर्वास की व्यवस्था करना।
14. निर्देशन कार्यक्रम प्रदान करने वाली संस्थाओं की निर्देशिका (Directory) तैयार करना जिससे जरूरतमंद अभिभावक एवं वयस्क उनकी सेवाओं का लाभ उठा सकें।

**टिप्पणी**

इस प्रकार से स्पष्ट है कि मार्गदर्शीय कार्यक्रम के सही रूप के कार्यान्वयन हेतु मार्गदर्शककर्मी, विद्यालय तथा समुदाय के बीच सहयोग की आवश्यकता है जिससे इनका परस्पर संबंध बना रहे और एक–दूसरे के सहयोग से सभी प्रकार के व्यक्तियों और छात्रों का विकास हो सके। क्योंकि बालकों और वयस्कों को प्रत्यक्ष रूप में विभिन्न प्रकार की निर्देशन सेवाएं निर्देशन प्रदाताओं, माता–पिता, अध्यापक और परामर्शदाता द्वारा ही प्रदान की जाती है। लेकिन संसाधनों को संग्रहित करने और कार्यक्रम के संगठन हेतु विद्यालय और समुदाय का सक्रिय सहयोग वांछित है इसलिए सहयोग और सहकार हेतु सभी संबंधित व्यक्तियों और संस्थाओं के स्तर पर प्रयत्न किया जाना चाहिए।

## निर्देशन सेवाओं के संगठनात्मक सिद्धांत

निर्देशन जीवन के हर पक्ष के लिए आवश्यक है और ये विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण अंग है। निर्देशन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम सही ढंग से संगठित एवं प्रशासित हो और यह संगठन एवं प्रशासन कुछ मौलिक सिद्धांतों के अनुसार ही किया जाना चाहिए और ये सिद्धांत विद्यालय के स्वरूप के अनुरूप ही होने चाहिए तथा इन सिद्धांतों को निर्धारत करते समय बालकों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। वैसे तो निर्देशन का संबंध व्यक्ति की समग्रता के साथ होना चाहिए।

रेबर एरिक्सन एवं स्मिथ ने निर्देशन कार्यक्रमों के सभी संगठनात्मक प्रारूपों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है इन दोनों संगठनात्मक रूपों के बीच मौलिक अन्तर यही है कि एक प्रशासनिक नीति का निर्माण करता है तो दूसरे में नीति विषयक जिम्मेदारी होती है जो कर्मचारियों की एक समिति निर्देशन–समिति (Guidance Committee) के पास होती है और वह उन्हीं के अनुसार संचालित एवं संगठित होती है। इन दोनों ही संगठनात्मक स्वरूपों को निम्नवत् रेखाचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार से है–

## निर्देशन सेवाओं का संगठनात्मक स्वरूप

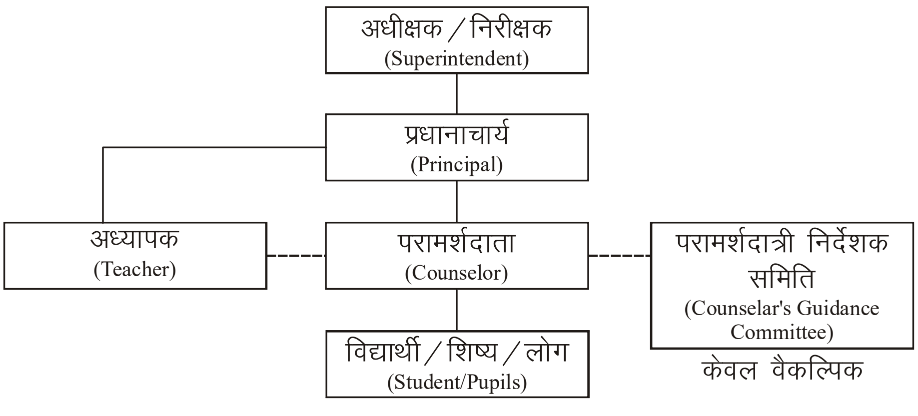


*चित्र प्रारूप - I*

## निर्देशन सेवाओं का संगठनात्मक स्वरूप

**टिप्पणी**

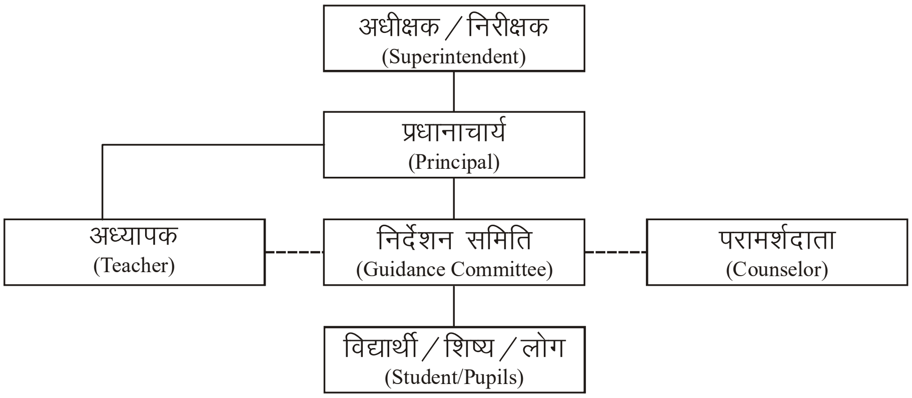


***चित्र** प्रारूप - II*

संकेत चिह्न —— – प्रशासनिक संबंध

------ – सहयोगात्मक संबंध

इन सभी अध्यायों हेतु रेखाचित्र–

प्रदर्शित किए गए रेखाचित्रों में विभिन्न विद्यालयों की परिस्थितियों के बाद अनुकूलन को में प्रदर्शित किया गया है। इससे पूर्व के दोनों संगठनात्मक स्वरूप का थोड़ा वर्णन वांछित है।

**प्रारूप - I संगठनात्मक स्वरूप में–**

1. इस रेखाचित्र में विद्यालय का प्रशासनिक अधिकारी प्रधानाचार्य निर्देशन के लिए निति निर्धारित करने की जिम्मेदारी ग्रहण करता है।
2. यहां परामर्शदात्री का संबंध एक ओर तो प्रशासनिक श्रेणी से होता है तो दूसरी ओर अध्यापकों और निर्देशन समिति के सहयोगात्मक श्रेणी से होता है।
3. निर्देशन नीति के नियमों को लागू करने की जिम्मेदारी परामर्शदाता की होती है जो अपने प्रशिक्षण के कारण उन नीतियों को कार्यान्वित करने हेतु समर्थ होता है। तथा
4. परामर्शदात्री जो निर्देशन समिति है वो उपयोगी हो सकती है परन्तु यह वैकल्पिक होती है।

**प्रारूप - II संगठनात्मक स्वरूप में–**

1. दूसरे रेखाचित्र में प्रधानाचार्य निर्देशन नीति निर्माण की जिम्मेदारी एक समिति को सौप देता है तथा उसके तैयार की गई नीति को सक्रिय समर्थन प्रदान करता है।
2. चूंकि निर्देशन समिति सहयोगात्मक नीति का निर्माण करती है इसलिए वो परामर्शदाता की भांति विद्यालय कर्मचारियों की श्रेणी में ही आती है।

**टिप्पणी**

3. नीति निर्देशन का कार्यान्वयन एक व्यक्ति परामर्शदाता के पास होता है किन्तु अध्यापकों की भूमिका का विस्तार हो जाता है। और वो एक दूसरे का सहयोग करते हैं।
4. निर्देशन समिति निर्देशन सेवाओं में रुचि रखने वाले लोगों के सम्पर्क से ही बनायी जाती है।
5. परामर्शदाता हमेशा ही निर्देशन समिति के सदस्यों की अभिवृत्तियों के प्रति संवेदनशील होता है।

प्रारूप I तथा प्रारूप II संगठनात्मक स्वरूप को छोटे विद्यालयों के अनुकूल रूपान्तर रेखाचित्र में प्रस्तुत किया गया है। इन रूपान्तरणों का मूल स्वरूप यह है कि जब छोटी संस्थाएं स्वतंत्र रूप में परामर्शदाता की सेवाएं प्राप्त करने में सक्षम न हो तब एक माध्यमिक विद्यालय का परामर्शदाता प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को सहयोग देकर निर्देशन के लक्ष्यों की प्राप्ति करवा सकता है।

## संगठनात्मक स्वरूप का छोटे विद्यालयों के अनुकूल रूपान्तरण

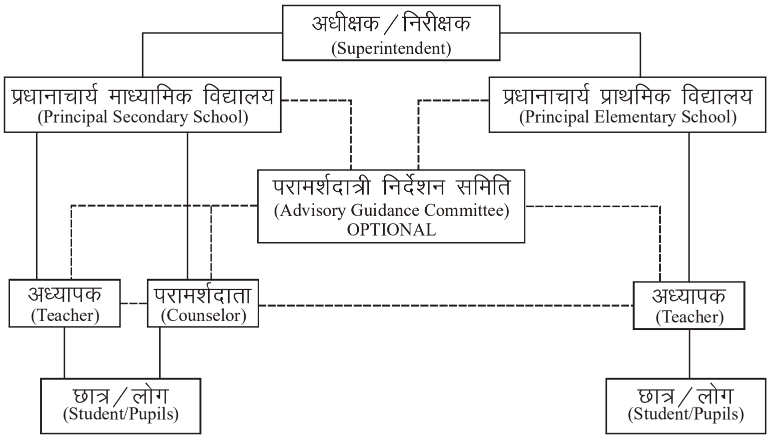


*चित्र प्रारूप - I*

टिप्पणी

## संगठनात्मक स्वरूप के छोटे विद्यालयों के अनुकूल रूपान्तरण

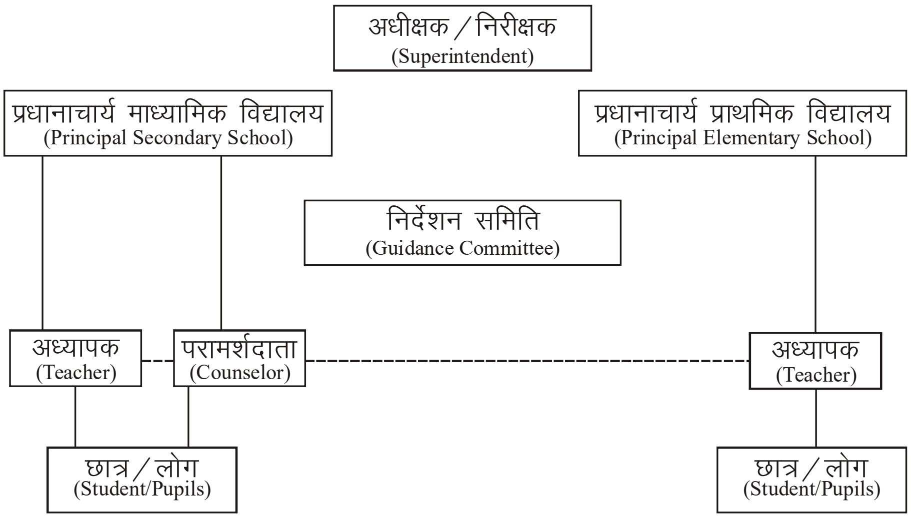


***चित्र*** *प्रारूप - II*

मध्यम आकार के विद्यालयों के लिए प्रारूप I और प्रारूप II संगठनात्मक स्वरूप में थोड़ा परिवर्तन ला सकते हैं। इनमें निर्देशन सेवाओं के लिए एक निर्देशक पद को भी रखा जाता है। टाइप II के संगठनात्मक स्वरूप में परामर्श समिति के अतिरिक्त एक निर्देशन परिषद या महासभा का भी प्रावधान रखा गया है ताकि प्रधानाचार्य और निर्देशन समिति दोनों के साथ सहयोगात्मक संबंध स्थापित हो सके। इन स्वरूपों का वर्णन रेखाचित्र के माध्यम से किया गया है। रेखाचित्र के प्रारूप I को देखकर यह स्पष्ट होता है कि मध्यम आकार के विद्यालयों में एक निर्देशन और एक वैकल्पिक परामर्शदात्री समिति होती है जिसके माध्यम से प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के मध्य संबंध स्थापित किया जाता है वहीं छोटे आकार के विद्यालयों की दशा में जहां प्राथमिक विद्यालय का अध्यापक माध्यमिक विद्यालय के परामर्शदाता से सहयोग प्राप्त करता है वही मध्यम आकार के विद्यालय की दशा में यह सहयोग निर्देशन सेवाओं के निर्देशन के माध्यम से प्राप्त होता है।

मध्यम आकार के विद्यालयों हेतु प्रारूप II संगठनात्मक प्रारूप का अनुकूल करते समय निर्देशक–निर्देशन सेवाएं, निर्देशन परिषद, निर्देशन समिति के रूप मे ंतीन अभिकर्ता/अभिकरण विद्यालय के प्रधानाचार्य, अध्यापक परामर्शदाता और छात्रों के सहयोग प्रदान करने का कार्य करते हैं जबकि प्राथमिक विद्यालय पूर्णकालिक परामर्शदाता की सेवाएं अर्जित नहीं कर सकता है इसलिए छात्रों को परामर्श देने के लिए कुछ योग्य सक्षम एवं इच्छुक व्यक्तियों की समिति का एक संगठन बनाया जाता है ताकि समय–समय पर आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों की समस्याओं के समाधान हेतु सहयोग प्रदान किया जा सके।

टिप्पणी

## संगठनात्मक स्वरूप मध्यम आकार के विद्यालयों के अनुरूप रूपान्तरण

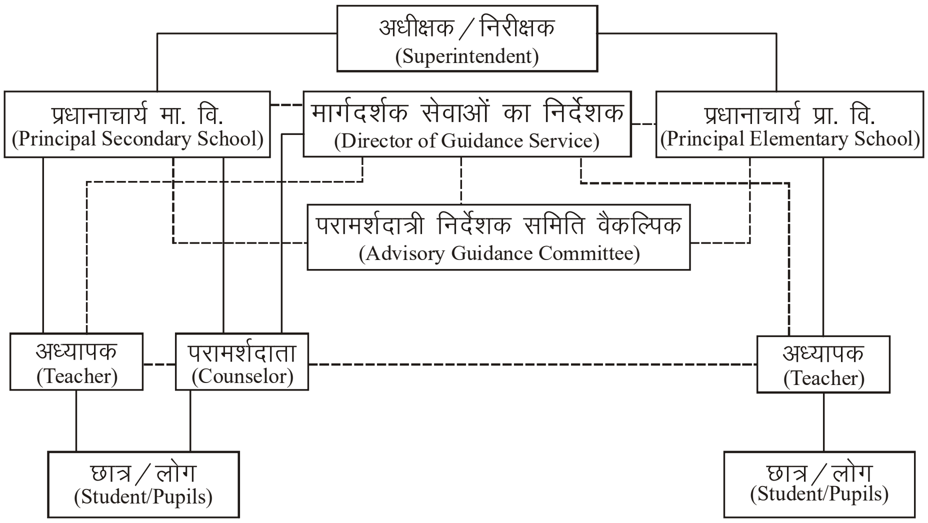


*चित्र प्रारूप - I*

## संगठनात्मक स्वरूप मध्यम आकार के विद्यालयों के अनुरूप रूपान्तरण

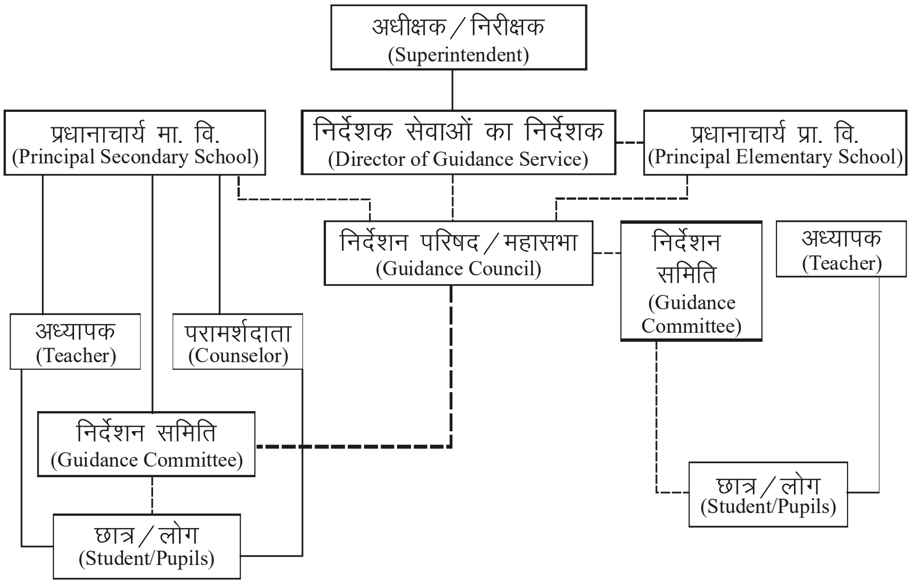


*चित्र प्रारूप - II*

टिप्पणी

### अपनी प्रगति जांचिए

9. विद्यालय में शैक्षिक निर्देशन का प्रमुख क्षेत्र है–
   (क) छात्रों की उत्तम स्वास्थ्य में सहायता
   (ख) अधिगम की कठिनाइयों में सहायता
   (ग) उपर्युक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
10. शिक्षण संस्थाओं में किस स्तर पर निर्देशन सेवाएं दी जाती हैं?
   (क) प्राथमिक विद्यालय स्तर (ख) माध्यमिक विद्यालय स्तर
   (ग) कॉलेज स्तर (घ) उपर्युक्त तीनों

## 1.4 निर्देशन और परामर्श : तकनीक और प्रक्रिया

निर्देशन आधुनिक युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसमें वृद्धि के साथ ही समाज के मूल्य तथा मान्यताओं में परिवर्तन होता है। आधुनिक युग में निर्देशन की तकनीक और प्रक्रिया पर बहुत जोर दिया जा रहा है। मानव सभ्यता का निरन्तर विकास होता जा रहा है। मौलिक प्रश्न यह है कि हमारी सभ्यता का निर्देशन कैसा है? निर्देशन सामाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं से संबंधित है। साथ ही यह विशेष उद्देश्यों से प्रेरित होता है। इससे ज्ञान की प्राप्ति मौलिक है तथा यह योजनाबद्ध तरीकों से सम्पादित कार्यों से ही संभव है।

परामर्श मुख्यतः एक घटक है जो अन्य घटक सेवाओं से पृथक रूप में सक्रिय नहीं होता है परामर्श में परामर्शदाता एक परामर्शप्रार्थी के साथ वार्ता में सम्मिलित होकर संयुक्त रूप से कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग देता है और परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के बारे में पूर्ण जानकारी लेता है और यह वो निर्धारित करता है कि वो उसे किस प्रकार सहायता पहुंचाए जो उसके लिए मददगार साबित हो। लेकिन परामर्शदाता अगर परामर्शप्रार्थी से पूर्ण वार्ता नहीं करता है तो परामर्शप्रार्थी की आवश्यकता को समझ नहीं पाता है जिससे उसके लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा पहुंचती है।

### 1.4.1 निर्देशन और परामर्श में प्रयुक्त तकनीक एवं प्रक्रियाएं

**मानकीकृत तकनीकें** : विभिन्न मानकीकृत तकनीकों (अर्थात– प्रवीणता, दृष्टिकोण, रुचि, उपलब्धि, व्यक्तित्व) का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता और उपयोग सेवार्थी के मनोवैज्ञानिक पक्ष का पर्याप्त बोध करने की दृष्टि से सूचनाएं प्राप्त करने की मानकीकृत तकनीकों का विशेष महत्व है। इन मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा सेवार्थी की बुद्धि, रुचि, अभिरुचि एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है। निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाने वाले इन परीक्षणों का उल्लेख निम्नलिखित है–

टिप्पणी

## बुद्धि परीक्षण

सेवार्थी की बुद्धिलब्धि को ज्ञात करने की दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों का विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने तथा भिन्न–भिन्न व्यवसायों में कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार की बौद्धिक क्षमता वाले सेवार्थियों की आवश्यकता होती है। डगलसू फ्रॉयर ने पांच प्रकार के ऐसे व्यावसायिक स्तरों का उल्लेख किया है जिनके लिए विशिष्ट प्रकार की बौद्धिक योग्यता अपेक्षित हैं। ये व्यावसायिक स्तर एवं इन स्तरों के लिए अपेक्षित बौद्धिक क्षमता निम्नलिखित हैं–

- वृत्तिक व्यवसाय स्तर– श्रेष्ठ बौद्धिक योग्यता।
- तकनीकी व्यवसाय स्तर– उच्च सामान्य बौद्धिक योग्यता।
- कुशल व्यवसाय स्तर– सामान्य बौद्धिक योग्यता।
- अर्द्ध–कुशल निम्न कुशल व्यवसाय स्तर– निम्न सामान्य बौद्धिक योग्यता
- अकुशल व्यवसाय स्तर– निम्न बौद्धिक योग्यता।

उपर्युक्त स्तरों के अतिरिक्त फ्रॉयर के द्वारा 96 ऐसे व्यवसायों की सूची भी प्रस्तुत की गई है जिनके लिए अपेक्षित बौद्धिक स्तरों को ज्ञात किया जा सकता है। अब तक विकसित किए गये अनेक बुद्धि परीक्षण इन बौद्धिक स्तरों को ज्ञात करने में सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार के कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षण निम्नलिखित हैं–

1. बिने परीक्षण,
2. वेश्लर–वैलेव्यू परीक्षण,
3. बर्ट का तर्क शक्ति परीक्षण,
4. मिनेसोटा पूर्ण विद्यालय परीक्षण,
5. कोहोडा बालक डिजाइन परीक्षण,
6. मेरिल–पामर मानसिक परीक्षण
7. जैसिल विकास अनुसूची,
8. आर्मी अल्फा परीक्षण,
9. आर्मी बीटा परीक्षण,
10. आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण,
11. टरमन ग्रुप टेस्ट ऑफ मेन्टल मैच्यूरिटी,
12. प्रयाग मेहता का सामान्य बुद्धि परीक्षण,
13. भाटिया बैटरी ऑफ फरफॉरमेन्स परीक्षण ऑफ इन्टेलिजेन्स इत्यादि।

विद्यालयी स्तर पर इन समस्त परीक्षणों का उपयोग पाठ्यक्रम, चयन हेतु सहायता प्रदान करने, छात्रों का वर्गीकरण करने, असामान्य छात्रों का पता लगाने, छात्रवृत्ति प्रदान करने, मन्द एवं प्रतिभाशाली छात्रों का पता लगाने आदि उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जा सकता है।

## अभिरुचि मापनी

अनेक व्यक्ति अपेक्षित योग्यता रखते हुए, रुचि के अभाव में चयनित पाठ्यक्रम का अधिगम एवं उपलब्धि करने में असफल हो जाते हैं। इसी प्रकार अरुचिप्रद व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति भी अपनी कार्यक्षमता का वांछित उपयोग करने में सफल नहीं हो पाते हैं। वस्तुतः रुचि ही वह कारक है जो किसी कार्य को पूर्ण क्षमता से करने की दिशा में प्रेरित करती हैं। रुचि उत्पन्न होने की स्थिति में ही नीरस से नीरस अथवा जटिल कार्य भी सरल एवं सहज ढंग से किया जा सकता है। अतः निर्देशन के क्षेत्र में रुचियों के मापन का विशेष महत्व है।

व्यवसायिक रूचियों के मापन हेतु अब तक जितने भी रूचि परीक्षणों का विकास किया गया है उनमें उल्लेखनीय मापनियां निम्न हैं–

1. स्ट्रांग वोकेशनल इन्टेरेस्ट ब्लैंक।
2. हेपनर की व्यवसायिक रुचि अनुसूची।
3. क्लीटन की वोकेशनल इन्टरेस्ट अनुसूची।
4. स्टीवर्ट व ब्रेनर्ड की विशिष्ट रुचि अनुसूची।
5. मैनसन रचित आक्युपेंशनल इन्टरेस्ट ब्लैंक।
6. ओबरिलन वोकेशनल इन्टरेस्ट अनुसूची।
7. गैरेट्सन एवं सायमण्ड की रुचि प्रश्नावली।

## व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व का व्यक्ति की शैक्षिक उपलब्धियों एवं व्यावसायिक सफलताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। व्यक्तित्व के द्वारा व्यक्ति के समंजन की योग्यता आदि का निर्धारण होता है। यह व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पक्षों का एक ऐसा गत्यात्मक स्वरूप है जिसके अंतर्गत उसके चरित्र बुद्धि, स्वभाव, शारीरिक गठन आदि से सम्बन्धित विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है। व्यक्तित्व की इन समस्त विशेषताओं का मापन निर्देशन की प्रक्रिया में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इन विशेषताओं का मापन करने के लिए जिन परीक्षणों का विकास किया गया है। उनमें उल्लेखनीय हैं–

1. डाउनी काबिल टेम्परामैन्ट परीक्षण,
2. वोल्कर ट्रस्टवर्दीनेस परीक्षण,
3. ऑल्पोर्ट–असेन्डेन्स–सबमिशन–रिएक्शन अध्ययन,
4. बर्नराइटर व्यक्तित्व अनुसूची तथा
5. बेल की अभियोजना अनुसूची।

टिप्पणी

## प्रवीणता परीक्षण

किसी भी व्यवसाय का चयन करने में सेवार्थी को सहायता प्रदान करने से पूर्व उसकी प्रवीणता का निर्धारण सर्वाधिक आवश्यक होता है। इसके आधार पर व्यक्ति की विशिष्ट योग्यता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो जाती है और इस जानकारी के आधार पर ही सेवार्थी को यह बताया जाता है कि यह विशेषताओं का समूह है जो व्यक्ति के प्रशिक्षण द्वारा ज्ञान कुशलता या अनुक्रिया–समुच्चय यथा भाषा बोल सकने या संगीत की योग्यता अर्जित करने की क्षमता का परिचायक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति की व्यावसायिक प्रगति का निर्धारण करने में उसकी प्रवीणता का विशेष महत्व होता है। यह आवश्यक नहीं है कि समान बुद्धि–लब्धि के दो व्यक्ति एक व्यवसाय में समान रूप से प्रगति करें। एक की प्रवीणता यांत्रिक योग्यता पर आधारित हो सकती है तो दूसरे की संगीत सम्बन्धी योग्यता के प्रदर्शन में। परिणामतः एक व्यक्ति संगीत के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है तथा दूसरा यांत्रिक अभियंता के रूप मे सफल हो सकता है। प्रवीणता के इस महत्व को देखते हुए ही अभिरुचि के विभिन्न प्रकारों और उनका मापन करने से सम्बन्धित परीक्षणों के विकास की दिशा में प्रयास किए गए हैं। इन परीक्षणों का प्रयोग शाब्दिक तर्क योग्यता, यांत्रिक तर्क योग्यता, संख्यात्मक योग्यता, अमूर्त तर्क योग्यता, स्थान तर्क योग्यता, लिपिक योग्यता आदि के मापन हेतु किया जा सकता है। इस प्रकार के कुछ परीक्षण इस प्रकार हैं–

1. थर्स्टर्न का विभेदक अभिरुचि परीक्षण।
2. सामान्य अभिरुचि परीक्षण।
3. फलैनगैन अभिरुचि वर्गीकरण परीक्षण।
4. गिलफोर्ड डिमरमैन अभिरुचि सर्वेक्षण।
5. हेल्जिगर कोउकर एक कारकीय परीक्षण।
6. बहु अभिरुचि परीक्षण।
7. प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण (PMA)

निर्देशन के क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाने वाले इन समस्त परीक्षणों के आधार पर जो सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं वे सूचनाएं ही सेवार्थी को निर्देशन अथवा परामर्श देने में पूर्ण आधार सामग्री के रूप में सहायक होती हैं। अतः इस दृष्टि से बुद्धि, रुचि, अभिरुचि एवं व्यक्तित्व का मापन करने वाले इन परीक्षणों का महत्व सहज ही बोधनीय है अतः इन परीक्षणों के समुचित, समन्वित एवं यथावश्यक उपयोग के संदर्भ में सदैव सचेत रहना अति आवश्यक है।

इन सूचना एकत्रित करने की प्रविधियों का समुचित उपयोग करके एक सेवार्थी को उसकी योग्यता, रुचि, व्यक्तित्व व प्रवीणता के आधार पर व्यवसाय का चुनाव करने एक स्वास्थ्यकर व निर्माणकारी नागरिक के रूप में देश के लिए उसके योगदान को बढ़ाया जा सकता है।

टिप्पणी

**गैर–मानकीकृत तकनीकें : विभिन्न गैर–मानकीकृत तकनीकों (अर्थात– प्रश्नावली, अवलोकन, सामाजिक–मिति, रेटिंग पैमाने, उपाख्यानात्मक रिकॉर्ड, केस स्टडी, संचयी रिकॉर्ड, आत्मकथा, साक्षात्कार) का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता और उपयोग**

## परामर्श और निर्देशन में अंतर

यहां निर्देशन और परामर्श की तकनीक और प्रक्रियाओं की विस्तारपूर्वक विवेचना की जा रही है।

| परामर्श | निर्देशन |
|---|---|
| 1. परामर्श का सम्बन्ध केवल एक व्यक्ति से होता है। | 1. निर्देशन का सम्बन्ध समूह से होता है। |
| 2. परामर्श की प्रक्रिया का आकार निश्चित एवं सीमित होता है। | 2. निर्देशन की प्रक्रिया का स्वरूप परामर्श की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। |
| 3. परामर्श निर्देशन का एक अविभक्त अंग है। | 3. निर्देशन का आकार परामर्श से अधिक विस्तृत होता है। |
| 4. परामर्श का इस्तेमाल विद्यार्थियों से सम्बन्धित वैयक्तिक समस्याओं, पारिवारिक समस्याओं के सम्बन्ध में किया जाता है। | 4. निर्देशन का सम्बन्ध अधिकांशतः शैक्षिक एवं व्यवसायिक समस्याओं से संबंधित होता है। |
| 5. परामर्श का सम्बन्ध मुख्यतः व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं से होता है। | 5. निर्देशन का सम्बन्ध व्यक्ति की सभी समस्याओं से होता है |

गैर–मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत– आकस्मिक निरीक्षण आलेख, आत्मकथा, प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन, समाजमितीय, निरीक्षण, निर्धारण मापनी तथा संचयी आलेख पत्र का तथा मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत बुद्धि–परीक्षण, अभिरुचि मापनी, व्यक्तित्व परीक्षण तथा प्रवीणता परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।

निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत सूचनाओं का विशेष महत्व होता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक एवं वैयक्तिक पक्षों से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त करके ही यह ज्ञात हो पाता है कि सेवार्थी की क्या स्थिति है तथा उसे किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। इस जानकारी के अभाव में निर्देशन व तथ्य आकलन की प्रक्रिया ही नहीं हो सकती है। सूचना निर्देशन की प्रक्रिया से संबंधित प्रमुख मूल सामग्री है और ये सूचनाएं अधिक वस्तुनिष्ठ ढंग से प्राप्त की जानी चाहिए। सेवार्थी के संबंध में प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं के प्रति किसी भी प्रकार का व्यक्तिनिष्ठ अथवा उपेक्षित दृष्टिकोण उसका समस्त अध्ययन व्यर्थ कर सकता है। सूचना प्राप्त करने से संबंधित अनेक विधियों का निर्धारण अप्रमाणीकृत तथा प्रमाणीकृत विधियों के रूप में किया जा सकता है तथा सूचना प्राप्त करने की इन विधियों का ज्ञान निर्देशन की प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है।

## सूचना प्राप्त करने की गैर–मानकीकृत विधियां (Non-Standardised Methods of Collecting Data)

1. आकस्मिक निरीक्षण आलेख (Anecdotal Record)
2. आत्मकथा (Autobiography)

3. प्रश्नावली (Questionnaire)
4. साक्षात्कार (Interview)
5. अनुसूचि (Schedule)
6. वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)
7. समाजमितीय (Sociometry)
8. निरीक्षण (Observation)
9. निर्धारण मापनी (Rating Scale)
10. संचयी आलेख पत्र (Cumulative Record Card)

## आकस्मिक निरीक्षण आलेख

आकस्मिक निरीक्षण प्रविधि के अन्तर्गत विद्यार्थियों द्वारा लिखित डायरियां, शिक्षकों द्वारा तैयार किए गए घटना वृत्त तथा संचयी आलेख पत्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रविधि के द्वारा छात्र के व्यक्तित्व का भी अध्ययन किया जाता है। शिक्षकों द्वारा छात्रों का प्रतिदिन किया गया निरीक्षण, यदा–कदा छात्रों के व्यवहार को अधिक स्पष्ट कर देता है, लेकिन शिक्षक पर अत्यधिक कार्य होने के कारण वह छात्रों के विशेष व्यवहार को विस्मृत कर जाता है। अतः इस समस्या के निराकरण हेतु ही आकस्मिक निरीक्षण विधि का निर्माण किया गया है। इस विधि के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु कतिपय मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

जॉन डी. विलार्ड के अनुसार– "किसी छात्र के जीवन की घटना का जो कि निरीक्षक द्वारा महत्वपूर्ण समझी जाती है, सरल वर्णन ही, आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख है।"

"An Anecdotal record is a simple statement of an incident deemed by the observer to be significant with respect to a given pupil"

—John D. Wiilard

ऑथुर जे. जोन्स के शब्दों में – "कतिपय निरीक्षित घटनाओं के घटना स्थल का ही विवरण और सम्भावित महत्व के कारण उनका अभिलेख आकस्मिक निरीक्षण है। जब ये प्रतिवेदन एक साथ एकत्रित कर दिए जाते हैं तो वे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के नाम से जाने जाते हैं।"

It may be defined as an "On the spot description of some incident, episode on occurrence that is observed and recorded as being of possible significance when these reports are gathered together they are known as anecdotal record" —Authur J. Jones

रैफ्स ल्यूउइस के मतानुसार– "किसी विद्यार्थी के जीवन संबंधी महत्वपूर्ण घटना की रिपोर्ट ही आकस्मिक निरीक्षण आलेख है।"

'An Anecdotal record is a report of significant episode in the life of a student.'

– Reaphs Luyes

## आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के प्रकार (Types of Anecdotal Record)

विद्यालयों में अनेक प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों का प्रयोग किया जाता है। यहां मुख्यतः चार प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों का उल्लेख किया गया है–

1. प्रथम प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के अन्तर्गत, विद्यार्थी के व्यवहार का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है तथा इसमें किसी भी तरह के विचारों का उल्लेख नहीं किया जाता है।
2. द्वितीय प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में छात्र के व्यवहार के वर्णन के साथ ही संक्षिप्त टिप्पणी भी लिखी होती है।
3. तृतीय प्रकार के अभिलेख में, छात्र के व्यवहार का विवरण एवं टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का भी उल्लेख होता है।
4. चतुर्थ प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में व्यवहार का वर्णन उसके गुण व दोषों के साथ होता है तथा भावी जीवन में उपचार हेतु सुझावों का उल्लेख होता है।

## आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख से लाभ (Advantages of Anecdotal Record)

इस अभिलेख से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं–

1. इसमें शिक्षक को विवरण लिखने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
2. इससे विद्यार्थी के व्यक्तित्व का समुचित उल्लेख प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप उसके व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों के संबंध में भी उसे जानकारी प्राप्त होती है।
3. गुण–निर्धारण रीति की अपेक्षा यह अभिलेख अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह निरन्तर लिखा जाता है।
4. छात्र की भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं को समझने में भी इससे सहायता प्राप्त होती है।
5. इन अभिलेखों से विद्यार्थियों को आत्मज्ञान प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है।
6. इन अभिलेखों के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण एवं पाठ्यक्रम में सुधार किया जा सकता है।
7. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों के माध्यम से सेवार्थी एवं उपबोधक के बीच वैयक्तिक संबंध सुदृढ़ होते हैं क्योंकि इससे छात्रों को यह ज्ञात हो जाता है कि उपबोधक उनकी समस्याओं से अवगत है।
8. इन अभिलेखों द्वारा शिक्षक का ध्यान प्रत्येक विद्यार्थी की ओर जाता है।
9. इन अभिलेखों से परामर्शदाता भी लाभान्वित होते हैं। वे छात्र की समस्या से पहले से ही परिचित हो जाते हैं। अतः साक्षात्कार प्रारम्भ करना अत्यन्त सरल हो जाता है।

10. विद्यालयों में नव–नियुक्त शिक्षक भी इससे लाभान्वित होते हैं। इन अभिलेखों के द्वारा वे छात्र को सहजता से समझ सकते हैं।
11. अनेक प्रमाणीकृत परीक्षणों के उपयोग से भी व्यक्तित्व का मापन किया जाता है। अतः आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख, उनके मूल्यांकन में प्रमाण का कार्य करते हैं।

### आत्मकथा

सूचनाएं प्राप्त करने की अप्रमाणीकृत प्रविधियों में आत्मकथा विधि का विशेष महत्व है। यह एक व्यक्तिनिष्ठ विधि है। आत्मकथा के अन्तर्गत छात्र अथवा व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था से लेकर आजीवन सतत् रूप से अपने अनुभवों को लिखता है। छात्र द्वारा लिखित वर्णनों से मापन किए गए तथ्यों की व्याख्या करने में सहायता होती है।

### आत्मकथा के प्रकार (Types of Autobiography)

आत्मकथाओं को विभिन्न प्रकारों से लिखा जा सकता है लेकिन मुख्य रूप से आत्मकथा दो प्रकार की होती है–

1. **वैयक्तिक इतिहास** (Personal History)– वैयक्तिक इतिहास में किसी भी प्रकार के निर्देशन नहीं होते हैं। विद्यार्थी स्वयं के बारे में सब कुछ लिखता है। यह विवरण अव्यवस्थित होता है।
2. **निर्देशित आत्मकथा** (Directed Autobiography)– निर्देशित आत्मकथा में व्यक्ति स्वयं के बारे में लिखने हेतु स्वतंत्र नहीं होता है। यह एक प्रश्नावली के समान होती है। उसके अनुसार ही व्यक्ति को स्वयं की आत्मकथा लिखनी पड़ती है। निर्देशन आत्मकथा का प्रारुप निम्नलिखित हैं–

**(अ) परिवार के अनुभव–**

(i) परिवार एवं परिवार की आर्थिक स्थिति

(ii) धर्म तथा संस्कार (आचरण)

(iii) सामाजिक परिवेश–वह स्थान जहां पहले रहकर आये हैं तथा वह स्थान जहां वर्तमान में रह रहे हैं।

**(ब) विद्यालय के अनुभव–**

(i) विद्यालय से आरम्भ जीवन

(ii) प्राथमिक विद्यालय के अनुभव

(iii) कौन–कौन से विद्यालयों में अध्ययन किया है।

(iv) विद्यालय मित्र

(v) शिक्षक

(vi) रुचिकर विषय एवं पाठ्य सहगामी क्रियाएं।

**(स) अन्य अनुभव के स्रोत–**

(i) वैयक्तिक विचार, रुचि एवं अभीष्ट

(ii) राष्ट्रीय समस्याओं से संबंध तथा

(iii) परिवार से संबंध

टिप्पणी

## आत्मकथा का महत्व (Importance of Autobiography)

आत्मकथा प्रविधि का भी अधिक महत्व है। इस प्रविधि के द्वारा शिक्षक एवं उपबोधक छात्रों के संबंध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जैसे– विद्यार्थी के जीवन दर्शन, व्यक्तित्व की रचना, उसके चिन्तन करने की पद्धति इत्यादि का ज्ञान परामर्शदाता को तथा छात्र की उपलब्धि के संबंध में शिक्षक को जानकारी प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त यह प्रविधि निम्नलिखित दृष्टियों से भी महत्वपूर्ण है–

1. आत्मकथा प्रविधि छात्रों को आत्मप्रदर्शन हेतु स्वतंत्रता प्रदान करती है।
2. आत्मकथा लिखने से व्यक्ति के मस्तिष्क में व्याप्त तनाव समाप्त हो जाता है।
3. यह प्रविधि मितव्ययी है, क्योंकि इसमें समस्त विद्यार्थियों को एक समूह में बैठाकर अल्प समय में ही आत्मकथा लिखाई जा सकती है।
4. इस प्रविधि के द्वारा विद्यार्थियों को महान व्यक्तियों की आत्मकथा पढ़ने हेतु प्रेरणाएं एवं प्रोत्साहन दिये जाते हैं।

## प्रश्नावली

सामाजिक जीवन में जो अनुसंधान हो रहे हैं, उन्हें निरन्तर वैज्ञानिक आधार देने का प्रयास किया जाता रहा है। इसी के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की पद्धतियों का विकास इस क्षेत्र में हुआ है। प्रश्नावली अन्य मनोवैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों की भांति सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली प्रश्नों की सूची को कहते हैं। अनुसूची के द्वारा सामाजिक अनुसंधानकर्ता अध्ययन क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं से प्रश्न पूछकर अनुसूचि भरते हैं। इसमें सूचनादाता और अनुसंधानकर्ता के मध्य आमने–सामने के संबंधों का होना अनिवार्य है। इस प्रकार अनुसूची पद्धति में अधिक समय और अधिक धन व्यय करना पड़ता है। इसके साथ ही सूचनादाताओं से संपर्क स्थापित करने में अन्य समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कम समय में क्षेत्र में न जाकर कौन सी विधियों के माध्यम से अनुसंधान कार्य किया जाए, इस समस्या के समाधान के लिए समाज वैज्ञानिकों ने प्रश्नावली की पद्धति को अपनाया। प्रश्नावली और अनुसूची में मुख्य अंतर यह है कि अनुसूची में सूचनादाता और अनुसंधानकर्ताओं के बीच आमने–सामने के संबंध स्थापित होते हैं। अनुसूची को अनुसंधानकर्ता स्वयं भरते हैं जबकि प्रश्नावली का प्रयोग सिर्फ शिक्षित समाज में ही किया जा सकता है। आधुनिक युग में जैसे–जैसे शिक्षा का प्रसार होता जा रहा है, प्रश्नावली पद्धति का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है। उसके साथ ही समाज निरन्तर जटिल से जटिलतर होता जा रहा है और समय के महत्व में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इससे भी प्रश्नावली प्रणाली के महत्व में वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार सामाजिक तथ्यों की प्राप्ति के लिए प्रश्नावली का प्रयोग एक यंत्र की भांति किया जाता है।

टिप्पणी

## प्रश्नावली का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definitions of Questionnaire)

प्रश्नावली की विद्वानों ने निम्न परिभाषाएं दी हैं–

1. बोगार्डस– "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक सूची है। यह प्रमाणीकृत प्रमाणों को प्राप्त करती है जिनका सारणीयन तथा गणनात्मक उपयोग किया जा सकता है।"

According to Bogardus, "A questionnaire is a list of questions to a number of persons for them to answer. It secures standardized results that can be tabulated and treated statistically."

2. गुडे और हाट– "सामान्य रूप से प्रश्नावली का अर्थ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रणाली से है जिसमें, एक पत्रक का प्रयोग किया जाता है जिसे सूचनादाता स्वयं भरता है।"

According to Goode, W.J. and Hatt, "In general the word questionnaire refers to a device for securing answers to questions by using a general form which the respondents fills in himself."

3. पॉप– "एक प्रश्नावली को प्रश्नों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उत्तर सूचनादाता को बिना अनुसंधानकर्ता या प्रगणक की व्यक्तिगत सहायता के देना होता है।"

According to Pope– "A questionnaire may be defined as a set of questions to be answered by the informant without the personal aid of an invigilator or enumerator."

4. पी.वी. यंग ने अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है–"प्रश्नावली एक ऐसा प्रपत्र है, जिसको उत्तरदाता के पास डाक द्वारा भेजा जाता है तथा उत्तरदाता स्वयं अपना मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा उत्तरदाता से संबंधित तथ्यों या मतों या दोनों को प्राप्त किया जाता है। प्रपत्र में प्रश्नों की रचना व्यक्ति या परिवार या फिर उसके व्यवसाय से संबंधित होती है।"

According to P.V. Young, "The questionnaire is defined as forms used in self enumeration, usually mailed to the respondents ....... in which the content is aimed at finding out facts or opinions or both and the questions are directed to persons about themselves or their families or their business."

5. लुण्डबर्ग के अनुसार, "मूलतः प्रश्नावली प्रेरणाओं का वह समूह है जिसे कि शिक्षित लोगों के सम्मुख उन प्रेरणाओं के अन्तर्गत उनके मौखिक व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"

According to Lundberg, "Fundamentally the questionnaire is a set of stimuli to which literate people are exposed in order to observed their verbal behaviour under these stimuli."

**टिप्पणी**

6. लेविन के अनुसार, "हमें यह समझना है कि प्रश्नावली को हम उसी भांति समझें, जिस प्रकार प्रेक्षपी विधि को समझने के हम आदी हैं।"

Kurt Lewin Stated, "we have to learn to treat questionnaire as we are accustomed to treat a protective technique."

7. सिनपाओ यंग के अनुसार, "अपने सरलतम रूप में प्रश्नावती प्रश्नों की एक सूची है जो अनुसूचित अथवा सर्वेक्षण निर्देशन में निर्वाचित व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजी जाती है।"

Hsin Pao Yang, "Emphasized, 'In its simplest form the questionnaire consists of schedule of questions sent by mail to persons on a list or in a survey sample?"

8. विलसन गीए का मानना है "प्रश्नावली बड़ी संख्या में लोगों से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से, जिसके कि सदस्य विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं, सीमित मात्रा में सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।"

According to Wilson Gee, ' It does constitute convenient method of optaining a limited amount of information from a large number of persons or from a small selected group which is widely scattered?'

मापन संबंधी उपकरणों में प्रश्नावली एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपकरण है। प्रश्नावली उपकरण के साथ–साथ मापन की एक विधि भी मानी जाती है। यह एक सरल और सबल उपकरण है। इसमें किसी प्रकार की जटिलता भी नहीं है। सरल सांख्यिकी विधियों की सहायता से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार प्रश्नावली किसी सामाजिक घटना के अध्ययन में प्रयोग में लाई जाने वाली प्रश्नों की एक सूची है, जो डाक द्वारा भेजी जाती है और सूचनादाता अपनी क्षमता के अनुसार प्रश्नों के उत्तर भरते हैं।

करलिंगर (1978) ने प्रश्नावली के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "प्रायः ऐसे किसी भी यंत्र के लिए 'प्रश्नावली' शब्द का प्रयोग या व्यवहार किया जाता है। जिसमें ऐसे प्रश्नों के पद होते हैं जिनके लिए व्यक्ति स्वयं उत्तर प्रस्तुत करता है। यद्यपि 'प्रश्नावली' और अनुसूची दोनो ंपदों का उपयोग एक–दूसरे के स्थान पर किया जाता है, फिर भी प्रश्नावली का संबंध अधिकांशतः 'एक स्वप्रकाशित यंत्र से रहता है, जिसमें बंद या निश्चित विकल्प वाले प्रश्न ही रहते हैं।"

According of F.N. Kerlinger, "Questionnaire is a term used for almost any kind of instrument that has questions or items to which individuals respond. Although the term is used interchangeably with schedule it seems to be associated more with self administered instruments that have items of the closed or fixed alternative type."

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रश्नावली को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, 'प्रश्नावली वह प्रपत्र है जिसमें अनेक प्रश्न अनुसंधान समस्या से संबंधित होते हैं। इन प्रश्नों को उत्तरदाता स्वयं भरता है। क्योंकि यह एक स्व–प्रशासनिक यंत्र

टिप्पणी

है। प्रश्नावली के प्रश्न उत्तरदाताओं के लिए उद्दीपक के रूप में कार्य करते हैं। जिससे मतों या तथ्यों अथवा दोनों के संबंध में सरलता से अध्ययन किया जा सकता है। इसमें मुख्यतः बंद (Closed) या फिर निश्चित विकल्प (Fixed Alternative type) वाले प्रश्न होते हैं। इसके द्वारा बड़े और विस्तृत समूहों का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है और आवश्यकतानुसार उसे उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा भी भेजा जाता है– डी. एन. श्रीवास्तव, 1992

प्रश्नावली और अनुसूची में यंग (1966) ने केवल एक अंतर किया है कि प्रश्नावली डाक द्वारा उत्तरदाताओं के पास भेजी जाती है। इसे उत्तरदाता स्वयं भरते हैं। दूसरी ओर अनुसूची को अनुसंधानकर्ता स्वयं भरता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि प्रश्नावली, 'डाक प्रश्नावली' (Mailed Questionnaire) ही होती है यह बात अवश्य है कि प्रश्नावली को उत्तरदाता ही भरते हैं। यह उनके पास डाक द्वारा भेजी जा सकती है। अनेक या एक समूह के उत्तरदाताओं को एकत्रित करके प्रश्नावली भरवाई जा सकती है। प्रश्नावली विधि द्वारा तथ्यों का संकलन संभव होता है। इसमें अध्ययन इकाइयां (व्यक्ति) शिक्षित होती हैं, जिससे वे प्रश्नावली को पढ़कर समझ सकते हैं और प्रश्नों के उत्तर उसमें लिख सकते हैं कम शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों से प्रश्नावली द्वारा आंकड़ों का संग्रह जोखिमपूर्ण होता है।

प्रश्नावलियों का उपयोग प्रदत्त संकलन या सूचना संकलन के लिए तो किया ही जाता है। इनका उपयोग निरीक्षण व साक्षात्कार विधि के साथ पूरक विधि के रूप में भी किया जाता है। साथ ही इसका उपयोग सामाजिक व्यवहार और व्यक्तिगत व्यवहार से सबंधित समस्याओं के अध्ययन में तथा मतों, अभिवृत्तियों और रुचियों के अध्ययन में भी किया जाता है।

## प्रश्नावली के उद्देश्य (Objectives or Purposes of Questionnaire)

1. **द्रुतगामी अध्ययन** (Quick Study)– प्रश्नावली की सहायता से अध्ययन अपेक्षाकृत शीघ्र हो जाता है। यदि यह डाक द्वारा भेजी जाती है तो एक साथ सभी अध्ययन इकाइयों को भेजी जा सकती है। इसमें लौटती डाक के टिकट संलग्न होने से प्रश्नावली के लौटने की संभावना बढ़ जाती है और सदस्यों से एक साथ भरवाते हैं तब भी प्रश्नावली से आंकड़ों का संग्रह शीघ्र होता है। प्रश्नावली चूंकि उत्तरदाताओं द्वारा भरी जाती है। इसलिए इस विधि द्वारा अन्य विधियों की अपेक्षाकृत आंकड़ों का संग्रह शीघ्र होता है।
2. **कम खर्चीली** (Economic)– आंकड़ों के संग्रह की अन्य विधियों की अपेक्षा प्रश्नावली कम खर्चीली होती है। क्योंकि प्रश्नावली द्वारा अध्ययन में समय कम लगता है।
3. **कम समय और कम मेहनत** (Less time and less Labour)–प्रश्नावली द्वारा अध्ययन में अध्ययनकर्ता को कम कार्य करना पड़ता है। क्योंकि सूचनादाता प्रश्नावली भरने का कार्य स्वयं करते हैं। इसलिए उसमें कम मेहनत और कम समय लगता है।

टिप्पणी

4. **विस्तृत अध्ययन** (Wide Study)– प्रश्नावली की सहायता से विस्तृत अध्ययन संभव हो पता है। डाक द्वारा प्रेषित होने के कारण दूर–दराज इलाकों में फैली अध्ययन इकाइयों का अध्ययन करने में कठिनाई नहीं होती है। अध्ययनकर्ता अपने कक्ष में ही रहकर दूर–दूर तक फैली इकाइयों से तथ्यों का संकलन कर सकता है।
5. **व्यवस्थित अध्ययन** (Systematic Study)– प्रश्नावली की सहायता से समस्या का व्यवस्थित अध्ययन हो जाता है क्योंकि प्रश्नों की संख्या, स्वरूप व क्रम आदि निश्चित होते हैं। इसमें हेर–फेर की संभावना नहीं होती है। दूसरे यह प्रश्नावली अनुसंधान की समस्या के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है।
6. **वस्तुपरक अध्ययन** (Objective Study)– प्रश्नावली के द्वारा वस्तुपरक ढंग से अनुसंधान समस्या का अध्ययन होता है। इसमें अध्ययनकर्ता के व्यक्तिगत विचारों, मतों, संवेगों और पक्षपातों से उत्तरदाता प्रभावित नहीं होता।
7. **अध्ययन की सुविधा** (Convenience of Study)– अन्य अध्ययन विधियों की अपेक्षा प्रश्नावली विधि एक सरल व सुविधाजनक विधि है। इस विधि में अध्ययनकर्ता के लिए प्रश्नावली का तकनीकी ज्ञान तो आवश्यक है लेकिन प्रशिक्षण आदि का कोई भी बंधन अनुसंधानकर्ता पर नहीं है।

- प्रश्नावली एक ऐसा प्रपत्र है जिसे उत्तरदाताओं को डाक द्वारा भेजा जाता है। इसे व्यक्तिगत रूप में भी दिया जा सकता है। इसका प्रयोग सामूहिक रूप में भी किया जाता है।
- इसके द्वारा संबंधित व्यक्ति की प्रत्येक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ– अभिवृत्ति, रुचियां, व्यवसाय, परिवार आदि।
- उत्तरदाता प्रश्नों के उत्तर स्वयं देता है अर्थात् वह स्वयं अपना मूल्यांकन करता है।
- चूंकि प्रपत्र में प्रश्नों के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है, इसलिए इसका उपयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित होता है।
- इसके उत्तरों का विश्लेषण बहुत सरल होता है। क्षेत्र व्यापक होता है। परिणाम अति सार्थक होते हैं। कुल मिलाकर व्यक्ति के अध्ययन हेतु यह सबसे सरल उपकरण है। सभी प्रकार के झंझटों से मुक्त है।
- चूंकि इसे डाक द्वारा प्रेषित किया जा सकता है, इसलिए दूरस्थ क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।
- अध्ययन सबसे कम खर्चीला होता है। कम से कम समय लगता है।
- यह अध्ययन की सबसे प्रचलित विधि है।

## प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)

प्रश्नावली प्रश्नों के एक समूह का नाम है। इसका उद्देश्य सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करना होता है। सामाजिक घटनाओं में जटिलता और विविधता पाई जाती है। इसको ध्यान में रखते हुए विविध प्रकार की प्रश्नावलियों का निर्माण करना होता है। लुण्डबर्ग (1957) ने दो प्रकार की प्रश्नावलियों– (1) तथ्य संबंधी एवं (2) मत तथा मनोवृत्ति संबंधी का उल्लेख किया है।

पी.वी. यंग ने प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर बंद एवं खुली प्रश्नावली की विवेचना की है। पी.वी. यंग (1968) ने लिखा है कि 'प्रश्नों का बंद (अर्थात् श्रेणीबद्ध) अथवा खुला (अर्थात् स्वतंत्र प्रत्युत्तर आमंत्रित करने वाला) रूप हो सकता है। मुख्य बात यह है कि उनका उल्लेख पहले से हो जाता है। इन्हें साक्षात्कार के दौरान नहीं बनाया जाता है।

(The form of the questions many be either closed (i.e., categorical) or open (i.e, inviting free response), the important point is that they are stated in advance, not constructed during the interview.)

प्रश्नावली के प्रमुख प्रकारों को अग्रभागों में बांटा गया है–

1. **बंद प्रश्नावली** (Close Questionnaire)– इस प्रश्नावली को सीमित या प्रतिबंधित प्रश्नावली के नाम से जाना जाता है। इस प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर पहले से विकल्पों (उत्तरों) के रूप में दिये जाते हैं इन विकल्प उत्तरों में से उत्तरदाता कोई एक उत्तर चुनकर देता है। दूसरे शब्दों में, एक प्रश्न के लिए तीन, चार या अधिक उत्तर दिये होते हैं, इन उत्तरों में से उत्तरदाता को जो उत्तर पसन्द होता है वह उत्तर उत्तरदाता द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार की प्रश्नावली प्रतिबन्धित प्रश्नावली इसलिए कहलाती है क्योंकि उत्तरदाता को प्रतिबन्धित उत्तरों में से ही कोई एक उत्तर देना होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसमें प्रश्नों के उत्तरों को सीमित कर दिया जाता है। सूचनादाता अपनी इच्छा से प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता है। इस प्रकार की प्रश्नावली के प्रश्नों के नमूने निम्नांकित हैं–

| प्रश्न | निर्दिष्ट उत्तर |
|---|---|
| (अ) क्या आप शिक्षित हैं? | हां / नहीं |
| (आ) आपने कहां तक शिक्षा प्राप्त की हैं? | पांचवी / आठवी / दसवी / बारहवी / बी.ए. / एम.ए. / अधिक |
| (इ) आपकी वैवाहिक स्थिति क्या है? | अविवाहित, विवाहित, तलाकशुदा विधवा / विधुर |

सिनपाओ येंग के अनुसार– 'प्रतिबन्धित (बंद) प्रश्नावली से प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्नों के प्रकरणतः उत्तर दिये जाते हैं' (The closed form questionnaire usually obtains itemised answers to the questions being asked. – Hsin Pao Yang) यंग के अनुसार (1966) प्रतिबंधित प्रश्नावली में अंकित प्रश्नों के उत्तर सीमित

रहते है और इनका व्यवहार श्रेणीबद्ध उत्तरों (Categoried answers) के लिए किया जाता है। इनके आधार पर प्राप्त उत्तरों का सुनिश्चित वर्गीकरण भी हो जाता है।

**टिप्पणी**

(Closed form questionnarie are used when catgorized data are required i.e. they need to be put into definite classification – P.V. Yang)

2. **खुली प्रश्नावली** (Open End Questionnaire)– इस प्रश्नावली को असीमित या अप्रतिबंधित प्रश्नावली के नाम से भी जाना जाता है। प्रश्नावली का यह प्रकार बन्द प्रश्नावली के विपरीत होता है। इसमें ऐसे प्रश्न होते है जिनका उत्तर देने में उत्तरदाता पर कोई नियंत्रण या प्रतिबंध नहीं होता है। वह उत्तर देने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होता है। इस प्रश्नावली में मात्र प्रश्न लिखे रहते हैं और उत्तर देने के लिए स्थान खाली रहता है। सूचनादाता अपने मनमाने उत्तर को प्रश्नावली की जगह में भरता है। इस प्रश्नावली में संभावित उत्तर नहीं दिये जाते हैं। यह प्रश्नावली विचारों के खुले प्रदर्शन का सशक्त स्वरूप है। जो भी उत्तर दिये जाते हैं, वे संक्षिप्त न होकर विस्तृत विवरणात्मक होते हैं। प्रश्नावली में अप्रतिबन्धित प्रश्न तब बनाये जाते हैं जब कोई अनुसंधानकर्ता किसी अध्ययन समस्या के संबंध में गुणात्मक, विवरणात्मक या विस्तृत जानकारी प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार की प्रश्नावली के प्रश्नों के कुछ नमूने निम्न हैं–

(अ) परिवार नियोजन अपनाने के क्या–क्या कारण हैं?

(ब) जनसंख्या वृद्धि के कारणों के बारे में अपने विचार बताइये।

(स) भारत में जनसंख्या विस्फोट की समस्या के समाधान हेतु अपने सुझाव दीजिए।

3. **मिश्रित प्रश्नावली** (Mixed Questionnaire)– मिश्रित प्रश्नावली वह है जिसमें कई प्रकार के प्रश्नों का सम्मिश्रण रहता है। बंद और खुली प्रश्नावली को मिलाकर तीसरे प्रकार की प्रश्नावली बनाई जाती है, इसे मिश्रित प्रश्नावली के नाम से जाना जाता है। आधुनिक सर्वेक्षणों में इस प्रकार की प्रश्नावली के

महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका कारण यह है कि सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम जो सूचनाएं प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें निश्चित उत्तरों के दायरे में नहीं बांधा जा सकता है।

**टिप्पणी**

4. **चित्रमय प्रश्नावली** (Pictorial Questionnaire)– यह वह प्रश्नावली है जिसमें समस्या से संबंधित प्रश्न शब्दों में न होकर चित्रों में होते हैं। यह प्रश्नावली सरल, रोचक व स्पष्ट होती है। इसमें अपेक्षाकृत कुछ अधिक वस्तुनिष्ठ उत्तर होते हैं चित्रमय प्रश्नावली को बंद प्रश्नावली ही समझना चाहिए। किन्तु दोनों में यह अंतर है कि बंद प्रश्नावली में प्रश्नों के 3–4 उत्तरों में सूचनादाता बंधा रहता है। चित्रमय प्रश्नावली में भी सूचनादाता बंधा रहता है। जैसे यदि प्रश्न इस प्रकार का है कि 'आपको ग्रामीण जीवन पसंद है या नगरीय तो उत्तर के लिए ग्रामीण जीवन और नगरीय जीवन के चित्र होते हैं। सूचनादाता इन दोनों चित्रों में से एक चित्र पर निशान लगाने के लिए बाध्य होगा इससे अनुसंधानकर्ता के कार्य में सरलता व रोचकता आ जाती है। यह वित्तीय दृष्टि से खर्चीली प्रश्नावली है।

जी.ए लुण्डबर्ग ने दो प्रकार की प्रश्नावलियों का उल्लेख किया है–

1. **तथ्य संबंधी प्रश्नावलियां** (Factual Questionnaire) – इस प्रश्नावली में अनुसंधान समस्या से संबंधित तथ्यों का संग्रह किया जाता है। इस प्रश्नावली का प्रयोग सामान्यतया सामाजिक तथ्यों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। किसी समूह की सामाजिक–आर्थिक दशाओं, आय–व्यय, पारिवारिक संरचना, आयु, लिंग, धर्म, जाति, शिक्षा, ऋणग्रस्तता आदि से संबंधित सूचनाओं को संकलित करने के लिए इस प्रकार की प्रश्नावलियों का निर्माण तथा प्रयोग किया जाता है।
2. **मत एवं मनोवृत्ति संबंधी प्रश्नावलियां** (Opinions and Attitudes Related Questionnaire)– इस प्रश्नावली के द्वारा अनुसंधानकर्ता उत्तरदाताओं के मत या मनोवृत्तियों का अध्ययन करता है। इस प्रश्नावली का प्रयोग किसी विषय पर सूचनादाता की रुचि, राय, मत, विचार तथा दृष्टि को जानने के लिए किया जाता है। जनमत–संग्रह, बाजार सर्वेक्षण, चुनावों, टेलीविजन एवं रेडियो कार्यक्रमों, विज्ञापनों अथवा किसी गंभीर सामाजिक समस्या के मनोविश्लेषण हेतु इस प्रकार की प्रश्नावलियों का निर्माण तथा प्रयोग किया जाता है।

पी.वी. यंग के अनुसार, प्रश्नावली दो प्रकार से बनायी जा सकती है–

1. **संरचित प्रश्नावली** (Structured Questionnaire)– संरचित प्रश्नावली का निर्माण अनुसंधान के उद्देश्य को ध्यान में रखकर अनुसंधान प्रारम्भ करने के पूर्व ही कर लिया जाता है। प्रश्नों की भाषा, प्रकृति एवं क्रम पूर्व निर्धारित होता है। इसमें सामान्य प्रकृति के निश्चित एवं पूर्व–निर्मित क्रमबद्ध तथा सिलसिलेवार प्रश्न होते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य सुनिश्चित एवं समस्त तथा प्रामाणिक

सूचनाओं को प्राप्त करना होता है। इसमें अनुसंधान के दौरान किसी प्रकार के परिवर्तन की कोई छूट नहीं होती है। श्रीमती यंग के अनुसार, "संरचित प्रश्नावली एक मापक यंत्र है। इसमें निश्चित ठोस तथा पूर्व निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसे आवश्यक प्रश्न भी होते हैं जो अपर्याप्त उत्तरों के स्पष्टीकरण करने अथवा अधिक विस्तृत उत्तर पाने के लिए आवश्यक हैं।"

(Structured questionnaires are those in which there are 'Definite, concrete and pre-obtained questions, with additional questions limited to those necessary to classify, inadequate answer or to elicit a more detailed response. –P.V. Yang)

इस प्रकार की प्रश्नावलियों का प्रयोग उस समय किया जाता है, जब अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत हो, प्राथमिक सूचनाओं का संकलन करना हो, संकलित सूचनाओं की पुनः परीक्षा करनी हो तथा औपचारिक अन्वेषण के आधार पर उपकल्पना का निर्माण करना हो। इस प्रश्नावली के प्रश्न खुले प्रकार के व बंद प्रकार के अथवा दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग जन स्वास्थ्य, जन कल्याण, परिवार कल्याण, बाजार अन्वेषण, रहन–सहन की दशाओं, आय–व्यय, आवासीय समस्याओं, प्रशासनिक नीतियों आदि के बारे में सूचना एकत्र करने के लिए किया जाता है।

2. **असंरचित प्रश्नावली** (Unstructured Questionnaire) – असंरचित प्रश्नावली के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यंग (1966) ने लिखा है कि 'असंरचित प्रश्नावली साक्षात्कार प्रदर्शन के समान होती है। इस प्रकार की प्रश्नावलियों में प्रश्नों का निर्माण पहले से नहीं किया जाता है। इनमें केवल विषय और प्रसंग ही लिखे होते हैं। जिनके आधार पर सूचनाएं संकलित की जाती हैं।

उन्होंने असंरचित प्रश्नावली को प्रश्नावली का ही एक स्वरूप माना है। उनके अनुसार इसका विषय क्षेत्र अवश्य निश्चित होता है। जिसके अन्तर्गत साक्षात्कार की आवश्यकतानुसार अध्ययनकर्ता स्वतंत्रतापूर्वक प्रश्नों की रचना कर सकता है।

(The unstructured questionnaire contains definite subject matter areas, the coverage of which is required during the interview, but the interviewer, is largely free to arrange the form and time of enquiries. –P.V. Yang)

## साक्षात्कार विधि

साक्षात्कार विधि एक अध्ययन विधि भी है और एक अध्ययन यंत्र भी है जिसकी सहायता से महत्वपूर्ण आंकड़े एकत्र किये जाते हैं। अंग्रेजी का शब्द Interview, दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् Inter + View = Interview! अंग्रेजी के शब्द Inter का अर्थ है अन्दर और View का अर्थ है देखना। अतः अन्दर देखना ही साक्षात्कार है! साक्षात्कार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा हम अध्ययन इकाइयों के उन अनुभवों और विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिनके संबंध में हमको प्रत्यक्ष रूप से कुछ

**टिप्पणी**

भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। इसके महत्व के संबंध में ऑलपोर्ट (1954) का कहना है कि, ''यदि हम यह जानना चाहते हैं कि लोग किस प्रकार अनुभव करते हैं, क्या अनुभव करते हैं, क्या याद रखते हैं, उनके संवेग और अभिप्रेरणाएं किस प्रकार की हैं, उनके कार्य करने के कारण क्या हैं, तो उनसे हम पूछ ही क्यों न लें। (If you want to know how people feel, what they experience and what they remember, what their emotions and motives are like, and the reasons for acting as they do..., why not ask them?–G.W. Allport, quated by Jahoda and cook. Research method in social relations p. 236)

साक्षात्कार अनुसंधान–यंत्र के रूप में जितना ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है उतना ही उपयोगी और महत्वपूर्ण यह साक्षात्कार विधि के रूप में भी है। इस संबंध में कुछ अधिक कहने से पूर्व साक्षात्कार के अर्थ को समझ लिया जाये।

## साक्षात्कार की परिभाषा (Definitions of Interview)

गुडे और हॉट (1952) के अनुसार, ''मौलिक रूप से साक्षात्कार सामाजिक अंतःक्रिया की एक प्रक्रिया है।'' "......Interview is fundamentally a process of social interaction."—Goode & Hatt, p. 186.

सिन पाओ यंग (1956) के अनुसार, ''साक्षात्कार कार्य क्षेत्र की एक विशेष प्रविधि है जिसका उपयोग किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, उनके कथनों को लिखने तथा सामाजिक या समूह अंतःक्रिया के स्पष्ट परिणामों का अध्ययन करने के लिये किया जाता है।''

"The Interview is a technique of field work which is used to watch the behaviour of an individual or individuals, to record statements, to observe the concrete result of social or group interactions."—H.P. Young : p. 38

यंग (1966) के अनुसार, ''साक्षात्कार को एक ऐसी क्रमबद्ध विधि के रूप में माना जा सकता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आंतरिक जीवन में थोड़ा–बहुत कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है जो कि उसके लिए सामान्यता तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।''

"The interview may be regarded as a systemetic method by which one person enters more or less imaginatively in to the linner life of another who is generally a comparative stranger to him."—P.V. Young, Scientific Social Servey and Research. p. 242

मैकोली तथा मैकोली (1959) के अनुसार, ''साक्षात्कार का अर्थ है आमने–सामने मौखिक विचारों का आदान–प्रदान जिसमें साक्षात्कारकर्त्ता यह प्रयास करता है कि दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों से उनके विश्वासों, मतों और विचारों की सूचना प्राप्त कर ले।''

"Interview refers to a face-to-face verbal inter change in which one person, the interviewer, attempts to elicit information of expression of opinion or belief from another person or persons."—E.E. Maccoby & Maccoby, 1959 p. 449.

टिप्पणी

करलिंगर (1978) के अनुसार, ''साक्षात्कार अंतर–वैयक्तिक भूमिका की एक ऐसी स्थिति है, जिसमें एक ऐसा व्यक्ति, साक्षात्कारकर्त्ता, एक–दूसरे व्यक्ति, जिसका साक्षात्कार किया जा रहा है या उत्तरदाता से उन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना चाहता है, जिनकी रचना संबंधित अनुसंधान समस्या के लक्ष्यों की पूर्ति के लिये की गई है।''

"The interview is a face-to-face interpersonal role situation in which one person, the interviewer asks to the person being interviewed, the respondent, the questions designed to obtaines answer patinent to the purpose of the research problem."—Kerlinger. p. 469.

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि, ''साक्षात्कार वह क्रमबद्ध प्रविधि या विधि है जो अंतर–वैयक्तिक भूमिका की स्थिति (Inter personal role situation) से संबंधित है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता विचारों के इस आदान–प्रदान में कल्पनात्मक रूप से साक्षात्कारदाता के मन में प्रवेश करके अपनी अनुसंधान समस्या के संबंध में सूचनाएं प्राप्त करता हैं डी. एन. श्रीवास्तव 1990.''

साक्षात्कार एक ऐसी प्रविधि है जिसका अनुसंधान संबंधी समस्याओं के अध्ययन के लिये बहुतायत से उपयोग समाज मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने किया है। इसके सर्वाधिक उपयोग का कारण सबसे अधिक यही दिखाई देता है कि इसमें साक्षात्कारकर्त्ता और सूचनादाता में प्रत्यक्ष संचार (Direct communication) है। किन्से एवं अन्य (Kinsay etc., 1948), फ्रीडमैन एवं अन्य (Freedman etc., 1959) तथा गुरियन एवं अन्य (Gurian etc., 1960) ने क्रमशः यौन संबंधी व्यवहार के अध्ययन के लिए साक्षात्कार का उपयोग किया है। साक्षात्कार का उपयोग बहुधा किसी अनुसंधान समस्या का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है। इस प्रारंभिक ज्ञान में समस्या में निहित चरों के संबंध में अध्ययन किया जाता है। बहुधा साक्षात्कार विधि द्वारा इस प्रकार के किए गए अध्ययनों और उनसे प्राप्त परिणामों के आधार पर चर अनुसंधान परिकल्पना या परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। साक्षात्कार का उपयोग किसी अनुसंधान समस्या के अध्ययन में भी किया जाता है। यह एक स्वतंत्र अनुसंधान विधि भी है जिसकी सहायता से संबंधित अनुसंधान समस्या का अध्ययन किया जाता है। इस विधि द्वारा एक विशेष प्रकार के तथ्य समस्या के संबंध में प्राप्त होते हैं। साक्षात्कार का एक उपयोग अनुसंधान समस्या की जांच करना भी है। प्रयोगात्मक अध्ययनों में साक्षात्कार के उपयोग द्वारा प्रयोज्य की प्रतिक्रिया का अध्ययन भी किया जाता है। मेलग्राम (Melgram, 1965) ने इस प्रकार के अध्ययन किए हैं। नैदानिक साक्षात्कार के द्वारा मानसिक रोग संबंधी समस्या का समाधान किया जाता है इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा रोग के कारणों का पता तो लगाया जाता है साथ–साथ उसके उपचार में भी यह विधि बहुत उपयोगी है।

## साक्षात्कार की विशेषताएं (Characteristics of Interview)

1. **क्रमबद्ध प्रविधि (Systemetic Technique)**– साक्षात्कार एक क्रमबद्ध प्रविधि है जिसके द्वारा साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारदाता या अध्ययन इकाई से अपनी अध्ययन समस्या के संबंध में प्रत्यक्ष, परोक्ष और आंतरिक सूचनाएं प्राप्त करता है।

2. **दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or More Persons)**– साक्षात्कार में कम से कम दो लोग होते हैं, एक साक्षात्कारकर्त्ता, जो साक्षात्कार लेता है, दूसरा साक्षात्कारदाता जो साक्षात्कार देता है या जिससे सूचना प्राप्त की जाती है। किसी भी अनुसंधान समस्या का अध्ययन करते समय साक्षात्कारकर्त्ता एक या एक से अधिक हो सकते हैं और उनकी टीम में दो या दो से अधिक सदस्य भी हो सकते हैं। इसी प्रकार साक्षात्कारदाता एक या एक से अधिक हो सकते हैं। साक्षात्कारदाता को सूचनादाता या अध्ययन इकाई भी कह सकते हैं।
3. **आमने–सामने गोष्ठी (Face-to-Face Conference)**– साक्षात्कार प्रविधि में साक्षात्कारकर्त्ता और साक्षात्कादाता आमने–सामने बैठकर बातचीत करते हैं और बातचीत के द्वारा साक्षात्कारकर्त्ता सूचनादाता से सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करता है और फिर बातचीत के द्वारा सूचनादाता से सूचनाएं प्राप्त करता है।
4. **विशिष्ट उद्देश्य (Specific Object)**– साक्षात्कार का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है इसका मुख्य उद्देश्य अनुसंधान समस्या के संबंध में सूचना एकत्र करना होता है।
5. **तथ्य संकलन (Data Collection)**– साक्षात्कार प्रविधि में साक्षात्कार की प्रगति के साथ–साथ आंकड़ों या तथ्यों का संग्रह भी चलता रहता है। आंकड़ों का यह संग्रह साक्षात्कारकर्त्ता स्वयं भी कर सकता है और यंत्रों की सहायता से भी कर सकता है।
6. **अंतर–वैयक्तिक स्थिति (Inter-Personal Situation)**– साक्षात्कार में अंतर वैयक्तिक स्थिति की विशेषता पायी जाती है इसमें साक्षात्कारकर्त्ता और सूचनादाता अपनी–अपनी भूमिकाएं अलग–अलग चुपचाप नहीं करते हैं बल्कि यह अपनी–अपनी भूमिकाओं प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन के लिये स्वतंत्र होते हैं–डी. एन. श्रीवास्तव (1990)।''

## **असंरचित साक्षात्कार** (Unstructured Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग अनेक अध्ययनकर्ताओं (Discson, 1945 Piaget, 1939, Rogers, 1945, Kinsay, 1948) ने अपने अनुसंधानों में सफलतापूर्वक किया है और इस प्रकार के साक्षात्कार को अनेक प्रकार से उपयोगी बताया है। इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग मानव शास्त्रियों ने आदिम जाति से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में बहुत सफलतापूर्वक किया है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र और समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का अध्ययन साक्षात्कार की इस विधि द्वारा बहुतायत से हुआ है। इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में भी हुआ है और व्यक्तिगत समस्याओं के अध्ययन में भी हुआ है।

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता पहले से प्रश्नों की सूची, साक्षात्कार की योजना, साक्षात्कार प्रश्नावली आदि का निर्धारण नहीं करता है। वह उत्तरदाता का साक्षात्कार लेते समय ही उत्तरदाता के मनोभावों और मनोदशाओं को देखते हुए आवश्यकतानुसार ही प्रश्न पूछता है और अनुसंधान समस्या के संबंध में उत्तरदाता से तथ्यों का संकलन करता है। इस प्रकार का साक्षात्कार वही साक्षात्कारकर्ता कर सकता है जिसे अनुसंधान समस्या का उच्च स्तरीय ज्ञान है और साक्षात्कार तकनीक में कुशलता प्राप्त है क्योंकि सूचनादाता के मनोभावों और मनोदशाओं को पहचानना सरल नहीं है। इसी प्रकार से अनुसंधान समस्या के सभी पक्षों पर समयानुसार प्रश्न पूछना भी सरल नहीं है। अतः यह साक्षात्कार अनुभवी साक्षात्कारकर्त्ता ही कर सकते हैं।

## संरचित साक्षात्कार (Structured Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार के अनेक नाम हैं जैसे– निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview), नियंत्रित साक्षात्कार (Controlled Interview), मानकीकृत साक्षात्कार (Standardized Interview) तथा मार्गदर्शी साक्षात्कार (Guided Interview)। इस प्रकार के साक्षात्कार की संरचना का निर्धारण साक्षात्कारकर्त्ता करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, ''संरचित साक्षात्कार वह साक्षात्कार है जिसमें साक्षात्कार की संरचना पूर्व निर्धारित होती है और साक्षात्कारकर्त्ता को अनुसंधान समस्या के संबंध में निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता नहीं होती है तथा साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार प्रक्रिया को भी परिवर्तित करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। साक्षात्कारकर्त्ता निर्धारित साक्षात्कार प्रक्रिया और निर्धारित प्रश्नों के द्वारा निश्चित समय में निष्पक्ष होकर साक्षात्कार को पूर्ण कर तथ्यों का संकलन करता है– डी. एन. श्रीवास्तव, 1990।''

संरचित साक्षात्कार विधि में साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार से पहले ही प्रश्नों का निर्माण कर लेता है। बहुधा इस प्रकार बनायी जाने वाली प्रश्नावली को साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) कहते हैं। इसमे बने हुये प्रश्न एक निश्चित क्रम में होते हैं और अनुसंधान समस्या से संबंधित सभी पक्षों के संबंध में होते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता संरचित साक्षात्कार में इस प्रश्नावली में लिखित प्रश्नों को ही पूछता है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्न इस प्रकार बनाये जाने चाहिये कि प्रश्नों से गुणात्मक आंकड़ों के स्थान पर मात्रात्मक आंकड़े प्राप्त होने चाहिये। अतः साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिये कि वह अपनी साक्षात्कार अनुसूची में ऐसे प्रश्न बनाये जिनके उत्तर हां, नहीं अथवा निश्चित प्रकार के हों जिससे कि उत्तरदाता के उत्तरों को अंकों में परिवर्तित किया जा सके और इस प्रकार मात्रात्मक आंकड़े प्राप्त हो सकें। प्रतिबंधित प्रकार के प्रश्नों से उत्तरदाता पर भी नियंत्रण हो जाता है जिससे सभी इकाइयों से एक प्रकार के प्रश्न पूछने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। संरचित साक्षात्कार का समय अर्थात् साक्षात्कार कितने बजे से प्रारंभ होगा, साक्षात्कार की अवधि अर्थात् एक अध्ययन इकाई का साक्षात्कार कितनी अवधि तक चलेगा तथा साक्षात्कार का स्थान अर्थात् साक्षात्कार किस स्थान पर

संपादित होगा। यह सब पूर्व निर्धारित होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता, उत्तरदाता, साक्षात्कार का समय, साक्षात्कार की अवधि आदि सभी पर नियंत्रण करके साक्षात्कार किया जाता है।

**टिप्पणी**

संरचित साक्षात्कार एक प्रकार का क्रमबद्ध साक्षात्कार होता है क्योंकि इसमें साक्षात्कार की प्रक्रिया और प्रश्नों का क्रम निश्चित होता है। बहुधा संरचित साक्षात्कार का स्वरूप वस्तुपरक (Objective) होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार से अधिकाशतः जो तथ्य या आंकड़े एकत्र होते हैं वे अंकों के रूप में प्राप्त होते हैं। संरचित साक्षात्कार के आंकड़े जब अंकों के रूप में होते हैं तब ऐसे आंकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों के द्वारा सरलता से किया जा सकता है और इस प्रकार महत्वपूर्ण, विश्वसनीय और शुद्ध परिणाम प्राप्त करने की सुविधा हो जाती है। लेकिन संरचित साक्षात्कार को प्रत्येक अनुसंधान की समस्या के अध्ययन में पूर्ण रूप से संरचित बनाना, दूसरे शब्दों में पूर्ण रूप से सभी चीजों को नियंत्रित करना कठिन होता है। संरचित साक्षात्कार के प्रश्न हमेशा ऐसे नहीं बनाये जा सकते हैं जिनसे मात्रात्मक या संख्यात्मक आंकड़े प्राप्त हों। यदि ऐसा करने का प्रयास भी किया जाता है तो अनुसंधान समस्या से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं। अनुसंधान समस्या के ये पक्ष ऐसे होते हैं कि इन पर ऐसे प्रश्न तो बनाये जा सकते हैं जिनसे गुणात्मक आंकड़े तो प्राप्त हो जाएं लेकिन ऐसे प्रश्न नहीं बनाये जा सकते हैं जिनसे मात्रात्मक आंकड़े ही प्राप्त हों। अतः साक्षात्कारकर्त्ता को दो विकल्पों में से एक विकल्प चुनना होता है– प्रथम यह कि वह अनुसंधान समस्या से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पक्ष छोड़ दे, द्वितीय यह कि इन महत्वपूर्ण पक्षों पर ऐसे प्रश्न बनाये जिनसे गुणात्मक तथ्य प्राप्त हो सकें। इसी कठिनाई के कारण कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने संरचित साक्षात्कार में एक उपविधि–अर्थसंरचित साक्षात्कार (Semistructured Interview) विकसित कर ली है। अर्धसंरचित साक्षात्कार हर प्रकार से संरचित साक्षात्कार से मिलता–जुलता है, दोनों में महत्वपूर्ण अंतर केवल एक होता है कि अर्धसंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कार अनुसूची में कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनसे मात्रात्मक आंकड़े प्राप्त होते हैं और अन्य प्रश्न ऐसे होते हैं जिनसे गुणात्मक आंकड़े प्राप्त होते हैं।

## संरचित और असंरचित साक्षात्कार के बीच मुख्य अंतर

संरचित साक्षात्कार पूर्व निर्धारित प्रश्नों का उपयोग करता है, जो सभी उम्मीदवारों से पूछे जाते हैं। दूसरी तरफ एक असंरचित साक्षात्कार में, जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वे पहले से निर्धारित नहीं होते हैं, बल्कि वे सहज होते हैं।

साक्षात्कार को औपचारिक रूप से दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक गहन बातचीत के रूप में वर्णित किया जाता है, ताकि नौकरी के लिए उम्मीदवार की स्वीकार्यता का पता लगाया जा सके। यह डेटा संग्रह और चयन के लिए सबसे प्रभावी उपकरणों में से एक है। यह साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारकर्ता के बीच एक से एक संवाद है। जिसमें दोनों पक्षों को एक दूसरे के बारे में जानने का मौका मिलता है। साक्षात्कार संरचित साक्षात्कार या असंरचित साक्षात्कार हो सकते हैं।

## तुलना चार्ट

टिप्पणी

| तुलना के लिए आधार | संरचित साक्षात्कार | असंरचित साक्षात्कार |
|---|---|---|
| अर्थ | संरचित साक्षात्कार वह है जिसमें साक्षात्कारकर्ता द्वारा पहले से निर्धारित पूर्वनिर्धारित प्रश्नों का एक विशेष सेट तैयार किया जाता है। | असंरचित साक्षात्कार एक साक्षात्कार को संदर्भित करता है जिसमें उत्तरदाताओं से पूछे जाने वाले प्रश्न अग्रिम में निर्धारित नहीं होते हैं। |
| डेटा संग्रहण | मात्रात्मक | गुणात्मक |
| अनुसंधान | वर्णनात्मक | खोजपूर्ण |
| प्रश्नों का प्रकार | बंद किए गए सवाल | ओपन एंडेड सवाल |
| कारकों का मूल्यांकन किया | मुखर | अंतर्निहित |
| द्वारा इस्तेमाल किया | प्रत्यक्षवादी | Interpretivist |
| आवेदन | परिणामों को मान्य करने के लिए, जब उम्मीदवारों की संख्या काफी होती है। | उम्मीदवार के व्यक्तिगत विवरण की जांच करने के लिए, ताकि वह यह निर्धारित कर सके कि क्या वह नौकरी के लिए सही व्यक्ति है। |

संरचित और असंरचित साक्षात्कार के बीच का अंतर निम्नलिखित आधारों पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता हैः

1. संरचित साक्षात्कार एक साक्षात्कार को संदर्भित करता है, जिसमें उम्मीदवारों से पूछे जाने वाले प्रश्न अग्रिम में तय किए जाते हैं। एक साक्षात्कार जिसमें उम्मीदवारों से पूछे जाने वाले प्रश्न दुर्लभ हैं और पहले से तैयार नहीं हैं।
2. जैसा कि संरचित साक्षात्कार एक पूर्व–नियोजित है और सभी उम्मीदवारों के लिए समान प्रश्न निर्धारित किए जाते हैं, इसलिए एकत्र किया गया डेटा प्रकृति में मात्रात्मक है। एक असंरचित साक्षात्कार के विरोध के रूप में, जिसमें विभिन्न प्रश्न अलग–अलग उम्मीदवारों को दिए जाते हैं, और इसलिए गुणात्मक डेटा एकत्र किया जाता है।
3. वर्णनात्मक शोध में, संरचित साक्षात्कार का उपयोग सूचना एकत्र करने के लिए किया जाता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत किफायती है और इनवॉइस आसानी से खींची जा सकती है। इसके विपरीत, खोजपूर्ण अनुसंधान में असंरचित साक्षात्कार का उपयोग सूचना एकत्र करने के लिए मूल उपकरण के रूप में किया जाता है।
4. एक संरचित साक्षात्कार में, उम्मीदवार के पास रखे गए प्रश्नों के अंत के करीब हैं, जो आवेदकों से एक निश्चित जानकारी की मांग करता है, या वास्तव में, उसे प्रदान किए गए विभिन्न विकल्पों में से एक विकल्प चुनना होगा। जैसा कि इसके खिलाफ है, असंरचित साक्षात्कार, प्रश्न खुले–समाप्त होते हैं, जिसका उत्तर कई तरीकों से दिया जा सकता है, अर्थात उम्मीदवार विचारशील उत्तर देने के लिए स्वतंत्र है और इस प्रकार साक्षात्कारकर्ता को प्रभावित करता है।

टिप्पणी

5. संरचित साक्षात्कारों का उपयोग प्रत्यक्षवादियों द्वारा किया जाता है जबकि असंरचित साक्षात्कार का उपयोग व्याख्याकारों द्वारा किया जाता है।
6. उम्मीदवारों की संख्या काफी बड़ी होने पर परिणामों को मान्य करने के लिए संरचित साक्षात्कार का उपयोग किया जाता है। असंरचित साक्षात्कार के विपरीत, जिसका उपयोग उम्मीदवार के व्यक्तिगत विवरणों की जांच करने के लिए किया जाता है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या वह नौकरी के लिए सही व्यक्ति है।
7. एक संरचित साक्षात्कार में, मूल्यांकन की गई विशेषताएं स्पष्ट होती हैं जो दूसरी तरफ एक असंरचित साक्षात्कार में निहित होती हैं।

## केन्द्रित साक्षात्कार या अर्ध संरचित साक्षात्कार (Focused or Semi-Structured Interview)

इस प्रकार का साक्षात्कार संरचित और असंरचित साक्षात्कार दोनों का ही मिला–जुला रूप है। इस प्रकार के साक्षात्कार में असंरचित साक्षात्कार के गुण कम और संरचित साक्षात्कार के गुण अधिक होते हैं। इस विशेषता के कारण ही इस प्रकार के साक्षात्कार को अर्ध संरचित साक्षात्कार कहते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार का एक अन्य महत्वपूर्ण गुण यह होता है कि इसके द्वारा अध्ययन की जाने वाली अनुसंधान समस्या किसी घटना, अवस्था या परिस्थिति से संबंधित होती है और संपूर्ण साक्षात्कार इस घटना, अवस्था या परिस्थिति पर ही केन्द्रित होता है। इसीलिये इसको केन्द्रित साक्षात्कार कहते हैं। अतः केन्द्रित साक्षात्कार को परिभाषित करते हुये कहा जा सकता है कि केन्द्रित साक्षात्कार वह साक्षात्कार है जिसमें अध्ययन की जाने वाली समस्या किसी घटना, अवस्था या परिस्थिति से संबद्ध होती है और साक्षात्कारकर्त्ता इसकी अधिक से अधिक जानकारी चाहता है। वह समस्या के अध्ययन में संरचित और असंचरित साक्षात्कार दोनों ही पद्धतियों का प्रयोग करता है।

मर्टन और कैन्डल (1946) ने इस प्रकार के साक्षात्कार की सहायता से अधिक समस्याओं का अध्ययन किया है। इस प्रकार के साक्षात्कार की कुछ प्रमुख विशेषताएं संक्षेप में निम्न प्रकार से हैं, जिनका वर्णन यंग (1966) के अनुसार इस प्रकार है–

1. इस प्रकार के साक्षात्कार में वे उत्तरदाता सम्मिलित किये जाते हैं जो विशेष घटना, अवस्था या परिस्थिति से संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिये टी. वी. देखने वाले दर्शक, फिल्म देखने वाले दर्शक, रेडियो प्रसारण सुनने वाले श्रोता, एक समाचार पत्र विशेष को पढ़ने वाले पाठक आदि।
2. इस प्रकार के साक्षात्कार के लिये एक साक्षात्कार गाइड (Interview Guide) बनाई जाती है। साक्षात्कार सम्पादित करने के संबंध में संपूर्ण योजना इस साक्षात्कार गठन में होती है।
3. इस प्रकार का साक्षात्कार उत्तरदाता के आत्मपरक अनुभवों, संवेगों तथा अभिवृत्तियों से विशेष रूप से संबंधित होता है।

4. इस प्रकार के साक्षात्कार में सूचनादाताओं के उत्तर साक्षात्कारकर्त्ता से प्रभावित नहीं होते हैं।
5. इस प्रकार के साक्षात्कार में जो साक्षात्कार अनुसूची होती है उसमें वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी होते हैं जिनसे मात्रात्मक आंकड़े प्राप्त होते हैं और गुणात्मक प्रश्न होते हैं जिनसे गुणात्मक आंकड़े प्राप्त होते हैं।
6. इस प्रकार के साक्षात्कार में संरचित साक्षात्कार के गुण भी होते हैं और असंरचित साक्षात्कार के भी गुण होते हैं तथा दोनों साक्षात्कार के मिले–जुले स्वरूप के कारण दोष कम हो जाते हैं।

## अनुसूची

प्रश्नावली विधि से अनुसंधान करने में साधारणतया दो उपाय अपनाए जाते हैं, या तो उसे डाक द्वारा सूचनादाता के पास भेज दिया जाता है या फिर प्रश्नावली को लेकर स्वयं अनुसंधानकर्ता सूचनादाताओं से संपर्क स्थापित करता है। सामाजिक अनुसंधान की यह दूसरी विधि ही अनुसूची विधि कहलाती है। थॉमस कारसन मैकोरमिक के शब्दों में, ''अनुसूची विधि प्रश्नों की एक सूची से अधिक कुछ नहीं है जिसका परिकल्पना या परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए उत्तर देना अनिवार्य दिखलाई पड़ता है।''

The schedule is nothing more than a list of questions which it seems necessary to answer in order to test the hypothesis or hypothesises.

—Thomas Carson Macormic

इस प्रकार अनुसूची कुछ ऐसे प्रश्नों की सूची है जिनके उत्तरों से किसी परिकल्पना की जांच की जाती है। उदाहरण के लिए अनुसंधानकर्ता यह परिकल्पना करता है कि संयुक्त परिवारों में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं होती है तो वह इस संबंध में अनुसूची बनाकर इससे प्राप्त उत्तरों से अपनी इस परिकल्पना की जांच कर सकता है। गुडे एवं हॉट के शब्दों में, ''अनुसूची प्रश्नों की एक सूची का नाम है जो कि साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा दूसरे व्यक्ति के आमने–सामने उपस्थित होकर पूछे और भरे जाते हैं।''

(Schedule is the name usually applied to a set of questions which are asked and filled in by an interviewer in a face to face situation with another person.—W.J. Goode and P.K. Hatt.)

अनुसूची विधि में बहुत अधिक बातों के विषय में सूचना प्राप्त नहीं की जा सकती है। इस बात की ओर संकेत करते हुए जार्ज लुण्डबर्ग ने लिखा है, ''अनुसूची एक समय में एक तथ्य को अलग करने और इस प्रकार हमारे निरीक्षण में गहराई लाने की एक विधि है।''

"The schedule is a device for isolating one element at a time and thus intensifying our observation. "

टिप्पणी

## अनुसूची के आवश्यक लक्षण (Characteristics of Schedule)

अनुसूची विधि की उपर्युक्त परिभाषाओं से उसके निम्नलिखित आवश्यक लक्षण स्पष्ट होते हैं–

1. अनुसूची साक्षात्कारकर्त्ता के द्वारा प्रस्तुत की जाती है। वही प्रश्न पूछता है और वही उत्तर लिखता है।
2. इसलिए अनुसूची में प्रलेख औपचारिक होता है और उसमें आकर्षकता के गुण नहीं होते हैं।
3. अनुसूची अनुसंधान के सीमित क्षेत्र में लागू की जाती है।

## अनुसूची के उद्देश्य (Objectives of Schedule)

पी. वी. यंग ने अनुसूची के निम्नलिखित उद्देश्य माने हैं–

"He makes the schedule a guide a means of deliminating the sense of his enquiry a memory tickler, a recording device."

—P.V. Young

1. **वस्तुविषयकता प्राप्त करना**– अनुसूची में एक निश्चित क्रम में कुछ निश्चित प्रश्नों को प्रस्तुत किया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता को इन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने होते हैं और सूचनादाता को इन्हीं के उत्तर देने होते हैं। इस प्रकार अनुसंधान में वस्तुविषयकता प्राप्त होती है।
2. **स्मृति में सहायक**– साक्षात्कार विधि में अनुसंधानकर्ता चाहे जो प्रश्न पूछता है इसमें यह संभावना रह जाती है कि कुछ आवश्यक प्रश्न छूट न जाएं। लिखित प्रश्नावली लेकर साक्षात्कार करने से उसे स्मृति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता क्योंकि अनुसूची की प्रश्नावली स्मृति बनाए रखती है।
3. **सारणीयन और विश्लेषण में सहायक**– जब साक्षात्कार के द्वारा अनुसूची के उत्तर प्राप्त कर लिये जाते हैं तो उनका सारणीयन और विश्लेषण किया जाता है क्योंकि अनुसूचियों में उत्तर नोट करने के लिए तरह–तरह की तालिकाओं का इस्तेमाल किया जाता है।

## अनुसूची के प्रकार (Types of Schedule)

पी. वी. यंग ने अनुसूचियों के निम्नलिखित चार प्रकार बताए हैं–

1. **मानांकन अनुसूचियां (Rating Schedule)**– व्यवसायिक निर्देशन, मनोवैज्ञानिक अनुसंधान और समाजशास्त्रीय अनुसंधानों में अभिवृत्तियों तथ्यों मतों तथा इसी प्रकार के अन्य तत्वों के विषय में अनेक प्रकार की मानाकन अनुसूचियां प्रयोग की जाती हैं।

2. **प्रलेख अनुसूचियां (Document Schedule)**– इन अनुसूचियों के प्रयोग तरह–तरह के प्रलेखों, व्यक्ति इतिहासों और अन्य सामग्री से प्रदत्त प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। इसमें वे पद शामिल किए जाते हैं जो कि बड़ी संख्या में प्रलेखों या व्यक्ति इतिहासों में सामान्य रूप से मिलते हैं।
3. **संस्थागत सर्वेक्षण फॉर्म अथवा मूल्यांकन (Institutional Survey Form or Evaluation Schedule)**– इस प्रकार की अनुसूचियों का प्रयोग, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, विशिष्ट संस्था की समस्याओं को जानने के लिए किया जाता है। संस्था की समस्याएं जितनी ही जटिल और व्यापक होंगी उनकी जांच के लिए उतनी ही बड़ी अनुसूची होगी।
4. **साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule)**– अनुसूची के इस प्रकार में, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार द्वारा सूचनाएं एकत्रित करता है और अनुसूची में दी गई खाली जगह में इन सूचनाओं को लिख लेता है।

अनुसूची के उपर्युक्त प्रकारों में निरीक्षण अनुसूचियो का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।

वी. वी. यंग के अनुसार अच्छी अनुसूची में निम्नलिखित दो गुण होने आवश्यक हैं–

1. **सही संदेशवहन**– सही संदेशवहन के लिए यह आवश्यक है कि अनुसूची की भाषा अत्यंत सरल हो और संदेशवहन के लिए प्रत्येक बात को स्पष्ट रूप से कहा गया हो जिससे कि उत्तरदाता को अनुसूची पढ़कर उसका अर्थ समझने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। दूसरी ओर यदि किसी अनुसूची की भाषा जटिल और अनेकार्थक है तो पढ़ने वाला उसके सही अर्थ को नहीं समझ सकता और इसलिए वह प्रश्नों के जो भी उत्तर प्रस्तुत करेगा उनसे कोई लाभ नहीं होगा।
2. **सही प्रतिक्रिया**– अनुसूची की सफलता केवल प्रश्नों के निर्णय पर ही निर्भर नहीं है बल्कि इस बात पर निर्भर है कि उत्तरदाता अनुसूची के प्रति कहां तक सही अनुक्रिया करते हैं। दूसरे शब्दों में अनुसूची की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि इससे वही सूचना प्राप्त हो जाए जिसके लिए अनुसंधानकर्ता ने अनुसूची का निर्माण किया है। इस प्रकार प्रश्न और उत्तर परस्पर संबंधित होने चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि अनुसूची में सही संदेशवहन का गुण हो।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अच्छी अनुसूची वही है जिसमें अग्रलिखित आवश्यक गुण दिखलाई पड़ते हैं–

अनुसूची के आधार और रूप की आकर्षकता।

प्रश्नों का स्पष्ट, सरल और भ्रमरहित होना।

केवल ऐसे प्रश्न दिए जाना जिनका उत्तर देने से किसी भी व्यक्ति को कोई संकोच न हो।

**टिप्पणी**

केवल ऐसे प्रश्न देना जो विशिष्ट अनुसंधान के लिए आवश्यक हों।

अनुसूची से ऐसी सूचना प्राप्त होना जो वैध होने के साथ–साथ ऐसी भी हो कि जिसका सारणीयन और सांख्यिकीय विवेचन किया जा सकता है।

## अनुसूची का निर्माण (Formation of Schedule)

प्रश्नावली और अनुसूची का अंतर उनकी संरचना के कारण होता है। अनुसूची विधि को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि अनुसूची का निर्माण किस तरह किया जाता है। अनुसूची के निर्माण में एक ओर उसके आंतरिक पक्ष का ध्यान रखना आवश्यक है और दूसरी ओर उसके बाह्य पक्ष का ध्यान रखा जाना चाहिए। आंतरिक पक्ष का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुसूची में जो प्रश्न शामिल किए जाएं उनसे अनुसूची का प्रयोजन सिद्ध होता हो और कोई भी प्रश्न ऐसा न हो जिसका अनुसूची से अनिवार्य संबंध न हो। इसके लिए सबसे पहले अनुसंधान की समस्या का पूर्ण रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए। इस अध्ययन में समस्या संबंधित संपूर्ण साहित्य को आदि से अंत तक पढ़ना चाहिए। इसके बाद विषय के संबंध में विशेष ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञों से विचार–विमर्श करके आवश्यक बातों का पता लगा लेना चाहिए। यदि समस्या किसी विशेष स्थान से संबंधित है तो वहां रहने वाले लोगों से ही अधिक सही जानकारी मिल सकती है।

## अनुसूची में सम्मिलित करने योग्य प्रश्न

यूँ तो इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं है और अनुसंधान के विषय, कार्यकर्ताओं की योग्यता, साक्षात्कारदाताओं के स्वभाव, साक्षात्कार की परिस्थिति इत्यादि के अनुसार प्रश्नों की रचना की जा सकती है, परन्तु फिर भी निम्नलिखित गुण वाले प्रश्नों को अनुसूची में स्थान देना अधिक उपयुक्त है–

1. **स्पष्ट और सरल प्रश्न**– अनुसूची में दिए गए प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो स्पष्ट हों और जिनके अर्थ को सरलता से समझा जा सकता हो।
2. **उत्तरदाता की सामर्थ्य के अनुरूप प्रश्न**– अनुसूची में ऐसे ही प्रश्न करना उचित है जिनका उत्तर देना उत्तरदाता की सामर्थ्य में हों जो बातें उसके ज्ञान की परिधि से बाहर हैं उनके बारे में प्रश्न करना बेकार है।
3. **अनुसंधान के विषय से संबंधित प्रश्न**– अनुसूची में ऐसे समस्त प्रश्नों को स्थान दिया जाना चाहिए, जिनका अनुसंधान के विषय में किसी भी पहलू से संबंध है। इनके अतिरिक्त प्रश्नों को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।
4. **परोक्ष प्रश्न**– अनेक विषय ऐसे होते हैं जिनके बारे में प्रत्यक्ष रूप से पूछना ठीक नहीं होता क्योंकि उत्तरदाता उनका उत्तर नहीं देना चाहता। उदाहरण के लिए यह न पूछकर कि आप आगामी चुनाव में किस पार्टी को वोट देंगे

यह पूछना अधिक अच्छा होगा कि आपकी राय में कौन सा राजनीतिक दल देश के शासन को भली प्रकार चला सकता है।

**टिप्पणी**

5. **क्रमबद्ध प्रश्न**– अनुसूची में प्रश्न बिखरे हुए न होकर क्रमबद्ध होने चाहिए। यह क्रम पूर्ण से अंश और सरल से जटिल इत्यादि तार्किक नियमों पर आधारित होना चाहिए।
6. **सारणीयन योग्य प्रश्न**– अनुसूची में ऐसे ही प्रश्नों को स्थान दिया जाना चाहिए जो सारणीयन के योग्य हों। इसके लिए प्रत्येक प्रश्न के विषय में पहले से ही यह सोच विचार कर लेना चाहिए कि उसका सारणीयन किस प्रकार किया जाएगा।
7. **परीक्षणीय प्रश्न**– यदि अनुसूची में अधिकतर ऐसे प्रश्न हैं जिनकी जांच की जा सकती है तो इनसे उसकी प्रामाणिकता बढ़ जाती है। इसलिए यथा संभव परीक्षणीय प्रश्नों को अधिक स्थान दिया जाना चाहिए।
8. **तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा से प्रश्न**– यदि अनुसंधान का विषय ऐसा है कि उस पर अन्य लोग भी अनुसंधान कर चुके हैं तो साधारणतया अनुसंधान की इकाइयां वे ही होनी चाहिए जो अन्य अनुसंधानों में रखी गई हैं। इस प्रबंध से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
9. **निर्वैयक्तिक प्रश्न**– अनुसूची के प्रश्न साधारणतया निर्वैयक्तिक होने चाहिए। व्यक्तिगत प्रश्न पूछे जाने पर उनके सही उत्तर नहीं आते। अस्तु, प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे व्यक्तिगत मालूम न पड़ें।

## अनुसूची के गुण (Merits of Schedule)

सामाजिक अनुसंधान की प्रश्नावली विधि से उत्तरदाताओं के पास प्रश्नावली डाक द्वारा भेज दी जाती है और उत्तरदाता डाक द्वारा ही प्रश्नावली भरकर वापिस कर देते हैं। दूसरी ओर अनुसूची विधि में साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता के पास स्वयं अनुसूची या प्रश्नावली लेकर जाता है और उसका साक्षात्कार करके स्वयं ही अनुसूची को भरता है। पहली विधि की तुलना में सामाजिक अनुसंधान की इस दूसरी विधि से निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **उत्तरों का ऊँचा प्रतिशत**– डाक द्वारा भेजी जाने वाली प्रश्नावली की तुलना में अनुसूची विधि से मिलने वाले उत्तरों का प्रतिशत अधिक ऊँचा रहता है। इसका सबसे बड़ा कारण कार्यकर्ता से उत्तरदाता का व्यक्तिगत संबंध है जिससे वह उसके सब प्रकार के संदेहों को दूर कर देता है, उसे उत्तर देने पर सहमत करता है, संकोच होने पर समझाता है और अस्पष्ट होने पर व्याख्या करता है। ये सुविधाएं डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली में उपलब्ध नहीं होती।

**टिप्पणी**

2. **कार्यकर्ता के व्यक्तित्व का प्रभाव**– अनुसूची विधि का सबसे बड़ा गुण उत्तरदाता पर कार्यकर्ता के व्यक्तित्व का प्रभाव है। इसमें उत्तरदाता अनुसंधान में रुचि लेता है और उत्तर देने में सहयोग करता है।
3. **व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थापना**– अनुसूची विधि में कार्यकर्ता उत्तरदाता से व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थापना करता है। इससे वह उसके चरित्र, व्यक्तिगत जीवन इत्यादि के विषय में ऐसी बहुत सी बातों का पता लगाता है जिनको जानने का अन्य कोई साधन नहीं है।
4. **मानवीय तत्व**– इस प्रकार अनुसूची विधि से अनुसंधान में मानवीय तत्व का प्रवेश हो जाता है जो कि कितनी भी कुशलतापूर्वक बनी प्रश्नावली में नहीं मिलता। व्यक्तिगत साक्षात्कार में सामाजिक अनुसंधान आकर्षक और मनोरंजक हो जाता है तथा कार्यकर्ता और उत्तरदाता उसमें सक्रिय रूप में भाग लेते हैं।
5. **प्रश्न–संबंधी संदेह का निराकरण**– प्रश्नावली में अनेक ऐसे प्रश्न होते हैं जिनका अर्थ तुरन्त उत्तरदाता की समझ में नहीं आता। डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली में ऐसी स्थिति में या तो उत्तरदाता प्रश्न को उत्तर दिये बिना ही छोड़ देता है या फिर उसका उल्टा–सीधा उत्तर लिखकर खाना–पूर्ति कर देता है। अनुसूची विधि में कार्यकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर प्रश्नावली में दिए गए प्रश्नों के विषय में भ्रम और संदेह का निवारण करता है। यदि उत्तरदाता किसी प्रश्न का अर्थ नहीं समझता तो कार्यकर्ता उसे अर्थ समझाता है।
6. **अनुसूची संबंधी दोष का ज्ञान**– यदि डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली में कोई दोष रह जाता है तो उसका पता अनुसंधानकर्ता को नहीं चलता क्योंकि उत्तरदाता उस दोष की परवाह न करके प्रश्नावली को उल्टा–सीधा भरकर वापिस भेज देते हैं। दूसरी ओर अनुसूची विधि में प्रश्नावली के दोष साक्षात्कारकर्त्ता के सामने आ जाते हैं और इन दोषों को दूर किया जा सकता है।
7. **कार्यकर्ता द्वारा प्रश्नावली भरना**– डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली उत्तरदाता द्वारा भरी जाती हैं। कुछ उत्तरदाता कुछ प्रश्नों को छोड़ देते हैं। कुछ प्रश्नावली भरने के लिए पेंसिल का उपयोग करते हैं। कुछ की लिखावट इतनी खराब होती है कि पढ़ी नहीं जा सकती। इन सब कारणों से अनेक प्रश्नावलियां व्यर्थ हो जाती हैं। अनुसूची विधि में ये दोष नहीं आते क्योंकि इसमें कार्यकर्ता शार्टहैण्ड विधि का प्रयोग करता है जिससे कम समय में अधिक काम होता है।

## अनुसूची के दोष और सीमाएं (Demerits and Limitations of Schedule)

अनुसूची प्रणाली के उपर्युक्त गुणों के बावजूद उसमें कुछ ऐसी कठिनाइयां या सीमायें भी हैं जिनके कारण अनेक बार सामाजिक अनुसंधान में उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस विषय में मुख्य बातें निम्नलिखित हैं–

1. **महंगी और अधिक समय साध्य विधि**– यदि उत्तरदाता एक बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं तो अनुसूची विधि की तुलना में डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली ही अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि सैंकड़ों मीलों का सफर करके प्रत्येक उत्तरदाता से अलग–अलग साक्षात्कार करने में बहुत अधिक धन और समय की आवश्यकता होती है। यदि किसी अनुसंधान में उत्तरदाता विभिन्न देशों में फैले हुए हैं तब तो डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली के अलावा सामाजिक अनुसंधान का अन्य कोई साधन ही नहीं रह जाता है।
2. **अधिक और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता**– साक्षात्कार कराने के लिए कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होती है। अनुसूची विधि में कार्यकर्ता एक–एक करके उत्तरदाता से साक्षात्कार करता है। अस्तु, डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली विधि की तुलना में अनुसूची प्रणाली में अधिक और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है।
3. **कार्यकर्ता की उपस्थिति का प्रभाव**– अनुसूची विधि में उत्तरदाता के सम्मुख सामाजिक कार्यकर्ता उपस्थित रहता है। इस उपस्थिति का जहां कुछ बातों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है वहां इससे उत्तरदाता के उत्तर भी प्रभावित होते हैं। इससे उत्तर स्वाभाविक नहीं रह पाते।
4. **अनुसंधान के संगठन की समस्यायें**– उत्तरदाताओं की संख्या और क्षेत्र जितने ही अधिक बड़े होंगे, अनुसूची विधि से अनुसंधान कार्य के संगठन में उतनी ही अधिक कठिनाई होगी और कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण, उनके कार्य के निरीक्षण इत्यादि में अधिक समय और धन की आवश्यकता होगी। कभी कभी संगठन संबंधी समस्याएं इतनी कठिन हो जाती हैं कि इस विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

## वैयक्तिक अध्ययन

वैयक्तिक अध्ययन की विधि की परिभाषा करते हुए पी. वी. यंग ने लिखा है, ''वैयक्तिक अध्ययन एक सामाजिक इकाई के जीवन की खोज और विश्लेषण की विधि है चाहे वह व्यक्ति, परिवार, संस्था, सांस्कृतिक समूह अथवा एक समुदाय ही हो।''

(1) "Case study is a method of exploring and analysing the life of a social unit be that of a person, a family, a institution, a cultural, group or even a community."

—P.V. Young Scientific Social Surveys and Research

उसका लक्ष्य इन कारकों को निश्चित करना है जो कि इकाइयों के चारों ओर के जगत से संबंध के व्यवहार प्रतिमान में जटिल व्यवहार का निश्चय करते हैं। गुडे और हॉट के शब्दों में, ''वह सामाजिक सामग्री का संगठन करने का एक तरीका है ताकि अध्ययन की सामाजिक वस्तु का एकीकृत रूप बनाए रखा जा सके। कुछ भिन्न शब्दों में अभिव्यक्त करने पर वह एक ऐसी विधि है जिसमें सामाजिक इकाई को सम्पूर्ण रूप में देखा जाता है।''

टिप्पणी

(2) "It is a way of organising social data so as to preserve the unitary character of the social object being studied. Expresses some what differently it is an approach which views a social unit as a whole."

—Goode and Hatt

Method in Social Research

सिनपाओ यंग ने वैयक्तिक अध्ययन विधि की परिभाषा करते हुए लिखा है, ''वैयक्तिक अध्ययन विधि की परिभाषा एक व्यक्ति के छोटे, पूर्ण और गहरे अध्ययन के रूप में की जा सकती है जिसमें कि अनुसंधानकर्ता अपने समस्त कौशल और विधियों का प्रयोग करता है अथवा यह किसी व्यक्ति के विषय में पर्याप्त जानकारी का व्यवस्थित रूप से एकत्रीकरण कहा जा सकता है जिससे कि यह पता चल सके कि वह स्त्री अथवा पुरुष समाज की एक इकाई के रूप में किस प्रकार कार्य करता है।''

(1) "Case study method may be defined as a small inclusive study of an individual in which the investigator brings to bear all his skills and methods or as a systemtic gathering of enough information about a person to permit one to understand how he or she functions as a unit of society."

—Hain Pao Yang

बिसज और बिसज के शब्दों में, ''वैयक्तिक अध्ययन एक प्रकार का गुणात्मक विश्लेषण है जिसमें एक व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यंत सावधानीपूर्वक पूर्ण निरीक्षण सम्मिलित हैं।''

(2) The case study is a form of qualitative analysis involving the very careful and complete observation of a person, a situation or an institution.

—Biesanz J. and Biesanz M.

## वैयक्तिक अध्ययन विधि के लक्षण (Characteristics of Case Study)

वैयक्तिक अध्ययन विधि की उपर्युक्त परिभाषाओं से उसके निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं–

1. **सामाजिक इकाई का अध्ययन**– वैयक्तिक अध्ययन विधि की विशेषता सामाजिक इकाई का अध्ययन करना है। यह इकाई व्यक्ति, परिवार, संस्था, जाति अथवा अन्य कोई समूह अथवा संबंध या स्वभाव हो सकते हैं। इकाई की विशेषता यह होती है कि वह संगठित और सीमित क्षेत्र होता है। गहन अध्ययन के लिए इकाई पर ध्यान जमाना अत्यंत आवश्यक है।
2. **गहन और व्यापक अध्ययन**– वैयक्तिक अध्ययन विधि में इकाई का गहन और विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जा सकता है जिससे कि उसके सभी पहलुओं के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सके जिसके आधार पर प्रामाणिक सामान्य सिद्धांत निकाले जा सकें।

3. **व्यवहार विधि के कारणों का पता लगाना**– वैयक्तिक अध्ययन विधि का लक्ष्य अध्ययन के विषय के व्यवहार के कारणों का पता लगाना है। उसमें व्यवहार में कार्यकारण संबंधों की खोज की जाती है। व्यवहार का अध्ययन चारों ओर के जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों और व्यक्तियों के प्रसंग में किया जाता है। इससे यह पता लगता है, कि विशेष परिस्थितियों में विशेष व्यक्ति, संस्था, समूह अथवा समुदाय से किस प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है।
4. **सम्पूर्ण इकाई का अध्ययन**– वैयक्तिक अध्ययन विधि के लक्षणों की व्याख्या करते हुए गुडे हॉट ने लिखा है, ''वैयक्तिक अध्ययन विधि, कोई प्रविष्ट विधि नहीं है। वह सामाजिक सामग्री को संगठित करने का ऐसा तरीका है जिसमें कि सामाजिक वस्तु की इकाई के चरित्र को बनाये रखा जाता है। कुछ भिन्न शब्दों में वह एक ऐसा दृष्टिकोण हैं जो किसी भी सामाजिक इकाई को एक पूर्ण रूप से देखता है।

## अध्ययन की पूर्णता की विधियां (Methods of Achieving Perfection of Study)

वैयक्तिक अध्ययन विधि में अनुसंधानकर्ता के सम्मुख सबसे बड़ी आवश्यकता अध्ययन की पूर्णता को बनाए रखना है। इसके लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. **सामग्री का विस्तार**– अध्ययन विधि में इकाई के विषय में विस्तारपूर्वक सामग्री एकत्रित की जाती है जिससे कि संपूर्ण चित्र उपस्थित हो सके।
2. **सभी पहलुओं के विषय में सामग्री**– अध्ययन के विषय के बारे में सम्पूर्ण सामग्री प्राप्त करने के लिए समाजशास्त्रीय पहलुओं के अलावा अन्य पहलुओं का भी अध्ययन आवश्यक होता है।
3. **वर्गीकरण**– अध्ययन की इकाई को विशिष्ट वर्गों या प्रकारों में बाँटकर अध्ययन किया जाता है जिससे कि वह विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समझी जा सके।
4. **कलात्मक अध्ययन**– वैयक्तिक अध्ययन विधि में केवल स्थिर रूप इकाई का अध्ययन करना पर्याप्त नहीं होता बल्कि उसके विकासमान रूप में भी उसका अध्ययन करना होता है। यह कलात्मक अध्ययन कहलाता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि में अध्ययन की पूर्णता को बनाए रखने के लिए उपर्युक्त तरीकों से यह स्पष्ट होता है कि इसमें इकाई का क्षैतिज (Horizontal) और लम्बवत् (Vertical) दोनों ही प्रकार से अध्ययन किया जाता है।

## वैयक्तिक अध्ययन के स्रोत (Sources of Case Study)

वैयक्तिक अध्ययन विधि व्यक्तिगत प्रलेखों जैसे डायरियों, पत्रों, आत्मकथाओं और स्मृति लेखों तथा व्यक्ति के जीवन इतिहास के अध्ययन पर आधारित है। संक्षेप में, उसके स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. **व्यक्तिगत प्रलेख**– इनमें डायरियों, आत्मकथाओं और स्मृतियों के लेखों का समावेश होता है। पी. वी. यंग के शब्दों में, ''व्यक्तिगत प्रलेख अनुभव की निरंतरता के प्रतिनिधि हैं जो लिखने वाले के व्यक्तिगत, सामाजिक संबंधों और जीवन दर्शन को प्रकाशित करने में सहायक होते हैं, जो कि बहुदा बाह्य वस्तुओं और आन्तरिक प्रशंसा में अभिव्यक्त होते हैं।''

(2) "Personal documents also tend to represent a community of experience which helps to illuminate the writer's personality social relations and philosophy of life, often expressed in terms of objective reality or in terms of subjective appreciation as if it were so."

—P.V. Young, Scientific Social Surveys and Research

डायरी एक नितान्त व्यक्तिगत प्रलेख है। उसमें व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं के प्रति अपनी भावात्मक और विचारात्मक अनुक्रियाओं का उल्लेख करता है। उसमें वह बातों को बढ़ा–चढ़ाकर नहीं लिखना चाहता क्योंकि डायरी लिखने का प्रयोजन आत्म–संतोष होता है। आत्म–कथाओं में जीवन की विभिन्न घटनाओं के साथ–साथ उनकी ओर व्यक्ति की प्रक्रियाओं का भी उल्लेख होता है। अस्तु, उनके आधार पर लेखक के मानसिक जीवन, भावात्मक प्रतिक्रियाओं, व्यक्तित्व के विकास आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

2. **जीवन वृत्त**– इसमें अध्ययन के विषय में जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है तथा उससे संबंधित अनेक व्यक्तियों से साक्षात्कार करके उसके बारे में महत्वपूर्ण सामग्री एकत्रित की जा सकती है। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक के विषय में जीवनवृत्त एकत्रित करना है तो उसके माता–पिता, परिवार के अन्य सदस्य, शिक्षक, खेल के साथी, पड़ोसी आदि से साक्षात्कार करके उसके व्यक्तित्व, चरित्र, व्यवहार आदि के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री एकत्रित की जा सकती है। इस प्रकार जीवनवृत्त एकत्रित करने में व्यक्ति के बचपन से लेकर वर्तमान आयु तक उसके जीवन की विभिन्न घटनाओं तथा उनके प्रति प्रतिक्रियाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है।

## वैयक्तिक अध्ययन विधि के गुण (Merits of Case Study)

वैयक्तिक अध्ययन के उपर्युक्त विवेचन से उसके गुण स्पष्ट होते हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–

1. **वैध उपकल्पनाओं का निर्माण**– वैयक्तिक अध्ययन विधि में एक आधारभूत मान्यता मानव स्वभाव की मौलिक एकता है, इसलिए उसके आधार पर कुछ उपकल्पनाएं (Valid Hypothesis) बनाई जा सकती हैं। जिनकी परीक्षा करके सामान्य सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं।
2. **निदर्शन के वर्गीकरण में सहायक**– वैयक्तिक अध्ययन विधि की सहायता से इकाइयों को निश्चित वर्गों में बाँटा जा सकता है और इस निदर्शन द्वारा पूर्ण वर्गीकरण किया जा सकता है।

3. **विचलित इकाइयों का पता लगाना**– किसी भी उपकल्पना के सामान्य नियम से विचलन करने वाली इकाइयां विचलित इकाइयां (Deviate Units) कहलाती है साधारणतया इनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जबकि किसी भी क्षेत्र में इनके अध्ययन से सामान्य इकाई के अध्ययन की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है।
4. **प्रक्रिया का अध्ययन**– यदि अध्ययन की विषय सामग्री स्थिर है तो उसके विषय में कोई भी प्रणाली काम दे सकती है परन्तु यदि वह सतत् विकासमान प्रक्रिया (Process) है तो उसका अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन विधि से ही किया जा सकता है क्योंकि उसी में संपूर्ण इकाई का अध्ययन किया जाता है।
5. **अनुसंधानकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव का विकास**– चूंकि व्यक्तिगत अध्ययन विधि में विशिष्ट इकाई का गहन और पूर्ण अध्ययन किया जाता है इसलिए अनुसंधानकर्ता को उसके विषय में व्यापक व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त होता है जो कि अनुसंधान की अन्य प्रणाली का प्रयोग करने में नहीं होता।
6. **वास्तविक जीवन के आंकड़ों को पहचानना**– जो लोग विभिन्न प्रकार के जीवन के निकट संबंध में नहीं आए हैं वे उनके विषय में प्राप्त आंकड़ों का वास्तविक महत्व नहीं जानते। दूसरी ओर जो अनुसंधानकर्त्ता, चोर, जेबकतरों, किशोर अपराधी आदि के निकट संपर्क में आकर उनके जीवनवृत्त का अध्ययन करता है, उनके अनुभवों को विस्तारपूर्वक सुनता है और उनकी परिस्थितियों का विश्लेषण करता है वह उनके विषय में आंकड़ों के वास्तविक और यथार्थ महत्व को जान सकता है।

## वैयक्तिक अध्ययन विधि की सीमाएं (Limitations of Case Study)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक अध्ययन विधि सामाजिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण विधि है। फिर भी अन्य विधियों के समान उसमें भी कुछ दोष पाए जाते हैं। ये दोष अथवा सीमाएं अग्रलिखित हैं–

1. **झूठा आत्मविश्वास**– जबकि अनुसंधान की अन्य विधियों में अनुसंधानकर्ता अपनी सीमाओं को समझे रहता है, व्यक्ति अध्ययन विधि में विशिष्ट इकाई का सूक्ष्म और गहन अध्ययन करने के कारण उसे कभी–कभी यह झूठा आत्मविश्वास हो जाता है कि वह उसके बारे में सब कुछ जानता है और उसको कुछ अन्य जानने की आवश्यकता नहीं है जबकि वास्तव में कितना भी गहन और व्यापक वैयक्तिक अध्ययन किसी व्यक्ति के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता। यह झूठा आत्मविश्वास अवैज्ञानिक दृष्टिकोण उपस्थित करता है और इसके गलत निष्कर्ष निकाले जाने की सम्भावना होती है।

2. **अव्यवस्थित और असंगठित**– चूंकि इस विधि में सैंपल की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और मनमाने ढंग से चाहे जिस विधि से सूचनायें प्राप्त की जाती हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियों के विषय में ही इस विधि से सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं और यह विधि अत्यधिक असंगठित और अव्यवस्थित हो जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस विधि का प्रयोग बुद्धिमान और सुलझे हुए अनुसंधानकर्ता ही कर सकते हैं।
3. **थोड़ी सी इकाइयों पर आधारित निष्कर्ष**– चूंकि वैयक्तिक अध्ययन विधि में प्रत्येक इकाई का विस्तार से गहन अध्ययन किया जाता है। इसलिए इनमें अधिक इकाइयों का अध्ययन संभव नहीं है और कुछ थोड़ी सी इकाइयों के अध्ययन के आधार पर ही सामान्य नियम बना लिए जाते हैं। स्पष्ट हैं कि वे सामान्य नियम उतने प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते जितने कि बड़ी संख्या में इकाइयों के अध्ययन से मिली सामग्री के आधार पर बनाए हुए सामान्य नियम होते हैं।
4. **अत्यधिक व्यय और समय व्यय**– प्रत्येक इकाई के व्यापक और गहन अध्ययन के कारण जहां वैयक्तिक अध्ययन विधि से सीमित संख्या में इकाइयों का अध्ययन किया जा सकता है वहां इसमें समय और धन भी अत्यधिक व्यय होता है यहां तक कि वैयक्तिक अध्ययन में लगभग दो वर्ष लग जाते हैं, अस्तु अनेक समस्याओं में इस विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता।
5. **भूलों की संभावना**– वैयक्तिक अध्ययन विधि में अध्ययन के विषय का चुनाव, अवलोकन को लिखना, व्यवहार का निरीक्षण इत्यादि में अनेक भूल होने की संभावना है। बहुधा अनुसंधानकर्ता निरीक्षण की कमी को कल्पना से पूरा कर लेता है जिससे निष्कर्ष अप्रमाणित हो जाते हैं। गुणात्मक प्रणाली होने के कारण व्यक्ति अध्ययन अधिक आत्मगत हो जाते हैं और उनकी वैज्ञानिकता कम हो जाती है।
6. **काम चलाऊ सैद्धांतीकरण की प्रवृत्ति**– वैयक्तिक अध्ययन विधि में किसी सामाजिक घटना में वास्तविक कार्य–कारण खोजने के स्थान पर सामान्य बुद्धि के आधार पर काम चलाऊ सैद्धांतीकरण (Ad hoc Theorization) करने की प्रवृत्ति हो जाती है। इससे अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक नियमों के अनुसार अनुसंधान का प्रयास नहीं करता।
7. **अन्य दोष**– उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन विधि में अनेक विद्वानों ने अन्य दोष दिखलाए हैं। उदाहरण के लिए इस विधि में अनुसंधानकर्ता और अध्ययन के विषय के मध्य घनिष्ट संबंध होने के कारण अध्ययन का विषय/व्यक्ति ऐसे उत्तर देता है जो सही नहीं होते किन्तु जिनसे अनुसंधानकर्ता संतुष्ट होता है।

टिप्पणी

## वैयक्तिक अध्ययन विधि में सुधार के उपाय

उपयुक्त दोषों के बावजूद वैयक्तिक अध्ययन विधि का सामाजिक अनुसंधान में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है, यदि ध्यान से देखा जाए तो उपयुक्त दोषों में से अनेक को आसानी से दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि वैयक्तिक अध्ययन विधि में झूठा आत्मविश्वास उत्पन्न होने की आशंका है तो अनुसंधानकर्ता को इस संबंध में पहले से ही चेतावनी दी जा सकती है। यदि इसमें निर्देशन का अभाव होता है तो अनुसंधानकर्ता उपर्युक्त उल्टे–सीधे, गलत और अतिशयोक्तिपूर्ण उत्तर देता है तो उनको जाँचने की विधियां अपनाई जा सकती हैं। व्यक्ति वृत्तों के वर्गीकरण के लिए प्रत्यय निश्चित किये जा सकते हैं और उनके अर्थों को भी निश्चित किया जा सकता है। यदि अनेक अनुसंधानकर्ता समान प्रत्ययों के अनुसार वर्गीकरण करें तो तुलनात्मक सामग्री भी प्राप्त की जा सकती है। अस्तु, वैयक्तिक अध्ययन इस प्रकार से किए जाने चाहिए कि अन्य लोग भी समान प्रकार के अनुसंधान कर सकें और उत्तरदाताओं के विवरण व्यक्तिगत कहानियां मात्र न बन जाएं। वास्तव में वैयक्तिक अध्ययन विधि में सबसे अधिक आवश्यकता अनुसंधान को व्यवस्थित करने और उपयोग किए जाने वाले वर्गों की परिभाषा करने की है। अनुसंधानकर्ता इसमें जितनी सावधानियों से काम लेगा वैयक्तिक अध्ययन विधि से उतना ही लाभ होगा। गुडे और हॉट, कार्ल रॉजर्स, एल्टन मेओ, एम. कोमारोवस्की, एलफ्रेड किन्से और जॉन डोलार्ड आदि विद्वानों ने वैयक्तिक अध्ययन विधि में सुधार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इन सुझावों से आंकड़ों के संकलन, लेखन, सम्पादन आदि में उल्लेखनीय प्रगति की जा सकती है। सैंपल विधि के प्रयोग से, विभिन्न प्रकार के नियंत्रण से और पूर्व निश्चित साक्षात्कार से इस विधि को अधिक वैज्ञानिक और शुद्ध बनाया जा सकता है। अध्ययन के विषय व्यक्ति, समूह, संस्थान तथा संस्कृति को केवल एक इकाई न मानकर उनके वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए। जिससे उनके अध्ययन के आधार पर सामान्य नियम निकाले जा सकें। प्रत्येक वैयक्तिक अध्ययन विस्तृतकाल में और सभी पहलुओं में विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में होना चाहिए अध्ययन में सामाजिक परिस्थिति पर लगातार दृष्टि रखी जानी चाहिए। अध्ययन से मिली सामग्री को निश्चित सिद्धांतों के अनुसार संगठित किया जाना चाहिए। निष्कर्ष निकालने के लिए सांख्यिकीय विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके लिए हेटलिंग और कैली ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इन सब उपायों में महत्वपूर्ण बातें पता लगाई जा सकती हैं।

## समाजमितीय प्रविधियां

अवैयक्तिक संबंधों के मापन और अभिलेखन की महत्वपूर्ण विधियां समाजमितीय प्रविधियां है। समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा व्यक्तियों की पसंद–नापसंद, आकर्षण–विकर्षण का मापन और अध्ययन किया जाता है। छोटे समूहों के पारस्परिक आकर्षण–विकर्षण के अध्ययन के लिये ये विधियां बहुत अच्छी हैं। इन विधियों में छोटे समूह के आकर्षण–विकर्षण को आंकड़ों या ग्राफ के द्वारा प्रदर्शित करके अध्ययन किया जाता है।

## समाजमितीय प्रविधियों की परिभाषा

1. **बौनफैनब्रेनर**– ''समाजमिति एक ऐसी विधि है जिसमें समूह के व्यक्तियों की स्वीकृति या अस्वीकृति के विस्तार के मापन के आधार पर समूह के सदस्यों की सामाजिक स्थिति, संरचना तथा विकास का अन्वेषण, वर्णन तथा मूल्यांकन किया जाता है।''
2. **जेलिंग्स 1954**– संक्षेप में समाजमिति विधि वह साधन है जिसके माध्यम से समय विशेष पर एक समूह में प्रचलित सम्पूर्ण रचना को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस विधि में एक ही दृष्टिपात में सम्प्रेषण के मार्ग या आकर्षण–विकर्षण के प्रतिमान पूर्ण रूप से और शीघ्र ही बोधगम्य हो जाते हैं।
3. **करलिंगर**– ''समाजमितीय एक विस्तृत पद है जिससे अनेक विधियों का संकेत मिलता है। इन विधियों के द्वारा व्यक्तियों के चयन, सम्प्रेषण और अंतःक्रिया प्रतिमानों से संबंधित आकड़ों का संकलन और विश्लेषण किया जाता है।''

आधुनिक समाजमितीय विधि में अनेक तकनीकों का विकास हो चुका है। सामाजिक मनोविज्ञान की भिन्न–भिन्न समस्याओं के अध्ययन में भिन्न–भिन्न तकनीकें उपयोग में लायी जाती हैं।

## प्रविधियों की विशेषताएं

1. समाजमितीय प्रविधियों की सहायता से एक समूह के व्यक्तियों के वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
2. समाजमितीय प्रविधियों की सहायता से अंतः वैयक्तिक संबंधों का अध्ययन आकर्षण–विकर्षण और उदासीनता विकल्प के माध्यम से किया जाता है।
3. समाजमितीय प्रविधियों की सहायता से उन्हीं समूहों के व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जा सकता है जो एक–दूसरे से परिचित होते हैं।
4. समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा गुणात्मक स्वरूप वाले अंतः सम्बन्धों को मात्रात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाता है।
5. समाजमितीय प्रविधियों की सहायता से औपचारिक सम्बन्धों का ही अध्ययन किया जाता है।
6. समाजमितीय प्रविधियों की सहायता से उन समूहों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। जिनमें सदस्यों की संख्या सैंकड़ों या हजारों में है।

## समाजमितीय प्रविधियों की प्रक्रिया

1. समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा किसी समूह के लोगों के अंतः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम कुछ कसौटियों को निश्चित करना आवश्यक है।

2. समूह के व्यक्तियों की पारस्परिक पसन्द या आकर्षण–विकर्षण के अध्ययन के लिए समाजमितीय परीक्षण का उपयोग किया जाता है।
3. समाजमितीय परीक्षण के साथ सहायक विधि के रूप में व्यक्तिगत साक्षात्कार या निरीक्षण विधि का उपयोग किया जा सकता है।
4. समाजमितीय परीक्षण में एक समूह के व्यक्तियों की पसन्द जानने के लिए कुछ प्रश्नों की रचना की जाती है। पसन्द का निम्न में से कोई एक अर्थ हो सकता है–
   (i) एक समूह के व्यक्तियों या किसी व्यक्ति विशेष की पसन्द है।
   (ii) व्यक्तियों के सम्प्रेषण सूत्रों की पसन्द है।
   (iii) प्रभाव के सूत्रों की पसन्द।
   (iv) अल्पसंख्यकों के समुदाय की पसंद।

इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय समूह के प्रत्येक सदस्य से एक या कुछ विकल्प प्रश्न पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के नमूने निम्न प्रकार से हैं–

1. आप अपने समूह के किन लोगों के साथ बैठना–उठना पसन्द करते हैं?
2. आपकी मित्र–मण्डली में दो सबसे प्रिय मित्र कौन–कौन हैं?
3. आपकी कक्षा में वे कौन से तीन विद्यार्थी हैं जो पढ़ने–लिखने में औरों से होशियार हैं?
4. आप किस क्लब के सदस्य हैं उस क्लब के सदस्यों में किन दो व्यक्तियों को पसन्द करते हैं?
5. आपके दफ्तर में कौन से चार ऐसे कर्मचारी हैं जिनका बहुत सम्मान है?
6. आपके महाविद्यालय में सबसे लोकप्रिय शिक्षक कौन हैं?
7. समाजमितीय प्रविधियों द्वारा अध्ययन करते समय उपर्युक्त प्रकार के प्रश्न बना लेने के बाद अध्ययन समूह के प्रत्येक सदस्य से ये प्रश्न पूछे जाते हैं।

## समाजमितीय परीक्षणों के प्रकार

1. **आत्म–निर्धारण या सम्बन्धात्मक विश्लेषण**– इस विधि के अंतर्गत एक व्यक्ति को प्रश्नों के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करना होता है। इस विधि में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, जैसे– समूह में सबसे अच्छा व्यक्ति कौन है? आपको सबसे अधिक पसन्द कौन है? आपके समूह में आपको कौन–कौन चुनेगा? आदि। इस विधि का विकास मोरेन (1942) ने किया मोरेने के बाद इस विधि के विकास में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने योगदान दिया है।
2. **समूह सहभागिता स्केल**– यह स्केल थर्सटन की विधि का ही एक रूप है। इस स्केल के द्वारा एक समूह के कार्य–कलापों में सहभागिता का मापन

किया जाता है। इस विधि के विकास में पेपिन्सकों (1952) का महत्वपूर्ण योगदान है।

3. **समूह वरीयता आलेखन**– इस विधि के अंतर्गत समूह के व्यक्तियों की वरीयता और वरीयता की प्रबलता आदि का मापन किया जाता है। इस Technique में समूह के प्रत्येक सदस्य के समूह से अन्य सभी सदस्यों के विकल्प के संबंध में पूछा जाता है कि आपको कौन–कौन कितना पसन्द–नापसन्द है। आपके किन–किन लोगों से तटस्थ सम्बन्ध हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर तीन बिन्दु या पांच बिन्दु स्केल पर प्राप्त किये जाते हैं। इस विधि के विकास में न्यूकाम्ब, (1938) जेलिने, (1940) आदि मनोवैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण स्थान है।
4. **बहुसम्बन्ध समाजमितीय सर्वेक्षण**– यह विधि परम्परागत समाजमितीय विधि का ही एक रूप है। इस विधि में लक्ष्य निर्दिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं। इस विधि को विकसित और क्रमबद्ध करने का श्रेय Tolbet. (1952) & Wechler, (1953) को है।
5. **समय का अनुमान तकनीक**– इस विधि में एक समूह के सदस्यों के विकल्प, आकर्षण और विकर्षण की प्रबलता का मापन मुख्यतः इस आधार पर होता है कि समूह के एक सदस्य ने दूसरे अन्य सदस्यों के साथ अन्तः क्रिया में कितना समय व्यतीत किया अथवा कितना समय व्यतीत करना पसन्द करता है।
6. **अनुमान करो कौन तकनीक**– इस विधि के नाम से ही स्पष्ट है कि इस विधि में अनुमान करो या पहचानो कौन जैसे प्रश्न पूछे जाएं कि बताइये समूह में वह कौन–सा व्यक्ति है जो हर समय दूसरों की सहायता के लिये तत्पर रहता है या यह पूछा जाए कि समूह में वह कौन सा व्यक्ति है जो हमेशा प्रसन्नचित रहता है?

## समाजमितीय विश्लेषण प्रविधियां

समाजमितीय विश्लेषण की अनेक प्रविधियां हैं। इन प्रविधियों में कुछ प्रमुख प्रविधियां निम्न प्रकार से है–

1. समाज आलेख तकनीक
2. समाजमितीय सूचनाएं
3. समाजमितीय मैट्रिसिस
4. आलेखीय विश्लेषण

इन सभी विधियों में सर्वाधिक लोकप्रिय विधि समाज आलेख है। कुछ अनुसंधानों में समाजमितीय मैट्रिसिस का उपयोग किया जाता है, शेष दो विधियां इन दो विधियों की अपेक्षा कम उपयोगी है। अतः यहां दो अधिक उपयोगी विधियों का ही विवरण दिया जा रहा है–

1. **समाज आलेख तकनीक**– समाज आलेख तकनीक में समाज आलेख बनाकर अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। समाज आलेख बनाने के लिए सर्वप्रथम समूह के प्रत्येक व्यक्ति को एक वृत्त के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। फिर प्रत्येक व्यक्ति की पसन्द के एक तीर द्वारा उस व्यक्ति के वृत्त से एक तीर खींचा जाता है जिसे वह पहला व्यक्ति पसन्द करता है। उदाहरण के लिये यदि पहले व्यक्ति से पूछा जाता है कि आप किस व्यक्ति को पसन्द करते हैं? और वह कहता है कि मैं पांचवे व्यक्ति को पसन्द करता हूं तो पहले व्यक्ति से पांचवे व्यक्ति की ओर तीर का निशान बना दिया जाता है। यह समाज आलेख नं. 1 में प्रदर्शित किया गया है।

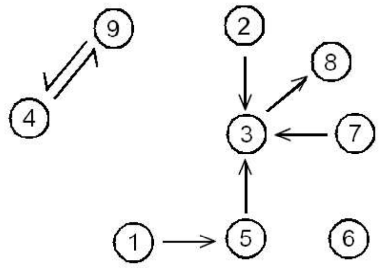


**समाज आलेख नं. 1** : इसमें तीसरा व्यक्ति नायक है। चौथे और नवें व्यक्ति में पारस्परिक सम्बन्ध हैं। ये आपस में प्रशंसा करने वाले व्यक्ति या इनमें पारस्परिक युग्म सम्बन्ध है तथा छठा व्यक्ति एकाकी है। यह समाज आलेख नौ सदस्यों वाले समूह के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रदर्शित कर रहा है।

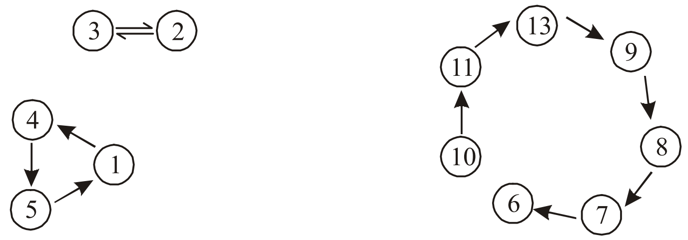


**समाज आलेख नं. 2** : यह समाज आलेख उस समूह का है जिसमें बारह सदस्य होते हैं। पहले, चौथे और पांचवे व्यक्ति में त्रिकोणात्मक सम्बन्ध हैं। छठे, सातवें, आठवें और नवें व्यक्ति में शृंखलाबद्ध सम्बन्ध हैं। इसी प्रकार दसवें, ग्यारहवें और बारहवें व्यक्ति में शृंखलाबद्ध सम्बन्ध हैं। दूसरे और तीसरे व्यक्ति में पारस्परिक युग्म सम्बन्ध हैं। इस समाज आलेख में स्पष्ट है कि इस समूह में कोई नेता नहीं है।

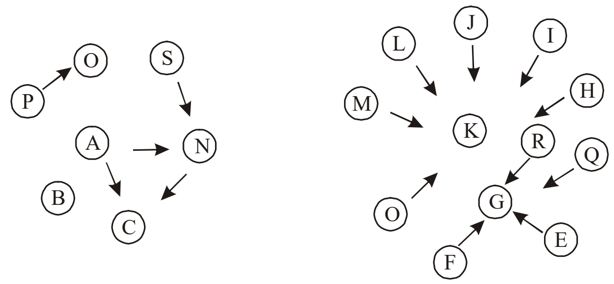

**समाज आलेख नं. 3 :** यह समाज आलेख उस समूह का है जिस समूह में उन्नीस व्यक्ति हैं। इस समाज आलेख के अवलोकन को सात लोगों का समर्थन प्राप्त है। छह व्यक्ति उपनायक हैं जिन्हें चार लोगों का समर्थन प्राप्त है। A, C, N व्यक्तियों में त्रिकोणात्मक सम्बन्ध हैं।

समाज आलेख में जिस व्यक्ति को सर्वाधिक मत प्राप्त होते हैं या जिस व्यक्ति को सर्वाधिक पसन्द किया जाता है या जिस व्यक्ति पर सर्वाधिक निशान होते हैं, वह व्यक्ति ही नेता या Star कहलाता है। एक समूह में एक या अधिक नेता भी हो सकते हैं।

समूह में जिस व्यक्ति को नेता के बाद बहुमत प्राप्त होता है उसे गौण नायक कहते हैं। समूह में वह व्यक्ति Isolate कहलाता है जिसे कोई व्यक्ति पसन्द नहीं करता है और एक ऐसा जो किसी को नहीं पसन्द करता है।

**पारस्परिक आकर्षण का मापन**—पारस्परिक आकर्षण के मापन के लिए सोशियोग्राम विधि का ही उपयोग किया जाता है इसके लिये सर्वाधिक उपयुक्त विधि मर्फी, 1937 द्वारा वर्णित विधि है। मर्फी ने समूह के पुरुष सदस्यों को वर्ग (Squares) के द्वारा तथा स्त्री सदस्यों को वृत्त के द्वारा प्रदर्शित किया। इनकी विधि पर आधारित सोशियोग्राम चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

इस विधि में समूह के अन्य सदस्यों के एक सदस्य के प्रति कैसे सम्बन्ध हैं अर्थात् पारस्परिक सम्बन्धों का मापन या आकर्षण–विकर्षण का मापन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। समाज आलेख 4 में बने सोशियोग्राम से यह स्पष्ट है कि दसवें सदस्य से समूह के अन्य लोगों से जैसे सम्बन्ध हैं, वैसे सम्बन्ध दसवें व्यक्ति से समूह के अन्य लोगों के नहीं है। इस सोशियोग्राम में एक व्यक्ति का तीर जिस व्यक्ति की ओर जाता है। वह उसकी पसन्द का संकेत देता है।

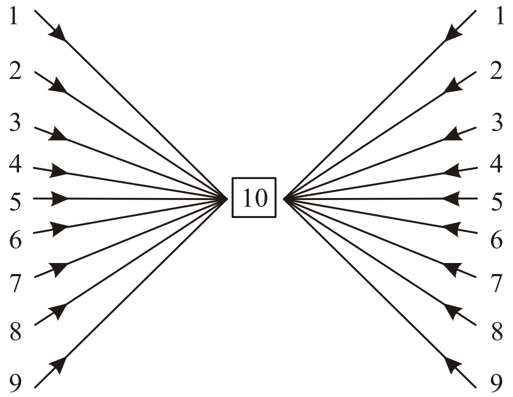


**समाज आलेख नं. 4 :** इस समाज आलेख से स्पष्ट है कि इसमें दस सदस्यों वाले समूह के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रदर्शन है। इस समाज आलेख के अनुसार पहला व्यक्ति दसवें व्यक्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। लेकिन दसवां व्यक्ति पहले व्यक्ति से क्षीण सम्बन्ध रखता है दूसरे व्यक्ति के दसवें व्यक्ति से क्षीण सम्बन्ध हैं जबकि दसवां

व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से साधारण सम्बन्ध रखता है। इसी प्रकार अन्य सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या की जा सकती है। गहरी लाइन घनिष्ठ सम्बन्धों, हल्की लाइन साधारण सम्बन्धों और डाटेड लाइन क्षीण सम्बन्धों की प्रतीक है।

**टिप्पणी**

2. **समाजमितीय मैट्रेसिस :** समाजमितीय मैट्रिसिस के माध्यम से भी अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस विधि में जिस समूह के व्यक्तियों का अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है उस समूह के व्यक्तियों से समाजमितीय परीक्षण के रूप में एक प्रश्न पूछा जाता है और फिर यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति से पूछने के बाद प्रत्येक व्यक्ति की पसन्दों या उत्तरों को समाजमितीय मैट्रिसिस के रूप में निम्न प्रकार से नोट करते हैं और नोट करने के बाद बनी हुई समाजमितीय मैट्रिसिस की सहायता से अन्तःवैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं।

समाजमितीय मैट्रिसिस में सात सदस्यों वाले समूह के अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करती हुई समाजमितीय मैट्रिसिस।

सदस्यों के प्रति पसन्द–

| सदस्य | A | B | C | D | E | F | G |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| A | × | 0 | 0 | 1 | 0 | 1 | 0 |
| B | 0 | × | 0 | 1 | 0 | 0 | 1 |
| C | 0 | 1 | × | 0 | 1 | 0 | 0 |
| D | 0 | 0 | 0 | × | 0 | –1 | 0 |
| E | 0 | –1 | 0 | 1 | × | 0 | 1 |
| F | 1 | 0 | 1 | 1 | 0 | × | 1 |
| G | 0 | 1 | 0 | 1 | 0 | 0 | × |
| **Total** | 1 | 1 | 1 | 5 | 1 | 0 | 3 |

इस मैट्रिसिस में आठ स्तम्भ और नौ पंक्तियां हैं। पहले स्तम्भ के द्वारा समूह के सदस्य A, B, C, ...... G प्रस्तुत किये गये हैं। शेष स्तम्भों में सदस्यों की पसन्दों से सम्बन्धित तथ्य अंकित हैं। उपर्युक्त समाजमितीय मैट्रिसिस में नौ पंक्तियां हैं। पहली ऊपरी पंक्ति में सदस्य A, B, C,.....G प्रदर्शित हैं। अगली सात पंक्तियों में अर्थात् दूसरी ओर से आठवीं पंक्ति तक पसन्दों से सम्बन्धित आंकड़े हैं और अंतिम पंक्ति अर्थात् नवीं पंक्ति में आंकड़ों का योग दर्शाया गया है।

उपर्युक्त समाजमितीय मैट्रिसिस में एक सात सदस्यों वाले समूह की पारस्परिक पसन्दों का अध्ययन किया गया है। प्रत्येक सदस्य को अपने सदस्य को छोड़कर समूह के शेष सदस्यों के प्रति अपनी पसन्द बतानी थी। प्रत्येक सदस्य अपनी पसन्द को तीन प्रकार से बता सकता है। क्या उसमें दूसरे व्यक्ति के लिए पसन्द का अभाव है? पसन्द के लिये 1 अंक देना है, नापसन्द के लिये –1 अंक देना है और पसन्द के अभाव को 0 अंक देना है उपर्युक्त तीन प्रश्न समूह के सातों सदस्यों से पूछ गये। जब A– सदस्य से B–सदस्य के लिये पूछा गया तो उसने पसन्द का अभाव बताया C–सदस्य के लिए पूछा गया तब भी पसन्द का अभाव E और G–सदस्य के लिये भी पसन्द का अभाव बताया, D और F सदस्य को उसने पसन्द किया।

टिप्पणी

## समाजमितीय प्रविधियों के लाभ और गुण

1. **पारस्परिक अन्तः क्रियाओं का अध्ययन**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा एक समूह के व्यक्तियों की पारस्परिक अन्तः क्रियाओं का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।
2. **पारस्परिक पसन्द—नापसन्द का अध्ययन**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा एक समूह के व्यक्तियों की पारस्परिक पसन्द—नापसन्द का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।
3. **समूह सम्बद्धशीलता का अध्ययन**— समूह सम्बद्धशीलता का अर्थ है—समूह के सदस्यों में पारस्परिक आकर्षण। एक समूह में सम्बद्धशीलता जितनी अधिक होती है समूह में एकता और संगठन उतना ही अधिक होता है।
4. **नेता का चयन या नेता की खोज सम्बन्धी अध्ययन**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा नेता के चयन सम्बन्धी अध्ययन सफलतापूर्वक किये जा सकते हैं। सेना, शिक्षा, औद्योगिक क्षेत्रों में या किसी समूह विशेष में जब किसी अध्ययनकर्ता को यह ज्ञात करना है कि समूह के सदस्य किसी व्यक्ति को नेता चुनना चाहते हैं तब वह इन प्रविधियों द्वारा अध्ययन कर सकता है।
5. **सामूहिक मनोबल**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा सामूहिक मनोबल और पूर्वाग्रहों का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।
6. **सम्प्रेषण मार्गों का अध्ययन**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा एक समूह के सदस्यों में सम्प्रेषण मार्ग किस—किस प्रकार के हैं इनका अध्ययन किया जा सकता है। विशेष रूप से पारस्परिक सम्प्रेषण किस प्रकार के हैं? ऐसे अध्ययन इस विधि द्वारा सफलतापूर्वक किए जा सकते हैं।
7. **मितव्ययी विधि**— सेना, शिक्षा, उद्योग, सरकारी तथा गैर सरकारी विभागों के व्यक्तियों की पारस्परिक पसन्द—नापसन्द, अन्तः वैयक्तिक सम्बन्ध, मनोबल आदि का अध्ययन समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा बहुत कम खर्च और बहुत कम समय में किया जा सकता है। इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता का केवल समय ही खर्च होता है, धन का खर्च नगण्य है।
8. **विश्वसनीय अध्ययन**— इस विधि में अध्ययनकर्ता स्वयं तथ्यों का संग्रह करता है और वह तथ्यों का संग्रह एक या कुछ प्रश्नों के आधार पर करता है। अतः उसे जो तथ्य प्राप्त होते हैं वे तथ्य विश्वसनीय होते हैं।
9. **तथ्यों की वस्तुपरक अभिव्यक्ति**— समाजमितीय प्रविधियों में तथ्यों की अभिव्यक्ति वस्तुपरक ढंग से होती है। इसमें चाहे तथ्यों को समाज आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जाए और चाहे समाजमितीय मैट्रिसिस के रूप में प्रस्तुत किया जाए, इन दोनों ही अवस्थाओं में तथ्य वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रस्तुत किए जाते हैं।

## समाजमितीय प्रविधियों के दोष और सीमाएं

टिप्पणी

1. **केवल छोटे समूहों का अध्ययन**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा केवल छोटे समूहों का अध्ययन किया जा सकता है। समूह में जब सदस्यों की संख्या 40—50 से अधिक नहीं होती है तभी इन प्रविधियों का उपयोग किया जा सकता है बल्कि समूह में सदस्यों की संख्या कम होती है तभी यह विधि कुछ उपयोगी होती है और जब संख्या 40—50 से जितनी अधिक होती है उतनी ही इस विधि की उपयोगिता कम और कम होती जाती है।
2. **अध्ययन की पूरक विधि**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा अध्ययन केवल पूरक विधियों के रूप में ही अधिक विश्वसनीय है। जब तक समाजमितीय प्रविधियों के साथ साक्षात्कार विधि और निरीक्षण विधि का उपयोग नहीं किया जाता है तब तक समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा प्राप्त तथ्य अधिक विश्वसनीय नहीं माने जा सकते हैं।
3. **केवल कुछ प्रश्नों की जानकारी**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा किसी समूह के अध्ययन में केवल एक या कुछ प्रश्नों की ही जानकारी प्राप्त होती है। यह प्रश्न चाहे पारस्परिक अन्तः क्रियाओं के संबंध में हो, चाहे समूह सम्बद्धशीलता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इन विधियों के द्वारा सम्पूर्ण पारस्परिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन, समूह सम्बद्धशीलता का सम्पूर्ण अध्ययन और समूह मनोबल का सम्पूर्ण अध्ययन सम्भव नहीं है क्योंकि अध्ययन केवल एक या कुछ प्रश्नों के उत्तर पर आधारित होता है।
4. **गहन अध्ययन सम्भव नहीं**— समाजमितीय प्रविधियों के द्वारा सामाजिक अतः क्रियाओं, पारस्परिक प्रतिक्रियाओं, पारस्परिक पसन्दों, सामूहिक मनोबल आदि का गहन अध्ययन नहीं हो पाता है क्योंकि अध्ययन एक या कुछ प्रश्नों के उत्तरों पर ही आधारित होता है।
5. अनेक विद्वान और अनुसंधानकर्ता आज भी यह मानते हैं कि जब तक समाजमितीय प्रविधियों द्वारा अध्ययन अनुभवी और कुशल अनुसंधानकर्ताओं के द्वारा नहीं किया जाता है तब तक जो भी तथ्य इन विधियों द्वारा प्राप्त होते हैं उन्हें विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है क्योंकि एक या कुछ प्रश्न पूछने पर उत्तरदाता सतही उत्तर देते हैं वास्तविक उत्तर नहीं देते हैं।

## निरीक्षण विधि

वैज्ञानिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण अध्ययन पद्धति निरीक्षण विधि है। निरीक्षण को अवलोकन या प्रेक्षण कुछ भी कह सकते हैं। इन सभी हिन्दी शब्दों का संबंध अंग्रेजी के शब्द Observation से है। निरीक्षण पद्धति कोई नवीन पद्धति नहीं है। प्राकृतिक विज्ञान की समस्याओं के अध्ययन में इस पद्धति का उपयोग बहुत पहले से किया जा रहा है। सामाजिक विज्ञानों की समस्याओं के अध्ययन में निरीक्षण के वैज्ञानिक प्रारूप

का प्रयोग अपेक्षाकृत बाद में उपयोग में आया। निरीक्षण विधि सामाजिक विज्ञानों की समस्याओं के अध्ययन में न केवल उपयोगी है बल्कि यह एक सरल अध्ययन विधि है, साथ–साथ यह तथ्यों के संग्रह का एक यंत्र (Tool) भी है।



निरीक्षण विधि का उपयोग अनुसंधान से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में एक स्वतंत्र विधि के रूप में तथा एक सहायक विधि के रूप में उपयोग होता है। इस विधि द्वारा मनोविज्ञान की उन सभी समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है जो आंखों से दिखाई देती हैं। इस संबंध में कुछ अधिक कहने से पूर्व इसके अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

## निरीक्षण विधि का अर्थ (Meaning of observation Method)

यंग (1966) के अनुसार, "निरीक्षण नेत्रों के माध्यम से किया गया स्वाभाविक घटनाओं के संबंध में एक ऐसा क्रमबद्ध और विचारपूर्ण अध्ययन है जो कि स्वाभाविक घटनाओं के घटित होने के समय पर किया जाता है। निरीक्षण का उद्देश्य विषय सामाजिक घटनाओं, संस्कृति के प्रतिरुपों का मानव व्यवहार के अन्तर्गत सार्थक अन्तःसंबंधित तत्वों के स्वरूप और विस्तार को ज्ञात करना होता है।"

मोजर (1958) के अनुसार, "निरीक्षण विधि को उचित रूप से वैज्ञानिक पूछताछ की श्रेष्ठ विधि कहा जा सकता है। ठोस अर्थों में निरीक्षण में कानों और वाणी की अपेक्षा नेत्रों का उपयोग होता है।"

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, "प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं के कार्य कारण संबंध को ध्यान में रखते हुए उन्हें यथार्थ रूप में देखना और लिखना ही निरीक्षण है।"

ब्राउन और घिषली (1955) के अनुसार, वैज्ञानिक निरीक्षण घटनाओं के प्रति निष्क्रिय अनुक्रिया नहीं है बल्कि एक सक्रिय अनुक्रिया है। वैज्ञानिक के रूप में हम इसमें प्रकृति से प्रश्न पूछते हैं और प्रकृति को उकसाकर अध्ययन करते है, फिर जो घटि होता है उसका क्रमबद्ध लेखन करते हैं। प्राकृतिक केवल इस प्रकार नहीं है कि जो घटित होता है। बल्कि जिसके घटित होने की अनुज्ञा रहती है या जिसे घटित होने को विवश होना पड़ता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर निरीक्षण विधि की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

1. यह कानों और वाणी की अपेक्षा नेत्रों से किया गया अध्ययन है।
2. प्रकृति में घटित होने वाली स्वाभाविक घटनाओं का अध्ययन है।
3. वैज्ञानिक निरीक्षणकर्ता स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का अध्ययन वास्तविक या यथार्थ रूप में करता है।
4. वैज्ञानिक निरीक्षणकर्ता क्रमबद्ध निष्पक्ष और वैज्ञानिक ढ़ंग से स्वाभाविक घटनाओं का निरीक्षण करता है।

5. वैज्ञानिक निरीक्षण विधि में सामाजिक घटनाओं का विश्वसनीय और वैध अध्ययन किया जाता है क्योंकि यह निरीक्षणकर्ता के आंखों देखे तथ्यों और उनके विश्लेषण पर निर्भर करता है।



## निरीक्षण विधि के प्रकार

निरीक्षण विधि में अनेक पद्धति गति विविधताएं हैं। इन पद्धति गति विविधताओं के आधार पर निरीक्षण विधि के कुछ प्रमुख प्रकार निम्न हैं–

1. अनियंत्रित निरीक्षण विधि
   (अ) सहगामी निरीक्षण विधि
   (ब) असहगामी निरीक्षण विधि
   (स) अर्द्ध–सहगामी निरीक्षण विधि
2. नियंत्रित निरीक्षण विधि
3. सामूहिक निरीक्षण विधि
4. नैदानिक निरीक्षण विधि

## 1. अनियंत्रित निरीक्षण विधि

अनियंत्रित निरीक्षण विधि के तकनीकी नाम अनेक हैं– असंरचित निरीक्षण विधि, सरल निरीक्षण, विधि, प्राकृतिक निरीक्षण विधि, अनिर्देशित निरीक्षण विधि, अनौपचारिक निरीक्षण विधि, इन सभी का अर्थ अनियंत्रित निरीक्षण विधि से है।

अनियंत्रित निरीक्षण विधि वह निरीक्षण विधि है जिसमें निरीक्षण बिना किसी नियंत्रण के किया जाता है। इसमें निरीक्षणकर्ता स्वतंत्र रूप से प्रकृति में घटने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। इस प्रकार निरीक्षणकर्ता पर और निरीक्षित की जा रही घटना पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता है। इस प्रकार की निरीक्षण विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यंग (1966) ने लिखा है कि, "अनियंत्रित निरीक्षण में हमें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों की सूक्ष्म परीक्षा करनी होती है। जिसमें विशुद्धता के यंत्रों के उपयोग का या निरीक्षण घटना की सत्यता की जांच का कोई प्रयास नहीं किया जाता है।"

अनियंत्रित निरीक्षण विधि के कुछ प्रमुख दोष निम्न प्रकार से हैं–

1. **अध्ययनकर्ता की अभिनति का प्रभाव**– अनियंत्रित निरीक्षण विधि से निरीक्षणकर्ता की भावनाओं, व्यक्तिगत विचारों, पक्षपातों, पूर्वाग्रहों आदि का प्रभाव उसके निरीक्षणों पर इसलिए पड़ता है क्योंकि निरीक्षणकर्ता पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता है। इसलिए उसके निरीक्षण अभिनति पूर्ण होते हैं और फलस्वरूप निरीक्षण विधि से प्राप्त परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं।
2. **अध्ययन इकाइयों के व्यवहार में अस्वाभाविकता**– अध्ययन इकाइयों का व्यवहार हमेशा स्वाभाविक नहीं होता है। वह अपनी आवश्यकताओं के

**टिप्पणी**

आधार पर समय–समय परिवर्तन करता रहता है। इस प्रयास में उसका व्यवहार अस्वाभाविक या कृत्रिम हो जाता है। जब कोई निरीक्षणकर्ता इस अस्वाभाविक व्यवहार को पहचान नहीं पाता है तब इस संबंध में प्राप्त तथ्य भी अस्वाभाविक होते हैं और परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं।

3. **संवेगात्मक अभिव्यक्ति की अधिकता**– बहुधा यह देखा गया है कि समाज में व्यक्तियों के व्यवहार में संवेगात्मक अभिव्यक्ति आवश्यकता से अधिक होती है या आवश्यकता से कम होती है तब अध्ययन इकाइयों का व्यवहार अस्वाभाविक तो होता है लेकिन अस्वाभाविकता पहचान में नहीं आती है। ऐसी स्थिति में परिणाम दोषपूर्ण होने की संभावना रहती है।
4. **ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भरता**– अनियंत्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता को अपनी ही ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर आंखों द्वारा किये गये निरीक्षण पर आश्रित रहना पड़ता है। जब ज्ञानेन्द्रियों में कुछ दोष होता है और व्यवहार के घटित होने की गति अपेक्षाकृत कुछ तेज होती है। तब इस विधि से प्राप्त परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं।
5. **घटित घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं**–घटित घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने से निरीक्षणकर्ता के लिए घटनाओं का निरीक्षण करने का केवल एक मौका ही रहता है। कई बार जब व्यवहार के घटित होनी की गति बहुत तेज होती है। तब निरीक्षणकर्ता अध्ययन समस्या से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्रित नहीं कर पाता है। कम विश्वसनीय और कम वैध परिणाम अनियंत्रित निरीक्षण विधि से निरीक्षणकर्ता अक्सर प्राप्त करता है।

**सहगामी निरीक्षण विधि**– सहगामी निरीक्षण विधि द्वारा छोटे समूहों का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है, सहगामी निरीक्षण विधि द्वारा समूह अध्ययन तो होता ही है साथ–साथ इस प्रकार की निरीक्षण करना कुछ सरल भी होता है। निरीक्षणकर्ता जितना ही अधिक घुलमिल जाता है उतना ही वह अध्ययन इकाइयों के पारस्परिक संबंधों पर अध्ययन तथा संबंधित सूक्ष्मतम पहलुओं का अध्ययन अपेक्षाकृत शुद्ध ढंग से करता है।

सहगामी निरीक्षण विधि को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि सहगामी निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता जिस समूह के व्यक्ति या व्यक्तियों का निरीक्षण करना चाहता है वह उस समूह में जाकर एक सदस्य के रूप में बस जाता है और उनमें घुल–मिल जाता है तब सहगामी बनकर उनके व्यवहार का अध्ययन करता है। निरीक्षणकर्ता अध्ययन समूह का एक सदस्य बनकर अध्ययन करता है।

अंग्रेजी शब्द Participant Observation का सर्वप्रथम उपयोग लिंडमैन ने अपनी पुस्तक 'Social discovery' में किया। लिंडमैन से पहले भी सहगामी निरीक्षण विधि थी और इसके आधार पर अध्ययन भी किये जाते थे लेकिन इसका नाम रूप वर्तमान प्रकार का न था।

समाजशास्त्रीय अध्ययनों में सहगामी निरीक्षण विधि का उपयोग बहुत अधिक हुआ है। सहगामी निरीक्षण विधि के द्वारा समूह की व्यवहार विशेषताओं, समूह के विश्वासों, रीति–रिवाजों, समूह की अन्तःक्रियाओं, अपराधी व्यवहारों, धार्मिक कार्य विधियों आदि का अध्ययन बहुत शुद्ध ढंग से किया जा सकता है।

## सहगामी निरीक्षणकर्ता की आचार संहिता

सहगामी निरीक्षणकर्ता अपने अध्ययन में कितना सफल होगा यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि सहभागी निरीक्षणकर्ता की आचार संहिता उस समूह के प्रति कैसी है, जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है। वह अध्ययन किये जा रहे समूह की इकाइयों के साथ जब इतना घुल–मिल जाता है कि अध्ययन समूह के सदस्य उसे अपने समूह का ही सदस्य समझने लगते हैं। तभी उसका अध्ययन सफल होता है। उसमें जिन व्यवहार गुणों की आवश्यकता होती है वे निम्न हैं–

1. उसे मृदुभाषी और व्यवहार कुशल होना चाहिए।
2. उसे वही पहनावा पहनना चाहिए जो अध्ययन समूह के व्यक्तियों का पहनावा है।
3. उसे अध्ययन समूह के लोगों में कभी भी दोष नहीं निकालने चाहिए।
4. अध्ययन समूह के व्यक्तियों की समय–समय पर आवश्यकतानुसार प्रशंसा करनी चाहिए।
5. उसे अध्ययन समूह के व्यक्तियों में किसी प्रकार का संदेह अपने प्रति नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए।
6. उसे संतुलित संवेगात्मक अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

सिन पाओ यंग के विचार हैं कि, "सहभागी निरीक्षणकर्ता एक बाहरी व्यक्ति है जो अस्थायी रूप से अध्ययन समूह का सदस्य बनता है। उसकी अध्ययन की जा रही समस्या में अच्छी अन्तर्दृष्टि होती है वह अध्ययन समूह के सदस्यों के साथ–साथ रहते हुए भी वैयक्तिक रूप से घुलता–मिलता नहीं है। बल्कि वह अध्ययन के मामले में उनसे अलग रहता है। लेकिन साथ–साथ वह समूह के क्रिया–कलापों में भाग लेता है।

### लाभ

1. **प्रत्यक्ष अध्ययन**– सहभागी निरीक्षण का सबसे पहला लाभ यह है कि इस विधि में अध्ययनकर्ता सामाजिक विधियों का प्रत्यक्ष अध्ययन करता है। वह जिस समूह का अध्ययन करता है उस समूह में जाकर एक अस्थायी सदस्य के रूप में बस जाता है। और समूह के लोगों में इस तरह घुल–मिल जाता है कि समूह के सदस्य उसे अपने ही समूह का सदस्य समझने लगते हैं।
2. **गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन**– सहभागी निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता को गहन और सूक्ष्म अध्ययन प्राप्त करने का अवसर रहता है क्योंकि अध्ययनकर्ता जिस समूह का अध्ययन करता है वह उसी समूह का होकर रहता है।

3. **वास्तविक व्यवहार का अध्ययन**— सहभागी निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता को अध्ययन इकाइयों के वास्तविक व्यवहार का निरीक्षण करने का अवसर मिलता है। सहभागी निरीक्षण में वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करता है वह उन्हीं लोगों के बीच में जाकर बस जाता है। उनमें बस जाने के कारण वह समूह की आन्तरिक और गुप्त जानकारी भी प्राप्त कर लेता है।
4. **बार—बार अध्ययन विधि**— सहभागी निरीक्षण विधि में यदि कोई निरीक्षणकर्ता कोई निरीक्षण एक बार नहीं कर पाता है अथवा उसे आशंका होती है कि उसके द्वारा किया गया निरीक्षण अविश्वसनीय है तो वह उनके बीच रहते हुए अपने निरीक्षणों को बार—बार दुहरा सकता है जब तक उसे सही तथ्य प्राप्त न हो जाएं।

## सहभागी निरीक्षण की हानियां एवं सीमाएं

1. **पूर्ण सहभागिता संभव नहीं**— सहभागी निरीक्षण का यह सबसे बड़ा दोष है कि सहभागी निरीक्षणकर्ता यह मानकर अध्ययन करने जाता है कि वह अध्ययन समूह में घुल—मिल जायेगा और सहभागिता के आधार पर वह अध्ययन समूह के विभिन्न व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन करने में सफल हो जायेगा। लेकिन यह आसान कार्य नहीं है, कोई समूह किसी बाहरी व्यक्ति को विशेष रूप से अपरिचित व्यक्ति को यूं ही अपने समूह का सदस्य नहीं बना लेता है क्योंकि उन्हें आशंका रहती है कि यह अपरिचित व्यक्ति समूह के गुप्त भेदों को निकाल ले जायेगा।
2. **परिवर्तित समूह व्यवहार**— जब भी कोई सहभागी निरीक्षणकर्ता किसी समूह में सहभागी बनकर निरीक्षण करने जाता है। तो समूह के व्यक्तियो का व्यवहार वास्तविक व्यवहार नहीं रह जाता है। समूह के व्यवहार में औपचारिकता तो आ ही जाती है। औपचारिकता आने के कारण वह अपनी गुप्त बातों को छिपा लेते हैं।
3. **अपरिचित मूल्य बाधा उत्पन्न करता है**— सहभागी निरीक्षणकर्ता अध्ययन समूह के लिए एक अपरिचित व्यक्ति होता है। सहभागी निरीक्षणकर्ता को उसकी अपरिचितता का कोई लाभ नहीं मिलता है बल्कि उसे अपरिचित होने के कारण अध्ययन में कठिनाई का ही सामना करना पड़ता है। अध्ययन समूह में जब तक वह परिचित होकर सहभागी नहीं बन जाता है तब तक उसे अध्ययन समूह के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त नहीं होते हैं।
4. **वस्तुनिष्ठ अध्ययन में कठिनाई**— सहभागी निरीक्षणकर्ता जिस समूह का अध्ययन करता है वह उस समूह में जाकर घुल—मिल जाता है अध्ययन समूह में घुलने—मिलने से, उनके क्रिया—कलापों में भाग लेने से, उनके दुःख—सुख में भागीदारी बनकर और समूह के सदस्यों की तरह व्यवहार करने से, सहभागी निरीक्षणकर्ता की विचारधारा और दृष्टिकोण भी वही हो जाता है जो

टिप्पणी

अध्ययन समूह के अन्य सदस्यों की विचारधारा और दृष्टिकोण होता है। जब सहभागी निरीक्षणकर्ता की विचारधारा, मत, अभिवृत्तियां और पक्षपात आदि समूह के अन्य लोगों के समान हो जाते हैं तो तब वह सहभागी निरीक्षणकर्ता नहीं रह जाता है वह तो समूह का सदस्य बन जाता है इस अवस्था में उसके द्वारा निरीक्षित तथ्यों पर समूह की विचारधारा, मत, अभिवृत्तियों और पक्षपातों का प्रभाव पड़ता है।

**असहभागी निरीक्षण विधि**– असहभागी निरीक्षण विधि वह निरीक्षण विधि है जिसमें निरीक्षणकर्ता जिस समूह के व्यक्तियों का अध्ययन करना चाहता है वह उस समूह के सदस्यों में न घुलते–मिलते हुए तटस्थ रहकर अपनी अध्ययन समस्या के संबंध में निरीक्षण के आधार पर तथ्यों का संकलन करता है। असहभागी निरीक्षण विधि उस समय अधिक उपयोगी हो जाती है जब निरीक्षणकर्ता छोटे समूहों के स्थान पर बड़े समूहों का निरीक्षण करना चाहता है। वह अध्ययन समूह का निरीक्षण बाहर से करता है वह उनमें घुलता–मिलता नहीं है।

## लाभ और गुण

1. असहभागी निरीक्षण विधि में अध्ययनकर्ता समूह में घुलता–मिलता नहीं है वह उनसे तटस्थ रहकर अपनी समस्या के संबधं में तथ्यों का संकलन कर समस्या का अध्ययन करता है। निरीक्षणकर्ता की इस प्रकार की असहभागिता के कारण उसके द्वारा निरीक्षित तथ्यों पर उसकी व्यक्तिगत भावना, विचारों, और अभिवृत्तियों का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह भी कहा जा सकता है कि उसके द्वारा निरीक्षित तथ्य और परिणाम उसकी असहभागिता के कारण वस्तुनिष्ठ होते हैं।
2. असहभागी निरीक्षण विधि में चूंकि निरीक्षणकर्ता तटस्थ होकर अध्ययन और उनका आलेखन करता है। प्राप्त परिणाम विश्वसनीय होते हैं।
3. असहभागी निरीक्षण विधि में असहभागी निरीक्षणकर्ता को अपेक्षाकृत कुछ अधिक सहयोग मिल जाता है क्योंकि असहभागी निरीक्षणकर्ता की जाति, धर्म आदि अध्ययन समूह की इकाइयों के लिए बाधक नहीं होते हैं।
4. कम खर्चीली और समय को बचाने वाले हैं। असहभागी निरीक्षणों में निरीक्षणकर्ता चूंकि समूह में अधिक दिन रहता नहीं है इसलिए असहभागी निरीक्षण विधि में समय और धन की बचत होती है।
5. बड़े समूहों का अध्ययन असहभागी निरीक्षण विधि की सबसे बड़ी उपयोगिता है। जब अध्ययन संभव नहीं होता है। ऐसे में अध्ययन केवल असहभागी निरीक्षण विधि द्वार संभव होता है। भौगोलिक दृष्टि से दूर–दूर तक फैले समूह का भी अध्ययन असहभागी निरीक्षण विधि द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

**टिप्पणी**

## असहभागी निरीक्षण विधि के दोष और सीमाएं

1. असहभागी निरीक्षणकर्ता अपने अध्ययन से जो परिणाम प्राप्त करता है वह सतही निरीक्षणों पर आधारित होते हैं। अतः इन परिणामों से प्राप्त अध्ययन परिणामों की विश्वसनीय सन्देहपूर्ण होती है।
2. असहभागी निरीक्षणकर्ता गहन और सूक्ष्म अध्ययन नहीं कर पाता है। क्योंकि वह अध्ययन समूह के लोगों के साथ न घुलते–मिलते हुए उनमें दूर रहकर, अपनी अध्ययन समस्या का अध्ययन करता है।
3. असहभागी निरीक्षणकर्ता गहन और सूक्ष्म अध्ययन समूह की गुप्त और महत्वपूर्ण सूचनाओं के संबंध में तथ्यों के संकलन से वंचित रह जाता है।
4. असहभागी निरीक्षणकर्ता चूंकि अध्ययन समूह से तटस्थ रहकर, दूर–दूर रहकर अध्ययन इकाइयों का अध्ययन करता है इसलिए उसकी अनुपस्थिति में जो घटनाएं होती हैं उनकी सही जानकारी नहीं प्राप्त कर पाता है।
5. इस असहभागी निरीक्षण विधि से प्राप्त परिणाम समुचित आंकड़ों के अभाव में कम विश्वसनीय और कम वैध होते हैं।

सहभागी और असहभागी निरीक्षण विधि में अन्तर

1. **सहभागिता के आधार पर अन्तर**– सहभागी निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता अध्ययन समूह का सहभागी सदस्य बनते हुए उनमें घुलते–मिलते हुए निरीक्षण करता है। जबकि दूसरी और असहभागी विधि में असहभागी निरीक्षणकर्ता समूह में न घुलते–मिलते हुए असहभागी बनकर अध्ययन करता है।
2. **वस्तुनिष्ठता के आधार पर अन्तर**– सहभागी निरीक्षणों के आधार पर जो अध्ययन किये जाते हैं उनमें अध्ययनकर्ता की अभिनति का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसलिए अध्ययन परिणाम अपेक्षाकृत कम वस्तुनिष्ठ होते हैं। दूसरी ओर असहभागी निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता समूह से असहभागी रहते हुए अपनी समस्या का निरीक्षण करता है, इसलिए अध्ययन परिणामों पर उसकी अभिनति का प्रभाव कम पड़ता है फलस्वरूप उसे अधिक वस्तुनिष्ठ परिणाम प्राप्त होते हैं।
3. **अध्ययन समूह के आकार का अन्तर**– सहभागी निरीक्षण विधि में केवल छोटे आकार के समूहों से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है क्योंकि बड़े आकार के समूहों में सहभागिता होती ही नहीं है। दूसरी ओर असहभागी निरीक्षण विधि में छोटे समूहों से संबंधित समस्याओं का तो अध्ययन किया ही जा सकता है साथ–साथ बड़े समूहों की समस्याओं के अध्ययन में भी यह विधि उपयोगी है।

4. **धन और समय के व्यय के आधार पर अन्तर**— सहभागी निरीक्षण विधि में चूंकि निरीक्षणकर्ता अध्ययन समूह में रहकर ही अध्ययन करता है अतः सहभागी निरीक्षण में समय अधिक लगता है। और अध्ययन मे व्यय भी अधिक लगता है। दूसरी और असहभागी निरीक्षण विधि में धन और समय का व्यय इसलिए कम होता है क्योंकि असहभागी निरीक्षणकर्ता को समूह के सदस्यों के बीच रहना नहीं पड़ता है।
5. **अध्ययन के आधार पर अन्तर**— सहभागी निरीक्षण विधि में सहभागी निरीक्षणकर्ता को अध्ययन के अवसर अधिक होते हैं क्योंकि वह अध्ययन समूह के बीच ही रहकर समस्या का अध्ययन करता है दूसरी ओर असहभागी निरीक्षण विधि में अध्ययनकर्ता के लिए अध्ययन के अवसर अपेक्षाकृत बहुत सीमित होते हैं।

**अर्द्ध सहभागी निरीक्षण विधि**— अर्द्ध सहभागी निरीक्षण विधि सहभागी निरीक्षण विधि और असहभागी निरीक्षण विधि के बीच की विधि है। इसमें सहभागी निरीक्षण विधि की भी विशेषताएं पाई जाती हैं और असहभागी निरीक्षण विधि की भी विशेषताएं पाई जाती हैं। इस विधि का विकास अध्ययनकर्ताओं ने इसीलिए किया है क्योंकि किसी भी अध्ययन समूह में सही अर्थों में सहभागी बनकर अध्ययन करना कठिन है। गुड और हॉठ (1950) ने सहभागी निरीक्षण विधि और असहभागी निरीक्षण विधि के मध्यवर्ती मार्ग को अपनाने को अर्ध सहभागी निरीक्षण विधि की संज्ञा दी है।

अर्द्ध–सहभागी निरीक्षण विधि वह निरीक्षण विधि है जिसमें निरीक्षणकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह के क्रिया कलापों में तटस्थ भाव से सहभागी बनते हुए निरीक्षण करता है और जब सहभागिता की वह आवश्यकता नहीं समझता है तब वह असहभागी बनते हुए अपनी समस्या के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्यों का निरीक्षण करके अध्ययन करता है। यह विधि सहभागी निरीक्षण विधि समय और धन की अपेक्षा कुछ कम खर्चीली है लेकिन असहभागी निरीक्षण विधि की अपेक्षा इसमें समय और धन अधिक व्यय होता है।

## 2. नियंत्रित निरीक्षण विधि

नियंत्रित निरीक्षण विधि को व्यवस्थित निरीक्षण विधि भी कह सकते हैं। नियंत्रित निरीक्षण विधि वह अध्ययन विधि है जिसमें निरीक्षणकर्ता और घटना दोनों पर नियंत्रण करके निरीक्षण कर तथ्यों का संग्रह किया जाता है और तथ्यों के संग्रह का विश्लेषण करके अनुसंधान समस्या के संबंध में अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। नियंत्रित निरीक्षण विधि द्वारा सामाजिक जीवन से संबंधित व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन, अध्ययन क्षेत्र में जाकर, निरीक्षणों के आधार पर भी किया जा सकता है और प्रयोगशाला में भी कुछ समस्याओं का अध्ययन इस नियंत्रित विधि द्वारा किया जा सकता है।

नियंत्रित निरीक्षण विधि को हम वैज्ञानिक निरीक्षण विधि कहते हैं क्योंकि इस निरीक्षण विधि के आधार पर प्राप्त परिणामों में वस्तुनिष्ठता, निश्चयात्मकता, क्रमबद्धता, प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के गुण पाये जाते हैं। इस विधि को संचित निरीक्षण विधि भी कहते हैं क्योंकि इस विधि में निरीक्षणकर्ता पूर्व नियोजित ढंग से बनायी गई योजना के आधार पर नियंत्रित दशाओं में विभिन्न उपकरणों और यंत्रों की सहायता से अपनी अध्ययन समस्या के संबंध में तथ्यों का संकलन करता है। प्राप्त तथ्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण करके वह समस्या के संबंध में विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करता है।

## नियंत्रित निरीक्षण विधि में तीन प्रकार से नियंत्रण

नियंत्रित निरीक्षण विधि मे निरीक्षणकर्ता तीन प्रकार के नियंत्रणों पर ध्यान देता है। जब तक वह तीन प्रकार के नियंत्रण करके निरीक्षण नहीं करता है, तब तक उसके परीक्षण, नियंत्रित निरीक्षण नहीं कहलाते हैं–

### (क) निरीक्षण परिस्थिति पर नियंत्रण

नियंत्रित विधि में निरीक्षणकर्ता जिस परिस्थिति में निरीक्षण करता है वह परिस्थिति निरीक्षण क्षेत्र या परिवेश कहलाती है। निरीक्षणकर्ता इस परिस्थिति को इस प्रकार नियंत्रित करता है कि वह अध्ययन इकाइयों के व्यवहार का तटस्थ होकर अध्ययन कर सके। निरीक्षण परिस्थिति जितनी ही प्राकृतिक होती है अध्ययन इकाइयों के स्वाभाविक व्यवहार घटित होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है। निरीक्षणकर्ता हमेशा इस बात का प्रयास करता है कि निरीक्षण परिस्थिति में स्वाभाविकता को छिन–भिन्न किये बिना निरीक्षण करे। इसके लिए वह यह भी कर सकता है कि वह विद्यार्थियों का खेल टीचर बनकर उनका निरीक्षण करें।

निरीक्षण परिस्थिति प्रयोगशाला में बहुधा ऐसी बनायी जाती है जहां से निरीक्षणकर्ता अध्ययन इकाइयों के व्यवहार का निरीक्षण कर सकता है लेकिन अध्ययन इकाइयों को निरीक्षणकर्ता दिखाई देने नहीं देता है, उसकी उपस्थिति का भी उनको एहसास नहीं होता है। इसके लिए एक ऐसा शीशा जिसमें एक ओर से दूसरी ओर तो दिखाई देता है परन्तु दूसरी ओर से पहली ओर नहीं दिखाई देता है। निरीक्षणकर्ता उस ओर बैठ जाता है जिधर से दूसरी ओर की चीजें दिखाई देती हैं।

### (ख) निरीक्षणकर्ता पर नियंत्रण

गुड और हॉट (1952) का विचार है कि सामाजिक अनुसंधानों में सामाजिक परिस्थिति पर नियंत्रण करना तुलानात्मक रूप से कठिन होता है। अतः निरीक्षणकर्ता को अपने व्यवहारों को अवश्य नियंत्रित रखना चाहिए, जिससे नियंत्रित निरीक्षणों द्वारा शुद्ध परिणाम प्राप्त किये जा सकें। निरीक्षणकर्ता के निरीक्षण जब अभिनति पूर्ण होते हैं जब निरीक्षण दोषपूर्ण हो जाते हैं। निरीक्षणकर्ता को चाहिए कि वह निष्पक्ष रहकर, व्यक्तिगत, विचारधारा और भावनाओं से प्रभावित न होकर एक वैज्ञानिक की तरह निरीक्षण करे, तभी निरीक्षण से सत्य तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

टिप्पणी

यह भी देखा गया है कि निरीक्षणकर्ता निरीक्षण चाहे सहभागी प्रकार का करे और चाहे असहभागी प्रकार का करे, वह निरीक्षण परिवेश का एक अंग तो होता ही है और चूंकि वह निरीक्षण परिवेश का अंग बन जाता है इसीलिए निरीक्षणकर्ता की उपस्थिति निरीक्षण परिवेश को प्रभावित ही नहीं करती है बल्कि निरीक्षण इकाइयों के व्यवहार में भी कुछ बनावटीपन और कृत्रिमता आ जाती है। ऐसी स्थिति में उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी उपस्थिति का निरीक्षण इकाइयों पर और निरीक्षण परिवेश पर कम से कम प्रभाव पड़े।

## (ग) निरीक्षित व्यवहार की रिकॉर्डिंग और नियंत्रण

कोई भी निरीक्षणकर्ता जब अध्ययन इकाइयों के व्यवहार प्रतिमानों का निरीक्षण करता है तो उसके लिए यह आवश्यक होता है कि व्यवहार प्रतिमानों का निरीक्षण वह सही और शुद्ध ढंग से करें रिकॉर्डिंग में कोई बात छूटे नहीं जिससे कि निरीक्षण तथ्यों के कोई महत्वपूर्ण तथ्य न छूटे और न गलत रिकार्ड हो। इसके लिए निरीक्षणकर्ता को पहले से ही योजना बना लेनी चाहिए, प्रश्नावली अनुसूची, नोट्स आदि पहले से ही तैयार कर लेने चाहिए। मनोविज्ञान के व्यवहार के अध्ययन के लिए दो प्रकार के उपागमों का उपयोग किया गया है–

1. मोलर उपागम, इस प्रकार के उपागम में बड़े–बड़े अधिक देर तक चलने वाले व्यवहारों को इकाई माना जाता है। जैसे दो लागों की सम्पूर्ण बातचीत को इकाई माना जाता है।
2. आणविक उपागम, इस प्रकार के उपागम में छोटे–छोटे व्यवहारों को वस्तुनिष्ठ ढंग से नोट किया जाता है या रिकार्ड किया जाता है।

## नियंत्रित और अनियंत्रित निरीक्षण विधि में अन्तर

नियंत्रित और अनियंत्रित निरीक्षण विधि में अन्तर के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु अग्र प्रकार से हैं–

1. नियंत्रित निरीक्षण विधि मे सामाजिक व्यवहार या व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन करते समय नियंत्रित परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है अर्थात जिस निरीक्षण परिवेश में अध्ययन किया जाता है उस परिवेश को नियंत्रित करके अध्ययन किया जाता है। अनियंत्रित निरीक्षण विधि में किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता है।
2. नियंत्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता पर भी कुछ नियंत्रण होते हैं, जिससे वह एक निश्चित और निर्धारित ढंग से निरीक्षण करता है। अनियंत्रित निरीक्षण विधि में नियंत्रणकर्ता को पूरी छूट होती है। वह अपनी इच्छानुसार निरीक्षण कर सकता है।
3. नियंत्रित निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता पूर्व निश्चित योजना के अनुसार व्यवहार की रिकॉर्डिंग यन्त्र और उपकरणों की सहायता से करता है। जबकि

अनियंत्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता की निरीक्षणोक को नोट करने की न तो कोई योजना होती है और न ही वह किसी विशेष रूप से किन्हीं यंत्र, उपकरणों का उपयोग करता है।

**टिप्पणी**

4. नियंत्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षण के लिए पहले से ही योजना तैयार की जाती है। और योजना के आधार पर ही निरीक्षण करके तथ्यों का संग्रह किया जाता है। दूसरी ओर अनियंत्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षण के लिए पहले से कोई योजना नहीं की जाती है, वह किसी भी प्रकार से निरीक्षण करने को स्वतंत्र होता है।
5. नियंत्रित परीक्षण विधि से अध्ययन इकाइयो की गुप्त और अन्तरंग सूचनाओं को जानना कठिन होता है। जबकि दूसरी ओर अनियंत्रित सहभागी निरीक्षण विधि में इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।
6. नियंत्रित निरीक्षण विधि में यंत्र, उपकरणों की सहायता से व्यवहार, प्रतिमानों का अध्ययन जितनी सूक्ष्मता और जितने विश्लेषणात्मक ढंग से किया जाता है, ऐसा अध्ययन अनियंत्रित निरीक्षण विधि में संभव नहीं है।

## 3. सामूहिक नियंत्रण विधि

सामूहिक निरीक्षण विधि अपने नाम के अनुसार है। सामूहिक निरीक्षण विधि में एक निरीक्षणकर्ता न होकर, निरीक्षणकर्ताओं का एक समूह होता है। सामूहिक निरीक्षण विधि को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, "यह वह निरीक्षण विधि है जिसमें सामाजिक घटना तथ्यों तथा या व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन कई निरीक्षणकर्ता मिलकर करते हैं इससे निरीक्षणों से प्राप्त तथ्य अधिक शुद्ध प्राप्त होते हैं।

सिन पाओ यंग ने सामूहिक निरीक्षण विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "सामूहिक नियंत्रण नियंत्रित निरीक्षण और अनियंत्रित निरीक्षण का मिला–जुला रूप होता है। इसमें कई निरीक्षणकर्ता एक साथ मिलकर निरीक्षण और निरीक्षण सामग्री की रिकॉर्डिंग करते है और बाद में एक केन्द्रीय व्यक्ति द्वारा, संकलित आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामूहिक निरीक्षण में अनेक निरीक्षणकर्ता साथ–साथ निरीक्षण करते हैं। दूसरे यह भी स्पष्ट है कि निरीक्षणकर्ता उपकरण यंत्रों और निरीक्षण सूची चौथे सामूहिक निरीक्षण का कार्य योजनाबद्ध तरीके से होता है और यह योजना केन्द्रीय निरीक्षणकर्ता या मुख्य निरीक्षणकर्ता के हाथ में होती है।

## 4. नैदानिक निरीक्षण विधि

मानसिक चिकित्सा के क्षेत्र मे नैदानिक परीक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है। नैदानिक निरीक्षण विधि सामान्य निरीक्षण विधि से भिन्न है परन्तु नैदानिक साक्षात्कार विधि के बहुत अधिक समीप है। इस निरीक्षण विधि में निरीक्षण विधि के गुण भी पाये जाते हैं और साथ ही साथ नैदानिक साक्षात्कार विधि के गुण भी पाये जाते हैं। इस

विधि का उपयोग बहुधा समस्यात्मक लोगों के अध्ययन और मानसिक रोगियों के अध्ययनों में किया जाता है।

## नैदानिक निरीक्षण विधि की विशेषताएं

**टिप्पणी**

1. नैदानिक निरीक्षण में साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार के संचालन में पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है।
2. इस विधि में साक्षात्कारकर्ता की भूमिका अंश मात्र की होती है अथवा बहुत कुछ निष्क्रिय प्रकार की होती है।
3. इस विधि में व्यक्ति के मानसिक विकारों के कारणों को खोजने और जानने का प्रयास किया जाता है।
4. इस विधि द्वारा मानसिक विकारों को दूर करने के उपायों को भी खोजने का कार्य किया जाता है।
5. इस विधि के द्वारा कुण्ठित अथवा दमित संवेगों और विचारों का अध्ययन किया जाता है।
6. इस विधि के द्वारा वास्तविक मनोदशाओं का अध्ययन किया जा सकता है।
7. वस्तुपरक और विश्वसनीय अध्ययन होता है।
8. व्यक्तिगत पक्षपात का न्यूनतम प्रभाव पड़ता है।

कैथराइन की रिपोर्ट के आधार पर एक उदाहरण निम्न प्रकार से हैं–

**लूसी की केस हिस्ट्री और लक्षण**– जब लूसी की आयु दो वर्ष की थी तभी से उसकी व्यवहार संबंधी समस्याएं प्रारम्भ हुईं। जब वह तीन वर्ष की थी तब गुड़ियों से खेलने के स्थान पर कहानियां सुनना पसन्द अधिक करती थी। उसका स्वभाव उद्दण्ड, जिद्दी और क्रोधी प्रकार का था। वह अन्य बच्चों के साथ खेलती कम लड़ती अधिक थी। अपने घर के सदस्यों में पिता को अधिक पसंद करती थी। वह अक्सर अपने पिता के साथ घूमने भी जाया करती थी। कभी–कभी क्रोध आने पर वह अपने पिता से भी रुष्ट हो जाया करती थी। एक बार वह अपने पिता से बातें कर रही थी, बीच में पिता का ध्यान अन्य लोगों की बातचीत में उलझ गया, लूसी ने देखा कि पिताजी उसकी बातें नहीं सुन रहे हैं तो उसने कुद्ध होकर अपने पिता के पैर में काट लिया।

## निरीक्षण विधि के पद

निरीक्षण विधि के अनेक प्रकार है अतः निरीक्षण विधि में विधि परक अन्तर भी अनेक हैं। फिर भी निरीक्षण विधि के सभी प्रकारों को ध्यान में रखते हुए निरीक्षण विधि के कुछ महत्वपूर्ण पद निम्नलिखित हैं–

1. **समस्या तथा उद्देश्य**– निरीक्षण विधि द्वारा अध्ययन करने से पहले निरीक्षणकर्ता किसी अध्ययन समस्या का चुनाव करते हैं। निरीक्षणकर्ता के पास जब तक कोई अध्ययन समस्या नहीं होती है तब तक वह निरीक्षण नहीं

टिप्पणी

कर सकता है। अध्ययन समस्या चुनने के बाद निरीक्षणकर्ता समस्या से संबंधित साहित्य सर्वेक्षण करके यह ज्ञात करता है कि उसकी अध्ययन समस्या से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किन–किन मनोवैज्ञानिकों ने किया है और उन्हें क्या परिणाम मिला।

2. **अध्ययन योजना**– समस्या और उद्देश्यों के निश्चित हो जाने के बाद निरीक्षणकर्ता यह निश्चित करता है कि वह समस्या का अध्ययन निरीक्षण की किस विधि द्वारा करेगा। इस संबंध में निरीक्षणकर्ता उपयुक्त योजना बना लेता है। इस योजना के अन्तर्गत ही निरीक्षणकर्ता पहले से ही निश्चित कर लेता है कि वह किन लोगों का निरीक्षण करेगा और निरीक्षण में किन–किन व्यवहारों को किन उपकरण यंत्रों की सहायता से नोट करेगा। योजना के अन्तर्गत ही वह निरीक्षण के लिए क्षेत्र, उपकरण, यंत्र, सामग्री और समय आदि में पहले से ही निर्धारित कर लेता है। निरीक्षणकर्ता जितनी ही उपयुक्त अध्ययन योजना बनाता है वह अपनी अध्ययन समस्या का अध्ययन उतने ही वैज्ञानिक ढंग से करता है।
3. **व्यवहार निरीक्षण**–पूर्व योजना के अनुसार उपकरण, यंत्रों आदि की सहायता से निरीक्षणकर्ता स्वयं अपनी आंखें से भी सामाजिक घटना या व्यवहार का निरीक्षण करता है। निरीक्षण करते समय निरीक्षणकर्ता व्यवहार के उन पक्षों का निरीक्षण अधिक सावधानी और ध्यान से करता है जो उनकी अध्ययन समस्या से संबंधित और पूर्व योजनानुसार हैं। निरीक्षणकर्ता व्यवहार का निरीक्षण करने से पहले यदि कोई आवश्यक तैयारी होती है तो उसे कर लेता है और वह व्यवहार का निरीक्षण निष्पक्ष और तटस्थ होकर करता है।
4. **तथ्यों का विश्लेषण**– निरीक्षणकर्ता तथ्यों या आंकड़ों के संकलन के बाद तथ्यों का विश्लेषण, वर्गीकरण, सारणीयन और सांख्यिकीय विधियों की सहायता से करता है। तथ्यों का विश्लेषण सांख्यिकीय आधार पर तभी संभव होता है जब निरीक्षण तथ्यों को आंकिक आंकड़ों में परिवर्तित किया जा सके।
5. **परिणाम और विवेचना**– निरीक्षणकर्ता तथ्यों का विश्लेषण करने के बाद विश्लेषण के आधार पर प्राप्त परिणामों की विवेचना करता है। विवेचना में वह सामाजिक घटनाओं और व्यवहार प्रतिमानों पर न केवल प्रकाश डालता है बल्कि उनके कारणों की भी विवेचना करता है।

## महत्व और गुण

1. **सरल अध्ययन**– सामाजिक घटनाओं और सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन करने की सबसे सरल विधि निरीक्षण विधि है। अनियंत्रित निरीक्षण विधि तो और भी सरल है, दूसरी ओर नियंत्रित निरीक्षण विधि नैदानिक निरीक्षण विधि तथा सामूहिक निरीक्षण विधि द्वारा अध्ययन अपेक्षाकृत कुछ

कम सरल हैं। इन निरीक्षण विधियों द्वारा अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता को थोड़े बहुत प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

2. **व्यापक अध्ययन**– निरीक्षण विधि की सहायता से छोटे–बड़े सभी समूहों का और उनसे संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है। शर्त केवल यह है कि इस विधि द्वारा केवल निरीक्षित घटनाओं का ही अध्ययन किया जा सकता है। जिन घटनाओं का निरीक्षण नहीं किया जा सकता है उनका अध्ययन भी हम इस विधि द्वारा नहीं कर सकते हैं।
3. **परिकल्पना बनाने में उपयोगी**– निरीक्षण विधि द्वारा किसी सामाजिक घटना या व्यवहार प्रतिमानों अथवा इनसे संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है, क्योंकि निरीक्षण विधि एक अध्ययन विधि है। इसके अतिरिक्त निरीक्षण विधि द्वारा जो परिणाम प्राप्त होते हैं उन परिणामों के आधार पर वैज्ञानिक परिकल्पना की जाती है।
4. **वास्तविक परिस्थितियों में अध्ययन**– निरीक्षण विधि द्वारा समाज की या जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में अध्ययन करने की सुविधा होती है। इससे प्राकृतिक वातावरण में घटी घटनाओं का अध्ययन करके महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये जाते हैं।
5. **प्रत्यक्ष अध्ययन**– निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता सामाजिक घटना या व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन स्वयं अपनी आंखों से देखकर करता है इसलिए उसके द्वारा जो इस प्रकार के अध्ययन किये जाते हैं उनसे महत्वपूर्ण ज्ञान ही नहीं प्राप्त होता बल्कि विश्वसनीय परिणाम भी प्राप्त होते हैं।
6. **कार्यकारण संबंध का अध्ययन**– निरीक्षण विधि के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि कार्यकारण संबंध का अध्ययन नहीं होता है फिर भी इस विधि द्वारा अनुमानात्मक कार्यकारण संबंध का अध्ययन अवश्य किया जाता है और फिर कार्यकारण के संबंध में परिकल्पनाएं बनाकर अन्य विधियों द्वारा परिकल्पनाओं की जांच की जाती है।
7. **विश्वसनीयता**– निरीक्षण विधि एक विश्वसनीय अध्ययन विधि है क्योंकि इसमें घटनाएं जिस रूप में घटती हैं उसी रूप में उनका अध्ययन किया जाता है, दूसरे निरीक्षणकर्ता आंखों देखी घटनाओं के संबंध में तथ्य संकलित करता है। अतः निरीक्षण विधि से जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे विश्वसनीय, वैध और वैज्ञानिक होते हैं।
8. **अपरिचित भाषा बोलने वाले लोगों का अध्ययन**– निरीक्षण विधि में अधिकांशतः निरीक्षणकर्ता क्योंकि नेत्रों का ही अधिक उपयोग करता है। अतः निरीक्षणकर्ता उन प्रयोज्यों या समूहों का अध्ययन कर सकता है जो दूसरी या अन्य भाषा बोलने वाले लोग हैं।

**टिप्पणी**

9. **गहन अध्ययन**– निरीक्षण विधि द्वारा सामाजिक घटनाओं और सामाजिक व्यवहारों का गहन अध्ययन भी संभव है। सहभागी निरीक्षण विधि में सहभागी निरीक्षणकर्ता जिन लोगों का अध्ययन करता है उन लोगों के बीच जाकर बस जाता है और इस प्रकार उनमें रहते हुए सामाजिक व्यवहार और सामाजिक घटनाओं का गहनतम अध्ययन करने में सफल हो जाता है।

## सीमाएं और दोष

1. **व्यक्ति व्यवहार तक सीमित**– निरीक्षण विधि के द्वारा व्यक्ति अथवा बाह्य व्यवहार का ही अध्ययन किया जा सकता है। इस विधि द्वारा आंखों से दिखाई देने वाले व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। व्यवहार के अन्तर्निहित पक्षों का अध्ययन इस विधि द्वारा कठिन है।
2. **नियंत्रण में कठिनाई**– निरीक्षण विधि द्वारा नियंत्रित परिस्थितियों में उपकरण और यंत्रों के द्वारा निष्पक्षता से तथ्यों का संकलन निरीक्षणकर्ता नियंत्रित निरीक्षण विधि में करता है। लेकिन कई बार यह देखा गया है कि अध्ययन क्षेत्र, सामाजिक घटनाओं और निरीक्षणकर्ता के नियंत्रण से संबंधित नियंत्रण मे कठिनाई का अनुभव होता है।
3. **सीमित आयोग**– निरीक्षण विधि का उपयोग सीमित है। यह देखा गया है कि जब अध्ययन इकाइयां बहुत दूर तक फैली होती हैं तब उन इकाइयों का अध्ययन इस विधि द्वारा कठिन होता है। दूसरे जब निरीक्षणकर्ता को सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं। तब भी इस विधि द्वारा अध्ययन कठिन होता है।
4. **अभिनति की समस्या**– निरीक्षण विधि द्वारा अध्ययन करते समय अध्ययन इकाइयों के साथ निरीक्षणकर्ता इतना घुलमिल जाता है कि उसका अध्ययन इकाइयों के साथ अटैचमेंट हो जाता है, इसके अतिरिक्त निरीक्षणकर्ता की व्यक्तिगत भावनाओं, पक्षपातों और अभिवृत्तियों आदि का प्रभाव भी निरीक्षित तथ्यों पर पड़ता है।
5. **निरीक्षणकर्ता की सीमाएं**– निरीक्षण विधि की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि निरीक्षणकर्ता कितना योग्य, प्रशिक्षित और कितना व्यवहार कुशल है। अगर निरीक्षणकर्ता में ये गुण नहीं हैं तो निरीक्षण विधि द्वारा सही तथ्यों का संकलन नहीं हो पाता है।
6. **मात्रात्मक तथ्यों का अभाव**– निरीक्षण विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस विधि द्वारा जो तथ्य या आंकड़े एकत्र होते हैं बहुधा वे विवरणात्मक होते हैं, तथ्य या आंकड़ें, अंकों के रूप में न होने से इस विधि से प्राप्त परिणामों का सांख्यिकीय विश्लेषण करना कठिन होता है।

## निरीक्षण विधि के दोषों को दूर करने के उपाय

1. **निरीक्षणकर्ता का प्रशिक्षण**– निरीक्षण विधि के दोषों के दूर करने का सबसे पहला उपाय यह है कि निरीक्षणकर्ता को प्रशिक्षित किया जाये।

प्रशिक्षण में निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण विधि का तकनीकी ज्ञान कराया जाये और उसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का प्रशिक्षण दिया जाये। जिसमें कि निरीक्षणकर्ता समस्याएं इस प्रकार के प्रशिक्षण के बाद स्वतः ही दूर हो जायें

टिप्पणी

2. **समस्या का विस्तृत ज्ञान**– निरीक्षणकर्ता जिसे समस्या का अध्ययन करता है उसका उसे विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। विस्तृत ज्ञान के अभाव में वह समस्या का अध्ययन ठीक से नहीं कर पाता है। उसे किस व्यवहार का क्या और कैसे अध्ययन करना है इसका ज्ञान होना चाहिए। निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण करते समय समस्या से संबंधित उद्देश्यों का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।
3. **रिकार्डिंग संबंधी सावधानियां**– निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण के साथ–साथ निरीक्षण तथ्यों का अंकन या लेखन करना चाहिए। इसके लिए वह अपने साथ रिकॉर्डिंग करने वाला एक सहायक रख सकता है अथवा उपकरणों या यंत्रों की सहायता से रिकार्डिंग कर सकता है। तथ्यों की रिकॉर्डिंग में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि निरीक्षणकर्ता को न केवल तथ्य जैसे जिस रूप में हैं उसी रूप में निरीक्षण करना चाहिए बल्कि उसे उनकी रिकॉर्डिंग भी उसी रूप में करनी चाहिए।
4. **निरीक्षणकर्ताओं की संख्या**– निरीक्षण विधि को उन्नत करने का और इसके दोषों को दूर करने का एक उपाय यह है कि इसमें एक से अधिक निरीक्षणकर्ता हों और इनमें एक केन्द्रीय निरीक्षणकर्ता होना चाहिए जिसकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी हो। शेष निरीक्षणकर्ता उसके सहायक निरीक्षणकर्ता के रूप में होने चाहिए।

## निर्धारण मापनी विधियां

मापनी एक प्रकार का साधन है जिसके द्वारा हम अपने वातावरण में स्थित विभिन्न चीजों का मापन करते हैं। उदाहरण के लिए लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई को मापने के लिए मीटर स्केल का उपयोग करते हैं। भौतिक पदार्थों को मापने के लिए अनेक प्रकार की मापनियां उपलब्ध हैं। इन मापनियों की सहायता से भौतिक पदार्थों का मापन शुद्ध और वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक तथ्यों और तत्वों की गूढ़ता के कारण इनका मापन एक कठिन समस्या है। इन कठिनाईयों के होते हुए भी अनेक मनोवैज्ञानिक मापनियों विधियों को निर्मित या विकसित किया गया है। आज भी इस दिशा में अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। इस संबंध में कुछ अधिक कहने से पूर्व यह आवश्यक है कि मापनी के अर्थ को समझ लिया जाये।

## मापनी का अर्थ

इंग्लिश और इंग्लिश (1980) के अनुसार, "एक मापनी वह युक्ति है जिसमें उद्दीपक वस्तु की तुलना एक प्रामाणिक सेट से करके अंक या गणितीय मूल्य दिये जाते हैं, जो उद्दीपक वस्तु के परिणाम का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

**टिप्पणी**

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में कुछ मूल्य स्थितियों में व्यक्ति की उद्दीपकों के प्रति अनुक्रियाओं का एक निश्चित सातत्य पर अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार की मापन युक्ति पर ऐसी अनुक्रियाओं का अंकन किया जाता है, वह मापनी कहलाती है। इस मापनी में कुछ मूल्य अंकित होते हैं। इन मूल्यों के साथ उद्दीपक की तुलना करके उसके परिणाम का अंकों में निर्धारण किया जाता है। यद्यपि यह मापन अंकों में किया जाता है लेकिन यह शुद्धतम मापन नहीं है ये मापनियां मुख्यतः चार प्रकार की होती हैं– 1. कोटि–सूचक मापनियां, 2. समान अन्तराल मापनियां, 3 अनुपातात्मक मापनियां, 4. नामात्मक मापनियां। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में कोटि सूचक मापनियां और समान अन्तराल मापनियां ही अधिक प्रचलित हैं। यहां नीचे कुछ कोटि सूचक मापनियों का वर्णन दिया है–

## श्रेणी मूल्यांकन मापनियां

आइजनेक और उसके साथियों के अनुसार, "श्रेणी मूल्यांकन मापनी वह बहु स्तर वाली मापनी है जिस पर श्रेणी मूल्यांकन करने वाला व्यक्ति एक विशेषता के अंशों को आत्मगत रूप में व्यवस्थित करता है। बहुधा इस प्रकार की मापनियों में पांच, छह या सात अवस्थाएं होती हैं जो प्रयोज्य को मौलिक रूप से बताई जाती हैं अथवा लिखित रूप में होती है।''

वान डैलेन (1954) के अनुसार, "श्रेणी मूल्यांकन मापनी एक चर की आवृत्ति, गहनता और अंशों को नियंत्रित करती है।"

श्रेणी मूल्यांकन मापनियों का उपयोग अनेक प्रकार के व्यक्तित्व के गुणों का मापन और अध्ययन में किया जाता है। जैसे– कौशल, उदारता, ईमानदारी, संवेगात्मक नियंत्रण, पढ़ाई की आदतें, व्यक्तिगत आकर्षण, सहयोगिता, समय–पाबन्दी तथा नेतृत्व आदि। गिलफोर्ड (1954) के अनुसार वे सभी रेटिंग विधियां जिनमें वर्ग निर्णय होते हैं, सैद्धान्तिक रूप से श्रेणी मूल्यांकन मापनियों Method of Successive Categories के अन्तर्गत आते हैं।

## विशेषताएं–

1. **प्रत्येक शीलगुण स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए**– यह इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक निर्णयकर्त्ता को समान और स्पष्ट रूप से ज्ञात हो। शीलगुणों की व्याख्या करके इस लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है।
2. **शीलगुणों के अंशों की परिभाषा आवश्यक है**– बहुधा शीलगुण का श्रेणी मूल्यांकन पांच या सात अन्तरालों की सहायता से किया जाता है। इससे अधिक अन्तरालों का उपयोग अधिक उपयुक्त नहीं होता है। मापनी का प्रत्येक अन्तराल परिभाषित होना चाहिए अैर उसी प्रकार स्पष्ट होना चाहिए जैसा कि शीलगुण।
3. **विश्वसनीयता निर्णायकों के विचलन विस्तार पर निर्भर होती है**– अतः आवश्यक है कि निर्णायकों को निर्णयों का मध्यांक या मध्यमान ज्ञात

करना चाहिए। निर्णायकों के निर्णयों में अधिक विचलन नहीं होना चाहिए अधिक विचलन का अर्थ है कि रेंटिग की विश्वसनीयता कम है और विचलन यदि कम है तो इसका अभिप्राय है कि विश्वसनीयता अधिक है।



4. **रेंटिग की वैधता का निर्धारण कठिन होता है**– केवल कुछ ही वैधता की ऐसी कसौटियां हैं जिनसे रेटिंग स्केल की वैधता का निर्धारण किया जा सकता है। वास्तव में रेटिंग स्केल की वैधता इसके वास्तविक उपयोग के ऊपर निर्णायकों के निर्णय के आधार पर कल्पित कर ली जाती है।
5. **रेटिंग के निश्चित अंशों को लिखना चाहिए**– प्रत्येक रेटिंग के साथ प्रत्युत्तरकर्त्ता को रेटिंग के निश्चित अंशों को लिखना आवश्यक है।
6. **अंतर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा बहिर्मुखी व्यक्तियों की अधिक शुद्धता में रेटिंग**– कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले लोगों को अन्तर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय ढंग से जज किया जा सकता है।

## श्रेणी मूल्यांकन मापनी के प्रकार या स्वरूप

1. **आंकिक निर्धारण मापनी**– इस प्रकार की मापनी में प्रयोज्य के सामने पूर्व विश्लेषित अंकों की तालिका प्रस्तुत कर उससे यह कहा जाता है कि वह अपने निर्णय को इस प्रस्तुत अंक तालिका के आधार पर उचित अंक प्रदान करे। यहां अंक तालिका से अभिप्राय पांइण्ट स्केल से है। यह पांच पांइण्ट स्केल, सात पांइण्ट स्कूल, नौ पांइट स्केल तथा ग्यारह पांइण्ट स्केल आदि कुछ भी हो सकता है। इससे विश्वसनीय परिणाम ही नहीं प्राप्त होते हैं अपितु तुलनात्मक अध्ययन भी सरल हो जाता है। चूंकि यह मापनी दो ध्रुवीय सातव्य पर आधारित होती है अतः ऋणात्मक अंक नहीं देने चाहिए। नीचे दी हुई पांच बिन्दु मापनी में मापनी के नीचे दिए हुए सभी अंक घनात्मक है। बहुधा यह देखा गया है कि जब अध्ययनकर्ता ग्यारह बिन्दु मापनी का उपयोग करता है तो निर्णयकर्ता या प्रयोज्य मापनी के अन्तिम छोरों के बिन्दुओं का उपयोग कम बहुत कम करता है।

| अधिक पसन्द | पसन्द | उदासीन | नापसन्द | अधिक नापसन्द |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 1 | 1 | 1 | 1 |
| 1 | 2 | 3 | 2 | 1 |

2. **ग्राफ मापनी**– इस प्रकार के रेटिंग स्केल का उपयोग ही अधिक नहीं होता बल्कि यह लोकप्रिय भी अधिक है। इसके विभिन्न स्वरूपों में भिन्नता बहुत है। इसकी पंक्ति खड़ी अथवा पड़ी किसी प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार खण्डित या निरन्तर किसी प्रकार की हो सकती है। इस प्रकार की मापनी में प्रत्येक बिन्दु पर संक्षिप्त निर्देशित कथन होते हैं, अतः प्रयोज्य निर्णय सरलता

टिप्पणी

से ले सकता है तथा अपने निर्णय को मापनी बिन्दु पर निशान लगाकर व्यक्त कर सकता है। इसके उदाहरण निम्न हैं–

उसका चिन्तन कैसा है?– बहुत धीरे–धीरे, सामान्य, तीव्र, अतितीव्र

गिलफोर्ड (1954) ने इस प्रकार की मापनी के निर्माण के कई आवश्यक सुझाव दिए हैं–

1. प्रत्येक शीलगुण के लिए एक अलग पृष्ठ होना चाहिए।
2. मापनी की रेखा पांच इंच लम्बी होनी चाहिए।
3. कम उपयोग में आने वाले संकेतों से बचना चाहिए।
4. अंक देने के लिए इस प्रकार की मापनी के स्टेन्सिल का उपयोग करना चाहिए।

3. **प्रमाणिक मापनियां**– ये मापनियां मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है।

(अ) **व्यक्ति मापनी**– इस मापनी का अब केवल ऐतिहासिक महत्व रह गय है। इसका विकास सैनिकों के लिए किया गया था। सैनिकों के अतिरिक्त अन्य द्वारा इसका उपयोग बहुत कम है। इस प्रकार की मापनी में प्रयोज्य को 12 से 35 तक उन व्यक्तियों के नाम लिखने होते हैं जिन्हें वह जानता है। मध्य का पदांक पाने वाले व्यक्ति को मापनी में मध्य का स्थान दिया जाता है। इसी प्रकार से मापनी के दूसरे और चौथे स्थान भी प्रदान किए जाते हैं।

इस प्रकार की मापनी के कई दोष है– 1. इसके अति तथा अल्प मूल्यांकन की संभावना अधिक होती है। 2. इस मापनी पर व्यक्तियों के बीच अन्तर समान नहीं होते हैं। 3. इस प्रकार की मापनी बनने की विधि अधिक शुद्ध न होने के कारण एक ही प्रकार के परिचित व्यक्तियों के आधार पर यदि दो स्केल बनाए जायें तो वह समान नहीं होंगे।

(ब) **चित्र तुलना**– इस मापनी की प्रविधि का विकास होर्टशोर्न तथा मे (Hartshorne & May 1927) ने किया। इस प्रविधि की सहायता से इन वैज्ञानिकों ने चरित्र का अध्ययन किया है। यहां पोर्टेट का अर्थ शब्द चित्रों से है। फिर सात निर्णायक इन कार्डों को पदांक देते हैं। औसत पदांकों के आधार पर दस चित्र–तुलनाएं छांट लिये जाते हैं। इन दस चित्र तुलनाओं को 48 निरीक्षकों के द्वारा पदांक भरवाने के बाद अन्तिम मापन चित्र मध्यमान के आधार पर तैयार कर लिया जाता है।

4. **संचित अंक से रेटिंग**– इसकी दो प्रमुख विधियां है जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है–

(अ) **चिह्नांकन सूची विधि**– होर्टशोर्न तथा मे (Hortshorne & May, 1922) ने इस विधि का उपयोग बच्चों के चरित्र मापन में किया। इस विधि का

उपयोग बहुधा व्यावसायिक कार्य निष्पादन के मूल्यांकन में होता है। इस विधि का उपयोग उस समय और अधिक तथा उपयोगी हो जाता है। जबकि व्यवसाय की प्रकृति अधिक जटिल होती है। चेकलिस्ट के आइटम्स बहुगुण पसन्द पर आधारित होते हैं, न कि सत्य और असत्य प्रकार पर। जब पदों की संख्या अधिक हो तो मापनी के पदों को केवल तीन भार +1 तथा –1 देने चाहिए। इस चेक लिस्ट का निर्माण, प्रशासन, मूल्यांकन आदि सब सरल होता है।

चिह्नांकन सूची विधि बहुत प्रचलित है। इसका प्रशासन भी बहुत सरल है। इसका उपयोग बहुत अधिक इसलिये क्यों है कि इसकी सहायता से कम समय में ही व्यवहार के किसी पक्ष विशेष का मापन कर लेते हैं। किसी कार्य में कार्यरत कर्मचारी के निष्पादन का मापन इन चिह्नांकन सूचियों से आसानी से किया जा सकता है।

(ब) **बूझों कौन विधि**– इस विधि का विकास हार्टशोर्न तथा मे (1922) ने बच्चों के लिए किया था परन्तु बड़े व्यक्तियों का अध्ययन भी इससे संभव है। इस विधि में प्रयोज्य या रेटर को उसके समूह के सभी सदस्यों की एक सूची दे दी जाती है तथा रेट करने वाले बच्चे से कहा जाता है कि वह इस सूची में से दिए हुए विवरण के अनुसार रेट करे।

5. **बाधित चयन श्रेणी मूल्यांकन मापनी**– ट्रेवर्स (Travers, 1951) के अनुसार इस विधि का विकास होर्स्ट के विचारों के आधार पर हुआ है। इसका सर्वप्रथम उपयोग हेरी ने व्यक्तित्व प्रपत्र के रूप में किया। बाद में इसक उपयोग रेटिंग इंस्ट्रूमेंट के रूप में किया गया। इसमें रेटर को यह बताना होता है कि कौन–सी विशेषता एक व्यक्ति की अपेक्षा दूसरे व्यक्ति में अधिक है। इसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है।

(अ) जिस समूह के लिए रेटिंग स्केल तैयार करना होता है उसके उच्चतम गुण तथा निम्नतम गुण वाले व्यक्तियों को छांटे लेते हैं।

(ब) जिन तत्वों के आधार पर पदों की रेटिंग जाती है उन तत्वों को व्यवहार विशेषताओं का विश्लेषण कर ज्ञात कर लिया जाता है।

(स) प्रत्येक तत्व के दो मूल्य–विभेदीकरण मूल्य तथा वरीयता मूल्य का निर्धारण किया जाता है।

## निर्धारण मापनी के निर्माण और उपयोग में समस्याएं या त्रुटियां

1. **उदारता की त्रुटि**– यह देखा गया है कि जब निर्णायक उस व्यक्ति से परिचित होता है जिसके संबंध में वह निर्णय ले रहा है या रेटिंग कर रहा है तो वह रेटिंग करते समय अति या अल्प मूल्यांकन करता है। समाज द्वारा स्वीकृत गुणों पर अति तथा अस्वीकृत गुणों पर अल्प मूल्यांकन करता है।

2. **केन्द्रीय प्रवृत्ति त्रुटि**— यह देखा गया है कि कुछ निर्णायक या रेटर ऐसे होते हैं कि इस प्रकार की मापनियों में जिसकी रेटिंग करते हैं, उसे मध्य में ही रखते हैं ऐसे निर्धारण अति या अल्प निर्णय देने में संकोच करते हैं।
3. **तार्किक त्रुटि**— न्यूकाम्ब (1931) ने इस त्रुटि की ओर सर्वप्रथम संकेत किया है कि यह त्रुटि बहुधा उस समय होती है जब रेटिंग करने वाला निर्णायक समान गुणों पर समान निर्णय देना चाहता है।
4. **विपरीत अथवा विरोधी त्रुटि**— मरे ने इस त्रुटि के संबंध में कहा है कि यह दोष उस समय उत्पन्न होता है, जब निर्णायक अपनी विशेषताओं या शीलगुणों के विपरीत रेटिंग करता है। इस प्रकार की त्रुटि से एक प्रकार के पक्षपात का संकेत मिलता है।
5. **सामीप्य त्रुटि**— इस त्रुटि की खोज स्टाकफोर्ड तथा बिसेल ने की है। समय या स्थान की दृष्टि से समीप शीलगुणों से संबंध ही सामीप्य त्रुटि है।

उपर्युक्त त्रुटियों को कम करने के कई उपाय हो सकते हैं जैसे— 1. रेट करने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाये। 2. सतत् त्रुटियों को काउण्टर बैलेन्स किया जाये। 3. जब त्रुटि करने वाले व्यक्तियों को ये त्रुटियां ज्ञात हों तो रेट करते समय उन्हें इन त्रुटियां को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

## निर्धारण मापनी के लाभ

रेटिंग स्केल के अनेक लाभ है, इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार से है— (1) इनका निर्माण और विकास तथा प्रशासन सरल होता है, (2) इनकी सहायता से निर्णायकों को निर्णय देना सरल होता है, (3) कई बार निर्णायक को भी इसलिए लाभ होता है कि एक शीलगुण के संबंध में उसे भी जानने का अवसर मिलता है, (4) छात्र प्रवेश तथा व्यावसायिक चयन में सहायक है, (5) व्यक्तित्व तथा अन्य अध्ययनों में यह एक पूरक विधि भी है।

## पदांक विधि

वुडवर्थ के अनुसार, "प्रयोज्य इसमें दिए हुए उद्दीपकों को दिए हुए आयाम के एक क्रमिक शृंखला में व्यवस्थित करता है। इससे एक पदांक क्रम प्राप्त हो जाता हैं। फिर दिए हुए उद्दीपकों को कई प्रयोज्यों से क्रमिक शृंखला में व्यवस्थित कराया जाता है तथा प्रत्येक उद्दीपक के मध्यमान पदांक की गणना की जाती है।"

एण्ड्रियाज के अनुसार, "इस विधि में निर्णय लिये जा रहे आयाम के सन्दर्भ में पदों को एक विशेष क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त आंकड़ों का सरल विश्लेषण भी कर सकते हैं और विस्तार से विश्लेषण करने के बाद एक सूक्ष्म मापनी भी स्थापित की जा सकती है।

इस विधि को Order of Merit विधि भी कहते हैं। साइकोमीट्रिक विधियों में यह एक विधि है। यह एक अति उपयोगी विधि है।

इस विधि में प्रयोज्य एक उद्दीपक को एक पदांक देता है। अतः जितने ही उद्दीपक होंगे उतनी ही संख्या पदांकों की होगी। प्रथम पदांक उस उद्दीपक को प्रायोज्य देता है जो उसे सबसे कम पसन्द होता है। पदांकों के शुद्ध मान ज्ञान करने के लिए एक ही प्रयोज्य से बार–बार पदांक उद्दीपकों को दिलवाए जा सकते हैं और यह भी हो सकता है कि यह कार्य कई प्रयोज्यों से कराया जाये। आगे की तालिका में एक उदाहरण दिया हुआ है जिससे कि पदांक विधि क्या है यह काफी कुछ स्पष्ट हो जाता है, उदाहरण मान लीजिए कि सात फिल्म अभिनेत्रियों के प्रति छात्रों की पसन्द ज्ञात करनी है तो इसके लिए पांच या दस व्यक्तियों से इन अभिनेत्रियों के बारे में पदांक का निर्धारण करा लेगें। जो सबसे अधिक पसंद है उसे एक पदांक, जो उससे कम पसन्द है उसे दूसरा पदांक, इसी प्रकार तीसरा, चौथा, पांचवां और सातवां पदांक देना है। सातवां पदांक, सबसे कम पसन्द वाली अभिनेत्री को देना है।

| निर्णायक | माधुरी दीक्षित | श्रीदेवी | सोनाली बिन्द्रे | जूही चावला | मनीषा कोइराला | शिल्पा शेट्टी | काजोल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राजेन्द्र | 1 | 7 | 2 | 3 | 6 | 4 | 5 |
| विजय | 7 | 2 | 6 | 3 | 4 | 5 | 1 |
| चिरंजी | 6 | 1 | 7 | 3 | 4 | 5 | 2 |
| देवेन्द्र | 4 | 5 | 6 | 1 | 7 | 3 | 2 |
| अमजद | 7 | 6 | 3 | 1 | 4 | 5 | 2 |

## पदांक विधि के उपयोग की कसौटियां

यह उन उद्दीपकों के निर्णय की एक उपयोगी विधि है जो उद्दीपक व्यक्ति के चारों ओर के वातावरण से संबंधित हैं। इस विधि में आवश्यक नहीं है कि उद्दीपक भौतिक रूप से उपस्थित ही हो। रेटिंग विधि में अधिक संख्या में उद्दीपकों के संबंध में निर्णय प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि इस विधि में केवल थोड़े उद्दीपकों के संबंध में ही निर्णय प्राप्त करने चाहिए। इसमें एक निर्णायक सम्पूर्ण बिन्दुओं का उपयोग अपने निर्णय में करता है, जबकि रेटिंग स्केल में स्केल के केवल एक ही बिन्दु का उपयोग निर्णय में किया जाता है। जिस प्रकार से रेटिंग विधि में निर्णायक के निर्णय केन्द्रीय प्रवृत्ति त्रुटि से पूर्ण हो जाते हैं, इस प्रकार की त्रुटि होने की संभावना इस विधि में कम होती हैं। जब 20 से अधिक उद्दीपक हों तब इस विधि का अधिक उपयोग नहीं होता।

## प्रशासन प्रक्रियाएं

1. निर्णायकों से अनेक निर्णय लेने से पूर्व उन्हें ठीक प्रकार से निर्देश देना आवश्यक है। निर्णायक अथवा प्रयोज्य को जिस आयाम पर निर्णय लेने हैं उस आयाम को अच्छी तरह स्पष्ट करना आवश्यक है।
2. जिस आयाम पर निर्णय एकत्र करने हैं उसकी परिभाषा आवश्यक है न कि जिन गुणों के आधार पर जिनकी स्केलिंग करनी है वे गुण निर्णायक को निर्णय लेने से पूर्व ही बता देने चाहिए।

टिप्पणी

3. निर्णायक को प्रारम्भ में यह भी बता देना चाहिए कि आप प्रथम, द्वितीय आदि पदांक किनको और किस प्रकार देंगे।
4. पदांकों के लिए प्रयोज्य के सामने उद्दीपक एक—एक करके प्रस्तुत न करके सभी उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करना चाहिए।
5. एक प्रयोज्य से दूसरे प्रयोज्य को उद्दीपक प्रस्तुत करने से पूर्व सभी उद्दीपकों को अनायास क्रम में मिला लेना चाहिए।

## आंकड़ों का शोधन

प्रत्येक उद्दीपक पद के लिए एक आवृत्ति वितरण बनाया जाता है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि पद को प्रयोज्यों ने क्या—क्या पदांक दिये हैं। इन आवृत्ति वितरणों को एक साथ मिला कर मैट्रिक्स बनाते हैं जो पदांकों के सारांश को प्रस्तुत करता है। इस मैट्रिक्स का नूमना पदांक विधि से संबंधित प्रयोग में इसी अभ्यास में दिया हुआ है, पाठकगण, गिलफोर्ड भी इसके लिए देखें।

उस विधि में पदांक चूंकि, क्रमिक स्केलिंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः मध्यम पदांक की गणना करना उपयुक्त नहीं है। वर्णात्मक सांख्यिकी में केवल मध्यांक की गणना उपयुक्त है, न कि मध्यमान की। केन्द्रीय प्रवृत्ति के रूप में पदांकों का मध्यांक निकालना चाहिए। पाठकों को यह भी स्पष्ट होना चाहिए चूंकि मध्यमान की गणना करना उपयुक्त नहीं है अतः विचलनशीलता का मापन द्वारा करना चाहिए।

## युग्म तुलना विधि

आइजनेक और उनके साथियों के अनुसार, "यह वह विधि है, जिसमें किसी आयाम पर उद्दीपक श्रृंखला को पदांक दिये जाते हैं, उद्दीपक पदों का प्रयोज्य के सामने प्रस्तुतीकरण उद्दीपन पदों के संभावित युग्मों के रूप में होता है और प्रयोज्य इन युग्मों की तुलना एक निश्चित चर के सन्दर्भ में करता है।"

गिल्फोर्ड के अनुसार, "सामान्यतः इस विधि का उपयोग उस समय किया जाता है जब कि उद्दीपकों को युग्मों में समकालीन या क्रमागत रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"

"अण्डरवुड के अनुसार, "युग्म तुलना विधि वह है जिसके द्वारा विभेदीकरण प्रक्रियाओं का अध्ययन एक निश्चित आयाम पर उद्दीपकों को एक सेट के अनुसार दूसरे प्रत्येक उद्दीपक से तुलना करके किया जाता है।"

इस विधि का उपयोग उस समय अधिक अच्छा होता है जबकि उद्दीपकों की संख्या अधिक नहीं होती है क्योंकि अधिक उद्दीपकों की संख्या में इस विधि में आंकड़ों को एकत्रित करने और उनका विश्लेषण करने में कठिनाई होती है। यह विधि सरल और जटिल दोनों प्रकृति के उद्दीपकों के लिए एक उपयोगी विधि है। इस विधि का उद्दीपक विधि और पदांक विधि से घनिष्ठ संबंध है। गिलफोर्ड ने लिखा है कि इस विधि का सरलतम रूप यह है कि इस विधि में प्रयोज्य के सामने उद्दीपकों को जोड़े के रूप में प्रस्तुत कर प्रयोज्य से उसकी पसन्द संबंधी निर्णय पूछा जाता है। इस विधि में

प्रत्येक उद्दीपक को प्रत्येक दूसरे उद्दीपक के साथ युग्म बनाकर प्रयोज्य के सामने प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए यदि उद्दीपकों की संख्या 20 है तो 190 तुलना निर्णयों की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

$$NC = \frac{n(n-1)}{2}$$ जबकि NC = तुलना निर्णयों की संख्या

$$NC = \frac{40(40-1)}{2} = \frac{40(39)}{2} = \frac{1560}{2} = 780$$ n = उद्दीपकों की संख्या

प्रयोज्य के सामने इस प्रकार बनाये हुए उद्दीपकों के युग्म अक्रमिक क्रम में प्रस्तुत किये जाते हैं।

## संचयी आलेख पत्र

'संचयी आलेख पत्र' शब्द का प्रयोग 1930 में प्रारम्भ हुआ माना जाता है। इसमें विद्यार्थी से संबंधित विभिन्न जानकारी एक ही पत्र में संकलित कर ली जाती है ताकि संबंधित छात्र के बारे में व्यापक सूचना मिल सके। ये आलेख गुप्त रखे जाते हैं तथा समय पड़ने पर इनकी विषय–वस्तु छात्र संबंधी समस्याओं के निदान एवं उपचार हेतु प्रयोग की जाती है। इन आलेख पत्रों का विवरण अत्यन्त संक्षिप्त एवं सारगर्भित होता है। सामूहिक आलेख पत्र द्वारा विद्यार्थियों के प्रत्येक क्षेत्र के विकास का समय–समय पर ज्ञान होता रहता है। इसके आधार पर हम उनकी शिक्षा में भी उपयुक्त परिवर्तन ला सकते हैं। आजकल संचयी आलेख पत्रों का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है, क्योंकि ये पत्र विद्यार्थियों के शैक्षणिक तथा व्यावसायिक निर्देशन में बहुत ही सहायक सिद्ध हुए हैं। इन पत्रों के माध्यम से हमें विद्यार्थियों के सामान्य व्यवहार, गुण, रुचियों, खेलकूल, क्रीड़ा, वाद–विवाद, नाटक, अभिनय का स्तर तथा उनकी विश्वसनीयता के बारे में स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

## संचयी आलेख पत्र का उद्देश्य (Purposes of the Cumulative Record Cards)

संचयी आलेख पत्र तैयार करने के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. यह प्रत्येक बालक को व्यक्तिगत रूप से समझने में अध्यापक की सहायता करता है।
2. छात्रों की आवश्यकताओं को समझने के लिए जरूरी है।
3. इनसे हमें शैक्षणिक तथा व्यावसायिक संदर्शन देने में सहायता मिलती है।
4. संचयी आलेख पत्रों से हमें विद्यार्थियों के समस्यात्मक व्यवहारों एवं उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है।
5. संचयी आलेख पत्र अभिभावक शिक्षक संपर्क के अवसर प्रदान करते हैं।
6. 'अवकाश के क्षणों में सदुपयोग' (Training for the Leisure) संबंधी कार्यक्रम में सहायता प्राप्त होती है।

**टिप्पणी**

7. इनके माध्यम से हमें प्रत्येक विद्यार्थी के विकास का क्रम ज्ञात हो जाता है।
8. आलेख पत्र के माध्यम से वे सूचनाएं प्राप्त हो जाती हैं जो परीक्षा द्वारा ज्ञात नहीं हो पाती हैं।
9. इससे न केवल विद्यार्थी की प्रगति का ही ज्ञान होता है बल्कि अध्यापक द्वारा अपनाई गई विधियों की सफलता का भी पता चल जाता है।

## संचयी आलेख पत्र के प्रकार (Types of Cumulative Record)

संचयी आलेख पत्र निम्न तीन प्रकार के होते हैं–

(क) एक पत्र लेखा (Simple Card Record)

(ख) पैकेट या परत (Packet or Folder)

(ग) संकलित परत (Cumulative Folder)

**(क) एक पत्र लेखा (Simple Card Record) :** इनमें एक ही पत्र होता है तथा दोनों ओर लिखा जा सकता है। अतिरिक्त सूचना के लिए एक अतिरिक्त परत का प्रबन्ध किया जा सकता है।

**(ख) पैकेट या परत (Packet or Folder) :** ये पैकेट अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें अनेक पत्र रखे जा सकते हैं। इन पैकेटों में अनेक पत्र विभिन्न प्रकार की सूचनाएं लिखकर रखे जा सकते हैं। विषयों का वर्गीकरण करने के उद्देश्य से रंगीन पत्र प्रयोग में लाये जा सकते हैं। ऐसा करने से पत्र कालान्तर में निकालने या छांटने में सुविधा रहती है।

**(ग) संकलित परत (Cumulative Folder) :** ये पत्र बड़े आकार के होते हैं। इनके दोनों और विभिन्न प्रकार की सूचनाएं लिखने के लिए अलग–अलग स्थान दिये जाते हैं। परत में अतिरिक्त सूचनाएं लिखने का भी प्रबन्ध होता है।

## संचयी आलेख पत्र का प्रारूप

संचयी आलेख पत्र में अंकित की जाने वाली सूचना, विद्यालय विशेष का वातावरण, छात्र का कक्षा स्तर एवं आलेख पत्र के उद्देश्य पर निर्भर करती है। विद्यालय के विभिन्न स्तरों के अनुकूलन ही संचयी आलेख पत्रों की विषय–वस्तु का चयन किया जाए। प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी का स्वभाव, लगन, रुचि, भावनाएं, बड़ों के प्रति व्यवहार, सांस्कृतिक कौशल आदि। जूनियर स्तर पर छात्र की व्यक्तिगत, सामाजिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य विशेषताएं पर्याप्त विस्तृत होनी चाहिए जिसमें छात्र की विभिन्न विषयों सम्बन्धी उपलब्धियों एवं विफलताओं, शैक्षिक इतिहास, पारिवारिक विचार, वातावरण सम्बन्धी समायोजन एवं अन्य सृजनात्मक, क्रियाओं का उल्लेख विशेष रूप से किया जाना सम्मिलित है। संक्षेप में, एक अच्छे आलेख पत्र को निम्न बिन्दुओं के आधार पर तैयार किया जाना चाहिए–

- **व्यक्तिगत (Personal) :** नाम, जन्मतिथि, जन्म स्थान, स्थायी पता, लिंग, जाति आदि।

- **परिवार (Family Status) :** माता–पिता एवं अभिभावकों के नाम, पते एवं व्यवसाय, घर की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, भाई–बहिनों की संख्या, पिता की मासिक आय, माता–पिता के वैवाहिक सम्बन्ध आदि।
- **विद्यालय (School) :** विभिन्न शैक्षिक पाठ्य–विषयों में उपलब्धि प्राप्त अंक, पढ़ने में विशेष योग्यता, कक्षा में स्थान, विफलताएं, सांस्कृतिक क्रियाओं में रुचि एवं खेलकूद आदि। बुद्धि परीक्षणों के आधार पर छात्र की बुद्धिलब्धि (I.Q.), व्यक्तित्व परीक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक विशेषताओं एवं कौशलों का मूल्यांकन। विद्यालय के प्रति छात्र का दृष्टिकोण, विद्यालय में उपस्थिति सम्बन्धी आंकड़े आदि।
- **स्वास्थ्य (Health) :** स्वास्थ्य सम्बन्धी संपूर्ण विवरण, छात्र की लम्बाई, कद, वजन, शारीरिक दोष, सांवेगिक अस्थिरता, रोगों का वर्णन, वंश परम्परा से प्राप्त रोग एवं डॉक्टर द्वारा समय–समय पर किये गये निरीक्षणों का लेखा आदि।
- **अन्य (Other):** रुचियां, व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएं, शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाएं परामर्शदाता द्वारा दी गई सलाह, नियुक्ति पत्र (यदि किसी विद्यार्थी को विद्यालय अवधि में मिला हो); शिक्षा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे– वाद–विवाद, खेलकूद, सांस्कृतिक आयोजनों में छात्र की उपलब्धि एवं सहयोग, परिचितों, अध्यापकों एवं प्रधानाचार्य द्वारा दी गई टिप्पणियां (Remarks) आदि।

अनेक विद्वानों ने संचयी पत्र की परिभाषाएं इस प्रकार दी हैं–

1. मुरे थॉमस के अनुसार– "संचयी आलेख पत्र किसी बालक के बारे में एक लम्बी अवधि में एकत्रित सूचना है।"

   "A cumulative record is a collection of information about a child over a period of time, usually several years."
2. जेन वार्टस के अनुसार– ''परीक्षा, प्रश्नावली, अवलोकन, साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास आदि सभी विभिन्न विधियों के प्रयोग से प्राप्त छात्र से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण सूचनाओं को सारांश रूप में संचयी आलेख पत्र में संग्रहित करना चाहिए।''
3. डब्लू. सी. एलिन के अनुसार– ''संचयी आलेख–पत्र में छात्र विशेष के मूल्यांकन (Appraisal) से सम्बन्धित सूचनाओं का आलेख होता है। सामान्यतः ये सूचनाएं एक पत्र पर लिखकर एक स्थान पर ही रखी जाती हैं।''
4. सी. एम. फ्लेमिंग के अनुसार–"A cumulative Record is a condensation of a case study."

## संचयी आलेख पत्र का महत्व (Importance of the Cumulative Record Card)

संचयी आलेख पत्र छात्र के बारे में लिखित, प्रामाणिक एवं वर्ष भर की संपूर्ण महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। एक प्रकार से यह विद्यार्थी की प्रगति का चित्रांकन है।

टिप्पणी

संचयी आलेख पत्र छात्र, अध्यापक या किसी अन्य अधिकारी के लिए समान रूप से उपयोगी है। जहां एक ओर विद्यार्थी इन आलेख पत्रों के माध्यम से अपनी क्षमताओं एवं न्यूनताओं का आभास पाकर अपने भावी लक्ष्य की योजना बनाता है, वहीं दूसरी ओर अध्यापक छात्र के बारे में सही तथ्यों की जानकारी लेकर, उसका निर्देशन और अच्छी प्रकार से कर पाता है। इसी प्रकार किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान का अधिष्ठाता भी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की रुचियों, क्षमताओं कौशलों, आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों आदि के आधार पर उनके हितार्थ योजनाएं तैयार कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे वर्तमान एवं भविष्य की रूपरेखा भूत की सुदृढ़ नींव पर ही टिकी होती है।

शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। इसलिए बालक के विकास का मापन करने के लिए विभिन्न विषय सम्बन्धी परीक्षाएं ली जाती हैं लेकिन ये परीक्षाएं एकांगी होती हैं, अर्थात् ये परीक्षाएं मात्र अर्जित ज्ञान का ही मूल्यांकन करती हैं जबकि छात्र की मानसिक, सामाजिक एवं सांवेगिक विशेषताओं का मूल्यांकन भी उतना ही आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) ने संचयी आलेख पत्रों को देश के सभी विद्यालयों में अनिवार्य करते हुए सिफारिश की थी कि, छात्रों के कार्यों का मूल्यांकन बाह्य या आंतरिक परीक्षाओं द्वारा संभव नहीं है। छात्र को भविष्य में नवीन विषय या व्यवसाय का चुनाव करने में सहायता देने के लिए उसके विकास का पूर्ण आलेख रखना चाहिए। विद्यालयों में रखे जाने वाले आलेख पत्रों में छात्र–छात्रा द्वारा किये गये कार्यों का विवरण रखना चाहिए। इन आलेख पत्रों में शिक्षा में की गयी प्रगति के अतिरिक्त व्यक्ति के गुण, सामाजिक समायोजन, रुचि एवं अभिवृत्ति तथा अन्य क्रियाओं का उल्लेख होता है। देश के सभी विद्यालयों में संचयी आलेख पत्रों के प्रयोग से हमारी परीक्षा प्रणाली के बहुत से दोष भी दूर हो जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के शिक्षा कार्यालय की 'संकलित आलेखों की पुस्तिका' (Handbook of Cumulative Records) में आलेख पत्रों के महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"निरंतर विकसित होने वाले पाठ्यक्रम में आलेख महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। छात्रों की आवश्यकताओं, रुचियों और योग्यताओं में जो व्यक्तिगत विभिन्नताएं विद्यालय की क्रियाओं में भाग लेने पर प्रकट होती है, इनका आलेख रखना चाहिए। छात्रों के स्वयं के विकास के विभिन्न स्तरों पर आवश्यक निर्देशन की मात्रा का संकेत इन विभिन्नताओं द्वारा मिलता है।

## संचयी आलेख पत्र के उपयोग (Uses of the Cumulative Record Cards)

शिक्षा तथा व्यवसाय दोनों ही क्षेत्रों में संचयी आलेख पत्रों के अनेक उपयोग हैं, जो निम्न हैं–

1. इनके माध्यम से विद्यार्थी के अभिभावकों को उनकी प्रगति सम्बन्धी संपूर्ण जानकारी दी जाती हैं, परिणामस्वरूप, विद्यालय एवं अभिभावकों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

2. ये आलेख समस्यात्मक बालकों एवं बाल अपराधियों के बारे में उनके विद्यार्थी जीवन के बाद भी महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी देकर उन्हें अपराधी बनने से रोकते हैं।
3. इनके द्वारा बालक के असाधारण व्यवहार एवं असामाजिक क्रियाओं के नियंत्रण तथा व्यक्तित्व एवं अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है।
4. आलेख पत्र छात्रों का वर्गीकरण करने में सहायता प्रदान करते हैं।
5. विद्यार्थी जब एक कक्षा से दूसरी कक्षा में अथवा एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में जाता है तो नवीन अध्यापकों को इन आलेख पत्रों की सहायता से छात्र के बारे में पूर्ण जानकारी आसानी से प्राप्त हो जाती है।
6. आलेख पत्र किसी भी प्रकार के प्रमाण–पत्र तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
7. ये आलेख विद्यार्थी के शैक्षिक एवं व्यावसायिक पथ–प्रदर्शन में सहायक होते हैं।
8. आलेख–पत्र किसी भी प्रकार की व्यावसायिक क्षमताओं का अवलोकन करने में सहायक होते हैं।
9. ये आलेख–पत्र स्वयं की क्षमताओं एवं कमियों का आभास कराते हैं।
10. ये आलेख रोजगार कार्यालयों को छात्र के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करते हैं।
11. आलेख पत्र व्यक्तिगत रूप से छात्र का ध्यान रखने में अध्यापक की सहायता करते हैं।

जोन वार्टस ने संकलित आलेख पत्र का महत्व दर्शाते हुए लिखा है, ''संकलित आलेख पत्र, छात्र के वर्तमान को समझने के लिए भूत की व्याख्या, व्यावहारिक कठिनाइयों तथा असफलताओं के कारणों से उसकी क्षमताओं तथा कमियों के अध्ययन में अध्यापक की सहायता करते हैं।''

## 'संचयी आलेख पत्र के प्रयोग में प्रयुक्त सावधानियां (Precutions Regarding use of Cumultive Record Cards)

संचयी आलेख पत्र तैयार करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. आलेख पत्र में विवरण वस्तुनिष्ठ होने चाहिए न कि आत्मनिष्ठ।
2. आलेख पत्र विद्यार्थी की प्रगति का एक संपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सके इसके लिए यह आवश्यक है कि संचयी पत्र में विद्यार्थी की समस्त परिस्थितियों एवं उसकी विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति का संपूर्ण ब्यौरा दिया जाए।

टिप्पणी

3. संचयी आलेख पत्र का रूप विद्यालय के उद्देश्यों के अनुरूप निश्चित किया जाए।
4. आलेख–पत्रों का रूप निश्चित करने में विद्यालय के सभी अध्यापकों की सहमति प्राप्त की जाए।
5. आलेख पत्र अधिक जटिल नहीं बनाने चाहिए तथा इनमें लचीलापन होना चाहिए।
6. आलेख पत्र ऐसे स्थान पर रखने चाहिए जहा से उन्हें 'आसानी से प्राप्त किया जा सके, साथ ही इनका लिखना एवं फाइल करना भी सुविधाजनक एवं कम खर्चीला हो।
7. आलेख पत्र की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह बालक के क्रमिक विकास को प्रदर्शित करे।
8. आलेख पत्र सम्बन्धी एक विवरण–पुस्तिका (Manual) भी तैयार की जानी चाहिए।
9. चूंकि आलेख–पत्रों की कुछ सूचनाएं गुप्त होती हैं अतः इनके प्रयोग पर भी कुछ नियंत्रण रखा जाए।
10. समय–समय पर संचयी आलेख पत्रों का पुनर्मूल्यन भी कराते रहना चाहिए।
11. आलेख पत्रों का उपयोग करना भी एक कला है। अध्यापक को इस कला में दक्ष होना चाहिए।

थार्नडाइक एवं टेग्न के शब्दों में– 'आलेख पत्रों में जो कुछ लिखा जाता है वह महत्वपूर्ण नहीं है, परन्तु उनसे जो कुछ प्राप्त किया जाता है वह महत्वपूर्ण है।''

"A cumulative Record means a record card that follows the pupils not only from school to school, but also from teacher to teacher."

–Rivlin

'Encyclopaedia Modern Education'

## 1.4.2 मानकीकृत परीक्षण के उपयोगकर्ताओं की जिम्मेदारियां

सन् 1960 में स्टॉन ने परम्परागत परीक्षणों से भिन्न शैक्षिक परीक्षाओं का विकास किया है जिन्हें मानदण्ड संबंधित परीक्षण के नाम से जाना गया। इन परीक्षणों की रचना एवं उपयोग वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञारिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इन परीक्षणों के महत्व को स्वीकारते हुए विद्वानों ने कहा है कि जितनी जल्दी हो सके इन परम्परागत परीक्षणों के महत्व को स्वीकारते हुए विद्वानों ने कहा है कि जितनी जल्दी हो सके इन परम्परागत परीक्षणों को शैक्षिक मापन के क्षेत्र से हटा देना चाहिये तथा इनके स्थान पर नवीन प्रकार के परीक्षणों का समावेश किया जाना चाहिये। यद्यपि नवीन प्रकार के परीक्षणों को हर दृष्टि से परम्परागत परीक्षणों से बेहतर नहीं माना जा सकता, फिर भी ये कहीं अधिक उपयोगी एवं विशिष्टता पूर्ण है। विशिष्ट एवं जटिल परिस्थितियों में

जिनका उपयोग कहीं अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकता है। सन् 1960 के ही आसपास मापन के क्षेत्र में क्रान्ति सी आई। इसके परिणामस्वरूप एक नवीन शब्दावली का विकास हुआ जिसके अन्तर्गत कसौटी संबंधित परीक्षण' (Criterion Referenced Test) तथा ''मानक संबंधित परीक्षण'' (Norm Referenced Test)। इन दोनों प्रकार के परीक्षणों को शैक्षिक मापन के क्षेत्र में एक नये विचार के रूप में देखा गया। इस प्रकार के परीक्षणों का विकास समसामयिक हैं यह परम्परागत परीक्षणों की तुलना में एक सुधार सिद्ध हुआ। विद्वानों ने इन परीक्षणों को भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जैसे– उद्देश्य केन्द्रित परीक्षण (Objective Centered Test) तथा ज्ञान पक्ष संबंधित परीक्षण (Domain Referenced Test) आदि लेकिन वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में इन परीक्षणों को ज्ञान पक्ष संबंधित परीक्षण (Domain Referenced Test) कहना कहीं अधिक व्यावहारिक प्रतीत होता है।

## मानक संबंधित परीक्षण

आधुनिक युग में प्रमापीकृत उपलब्धि परीक्षणों तथा अध्यापक निर्मित परीक्षणों को मानक संबंधित परीक्षणों की श्रेणी में रखा जाने लगा है जिसका उद्देश्य पाठ्यक्रम संबंधित उपलब्धियों का मापन करना है। यह भी देखने का प्रयास किया जाता है कि छात्रों की उपलब्धि के स्तर का मूल्यांकन मानक समूह के सापेक्ष किस प्रकार किया जा सकता है। यहां इस बात पर विशेष बल नहीं है कि हम अपने शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति में कहां तक सफल हुए हैं वरन् इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि परीक्षण की विषय वस्तु वैधता (Content Validity) सुरक्षित रखी गयी हैं अथवा नहीं। इसी दृष्टि से परीक्षण में व्यापकता का गुण सुनिश्चित किया जाता है ताकि परीक्षा में सम्पूर्ण पाठ्य–वस्तु पर प्रश्न रखें जा सकें। कसौटी संबंधित परीक्षण मानक संबंधित परीक्षणों से कहीं अधिक उपयोगी होते हैं क्योंकि ये हमें उपने विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के संबंध में पूरी तरह आश्वस्त करते हैं। इन परीक्षणों के जन्मदाता मानक परीक्षणों की आलोचना करते हैं क्योंकि, मानक परीक्षण मात्र छात्र के सामान्य स्तर का तो बोध कराता है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत आये किसी विशिष्ट प्रकरण के संबंध में कोई विशेष जानकारी प्रदान नहीं करता ।

कुछ विशेषताओं के सन्दर्भ में ये दोनों परीक्षण एक ओर पर्याप्त समानता और दूसरी ओर पर्याप्त भिन्नता रखते हैं। परीक्षण की विशेषताओं के सन्दर्भ में इन दोनों परीक्षणों को किसी सीमा तक बोधगम्य बनाया जा सकता है। दोनों परीक्षणों का रूप भी समान रहता है तथा दोनों ही परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के प्रारूप पर किये जाते हैं। जहां तक पाठ्यवस्तु एवं अंकन प्रक्रिया का संबंध है वह भी एक समान रखने का प्रयास किया जाता है। फिर भी ये दोनों परीक्षण पर्याप्त भिन्नता रखते हैं।

### समानताएं (Similarities)

(1) विद्यार्थी की समस्याओं के समाधान हेतु ये दोनों परीक्षण ज्ञान कराते हैं अर्थात्, दोनों ही परीक्षणों का कार्य क्षेत्र एक समान है।

टिप्पणी

(2) प्रश्नों के प्रारूप की दृष्टि से ये दोनों परीक्षण समान होते हैं।

(3) समाहित विभिन्न चरों की प्रकृति दोनों परीक्षणों में एक जैसी होती है।

(4) दोनों परीक्षणों में पाठ्य–पुस्तक परीक्षण संरचना का मुख्य आधार व्यापकता का ध्यान रखा जाता है।

(5) अंकन कुंजी दोनों परीक्षणों में समान होती है जो वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में प्रयुक्त विधि के ही समान होती है।

(6) छात्र की सफलता–असफलता को दोनों ही परीक्षणों का आधार माना जाता है। कसौटी परीक्षण में यह आधार छात्र की विशिष्ट योग्यताओं का द्योतक है जबकि मानक परीक्षण में इस आधार का उपयोग छात्र के ज्ञान–स्तर का मापन करने के लिये किया जाता है।

(7) परम्परागत परीक्षण की तुलना में ये दोनों ही प्रकार के परीक्षण एक सुधार के रूप में अपनाये जाते हैं।

(8) शैक्षिक मापन में दोनों परीक्षण समान सार्थकता रखते हैं।

***विभिन्नताएं*** *(Dis-Similarities)*

| **कसौटी संबंधित परीक्षण** (Criterion Referenced Test) | **मानक संबंधित परीक्षण** (Norms Referenced Test) |
|---|---|
| (1) यह सूचना देते हैं कि हमें अपने विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है। | (1) यह सूचना देते है कि छात्रों ने पाठ्य वस्तु का कहां तक अध्ययन किया है। |
| (2) उद्देश्य प्राप्ति अथवा अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तनों का उल्लेख करते हैं। | (2) छात्र के बोध स्तर का मूल्यांकन करते हैं। |
| (3) शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों को यथासम्भव प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है ताकि परीक्षण उद्देश्य की दृष्टि से वैध सिद्ध हो सके। | (3) व्यापक पाठ्य वस्तु को प्रश्नों की रचना के लिये मुख्य आधार बनाया जाता है ताकि विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति आसानी से हो सके। |
| (4) यह संकेत देते हैं कि हमने कितने उद्देश्य प्राप्त किये हैं और जिन्हें प्राप्त नहीं कर सके हैं, उसका क्या कारण है? अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति व्यावहारिक पदों के रूप में की जाती है। | (4) यहां परीक्षण परिणामों की व्याख्या कक्षा समूह के स्तर के रूप में की जाती है अर्थात् छात्र विशेष का अपने समूह में क्या स्थान हैं? यहां शतांशीय मानों को महत्व दिया जाता है। |
| (5) परीक्षणों पर प्राप्त परिणाम छात्र की अपेक्षा अध्यापक के लिये अधिक कारगर सिद्ध होते हैं ताकि वह अपनी शिक्षण प्रक्रिया में अपेक्षित सुधार कर सकें। | (5) परीक्षणों पर प्राप्त परिणाम अध्यापक को कोई पुनर्बलन प्रदान नहीं करते ताकि वह अपनी शिक्षण प्रक्रिया में सुधार हेतु कोई नवीन दिशा अपना सके। |
| (6) अंकन प्रक्रिया यह संकेत करती है कि हमने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त की है। | (6) अंकन प्रक्रिया के आधार पर हम यह अनुमान लगाते हैं कि छात्र ने कितनी पाठ्य–वस्तु का अध्ययन किया है। |
| (7) इनके निर्माण के लिये शिक्षण अधिगम उद्देश्यों को प्रमुख आधार बनाया जाता है। | (7) इनका निर्माण परम्परागत तरीके से किया जाता है। |
| (8) इनमें मानकों का विकास करना सम्भव नहीं होता। | (8) इनको मानकीकृत करने के लिये मानकों का विकास करना आवश्यक होता है। |
| (9) ये अधिक उपयोगी माने जाते हैं क्योंकि ये छात्र के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी प्रदान करने में सक्षम समझे जाते हैं। | (9) ये कम उपयोगी माने जाते हैं क्योंकि ये छात्र के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी ही प्रदान करते हैं। |

## रूपदेय तथा योगदेय परीक्षण

आधुनिक युग मूल्यांकन का युग है। शैक्षिक मापन के क्षेत्र में 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तीन प्रमुख प्रगतियां हुई– परीक्षण, मापन तथा मूल्यांकन। सर्वप्रथम बुद्धि तथा

उपलब्धि के परीक्षण की ओर शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान गया। 19वीं शताब्दी की परीक्षाएं प्रायः आत्मनिष्ठ होती थीं। इनके दोषों को दूर करने के लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ। जब वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का प्रचलन यूरोप तथा अमरीका में उच्चतम सीमा तक पहुंच गया तब उनका ध्यान शिक्षा संबंधी कुछ ऐसे परिणामों के मापन की ओर गया जिन्हें वस्तुनिष्ठ साधनों से मापना असम्भव हो रहा था। शिक्षा में यह प्रगति मापन की प्रगति के नाम से जानी गई। नवीन प्रकार के परीक्षणों का विकास तथा उपयोग उत्तरोत्तम बढ़ता ही चला गया। शिक्षण–अधिगम के मापन की दृष्टि से कसौटी संबंधित परीक्षणों को निम्न दो विशिष्ट रूपों में विकसित किया गया है–

(1) रूपदेय परीक्षण (Formative Test)

(2) योगदेय परीक्षण (Summative Test)

**1. रूपदेय परीक्षण** (Formative Test)– रूपदेय परीक्षण का संप्रत्यय पाठ्य–वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) अथवा शिक्षण बिन्दु निर्धारण (Determining Teaching-Points) पर आधारित है। पाठ्य–वस्तु विश्लेषण के अन्तर्गत छोटी–छोटी इकाइयों में समय चक्र के अनुसार हम सम्पूर्ण पाठ्य–वस्तु को दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, अर्द्ध–वार्षिक एवं वार्षिक में विभक्त कर लेते हैं और हमारा सम्पूर्ण ध्यान एक इकाई विशेष का संतोषजनक रूप से शिक्षण कराने में केन्द्रित हो जाता है ताकि छात्र विषय–वस्तु को ठीक प्रकार से आत्मसात कर सकें तथा हमारी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया भी प्रभावी बन सके। ठीक इसी प्रकार रूपदेय परीक्षण के अर्न्तगत हम पाठ्य–वस्तु को विभिन्न इकाइयों में बांटकर तथा शिक्षण कराने के बाद प्रत्येक इकाई के अन्त में परीक्षण देते हैं और यह देखते हैं कि छात्र ने अपेक्षित प्रगति की है अथवा नहीं। यदि हम यह अनुभव करते हैं कि छात्र किसी प्रकरण विशेष को भली–भांति नहीं समझ पा रहा है तो हम उस समस्या के कठिनाई स्थलों को जानने के लिये समस्या का निदान करते हैं तथा समस्या के समाधन हेतु उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करते हैं। फिर छात्र को इकाई परीक्षण या रूप देय परीक्षण दिया जाता है। रूपदेय परीक्षण का प्रारूप कसौटी परीक्षणों के समान ही होता है। इनकी रचना प्रत्येक इकाई के मापन के लिये की जाती है ताकि छात्रों को विषय–वस्तु का गहन अध्ययन कराया जा सके। संक्षेप में, रूपदेय परीक्षण के माध्यम से निम्न तीन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है–

(1) शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना।

(2) संयुक्त इकाई को विभिन्न इकाइयों में विभक्त कर छात्र को इकाई विशेष का गहन अध्ययन कराकर पाठ्य–वस्तु की व्यापकता के स्वामित्व का अवसर प्रदान करना।

(3) विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति करना अथवा छात्र के व्यवहार में अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तन लाना।

**2. योगदेय परीक्षण** (Summative Test)– जब अपनी विशिष्टीकरण तालिका के माध्यम से अध्यापक विषय–वस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया को पूरा कर लेता है अथवा

परीक्षण के माध्यम से यह सुनिश्चित कर लेता है कि उनके निर्धारित पाठ्य–वस्तु छोटी–छोटी इकाइयों पर आधारित प्रश्न पत्र देता है। यह कार्य वह रूपदेय परीक्षणों (Formative Test) के माध्यम से करता है। जब छात्र उस देय परीक्षण पर सफल हो जाता है तब अध्यापक छात्र को अन्त में योगदेय परीक्षण (Summative Test) देता है ताकि वह अपने छात्रों के सामान्य स्तर के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके। छात्रों की सफलता के आधार पर अध्यापक शिक्षण से सन्तुष्ट नहीं हैं तो वह समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके प्रकरण विशेष में उपचारात्मक परीक्षण (DiagnosticTest) बनाता है तथा समस्या के समाधान हेतु उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करता हैं छात्रों के साफल्य स्तर पर ही आधारित होता है। तुलनात्मक दृष्टि से जहां रूपदेय जो परीक्षण में छात्रों की अधिगम कठिनाइयों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता हैं वहीं दूसरी ओर योगदेय परीक्षण में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता को अधिक महत्व दिया जाता है। संक्षेप में, ये दोनों प्रकार के परीक्षण एक–दूसरे के पूरक हैं तथा मूल्यांकन की आधुनिक संकल्पना की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

## परीक्षा के प्रकार

छात्रों के शैक्षिक मापन के लिए दो तरह की परीक्षाओं का उपयोग करते हैं– वस्तुनिष्ठ एवं व्याख्यात्मक।

## वस्तुनिष्ठ परीक्षा

शिक्षण की उपलब्धियों का मापन निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा किया जाता है। विश्वविद्यालयों तथा बोर्ड की परीक्षाओं में निबन्धात्मक प्रश्न–पत्रों का उपयोग किया जाता है। इस परीक्षा में उत्तर–पुस्तिकाओं के अंकन (Scoring) में परीक्षक के व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव रहता है। इस प्रकार निबन्धात्मक परीक्षा का दोष व्यक्तिगत त्रुटि (Personal Error) है। निबन्धात्मक परीक्षा में सुधार के बाद भी यह त्रुटि कम नहीं होती है।

इस व्यक्तिगत त्रुटि को कम करने की दृष्टि से नवीन परीक्षा प्रणाली का विकास हुआ। इसे वस्तुनिष्ठ परीक्षा कहते हैं। इसके अन्तर्गत अंकन की प्रक्रिया में व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव नहीं होता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा की उत्तर–पुस्तिका को कितने ही परीक्षकों से अंकन कराने पर प्राप्तांकों में कोई अन्तर नहीं आता है। जबकि निबन्धात्मक परीक्षा की उत्तर–पुस्तिका को कई परीक्षकों से अंकन कराने पर प्रत्येक परीक्षक द्वारा प्राप्तांक भिन्न होंगे तथा होते भी हैं। शोध अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि की जा चुकी है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा का विकास निबन्धात्मक परीक्षा के सुधार के रूप में हुआ है। ये परीक्षाएं विश्वसनीय तथा वैध होती हैं। वस्तुनिष्ठ परीक्षा को प्रामाणिक बनाया जाता है, जबकि निबन्धात्मक परीक्षा वैध तथा विश्वसनीय नहीं होती है तथा उन्हें प्रामाणिक भी नहीं बनाया जा सकता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा नवीन प्रकार की परीक्षाएं होती है। ये अधिक वस्तुनिष्ठ, वैध तथा उपयोगी हैं। इन्हें प्रामाणिक (Standardized) भी बनाया जा सकता है। सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछे जाते हैं। ये दो प्रकार की होती हैं– प्रत्यास्मरण तथा अभिज्ञान

(Recall and Recognition)। इसमें कम समय में अधिक प्रश्न हल करने का समय दिया जाता है। इन दोनों प्रकार का विवरण निम्न प्रकार है–

**अभिज्ञान रूप प्रश्न** (Recognition Type Questions)– इस प्रकार के प्रश्न में कई प्रकार के सम्भावित उत्तर भी दिये जाते हैं। छात्र को उनमें से सही उत्तर का चयन करना पड़ता है। इसमें पहचानने की शक्ति की जांच होती है। इसमें छात्र अनुमान से भी उत्तर का चयन कर सकता है। अभिज्ञान रूप प्रश्न कई प्रकार के होते हैं– सत्य/असत्य रूप, बहुविकल्पीय रूप, समानता रूप, वर्गीकरण रूप, सादृश अनुभव रूप आदि।

**प्रत्यास्मरण रूप प्रश्न** (Recall Type Questions)– इनमें प्रश्न पूछे जाते हैं या अपूर्ण कथन दिया जाता है। छात्र अपनी स्मरण तथा धारण शक्ति के आधार पर उत्तर देता है अथवा कथन की पूर्ति करता है। ये दो प्रकार के होते हैं– 1. सामान्य प्रत्यास्मरण (Simple Recall) तथा 2. रिक्त स्थान प्रश्न (Completion Type)।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का उपयोग संकेत–अधिगम, श्रृंखला–अधिगम तथा बहुभेदीय–अधिगम के मापन के लिये सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इन्हें प्रत्यय अधिगम के लिये भी प्रयुक्त कर सकते हैं, परन्तु प्रश्न बनाना कठिन होता है।

इस विवरण से यह नहीं समझना चाहिए कि वस्तुनिष्ठ परीक्षा दोषरहित है इसमें ये दोष होते हैं, जैसे– इस परीक्षा द्वारा उच्चस्तरीय उपलब्धियों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इसलिए आज की परीक्षा प्रणाली में दोनों प्रकार (निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ) के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। शिक्षण की अधिगम उपलब्धियों के मूल्यांकन की दृष्टि से भी यह परीक्षा प्रणाली एक–दूसरे की विरोधी नहीं पूरक है।

**वस्तुनिष्ठ परीक्षा की विशेषताएं** (Characteristics of Objective Type Examination)

वस्तुनिष्ठ परीक्षा की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है–

1. निष्पत्ति परीक्षा, साफल्य तथा निदान, बुद्धि तथा प्रवणता परीक्षा में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसका उपयोग अधिक व्यापक है।
2. इनकी रचना कठिन है तथा समय, धन व शक्ति अधिक व्यय होती है।
3. अंकन सरल होता है। कुंजी की सहायता से कोई भी अंकन कर सकता है।
4. यह अधिक विश्वसनीय होते हैं। विश्वसनीयता, गुणक ज्ञात किया जाता है।
5. यह अधिक वैध होते हैं। वैधता गुणक की गणना की जाती है।
6. इसके मानक विकसित किये जाते हैं तथा इन्हें प्रमाणित बना लिया जाता है।
7. इसमें प्रश्नों को अनुमान से भी सही किया जा सकता है जिसके लिये अनुमान सूत्र (Guessing) प्रयुक्त करते हैं।
8. इनमें भाषा तथा सुलेख का प्रभाव नहीं होता और न भाषा तथा सुलेख के संबंध में जानकारी होती है।

**टिप्पणी**

9. ज्ञानात्मक पक्ष के ज्ञान, बोध तथा प्रयोग उद्देश्यों के लिये अधिक उपयोगी होते हैं। भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों के लिये प्रयुक्त नहीं कर सकते है।
10. प्रशासन में विशिष्ट निर्देशन को प्रयुक्त किया जाता है। प्रशासन कठिन होता है।
11. छात्रों को थकान अधिक होती है। विशिष्ट निर्देशन प्रयुक्त होते हैं।
12. इन परीक्षाओं की रचना में प्रशिक्षण किया जाता है।
13. इन परीक्षाओं की रचना में पाठ्यवस्तु का सूक्ष्म प्रत्ययों में विश्लेषण करना होता है।

## निबंधात्मक परीक्षा

निबंधात्मक परीक्षाएं विश्वसनीय तथा वैध नहीं होती है, फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में इनका अधिक प्रयोग होता है। उच्च अधिगम–उद्देश्यों के मापन के लिये निबन्धात्मक परीक्षाएं ही सफलतापूर्वक प्रयुक्त की जा सकती हैं। निबन्धात्मक परीक्षाओं की सीमाएं होते हुए भी इनको हटाया नहीं जा सकता है, अपितु इनके सुधार की आवश्यकता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं में तीन प्रकार के सुधार की आवश्यकता है–

1. प्रश्नों में सुधार।
2. प्रश्न–पत्रों में सुधार।
3. उत्तर–पुस्तकों के मूल्यांकन में सुधार।

1. **प्रश्नों में सुधार**– निबन्धात्मक प्रश्न में सुधार के लिये कुछ विशिष्ट बातों को ध्यान में रखना चाहिए। प्रत्येक प्रश्न को किसी अधिगम के विशेष उद्देश्य का मापन करना चाहिये। प्रश्नों की रचना में पाठ्यवस्तु के साथ उद्देश्य को भी महत्व देना चाहिए। प्रश्नों मे सम्मिलित की गई पाठ्यवस्तु शुद्ध तथा वास्तविक होनी चाहिए। प्रश्नों की भाषा स्पष्ट तथा सरल होनी चाहिए।
2. **प्रश्न–पत्रों में सुधार**– प्रश्न–पत्र ऐसे होने चाहिये जिनके द्वारा सभी अधिगम उद्देश्यों का मूल्यांकन किया जा सके। पाठ्य–वस्तु के साथ उद्देश्यों को विशेष महत्व दिया जाना चाहिये। एक ही पाठ्य–वस्तु विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। प्रश्न–पत्र के निर्देष स्पष्ट तथा सरल भाषा में होने चाहिये। प्रश्न–पत्र का कठिनाई स्तर छात्रों के अनुरूप ही होना चाहिये। अंकों का विवरण प्रश्न के साथ ही देना चाहिये। मूल्यांकन के हेतु उत्तरों के नमूने भी देने चाहिये।
3. **उत्तर–पुस्तकों के मूल्यांकन में सुधार**– निबन्धात्मक परीक्षा को उत्तर–पुस्तकों के मूल्यांकन में सुधार करना चाहिये। मूल्यांकन के लिये योग्य व्यक्तियों को परीक्षक नियुक्त करना चाहिये। मूल्यांकन निर्देश सरल तथा स्पष्ट भाषा में होने चाहिये। उत्तरों के नमूने परीक्षकों को भेजने चाहिये। प्रश्न के प्रत्येक खण्ड के अलग–अलग अंक देने चाहिये। अंकों के स्थान पर

टिप्पणी

रैंक (Rank) अथवा ग्रेड (Grade) दिये जाने चाहिये। केन्द्रित मूल्यांकन की व्यवस्था होनी चाहिये और परीक्षकों को उत्तर–पुस्तक बांटने के बजाय प्रश्न बांटने चाहिये। एक ही परीक्षक द्वारा सभी उत्तर–पुस्तकों के एक प्रश्न का अंकन करना चाहिये।

अधिगम के उच्च उद्देश्यों के मूल्यांकन में निबन्धात्मक प्रश्न सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरण निम्नांकित है–

1. छात्रों में शिक्षण–तकनीकी की परिभाषा के मूल्यांकन की योग्यता है।

   **प्रश्न**– "शिक्षणशास्त्र, शिक्षण की एक प्रक्रिया तथा प्रणाली है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये।

2. छात्रों में निबन्धात्मक परीक्षाओं की विशेषताओं के मूल्यांकन करने की क्षमता है।

   **प्रश्न**– "निबन्धात्मक परीक्षाओं को हटाया नहीं जा सकता है, अपितु उनमें सुधार की आवश्यकता है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

   **प्रश्न**– "वस्तुनिष्ठ परीक्षा, निबन्धात्मक परीक्षा की विरोधी नहीं अपितु पूरक होती है" इस कथन की आलोचना कीजिये।

3. छात्रों में 'शिक्षण प्रक्रिया के तत्वों के विश्लेषण' करने की योग्यता है।

   **प्रश्न** – शिक्षणशास्त्र कला ही नहीं अपितु विज्ञान भी है। शिक्षण के वैज्ञानिक विश्लेषण की व्याख्या कीजिये।

## निबन्धात्मक परीक्षा की विशेषताएं (Characteristics of Essay Type Examination)

निबन्धात्मक परीक्षा की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. निष्पत्ति परीक्षा, साफल्य, वर्गीकरण, चयन में प्रयुक्त होता है।
2. रचना सरल होती है। समय भी कम लगता है। मितव्ययी है।
3. अंकन कठिन होता है। परीक्षक द्वारा विषय का स्वामित्व होने पर ही अंकन किया जा सकता है।
4. यह विश्वसनीय नहीं होते हैं तथा विश्वसनीयता गुणक ज्ञात भी नहीं किया जा सकता है।
5. यह वैध नहीं होते हैं। वैधता गुणक भी ज्ञात करना कठिन होता है।
6. मानक विकसित करना कठिन है, प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता है।
7. अनुमान से सही नहीं कर सकते हैं परन्तु धोखा दिया जा सकता है।
8. भाषा तथा सुलेख का प्रभाव अधिक होता है। भाषा तथा सुलेख का भी मापन किया जा सकता है।

9. ज्ञानात्मक पक्ष के विश्लेषण, सृजनात्मक उच्च उद्देश्यों के मापन के लिये अधिक उपयोगी होते हैं। भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।
10. प्रशासन सरल होता है। कोई विशिष्ट निर्देशन प्रयुक्त किये जाते हैं।
11. अपेक्षाकृत कम थकान होती है। सामान्य निर्देशन प्रयुक्त किये जाते हैं।
12. इनकी रचना में किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।
13. पाठ्य–वस्तु का व्यापक रूप ही प्रयुक्त होता है।
14. छात्र पाठ्यवस्तु के महत्वपूर्ण तत्वों का व्यापक रूप में अध्ययन करता है।
15. अधिक समय में कम प्रश्नों का उत्तर देना होता है। (घण्टे में पांच प्रश्न) समस्त पाठ्यवस्तु पर प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं। पाठ्यवस्तु का न्यादर्श होता है।

## अच्छे परीक्षण के गुण (Characteristics of a Good Test)

''परीक्षण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के व्यवहार की तुलना करने की एक व्यवस्थित विधि है।''

"A test is a systematic procedure for comparing the behaviour of two or more persons."

कल्समियर एवं गुडविन के अनुसार, ''एक अच्छा परीक्षण वैधता, विश्वसनीयता व व्यावहारिकता पर खरा उतरता है।''

"Good standardized tests must meet the criteria of validity, Reliability and Usability." -Klausmeler and Goodwin

एक अच्छे परीक्षा के गुणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. व्यावहारिक कसौटियां (Practical Criteria)
2. तकनीकी कसौटियां (Technical Criteria)

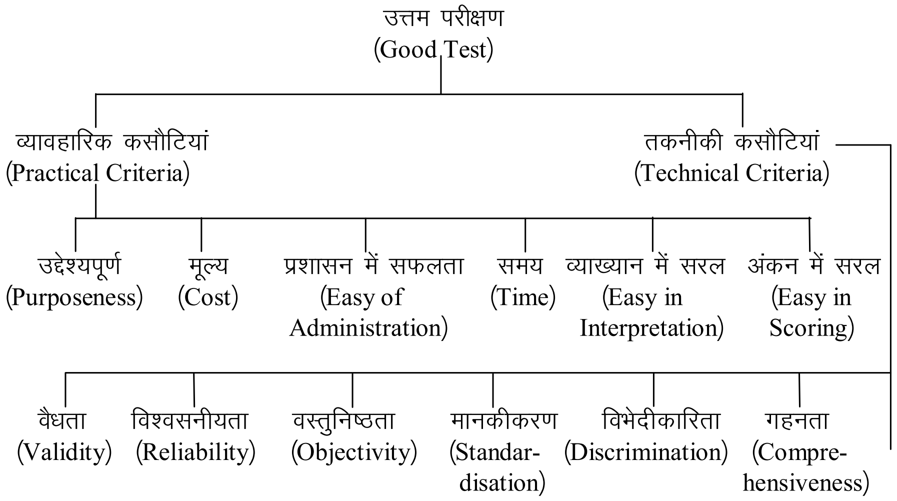

**व्यावहारिक कसौटियां** (Practical Criteria)

टिप्पणी

यह निम्न प्रकार का होता है–

1. **उद्देश्यपूर्ण** (Purposeness)– किसी भी प्रकार की परीक्षा का निर्माण करने से पहले उसके विशिष्ट उद्देश्य (Specific Objectives) निश्चित कर लेने चाहिये अर्थात परीक्षा किस उद्देश्य के लिये बनाया जा रहा है, वह स्वयं में स्पष्ट होना चाहिए। जैसे एक विज्ञान की परीक्षा अंग्रेजी के ज्ञान को मापना शुरू न कर दे।
2. **मूल्य** (Cost)– एक अच्छा परीक्षण मितव्ययी (Economical) होना चाहिए, अर्थात परीक्षण निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षण धन की दृष्टि से अनुसन्धानकर्ता (Researcher) के लिये महंगा न हो। इसके लिए परीक्षण में केवल उन्हीं पदों को डालना चाहिये जिससे उद्देश्य की पूर्ति में आसानी और कम से कम समय में परीक्षण द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें।
3. **प्रशासन में सरलता** (Easy in administration)– एक परीक्षण तभीी अच्छा होता है जिसका उत्तर देना सरल हो, जिसको देने की स्थितियां सरल हों, जिसके निर्देश सरल व स्पष्ट हों तथा जिसका अंकन वस्तुनिष्ठ प्रकार से हो।

   डगलस व होलैन्ड के अनुसार, ''एक अच्छे परीक्षण में कई विशेषताएं होती है और ये विशेषताएं बेसिक सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं, जिसका आधार बनाकर ही प्रत्येक परीक्षण का निर्माण किया जाता है।''

   "A good examination must possess a number of characteristics and these characteristics become the basic principles underlying the construction of each test."

   *–Douglas and Holland*
4. **समय** (Time)– सामान्यतः जो समय विद्यार्थियों को उपलब्ध होता है वह हमेशा परीक्षण को करने के लिए कम पड़ता है, लेकिन दूसरी तरफ लम्बे परीक्षणों को भी विद्यार्थी स्वीकार नहीं करते हैं। अतः बालक न तो ज्यादा लम्बे परीक्षणों को लेता है और न ही ऐसे छोटे परीक्षणों को लेता है जो उसके उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होते हैं। अब एक परीक्षण के लिये क्या समय सीमा हो? यह निश्चित करने के लिए सामान्य समूह (Average Group) के 10 प्रतिशत विद्यार्थियों पर एक परीक्षण लें व जितना समय वे लें उतना समय ही दें।
5. **व्याख्यान में सरल** (Easy in Interpretation)– कोई भी परीक्षण व्याख्यान की दृष्टि से सरल होना चाहिये। दूसरे शब्दों में विद्यार्थियों को दिये गए अंकों की व्याख्या करने के लिये अध्यापक को किसी उच्च सांख्यिकीय सूत्रों (High statistical formulas) का प्रयोग न करना पड़े। एक अच्छा परीक्षण वही होता है जो कक्षा में अध्यापक द्वारा सरलता या आसानी से व्याख्यायित किया जा सके।

6. **अंकन में सरल** (Easy in Scoring)– एक परीक्षण अंकन देने की दृष्टि से भी सरल होना चाहिए। इसके लिए वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रकार के प्रश्नों को बनाना चाहिये, क्योंकि इनमें अंक देने में सरलता होती है तथा अंक देने के लिए अपनाई गई विधि भी व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ रहती है।
7. **स्वीकार्यता** (Acceptability)– स्वीकार्यता का अर्थ, किसी भी परीक्षण का उन व्यक्तियों पर तथा उन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रशासित किया जाना, जिनको आधार बनाकर उस परीक्षण विशेष की मानकीकरण प्रक्रिया (Process of standardization) सम्पन्न की गई है। एक अच्छा परीक्षण बिना किसी विशिष्ट परिस्थिति या स्थिति के जिन विद्यार्थियों को दिया जा रहा है, उन्हें स्वीकार्य हो अर्थात परीक्षण में दिये गये प्रश्न न तो अधिक कठिन हो और न ही अधिक सरल हो।

फ्रेडरिक जी. ब्राउन के अनुसार ''परीक्षण उस समय प्रतिनिधि माना जायेगा, जब परीक्षण पद उस व्यवहार से संबंधित हो, जिनका हम मापन करना चाहते हैं।''

"A test is representative when the test items are similar to the behaviours, we are interested in measuring." –*Frederick G. Brown*

## **तकनीकी कसौटियां** (Technical Criteria)

यह निम्न प्रकार का होता है–

1. **वैधता** (Validity)– वैधता से तात्पर्य, परीक्षण की सत्यता से है। एक परीक्षण जब किसी गुण को मापने के लिये निर्मित किया जाये तथा उसी का मापन करें, तो यह उस परीक्षण की वैधता कहलाती है।

"Validity is as truthfulness or purposiveness of a test."

यह किसी भी परीक्षण का आवश्यक गुण होता है। प्रत्येक परीक्षण के अपने कुछ उद्देश्य होते हैं व वह किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये बनाया जाता है। अतः वह किसी उद्देश्य के लिये वैध होता है।

स्टोडला एवं स्टोर्डल के अनुसार, ''सामान्य रूप में, वैधता विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति में परीक्षण की प्रभावपूर्णता की ओर संकेत करती है।''

"In general, the term validity refers to the effectiveness of a test in achieving specified purposes."

कोलसनिक के अनुसार, ''एक वैध परीक्षण वह है, जो उन्हीं विशिष्टताओं तथा गुणों का मापन करती है, जिनका मापन करने के लिये वह बनाई गई है।''

"A valid test is one while measures the traits and qualities it is intended to measure."

2. **विश्वसनीयता** (Reliability)– एक अच्छा परीक्षण का विश्वसनीय होना आवश्यक है। जब किसी परीक्षण के परिणाम समान परिस्थितियों में एक समान बने रहते हैं, तो उस परीक्षण को विश्वसनीय माना जाता है। इसके लिये परीक्षण में नमूने (Sample) की पर्याप्तता तथा अंक देने में वस्तुनिष्ठता होनी चाहिए। अतः

**टिप्पणी**

विश्वसनीयता = नमूने का आकार + वस्तुनिष्ठता

Reliability = Sample size + Objectivity

किसी भी परीक्षण के विश्वसनीयता होने के लिये यह आवश्यक है कि एक बालक को एक ही परीक्षण को बार–बार दिये जाने पर एक समान अंक प्राप्त होने चाहिये चाहे वह अलग परीक्षक के द्वारा जांचा जाये या एक ही परीक्षक द्वारा अलग–अलग समयों में जांचा जाये तो वह अन्तर नगण्य (Negligible) होना चाहिये। मापन विधि तभी तक विश्वसनीय होगी जब तक कि उससे प्राप्त परिणाम स्थायी होंगे।

रिजलैण्ड के अनुसार, ''विश्वसनीयता उस विश्वास को प्रकट करती है, जो कि एक परीक्षा में स्थापित की जा सकती है।''

"Reliability refers to the faith that may be placed into a test." -*Rizeland*

शेक्सपियर के अनुसार, ''प्रकृति में जहां कहीं भी एकरूपता है, यहां विश्वसनीयता अवश्य समाहित हो जाती है।''

"Consistency though art of the jewel." -*Sexpeyear*

स्किनर के अनुसार, ''एक परीक्षण तब विश्वसनीय होता है, जब उसके मापन में समानता हो।''

"A test is reliable, if it measures consistently."

एल.जे. क्रोनबेच के अनुसार, ''विश्वसनीयता, हमेशा अंकों के मापन करने में समानता प्रदर्शित करती है।''

"Reliability always refers to consistency throughout a series of measurement."

3. **मानकीकरण** (Standardisation)– एक मानवीकृत परीक्षण वह होता है, जिसमें प्रक्रिया, उपकरण व अंकन (Procedure, apparaturs and scoring) निश्चित होती है, जिससे उसी को भिन्न समय और जगहों में ठीक ढंग से दिया जा सकें।

   सी.वी. गुड के अनुसार, ''एक मानवीकृत परीक्षण वह है, जिसमें विषय वस्तु का चयन अनुभव के आधार पर किया गया हो, जिसके प्रशासन एवं फलांकन की समरूप विधियों कों विकसित किया गया हो तथा फलांकन की समरूप विधियों को विकसित किया गया हो तथा फलांकन को वस्तुनिष्ठ विधि से किया गया हो।''

"A standardized test is that in which the selection of content on the basis of experiences, the development of administraion and scoring of equal method and the scoring has been done by objective method."



4. **विभेदीकारिता** (Discrimination)– विभेदीकरण से तात्पर्य, परीक्षण का वह गुण है जिसके द्वारा परीक्षक पढ़ने में तेज, सामान्य एवं पिछड़े हुए विद्यार्थियों के बीच काफी सीमा तक भेद कर सकें। इसके द्वारा यह जाना जा सकता है कि पूरे परीक्षण पर प्राप्तांकों के आधार पर अधिक अंक पाने वाले विद्यार्थियों को पृथक करने में प्रत्येक प्रश्न का क्या योगदान है? एक अच्छे परीक्षण में उसका विभेदीकरण होना अति आवश्यक है।

5. **गहनता** (Comprehensiveness)– गहनता का अर्थ उस प्रारूप से है, जिसके द्वारा परीक्षक उस योग्यता के विभिन्न दृष्टिकोणों का मापन करने में सक्षम हो सकता है, जिसके मापन के लिये उसका निर्माण किया गया है। इसके लिये परीक्षण में प्रश्नों की संख्या का अधिक होना आवश्यक है। इसमें पाठ्यक्रम के अधिक से अधिक तथ्यों (Factors), सम्प्रत्ययों (Concepts) एवं प्रकरणों (Topics) आदि में समावेश करने से है। परीक्षा में दिये गये प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से संबंधित होने चाहिए न कि अधूरे या आंशिक पाठ्यक्रम से।

6. **कठिनाई स्तर** (Difficulty level)– कठिनाई स्तर प्रश्न का बहुत महत्वपूर्ण लक्षण है। सम्पूर्ण प्रश्न पत्र में दिये गये अंकों के वितरण को इसी के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। एक अच्छा परीक्षण वही है, जिसमें 66 प्रतिशत प्रश्न सामान्य कठिनाई स्तर से हों, 17 प्रतिशत उच्च कठिनाई स्तर (High difficulty level) के तथा 17 प्रतिशत निम्न कठिनाई स्तर (Low difficulty level) के हों।

7. **सहजता** (Usability)– वह परीक्षण, जो निर्माण करने, विद्यार्थियों द्वारा उसका उत्तर देने एवं अंक देने, तीनों पक्षों की दृष्टि से सरल हो, एक अच्छा परीक्षण कहलाता है। अन्य शब्दों में, वह परीक्षण जिसके निर्माण में कठिनाई न हो, विद्यार्थियों को भी उसके उबार देने में सहजता ही तथा अंकन (Scoring) की प्रक्रिया में भी किसी प्रकार की जटिलता न आये, सहजता के गुण वाला परीक्षण कहलाता है।

सी.सी. रॉस के अनुसार, ''सहजता वह मात्रा है, जिस तक परीक्षा या अन्य साधन को, अध्यापकों तथा पाठशाला प्रबन्धकों द्वारा बिना समय तथा शक्ति के अनावश्यक व्यय को सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है। एक शब्द में सहजता का अर्थ व्यावहारिकता है।''

"By usability we mean the degree to which the test or other instrument can be successfully employed by teachers and school administration without any undue expenditure of time and energy. In word, usebility means practicability." –*C.C. Ross*

टिप्पणी

## परीक्षा के निर्माण के सामान्य सिद्धान्त (General Principles of Test Construction)

परीक्षा के निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं–

1. परीक्षा की संरचना व्यापक (Comprehensive) होनी चाहिये।
2. ऐसे प्रश्नों को परीक्षा में कोई स्थान नहीं देना चाहिये, जिनके दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हैं।
3. परीक्षा में प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट व संक्षिप्त होनी चाहिये।
4. परीक्षा की विश्वसनीयता (Reliability) व वैधता (Validity) को हमेशा बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।
5. परीक्षण में प्रश्नों को सीमित व आवश्यकतानुसार रखना चाहिये।
6. परीक्षा को उचित क्रम में व्यवस्थित करना चाहिये।
7. परीक्षा का उचित नामकरण करना चाहिये।
8. परीक्षा से संबंधित सामान्य निर्देश प्रारम्भ में ही दिये जाने चाहिये।
9. जहां तक सम्भव हो सके एक से प्रश्नों को एक ही पृष्ठ पर रखना चाहिये।
10. परीक्षा के लिये ऐसे प्रश्नों का निर्माण किया जाए जिससे विद्यार्थियों के ज्ञान की व्यावहारिक क्षमता का मूल्यांकन किया जा सके।

***मूल्यांकन व परीक्षा में अंतर (Difference between Evaluation and Examination)***

| क्र. सं. | **मूल्यांकन** (Evaluation) | | **परीक्षा** (Examination) |
|---|---|---|---|
| 1. | मूल्यांकन आधुनिक युग की देन है। | 1. | परीक्षा एक प्राचीन शब्द है। |
| 2. | मूल्यांकन का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। | 2. | परीक्षा का क्षेत्र मूल्यांकन की अपेक्षा संकुचित होता है। |
| 3. | मूल्यांकन एक प्रविधि है। | 3. | परीक्षा, मूल्यांकन की अनेक प्रविधियों में से एक प्रविधि है। |
| 4. | मूल्यांकन, लिखित व मौखिक दोनों प्रकार की जांच के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाता है। | 4. | परीक्षा शब्द का प्रयोग, प्रायः लिखित समीक्षा के सन्दर्भ में भी किया जाता है। |

## परीक्षण के प्रकार

प्रायः परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

1. अध्यापक–निर्मित परिक्षाएं (Teacher-Made Test)
2. प्रमापीकृत परीक्षाएं (Standardized Test)

### अध्यापक–निर्मित परीक्षाएं (Teacher-Made Test)

अध्यापक को अपनी और विद्यार्थियों की सफलता की प्राप्ति के लिये समय–समय पर विभिन्न परीक्षाओं की आवश्यकता पड़ती है, जिससे वह विद्यार्थियों को प्रेरणा देता है

तथा इसके साथ ही अध्यापक को स्वयं अपनी कमियों व क्षमताओं का पता भी चलता है, जिससे वह अपने में सुधार लाता है।

**टिप्पणी**

अध्यापक निर्मित परीक्षाओं से तात्पर्य ऐसी परीक्षाओं से है, जिनका निर्माण कोई अध्यापक अपनी कक्षा के लिये अपने द्वारा पढ़ाये गये विषय के पाठ्यक्रम के उतने भाग के अनुसार करता है, जिसको उसने एक निश्चित समय के लिये पढ़ाया है। इन परीक्षाओं का निर्माण विभिन्न प्रकार के विषयों की तैयारी के लिये किया जाता है। ये परीक्षाएं वस्तुनिष्ठ (Objective) होती हैं, प्रमापीकृत (Standardized) नहीं होती हैं।

### अध्यापक–निर्मित परीक्षाओं के उद्देश्य (Objective of Teacher-Made Test)

इन परीक्षाओं को बनाने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. इन परीक्षाओं के माध्यम से अध्यापक सीमित पाठ्य–पुस्तक का मूल्यांकन (Evaluation) सफलतापूर्वक कर सकता है।
2. ये परीक्षाएं निरन्तर मूल्यांकन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।
3. इन परीक्षाओं का प्रमुख उद्देश्य निबन्धात्मक परीक्षाओं (Eassay Type Test) की कमियों को दूर करके विद्यार्थियों की वास्तविक योग्यता की जांच करना है। यह परीक्षाएं निबन्धात्मक परीक्षाओं का एक सुधारात्मक स्वरूप हैं।
4. इन परीक्षाओं के आधार पर अध्यापक को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की जानकारी मिलती है कि उसने किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है।
5. इन परीक्षाओं को कम समय में आसानी से तैयार किया जा सकता है।
6. ये परीक्षाएं अध्यापक को अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के अवसर प्रदान करती हैं।
7. इन परीक्षाओं को तैयार करने में अध्यापक को किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

### अध्यापक–निर्मित परीक्षाओं की विशेषताएं (Characteristics of Teacher-Made Test)

अध्यापक निर्मित परीक्षाओं की निम्नलिखित विशेषताएं होती है–

1. इन परीक्षाओं में प्रश्न वस्तुनिष्ठ (Objective) होते हैं।
2. ये परीक्षाएं किसी भी विषय अध्यापक (Subject Teacher) द्वारा निर्मित की जा सकती हैं।
3. ये परीक्षाएं मानकीकृत (Standardized) नहीं होती हैं।
4. इन परीक्षाओं के प्रश्न संक्षिप्त व अधिक संख्या में सम्मिलित किये जाते हैं।

5. ये परीक्षाएं सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करती हैं।
6. इन परीक्षाओं में प्रश्नों के विभिन्न रूपों का समावेश सरलतापूर्वक किया जा सकता है।
7. ये परीक्षाएं परीक्षक (Examiner) की मनोवृति के प्रभाव से पूर्णतया परे रहती हैं।
8. ये परीक्षाएं अध्यापक व विद्यार्थियों दोनों का मूल्यांकन करती हैं।

टिप्पणी

## अध्यापक–निर्मित परीक्षाओं की सीमाएं (Limitations of Teacher-Made Test)

इन परीक्षाओं की उपर्युक्त विशेषताएं होने के साथ–साथ कुछ सीमाएं भी होती हैं जो निम्न हैं–

1. ये परीक्षाएं अध्यापक को बोझ की तरह लगती हैं।
2. इन परीक्षाओं के द्वारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन कर पाना सम्भव नहीं हो पाता।
3. इन परीक्षाओं द्वारा किसी विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता।
4. इन परीक्षाओं का निर्माण करना एक कठिन कार्य है।
5. ये परीक्षाएं वस्तुनिष्ठ होते हुए भी प्रमापीकृत न होने के कारण परीक्षक की मनोवृति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती।
6. इन परीक्षाओं द्वारा बालक की कठिनाइयों का ज्ञान पाना कठिन होता है।

## अध्यापक–निर्मित परीक्षाओं का निर्माण (Construction of Teacher-Made Test)

अध्यापक निर्मित (Teacher-made) परीक्षाओं का निर्माण करते समय सबसे पहले विषय अध्यापक (Subject Teacher), जिस कक्षा के लिये परीक्षा का निर्माण करना चाहता है। उन पाठ्यक्रम में से उन प्रकरणों (Topic) का चयन करता है जिन पर उसे प्रश्नों की रचना करनी होती है तथा यह प्रश्न विभिन्न प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective type questions) होते हैं। इन प्रश्नों को संक्षिप्त (Short) बनाया जाता है। इन प्रश्नों को कठिनाई स्तर के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है अर्थात प्रश्नों का क्रम व स्वरूप सरल से जटिल की ओर (Simple to complex) होता है।

इस परीक्षा के निर्माण का उद्देश्य, विषय संबंधी योग्यता को नापने के साथ–साथ उसके प्रयोगात्मक उपयोग में सहायता पहुंचाना है। इन प्रश्नों को बनाते समय अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिये कि इन प्रश्नों का निर्माण सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से हो। निर्माण के बाद परीक्षण का समय निश्चित कर देना चाहिये व उसी के अनुसार परीक्षा को लागू करना चाहिये।

**प्रमापीकृत परीक्षाएं** (Standardized Tests)

प्रमापीकृत परीक्षाओं में वे परीक्षाएं शामिल होती हैं, जिनकी रचना करते समय वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया हो तथा जिनकी वैधता (Validity) व विश्वसनीयता (Reliability) का पता वैज्ञानिक ढ़ंग से ज्ञात किया गया हो। बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test), रुचि परीक्षण (Interest Test), अभिरुचि शिक्षण (Aptitude Test), उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test), व व्यक्तिगत परीक्षण (Personality Test) आदि प्रमापीकृत परीक्षण है।

**प्रमापीकृत परीक्षण की उपयोगिता व महत्व** (Utility and Importance of Standardized Test)

व्यक्ति के अध्ययन के लिये प्रमापीकृत प्रविधियों की उपयोगिता एवं महत्व निम्न हैं–

1. प्रमापीकृत परीक्षण वस्तुनिष्ठ (Objective) व निष्पक्ष माने जाते हैं।
2. इन परीक्षणों द्वारा सूचनाएं इस स्वरूप में एकत्रित कर ली जाती है कि सभी निर्देशक (Guidance) उन सूचनाओं का अर्थ एक जैसा ही लगा सकते हैं।
3. प्रमापीकृत परीक्षण द्वारा सूचनाओं का अर्थ एक जैसा ही लगा सकते हैं।
4. इन परीक्षणों द्वारा व्यक्तित्व व व्यवहार संबंधी तथ्यों का प्रत्यक्ष (Direct) रूप से पता लगाया जा सकता है।
5. इन परीक्षणों द्वारा उन विद्यार्थियों का भी पता चल जाता है, जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता होती है।

**प्रमापीकृत परीक्षण के दोष** (Demerits of Standardized Test)

प्रमापीकृत परीक्षण के दोष निम्नलिखित हैं–

1. इन परीक्षणों द्वारा विस्तृत मापन सम्भव नहीं है।
2. इन परीक्षणों के द्वारा केवल मापन की प्रक्रिया ही चलती है। ये निर्णय लेने में असमर्थ होती है।
3. ये परीक्षण निर्देशन कार्यक्रम का अंग मात्र ही हैं, न कि समस्त कार्यक्रम।
4. कई बार प्रमापीकृत परीक्षण उन उद्देश्यों के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं, जिनके लिये वे बने ही नहीं होते।
5. इन परीक्षणों के द्वारा विद्यार्थियों परीक्षा की परिस्थिति में क्या कुछ कर सकता है, ये पता लगाया जा सकता है। लेकिन इसके अतिरिक्त उसकी अन्य परिस्थितियों के बारे में कोई जानकारी नहीं ली जा सकती है।

*अध्यापक–निर्मित परीक्षाओं व प्रमापीकृत परीक्षाओं के परीक्षणों में अंतर*

*(Deifference between Teacher made Test and Standardized Test)*

टिप्पणी

| क्र. सं. | अध्यापक–निर्मित परीक्षण (Teacher-made Test) | | प्रमापीकृत परीक्षण (Standardized Test) |
|---|---|---|---|
| 1. | इन परीक्षणों में विश्वसनीयता (Reliabitity) का अभाव होता है। | 1. | इसमें विश्वसनीयता अधिक होती है। |
| 2. | इन परीक्षाओं का निर्माण स्वयं अध्यापक द्वारा किया जाता है। | 2. | इसका निर्माण वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। |
| 3. | इन परीक्षणों की परीक्षा सामग्री का पहले कोई परीक्षण नहीं किया जाता। | 3. | प्रमापीकृत परीक्षणों की परीक्षा सामग्री का पूर्व–परीक्षण किया जाता है। |
| 4. | इन परीक्षणों के निर्माण में कम समय लगता है। | 4. | इन परीक्षणों के निर्माण में अधिक समय लगता है। |
| 5. | ये परीक्षाएँ किसी विशेष विद्यालय या किसी कक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बनायी जाती है। | 5. | ये परीक्षायें किसी विद्यालय विशेष के पाठ्यक्रम पर आधारित न होकर समस्त विद्यालयों में पढ़ाये गये पाठ्यक्रम पर आधारित होते हैं। |
| 6. | इन परीक्षाओं में धन व शक्ति कम मात्रा में व्यय होती है। | 6. | इन परीक्षाओं में धन व शक्ति का व्यय अधिक मात्रा में होता है। |
| 7. | इन परीक्षणों में विभिन्न समूहों के लिये कोई मानक (Norms) निर्धारित नहीं किये जाते हैं। | 7. | इन परीक्षणों में विभिन्न समूहों के लिए मानक (Norms) निर्धारित किये जाते हैं। |
| 8. | इन परीक्षणों का निर्माण बहुत सरल होता है। | 8. | इन परीक्षणों का निर्माण बहुत कठिन होता है। |
| 9. | अध्यापक को कोई विशेष सुविधा इसके निर्माण के समय उपलब्ध नहीं होती है। | 9. | इन परीक्षणों के निर्माताओं को अनेक सुविधाएं उपलब्ध होती है। |
| 10 | इन परीक्षणों में निर्देशन और अंक प्रदान करने की विधि का वर्णन नहीं होता है। | 10. | इन परीक्षणों में निर्देश एवं अंक प्रदान करने की विधि का पूर्व लिखित वर्णन होता है। |
| 11. | इन परीक्षणों का सम्बन्ध ज्ञान के व्यापक क्षेत्र से होता है। | 11. | इन परीक्षाओं का सम्बन्ध विशिष्ट एवं सीमित पाठ्य–पुस्तक से होता है। |

### अपनी प्रगति जांचिए

11. निम्न में से निर्देशन एवं परामर्श की मानकीकृत तकनीक कौन–सी है?
    (क) बुद्धि परीक्षण (ख) अभिरुचि मापनी
    (ग) व्यक्तित्व परीक्षण (घ) उपर्युक्त सभी
12. सूचना प्राप्त करने की गैर–मानकीकृत विधि कौन–सी है?
    (क) आकस्मिक निरीक्षण आलेख (ख) प्रश्नावली
    (ग) साक्षात्कार (घ) उपर्युक्त सभी

## 1.5 व्यावसायिक सूचना

व्यावसायिक निर्देशन एक अधिक व्यापक, जटिल एवं व्यावहारिक प्रक्रिया है क्योंकि इस प्रकार के निर्देशन से जीवन वृत्त के लिए सहायता प्रदान की जाती है। इसमें शैक्षिक व्यावसायिक, व्यक्तिगत व सामाजिक निर्देशनों की भी सहायता ली जाती है।

जीविका (व्यवसाय) जीवन की मेरुदंड है। यथार्थ तो यह है कि उचित व्यवसाय यानी रोजगार में स्थान प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति को न केवल जीवनयापन का साधन

टिप्पणी

ही प्राप्त होता है, अपितु उसे आत्म–संतुष्टि भी प्राप्त होती है व उसमें आत्मबल का संचार भी होता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी बेरोजगार रहता है तो वह कुंठा व हीन भावना का शिकार हो जाता है तथा वह स्वयं को परिवार व समाज पर बोझ मानता है। उचित जीविकोपार्जन द्वारा व्यक्ति परिवार, कुटुम्ब एवं समाज में आदर व सम्मान का पात्र होता है तथा उसके भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है।

## व्यावसायिक सूचना का अर्थ, संग्रहण, प्रकार, वर्गीकरण और प्रसार

व्यावसायिक यानी रोजगार सूचना शब्द का रोजगार साहित्य में व्यापक अर्थ में प्रयोग होता है। इसका संबंध उन तथ्यों से है जो रोजगारों के महत्व, प्रवेश की योग्यताओं, उन्नति के अवसर एवं विधियों, स्वास्थ्य एवं दुर्घटनाओं की संभावनाओं, उनके एवज में दिये जाने वाले मुआवजों तथा विशिष्ट रोजगार या संबंधित रोजगार समूहों में उपस्थित होने वाली दशाओं इत्यादि से संबंध रखते हैं। "(The term occupational information is used in vocational literature in a wide sense. It refers to facts concerning the importance of the vocations, entrance requirements, lines of and opportunities for permotion, health and accident hazards, compensation and other working conditions that are usually met in specific vocation or related group of vocations)" संक्षेप में रोजगार सूचना के अंतर्गत विभिन्न उद्योग एवं उनके प्रक्रमों का अध्ययन आता है।

## व्यावसायिक सूचना का महत्व एवं आवश्यकता

व्यावसायिक सूचना का महत्व एवं आवश्यकता निम्न कारणों से होती है–

1. **व्यक्ति की प्रतिभा एवं उपलब्धि का सर्वोत्तम नियोजन** (Best placement of potentialities and achievement of an individual)– किसी भी समाज की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसके सदस्यों की योग्यताओं, शैक्षिक उपलब्धियों एवं प्रतिभाओं का सही एवं अच्छे तरीके से प्रयोग किया जाए। लेकिन यह उस दशा में ही संभव हो सकता है जबकि नौकरी चाहने वाले वर्ग को जीवनचर्याओं एवं नौकरी अवसरों (Job Opportunities) के बारे में समय–समय पर सूचनाएं प्रसारित करते रहें, चाहे यह सूचनाएं मीडिया के माध्यम से दी जाएं या फिर समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के द्वारा दी जाएं।
2. **रोजगार सूचना सेवा व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है** (Occupational information service is very useful for the individual)– प्रत्येक व्यक्ति की यह आदत होती है कि वह उन्हीं व्यवसायों को चुनता है जिनके विषय में उसको अपने आसपास से मित्रों से या फिर नाते–रिश्तेदारों से पता चलता है। परंतु ऐसा संभव होता है कि ये सभी व्यक्ति अनेक व्यवसायों की पूर्ण जानकारी ही न रखते हों। अधूरी जानकारी का परिणाम यह निकलता है कि

व्यक्ति रोजगार तो प्राप्त कर लेता है परंतु उसे अपनी योग्यता के अनुसार संतोषप्रद कार्य प्राप्त नहीं हो पाता है जिसके कारण उसे रोजगार बदलना पड़ता है और वह तब तक बदलता रहता है जब तक उसे अपने अनुकूल रोजगार नहीं मिल जाता है। इसलिए रोजगार सूचनाओं की जानकारी व्यक्ति को रोजगार बदलने के लिए मजबूर नहीं करेगी। ऐसा करने से व्यक्ति के साथ–साथ देश की भी उन्नति होगी।

3. **व्यक्ति की क्षमता एवं नौकरी के बीच यथार्थ सामंजस्य** (Bringing real harmony between job activities and capacity of the individual)– माता–पिता के द्वारा अपने बच्चों के लिए नौकरी की बात को सोचने का अधिकार है लेकिन यह अधिकार बच्चों की क्षमता एवं उनकी प्रतिभा के अनुसार ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे– यदि एक माता–पिता यह सोचते हैं कि उनका बच्चा डॉक्टर बन सकता है लेकिन इसके साथ–साथ वह यह भी सोचने लगें कि वह एक विश्व प्रसिद्ध अथवा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डॉक्टर बन जाएगा तो यह गलत हो सकता है। क्योंकि वह इतना होशियार तो है कि डॉक्टर बन जाए परंतु ख्याति प्राप्त डॉक्टर बनने लायक उसके अंदर प्रतिभा नहीं है। इसी प्रकार साधारण इंजीनियर की बात न सोचकर चीफ इंजीनियर के बारे में सोचा जाता है। व्यावसायिक सूचनाओं के सही वितरण और प्रयोग के द्वारा क्षमता और प्रतिभा की इस दूरी को यथार्थ की भूमि पर लाने का प्रयास किया जा सकता है। ऐसे प्रयास देश के युवाओं को निराशा के अंधकार से बाहर निकालने में सहयोग प्रदान करेंगे।
4. **व्यक्ति अपने रोजगार से अधिक संतोष प्राप्त करने में सफल हो सकता है** (The individual may succeed in getting more satisfaction out of his career)– यदि व्यक्ति को रोजगार से संबंधित सही, पूर्ण, व्यवस्थित जानकारी प्रारंभ से प्रदान की जाए तो वह अपने लिए अपनी प्रतिभा एवं योग्यता के अनुसार नौकरी का चयन कर सकता है। ऐसा करने पर वह जो भी नौकरी चुनेगा उससे उसे संतोष प्राप्त होगा और वह उसमें अच्छे परिणाम या उपलब्धियां भी हासिल करेगा क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए धन अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है परंतु धन से अधिक जीवन में महत्वपूर्ण होता है सच्चा या वास्तविक सुख। यह सच्चा या वास्तविक सुख व्यक्ति अपनी पसंद और योग्यता के अनुसार मिले रोजगार से ही प्राप्त कर सकता है।
5. **कुशल निर्देशन एवं परामर्श के लिए व्यावसायिक सूचनाओं का अध्ययन आवश्यक** (Study of occupational information is necessary for efficient guidance)– निर्देशन कार्यकर्ताओं एवं परामर्शदाताओं के कार्यों में अधिक कुशलता लाने के लिए उन्हें प्रगति करने वाले विभिन्न रोजगारों का ज्ञान हो तथा वे उद्योग एवं श्रम–क्षेत्रों की प्रवृत्तियों से परिचित हों। परामर्श

के इच्छुक व्यक्तियों को न केवल अपनी संभावनाओं, रुचियों एवं झुकावों का पता होना चाहिए बल्कि उन्हें रोजगार, रोजगार प्रक्रमों, प्रशिक्षण संस्थाओं, प्रशिक्षण का समय और अवधि, प्रशिक्षण प्राप्ति के बाद रोजगार की संभावनाएं, आय, कार्य के घंटे तथा स्थिति के विषय में सूचनाएं होनी चाहिएं। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण है कि जिस किसी भी व्यवसाय अथवा नौकरी का जो उसने चुनाव किया है उसके भविष्य में उन्नति के क्या अवसर हैं?

6. **विद्यालयी शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्य को अधिक सार्थक एवं उपयोगी बनाने के उद्देश्य से रोजगार सूचना की सुरक्षित व्यवस्था आवश्यक** (To achieve the aim of college education and training institutions be more meaningful and useful proper arrangement, occupational information is necessary)– वर्तमान समय में देश के अंदर उच्च शिक्षा संस्थाओं की कोई कमी नहीं है और न ही पढ़ने वाले बच्चों की। फिर भी हर रोज अखबारों की सुर्खियों से यह पता चलता रहता है कि शिक्षा संस्थाओं, प्रशिक्षण विद्यालयों एवं औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में छात्र हंगामा करते रहते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका एकमात्र कारण है शिक्षण एवं प्रशिक्षण में रोजगार संबंधी सार्थकता का अभाव। शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्राप्त करते समय उनके सामने एक प्रश्न मुंह खोलकर खड़ा हो जाता है कि इसके बाद क्या होगा? हमें अच्छी नौकरी या व्यवसाय मिलेगा या नहीं? इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों के पाठ्यक्रमों एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में रोजगार संबंधी सूचनाओं को शामिल कर लिया जाए तो शिक्षा अधिक सार्थक, अर्थपूर्ण एवं उपयोगी बन जाएगी और छात्र–छात्राओं को भी दर–दर नहीं भटकना पड़ेगा।

7. **तीव्रगति से होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी परिवर्तनों में रोजगार एवं कृत्यों की परिवर्तित स्थितियों से निरंतर परिचित रहने के लिए रोजगार सूचना सेवा आवश्यक है** (Occupational information service is necessary to be acquainted with the changing situations of occupations and jobs with reference to rapid social, economic and technical changes)– वर्तमान युग में तकनीकी एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने पुराने रोजगार के अवसरों को लगभग समाप्त ही कर दिया है। धीरे–धीरे करके पुराने रोजगारों का स्थान नये रोजगारों ने ले लिया है। यह जो तकनीकी परिवर्तन देश के अंतर्गत आये उसके कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि जिन कार्यों को व्यक्ति हाथों से किया करते थे उनका स्थान मशीनों ने ले लिया। एक तरफ तो मशीनें जल्दी उत्पादन करती हैं तथा दूसरी तरफ मशीनों के कारण कम व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। इसके कारण उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या पर योजना–आयोग अपनी योजनाएं बनाता रहता है। उदाहरण के लिए कुछ समय पहले तक बाजार

में इंजीनियरिंग क्षेत्र में अच्छे, कुशल एवं होनहार व्यक्तियों की मांग बनी हुई थी जिसके कारण अधिकांशतः छात्र इस शिक्षा को ही अपना भविष्य का आधार बनाते थे लेकिन आज की स्थिति पर गौर किया जाए तो पता चलता है कि हजारों इंजीनियर सड़कों पर बेरोजगार घूम रहे हैं या फिर छोटी–मोटी नौकरी ही प्राप्त कर पा रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि छात्रों को प्रारंभ से ही रोजगार सूचना सेवा व्यवस्थित ढंग से उपलब्ध कराई जाए तथा उसका उचित उपयोग सिखाया जाए तो इस प्रकार की उत्पन्न होने वाली समस्याओं से बचा जा सकता है और युवा शक्ति का सही–सही प्रयोग भी संभव है।

8. **रोजगार सूचना सेवा रोजगार निर्देशन का आधार है** (Occupational information service is the basis of career guidance)– समुचित रोजगार सूचना सेवा के बिना रोजगार निर्देशन निष्प्राण हो जाएगा। ब्रीवर ने इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए कहा है कि शिक्षण संस्थाओं में रोजगार सूचना को एक अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाए।

9. **देश में रोजगार की व्यवस्था एवं सामुदायिक कार्यक्रमों की सफलता हेतु रोजगार सूचना सेवा आवश्यक है** (For occupational management and the success of community programmes occupation information service is necessary)– राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन की जो रूपरेखा तैयार की जाती है वह तभी सफलता प्राप्त करने में सफल हो सकती है जबकि देश में रोजगार की स्थिति एवं विभिन्न रोजगारों के विषय में नागरिकों को पूर्ण एवं सामूचित सूचनाएं प्राप्त हों। सामुदायिक संस्थाओं के लिए रोजगारों से संबंधित सूचनाएं अत्यंत लाभकारी एवं उपयोगी हो सकती हैं।

## रोजगार सूचना के स्रोत

रोजगार सूचना अनेक निजी, सार्वजनिक एवं रोजगार सूत्रों से प्राप्त की जा सकती है। विश्वसनीय एवं प्राथमिक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए उनको मूल स्रोतों से ही प्राप्त करना उत्तम होता है। व्यावसायिक सूचना निम्न स्रोतों से प्राप्त की जा सकती है–

- **रोजगार सूचना संबंधी फिल्में एवं चार्ट** (Motion picture, Films and charts presenting occupational information)– सरकार तथा गैर सरकारी संस्थाएं रोजगार से संबंधित फिल्में तथा चार्ट तैयार करवाती हैं। फिल्म और चार्ट के माध्यम से भी रोजगार सूचनाएं उपलब्ध करायी जा सकती हैं।
- **निजी संस्थान** (Private Agencies)– अनेक निजी संस्थान करियर निर्देशन, रोजगार एवं शैक्षिक निर्देशन देने का कार्य करते हैं, उनके माध्यम से भी रोजगार संबंधी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।
- **वेबसाइट** (Website)– सूचना क्रांति के युग में रोजगार से संबंधित जानकारी वेबसाइट तथा इंटरनेट से आसानी से प्राप्त की जा सकती है। कोई भी वांछित

**टिप्पणी**

वेबसाइट खोलकर उससे किसी भी वांछित रोजगार की संपूर्ण सूचना एवं प्रक्रिया की जानकारी ली जा सकती है।

- **औद्योगिक क्षेत्र एवं कारखानों में भ्रमण के द्वारा** (Visits of industrial places and factories)– अधिक विश्वसनीय रूप में रोजगार सूचनाओं के प्राप्त करने के लिए सूचनार्थियों को औद्योगिक क्षेत्रों एवं कारखानों में भ्रमण करना चाहिए। सूचना कार्य के व्यावहारिक पक्षों की दृष्टि से यह अधिक उपयोगी भी होता है।
- **देश में प्रकाशित रोजगार सूचना** (Occupational information published in the country)– हमारे देश में निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में अधिक से अधिक मात्रा में रोजगार से संबंधित साहित्य प्रकाशित करने का कार्य किया जाता है। निम्न अभिकरण मुफ्त या विक्रय के आधार पर रोजगार संबंधी सूचनाएं प्रकाशित करने का कार्य करते हैं–

  1. स्वास्थ्य मंत्रालय (Ministry of Health)
  2. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय (Ministry of Labour and Employment)
  3. रक्षा मंत्रालय (Ministry of Defence)
  4. शिक्षा मंत्रालय (Ministry of Education)
  5. रोटरी क्लब (Rotary Club)
  6. रोजगार समाचार पत्र (Employment News Paper)
  7. युवा ईसाई पुरुष संघ (YMCA)
  8. समाचार पत्रों एवं जर्नलों में विज्ञापन (Advertisement in News Papers and Journals

- **प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रकाशित सूचना साहित्य** (Information literature published by training schools)– अनेक रोजगार से संबंधित प्रशिक्षण देने वाले संस्थान अपने पाठ्यक्रम तथा उसकी उपयोगिता का प्रकाशन, पाठ्यक्रम की समय–अवधि, पाठ्यवस्तु आदि का प्रकाशन अपनी विवरण पुस्तिका (Prospectus) में करते हैं।
- **रेडियो एवं टेलीविजन के रोजगार से संबंधित कार्यक्रम** (Radio and Television programmes related to occupations)– सरकार रेडियो एवं टेलीविजन पर जन शिक्षा के कार्यक्रमों का प्रसारण करवाती है। इससे एक तरफ तो शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होता है और दूसरी तरफ लोगों को रोजगार से संबंधित जानकारियां भी प्राप्त हो जाती हैं। इन कार्यक्रमों में सूचना के साथ–साथ कार्यविधि, प्रगति के अलावा संस्थानों की सूचना भी दी हुई होती है।

- **रोजगार वर्गीकरण कोश एवं औद्योगिक सूचीपत्र** (Bibliographics and occupational index)– कुछ विकसित देश रोजगार वर्गीकरण कोश भी तैयार करते हैं। यह कोश रोजगार सूचनाएं प्राप्त करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। इसके साथ–साथ उद्योगों एवं रोजगारों की जानकारी पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकों एवं औद्योगिक सूची पत्रों से भी रोजगार संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं।
- **विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले रोजगार सर्वेक्षण** (Occupational surveys made by various agencies)– समय–समय पर क्षेत्रीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा रोजगार सर्वेक्षण का कार्य किया जाता है। ये रोजगार सर्वेक्षण भी रोजगार संबंधी सूचनाएं उपलब्ध करा सकते हैं।
- **पत्र–पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों द्वारा** (Through magazines and newspapers)– अनेक शिक्षा संस्थाएं जीवनचर्या पत्रिकाओं एवं प्रतियोगिता पत्रिकाओं का प्रकाशन करती हैं। इनके द्वारा समय–समय पर रोजगार संबंधी जानकारी प्रदान की जाती है। रोजगार सूचनाएं देने में प्रथम स्थान दैनिक समाचार पत्रों का माना जाता है। भारत में अंग्रेजी में प्रकाशित Hindustan Times, Indian Express, Hindu, Employment News, Statesman, Times of India and National Herald प्रमुख हैं। दैनिक जागरण, नवभारत टाइम्स, अमर उजाला अपने करियर स्तंभ के द्वारा इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य का प्रदर्शन कर रहे हैं। कुछ विशिष्ट साप्ताहिक व पाक्षिक पत्रिकाएं भी रोजगार संबंधी समाचारों का प्रकाशन करती हैं। धर्मयुग का प्रकाशन बंद हो गया है।
- **रोजगार विनिमय केंद्र तथा रोजगार ब्यूरो** (Employment exchanges and employment bureaus)– निर्देशन कर्मचारी जिला रोजगार विनिमय–केंद्रों तथा रोजगार ब्यूरो से रोजगार संबंधी सूचनाएं प्राप्त करने में सहायता ले सकते हैं। अनेक निजी संस्थाओं एवं सरकार द्वारा नियुक्तियां इन रोजगार विनिमय केंद्रों के माध्यम से ही की जाती हैं। इनके द्वारा सूचनाओं को एकत्र एवं प्रदान करने का कार्य किया जाता है। भारत के हर जिले में एक रोजगार केंद्र बना हुआ है। विद्यालय इन केंद्रों से रोजगार के विभिन्न अवसरों, उनमें उन्नति के अवसरों आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- **कार्य अनुभव** (Work-experience)– कार्य अनुभवों के द्वारा भी विभिन्न व्यवसायों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। छात्रों को अपने पसंद के व्यवसाय में कुछ दिन कार्य करने देना चाहिए जिससे उस व्यवसाय से संबंधित बहुत सारी सूचनाएं वह स्वयं एकत्रित कर सकता है।
- **सेंट्रल ब्यूरो ऑफ एजुकेशनल एंड वोकेशनल गाइडेंस** (Central bureau of educational and vocational guidance)– इस ब्यूरो ने केंद्रीय

शिक्षा मंत्रालय के अधीन विभिन्न प्रकाशन किये हैं तथा कतिपय लघु चलचित्रों का निर्माण इस ब्यूरो द्वारा किया गया है।

- **विभिन्न व्यावसायिक प्रतिनिधिमंडल** (Various vocational delegations)– व्यावसायिक शिक्षा देने वाली शिक्षण संस्थाओं में अनेक व्यवसायों से संबंधित प्रतिनिधिमंडल आते रहते हैं। ये मंडल छात्रों को अपने व्यवसाय से संबंधित सूचनाएं प्रेषित करते हैं तथा योग्य छात्र इनके द्वारा व्यवसाय के लिए चयनित भी कर लिए जाते हैं। अगर छात्र यह महसूस करता है कि कार्य उसके अनुकूल है और वह सभी शर्तों से संतुष्ट है तो वह उस नौकरी के लिए अपनी स्वीकृति दे देता है।
- **राष्ट्रीय स्तर पर श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीनस्थ** (Directorate general of resettlement and employment)– इसने व्यवसायों से संबद्ध सूचनाओं को प्रकाशित करने का कार्य ले रखा है। यह विभाग पांच विभागों से सूचनाएं प्रकाशित करता है। ये पांच विभाग निम्न हैं–
    1. **अवसरों के निर्देशन** (Guide of careers)– ये लघु पुस्तिकाएं होती हैं जिनके अंतर्गत आठ से लेकर दस पेज तक होते हैं तथा इनमें अनेक व्यवसायों का परिचय बड़ी सरलता तथा सहजता से दिया जाता है।
    2. **राष्ट्रीय व्यवसाय वर्गीकरण** (National vocational classifications)– इसमें देश के सभी छोटे एवं बड़े व्यवसायों को नौ श्रेणियों में बांटा गया है। इन नौ श्रेणियों को 55 भागों में तथा 55 भागों को पुनः 300 उपभागों में विभाजित किया गया है।
    3. **हैंड बुक्स ऑन ट्रेनिंग फेकल्टीज** (Hand books on training faculties)– यह राज्य स्तर पर प्रकाशित की जाती है। एक राज्य में उपलब्ध सभी व्यवसाय प्रशिक्षण संबंधी सूचनाओं का विस्तृत वर्णन इन किताबों में होता है।
    4. **विशिष्ट रोजगारों के लिए साक्षात्कार सहायता** (Occupational specification and interview aids)– रोजगार कार्यालयों के लिए इनका प्रकाशन किया जाता है। इनके द्वारा रोजगार अधिकारी नियोगकर्ता तथा प्रार्थी की विभिन्न आवश्यकताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करते हैं।
    5. **रोजगार क्षेत्र की समीक्षा** (Occupational field reviews)– इनको करियर मास्टर्स तथा व्यवसाय–परामर्श हेतु प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक रिव्यू में एक व्यवसाय तथा उससे संबद्ध विभिन्न व्यवसायों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। राष्ट्रीय व्यवसाय श्रेणीकरण के आधार पर इनको चयनित किया गया है।

## रोजगार चयन को प्रभावित करने वाले तत्व

(Factors affecting occupational choice)

टिप्पणी

जब किसी व्यक्ति के द्वारा रोजगार का चुनाव किया जाता है तो उसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी होते हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वह अनायास या अनेपक्षित होकर ऐसा करता है। बल्कि उसके रोजगार ढूंढ़ने एवं उसके चुनाव करने में कई घटक या तत्व उसकी विचारधारा एवं संकल्प को मोड़ते हैं। अनेक तत्व मिलकर युवा वर्ग के ऊपर जो छाप छोड़ते हैं या उसे जिस दिशा में मोड़ देते हैं वह उसी रोजगार प्रकार का रोजगार चुन लेता है। ये तत्व निम्न हैं–

1. **आर्थिक स्थिति का प्रभाव** (Impact of economic conditions)– घर की खराब आर्थिक स्थिति बालक को किसी भी प्रकार की नौकरी करने पर मजबूर कर देती है। अपने परिवार का पालन–पोषण करना ही उसका एकमात्र ध्येय रहता है। दूसरा कारण पिता की आकस्मिक मृत्यु होने पर भी वह अपनी योजनाओं के अनुरूप कार्य नहीं कर पाता है और कोई भी नौकरी करने को तैयार रहता है। इस अवस्था में उन्नति के अवसर व्यक्ति की मेहनत और लगन पर निर्भर करते हैं क्योंकि मेहनती तथा होशियार बच्चे अच्छे काम की तलाश में रहते हैं और जैसे ही उनको मौका मिलता है नौकरी में परिवर्तन कर लेते हैं।
2. **प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव** (Impact of natural calamities)– प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, अकाल, भूकंप आदि भी बच्चों की योजनाओं को प्रभावित करते हैं। भूकंप पूरे–पूरे शहरों तथा गांवों को नष्ट कर देते हैं। इससे व्यक्तियों का जीवन तबाह हो जाता है तथा रहन–सहन भी पूर्णतया लगभग नष्ट सा हो जाता है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति को जैसा भी व्यवसाय प्राप्त होता है वह उसे सहर्ष ही स्वीकार कर लेता है। लेकिन जैसे ही परिस्थितियां परिवर्तित होती हैं वह स्थान परिवर्तन पर विचार करता है और उस स्थान पर जाना चाहता है जहां पर प्राकृतिक आपदाओं के आने की संभावना कम हो। इसी प्रकार व्यक्ति उस स्थान पर रहना भी कम पसंद करता है जहां पहाड़ों से प्रायः लावा निकलता है। लावा फटने के कारण भी आस–पास के गांव नष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य उस स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। ये परिस्थितियां व्यक्ति को कम वेतन पर कार्य करने पर मजबूर बना देती है। परंतु व्यक्ति प्राकृतिक आपदाओं से मुक्ति अवश्य चाहता है जिससे वह एक सामान्य जीवन व्यतीत कर सके।
3. **भौगोलिक वातावरण** (Geographical environment)– भौगोलिक वातावरण से तात्पर्य है कि व्यक्ति ग्रामीण अथवा शहरी वातावरण में रहता है। अगर वह ग्रामीण वातावरण में रहता है तो उसे उच्च शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है। ग्रामीण वातावरण के अनुसार उसकी जानकारी अधिकांशतः कृषि एवं कुछ छोटे–मोटे कुटीर उद्योगों तक ही सीमित रहती है।

**टिप्पणी**

इसके विपरीत शहरी क्षेत्र में रहने वाले बालक को उच्च शिक्षा अथवा उच्च व्यावसायिक शिक्षा आसानी से हासिल हो जाती है। क्योंकि शहरों के अंतर्गत उच्च शिक्षा संस्थान, जैसे– विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय तथा करियर प्रशिक्षण केंद्र एवं संस्थाएं पाई जाती हैं। इन स्थानों पर व्यक्ति उचित प्रशिक्षण लेकर अपने अनुकूल स्थान पर करियर के चयन हेतु आवेदन भर सकता है तथा उसमें स्थान प्राप्त करने के लिए परामर्शदाता से उचित परामर्श भी ले सकता है।

कुछ प्रदेशों की जलवायु भी बच्चों के करियर में आड़े आती है, जैसे– राजस्थान, अधिकांशतः अकाल एवं सूखे की मार झेलता है, उड़ीसा के अनेकों गांव भी अकाल से प्रभावित रहते हैं। ऐसे स्थानों पर व्यक्ति को दो समय का खाना नसीब होना भी मुश्किल होता है। बिहार, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ गरीबी से घिरे रहते हैं। अतः इन स्थितियों में रहने वाले बच्चे किसी दूसरे स्थान पर जाकर अपने करियर को बनाने की योजना बनाते हैं।

4. **सरकारी नीतियों का प्रभाव** (Impact of government policies)– सरकारी नीतियां भी व्यक्ति के व्यवसाय चयन को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ– आरक्षण नीति लागू करने से कम योग्यता प्राप्त होने पर भी निम्न वर्ग अथवा पिछड़े वर्ग के लोग अच्छी नौकरी प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत सवर्ण जाति के बच्चे अच्छी योग्यता होने के बाद भी इन पदों को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। सरकार द्वारा किसी वस्तु पर भारी मात्रा में आयात कर लगा देने से वस्तु महंगी हो जाती है, जिसके कारण उसकी खपत भी बहुत कम हो जाती है। इससे वस्तु का बाजार समाप्त जैसा हो जाता है। कुछ वस्तुओं के लिए सरकारी सर्वेक्षण करने पर उस वस्तु की कमियां जनता के सामने आती हैं तब भी उसका व्यापार कम हो जाता है। उसको दुबारा उसी स्थान तक पहुंचने में काफी समय लग जाता है। उदाहरण के लिए हम सभी यह जानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा तैयार किये गए ठंडे पेय पदार्थों के अंतर्गत कीटाणुनाशक पदार्थ पाये जाते हैं जिसके कारण इनकी बिक्री प्रभावित होती है। अब जब बिक्री प्रभावित होगी तो उत्पादन कम होगा और यदि उत्पादन कम होगा तो उत्पादन बनाने के लिए भी कम व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। ऐसी परिस्थितियों में कंपनियां कर्मचारियों की छटनी करेंगी। इससे व्यक्ति के लिए रोजगार के अवसर कम होते हैं परंतु किसी वस्तु के लिए यदि सरकारी सर्वेक्षण की रिपोर्ट अच्छी आती है तो परिस्थितियां विपरीत हो जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में वस्तु की मांग बढ़ने से संबंधित कंपनियों को योग्य आदमियों की भर्ती करने के अवसर प्राप्त हो जाते हैं। योग्य एवं प्रतिभावान व्यक्ति ऐसी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी करना पसंद करते हैं जिनके उत्पादित माल की प्रशंसा सरकारी स्तर पर भी होती है तथा समाचार एवं पत्रिकाएं भी उसका प्रचार–प्रसार करती हैं।

5. **जाति एवं धर्म का प्रभाव** (Impact of caste and religion)– भारतीय समाज अनेक धर्मों, जातियों, उपजातियों, मतों तथा मतांतरों में विभाजित है। काफी समय पहले जातियों के आधार पर व्यवसाय का वर्गीकरण किया जाता था परंतु आधुनिक युग में अब ऐसे प्रतिबंध नहीं रहे हैं। इतना होने के बाद भी ऐसा देखने एवं सुनने में आता है कि अनेक सवर्ण जाति के लोग अपनी कंपनियों में निम्न जाति के व्यक्तियों को रखना पसंद नहीं करते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि अनेक निम्न जाति के लोग अच्छा करियर नहीं बना पाते हैं। एक और कारण भी है जो निम्न जाति के लोगों को आगे बढ़ने से रोकता है। किसी अच्छी नौकरी के चयन हेतु साक्षात्कार के लिए उच्च जाति के बच्चे अच्छी तैयारी कर लेते हैं तथा अच्छी ट्रेनिंग अथवा प्रशिक्षण भी प्राप्त कर लेते हैं लेकिन निम्न वर्ग ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त करने से वंचित रहता है। अपनी आर्थिक परिस्थितियों अथवा छोटे स्थान पर रहने के कारण वे प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप निम्न वर्ग के लोगों को छोटी नौकरियों से ही संतोष करना पड़ता है।

   धर्म के आधार पर भी बहुत से लोग अनेक व्यवसायों में जाना नहीं चाहते हैं, जैसे– चमड़े का काम, खालें एक्सपोर्ट करना, डिब्बा बंद गोश्त निर्यात करना तथा खाल से बने वस्त्रों का निर्यात करना। धर्म के प्रभाव के परिणामस्वरूप कुछ लोग पवित्र व्यवसायों को ही अपनाने की सलाह देते हैं। सरकार द्वारा आरक्षण की नीति को अपनाने के कारण निम्न वर्ग के लोगों को अच्छा–खासा लाभ प्राप्त हो रहा है। इन व्यक्तियों को अपूर्ण एवं समुचित योग्यता के अभाव में भी केवल आरक्षण के आधार पर ही अच्छी नौकरियां प्राप्त हो जाती हैं। इसके विपरीत सवर्ण जाति के बच्चे अच्छी योग्यता होने के बाद भी इन लाभों से वंचित रहते हैं।

6. **पारिवारिक वातावरण** (Family environment)– यदि माता–पिता सुशिक्षित एवं प्रगतिशील विचारों के हैं तो वे बालक की अग्रिम अथवा उच्च शिक्षा पर अवश्य ध्यान देंगे। क्योंकि उनका उद्देश्य बच्चों को पढ़ा–लिखाकर अच्छे करियर बनवाना होता है। इसलिए वे समाचार पत्र, करियर संबंधी समाचार अथवा विज्ञापन पढ़ते रहते हैं तथा बच्चों से जो अच्छे विकल्प लगते हैं उनके फार्म भरवाते हैं। बच्चों के साथ उनके साक्षात्कार के लिए भी साथ में जाते हैं। इसके साथ–साथ अगर कभी किसी करियर का चुनाव करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है तो उसे भी पूरा करते हैं।

   इसके विपरीत गरीबी का सामना कर रहे परिवार न तो बच्चों को उच्च एवं अच्छी शिक्षा दिलवा पाते हैं और न ही किसी बड़े करियर में भेजने की सोच पाते हैं। उनके मन में इस बात की चाहत रहती है कि उनके बच्चे सरकारी नौकरी प्राप्त कर लें चाहे वह क्लर्क की ही क्यों न हो? जिस परिवार में परिवार के सदस्य जैसे– चाचा, ताऊ, बाबा, नाना, मामा, फूफा, मौसा आदि

टिप्पणी

में से कोई भी उच्च पद पर है या विदेश में नौकरी करता है तो ऐसी स्थिति में बालक को किसी अच्छे करियर के चयन, प्रवेश तथा समायोजन में बहुत मदद मिलती है। इन सदस्यों से समय–समय पर समुचित एवं पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती रहती है तथा उसका अच्छे करियर में चुनाव कराने के लिए पूरे–पूरे प्रयत्न करते हैं। बच्चों को करियर, उसके चयन एवं उसमें प्रवेश के संबंध में अपने नाते–रिश्तेदारों से मालूम पड़ जाता है तथा उसे करियर चुनाव में परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता है।

7. **युद्ध एवं शांति का प्रभाव** (Impact of war and peace)– युद्ध की स्थिति के समय सरकार यह चाहती है कि देश में किसी भी वस्तु की कमी न हो। अन्न, सब्जियां, युद्ध सामग्री, वाहन आदि भरपूर मात्रा में हों, देश की सैन्य शक्ति मजबूत हो, शत्रु देश की गुप्त सूचनाएं उसके पास अधिक से अधिक हों, फौज में सैनिक संख्या कम न हो, लोग बलिदान के लिए पूरी तरह तैयार हों, देश में किसी भी प्रकार की कोई अफवाह न फैले आदि। इस परिस्थिति में करियर के विकल्प ज्यादा नहीं रहते हैं क्योंकि कुछ उद्योग इन दिनों में बंद हो जाते हैं तथा कुछ उद्योग पनप नहीं पाते हैं। ऐसे समय में विदेशों से आयात–निर्यात बंद हो जाता है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति को ऐसा रोजगार चुनना होता है जो कि सरकार एवं देश की मदद कर सके।

   इसके विपरीत परिस्थिति होने पर अनेक नये उद्योग प्रारंभ होते हैं। तत्कालीन उद्योगों में भी नवीन तकनीक का प्रयोग करने की आवश्यकता महसूस की जाती है। देश की अर्थव्यवस्था एवं प्रगति पर संसार के विकासशील देशों की प्रगति का प्रभाव नजर आने लगता है। प्रतिभाशाली एवं होनहार युवा उचित प्रशिक्षण एवं उच्च शिक्षा ग्रहण कर विदेशों में नौकरी तलाश कर वहीं पर अपना करियर बना लेते हैं तथा अपने परिवार के साथ वहीं बस जाते हैं।

8. **बालक का स्वभाव** (Nature of child)– यदि बच्चे को अपने मां–बाप का प्यार प्राप्त नहीं होता है तथा परिवार के अन्य सदस्य उसका साथ न देकर मजाक उड़ाते हैं तो ऐसा संवेदनशील बच्चा नौकरी के लिए घर और शहर दोनों से दूर जाने की सोचता है। यदि बच्चा अधिक धन प्राप्त करना चाहता है तो वह ऐसे व्यवसायों का चुनाव करेगा जिनसे उसे अधिक धन की प्राप्ति हो सके। बच्चा यदि कला, संगीत अथवा साहित्य में रुचि रखता है तो वह इन्हीं चीजों को अपनी जीविका का साधन बनाना चाहेगा। ऐसा करने से एक तरफ तो वह अपने विषय का अभ्यास भी करता रहेगा और दूसरी तरफ उसे उसकी पसंद का कार्य भी मिल जाएगा और उसकी यही तमन्ना रहेगी कि भविष्य में जाकर वह एक अच्छा संगीतकार, चित्रकार, कलाकार अथवा साहित्यकार बन जाये।

   यदि बच्चे की महत्वाकांक्षाएं उच्च हैं तो वह उच्च स्तर के व्यवसाय की खोज करेगा, जिससे उसे ख्याति एवं पैसा दोनों ही मिल जाएं। इसके विपरीत निम्न

महत्वाकांक्षा वाला व्यक्ति निम्न स्तर के व्यवसाय या नौकरी पसंद करेगा, जैसे एक कल्र्क, चौकीदार, किसी छोटे स्कूल में अध्यापक आदि। व्यक्ति को अपनी योग्यताओं के अनुसार ही व्यवसाय का चुनाव करना चाहिए अन्यथा उसको जीवन में निराशा हाथ लगेगी।

9. **पिता अथवा अभिभावकों के रोजगार का प्रभाव** (Impact of the vocation of father or guardians)– जिन बच्चों के पिता का व्यवसाय बहुत अच्छा चल रहा होता है तथा समाज के अंदर उनकी प्रतिष्ठा भी होती है तो ऐसे अभिभावक यह चाहते हैं कि उनका बच्चा इसी व्यवसाय में उनका साथ दे बेशक उसके लिए अगर और प्रशिक्षण अथवा उच्च शिक्षा की आवश्यकता है तो वह ले ले। इसलिए अधिकांशतः यह देखने में आता है कि डॉक्टर का बेटा डॉक्टर, इंजीनियर का बेटा इंजीनियर तथा एक व्यवसायी का बेटा व्यवसायी ही बनता है। जैसे– सिनेमा के पर्दे पर काम करने वाले व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छा प्रशिक्षण दिलवाकर एक्टिंग करवाना चाहते हैं, राजनैतिक नेता अपने बच्चों को विदेशों में अच्छा प्रशिक्षण दिलवाकर उन्हें राजनेता बनाना चाहते हैं, इसी प्रकार उद्योगपति अपने वंशजों की फैक्ट्रियों या उद्योगों को अपने बच्चों को सौंपना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि उच्च सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिष्ठा प्राप्त लोग अपनी ख्याति एवं सम्मान के अनुरूप बच्चों को भविष्य के लिए उसी करियर में निपुण बनवाना चाहते हैं जिससे उनका पुश्तैनी चला आ रहा व्यापार दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करे तथा माता–पिता की प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा का वह भरपूर फायदा उठा सकें।

10. **किसी समय विशेष पर कुछ व्यवसायों की प्रसिद्धि** (Popularity of some vocations on a specific period)– कभी–कभी किसी समय विशेष पर कुछ व्यवसाय अचानक अधिक प्रसिद्ध हो जाते हैं। वे युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वर्तमान समय में कम्प्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी, वेबसाइट, अंतरिक्ष विज्ञान, मोबाइल आदि अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन रहे हैं। इसलिए ऐसे युग में खाली किताबी ज्ञान कोई मायने नहीं रखता है। आजकल सैन्य विज्ञान के अंतर्गत अणुबमों, मिसाइलों, प्रेक्षेपास्त्रों, रॉकेटों आदि के निर्माण में प्रशिक्षण प्राप्त करना भी काफी लाभप्रद है। हर देश अपने देश की रक्षा करने के लिए सैन्य क्षेत्र में आधुनिकतम तकनीक को विकसित करना चाहता है। अतः प्रत्येक देश उन लोगों को आगे बढ़ाने का कार्य करता है जो सैन्य क्षेत्र में उसकी प्रगति करने में सहायक बनें। कहने का तात्पर्य यह है कि विशेष युग अथवा विशेष काल के संदर्भ में कुछ व्यवसाय विशेष ख्याति अर्जित कर लेते हैं तथा युवा वर्ग उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। उच्च, धनी एवं मध्यम वर्ग के बच्चे ऐसे ही करियर या व्यवसायों के प्रति प्रारंभ से ही प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसा करने से उनका लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है तथा वे अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार व्यवसाय के चयन में सफलता हासिल कर लेते हैं।

टिप्पणी

11. **बालक की रुचियां एवं व्यक्तित्व** (Interests and personality of the child)– बच्चों की रुचि उनके करियर को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। उसकी रुचि किस चीज में है, जैसे क्या वह बहुत अधिक परिश्रम करने को तैयार है, या फिर उसे मानसिक कार्य अधिक पसंद है। वह अपने से उच्च पदस्थ लोगों के निर्देश प्रसन्नतापूर्वक मान लेगा। व्यक्ति को जब अपने टेस्ट या रुचि के अनुरूप कार्य मिल जाता है तो उससे उसे संतुष्टि का अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में वह अपना कार्य अधिक मन लगाकर, आत्मविश्वास, प्रसन्नतापूर्वक तथा सहयोग पूर्ण रवैये से करेगा।

    इसी प्रकार दूसरी तरफ यदि बच्चा बहिर्मुखी व्यक्तित्व का है तो उसे सामाजिक कार्यों में, किसी एजेंट का कार्य करने में या प्रचार कार्य करने में या रिसेप्सनिस्ट का कार्य करने में अधिक आनंद आयेगा। इसके विपरीत यदि वह अंतर्मुखी व्यक्तित्व का धनी है तो उसे अध्ययन करने, योजना बनाने, निरीक्षण करने, हिसाब–किताब करने आदि में अधिक संतुष्टि महसूस होगी। इसलिए व्यवसाय को चुनते समय बच्चा इस बात का ध्यान करता है कि वह उसकी रुचि तथा व्यक्तित्व के अनुकूल है या नहीं। किसी धनी परिवार का बच्चा चौकीदार अथवा क्लर्क की नौकरी नहीं कर सकता है। इसी प्रकार छोटे घर का बच्चा बड़े आदमी की नौकरी करने में डरता है। फिर भी छोटे घराने के बच्चे कैसी भी नौकरी के लिए तैयार रहते हैं क्योंकि उनके अंदर सेवाभाव एवं आज्ञापालन अधिक पाया जाता है।

12. **नये वैज्ञानिक आविष्कार एवं औद्योगीकरण का प्रभाव** (Impact of new scientific inventions and industrilisation)– जब भी नये आविष्कार होते हैं उसके परिणामस्वरूप अनेक नये व्यवसाय एवं करियर अस्तित्व में आ जाते हैं। जैसे– ग्रहों की खोज, अंतरिक्ष ज्ञान में निपुणता प्राप्त करना, आर्कटिक द्वीप पर बस्ती बनाना, समुद्र में नवीन खोजें, सूचना तकनीकी, कम्प्यूटर एवं वेबसाइट के संबंध में नवीनतम जानकारी आदि। जब ये नये करियर समाज में आ जाते हैं तो प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। अतः किसी नये व्यवसाय की जानकारी होने पर उसमें आवश्यक प्रशिक्षण एवं कुशलता प्राप्त कर उस व्यवसाय में प्रवेश पाया जा सकता है।

नये व्यवसायों का अस्तित्व में आना तथा पुराने व्यवसायों का अस्तित्व से समाप्त होने का चक्र चलता रहता है क्योंकि नई तकनीक समाज में जोर पकड़ लेती है जिसके कारण पुराने ढंग से चलने वाले व्यवसाय धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। नई मशीनों के साथ नये कारखानों का प्रादुर्भाव हो जाता है तथा विदेशों से प्रशिक्षण लिये हुए व्यक्ति का मैनेजर अथवा निदेशक के रूप में चयन हो जाता है।

औद्योगीकरण होने के कारण हर क्षेत्र में उत्पादन बढ़ रहा है तथा किसी वस्तु का विदेशों में निर्यात करना उस देश की अर्थव्यवस्था का एक महान गुण बन जाता है। छात्र–छात्रायें समाचार पत्रों, मीडिया तथा विज्ञापनों के माध्यम से नवीन व्यवसायों के

विषय में जानकारी हासिल करते हैं और फिर उस व्यवसाय से संबंधित अच्छा प्रशिक्षण लेने का प्रयास करते हैं। उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोग अपने बच्चों को या तो देश के प्रशिक्षण संस्थानों में या फिर विदेशों के प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण लेने के लिए भेज देते हैं। विदेशों से प्राप्त प्रशिक्षण एवं शिक्षा के माध्यम से उन्हें नौकरी आसानी से मिल जाती है।

## रोजगार सूचना प्राप्त करने की विधियां

रोजगार संबंधी सूचनाएं प्राप्त करने के लिए निम्न दो विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. नौकरी अथवा कृत्य विश्लेषण (Job Analysis)
2. सर्वेक्षण पद्धति (Survey Method)।

## 1. नौकरी अथवा कृत्य विश्लेषण

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 'वार मैन पॉवर कमीशन' ने नौकरी विश्लेषण को परिभाषित करते हुए कहा है कि "नौकरी विश्लेषण किसी नौकरी की प्रकृति के बारे में निरीक्षण एवं अध्ययन द्वारा संबद्ध सूचना को पुष्ट करने एवं सूचित करने का उपक्रम है। यह नौकरी के लिए वांछित कौशल, ज्ञान योग्यताओं तथा सफल श्रमिक के लिए आवश्यक उत्तरदायित्वों को निर्धारित करने वाले एवं नौकरी को अन्य सभी नौकरियों से भिन्न करने वाले उपक्रमों का निर्धारण करता है।" (Job analysis is the process of determining by observation, study and reposting pertinent information relating to the nature of a specific job. It is the determination of the tasks which comprise the job and of the skills, knowledge, abilities and responsibilities required of the worker for successful performance and which differentiate the job from all other.)

रोजगार सूचना की दृष्टि से नौकरी विश्लेषण की अपनी उपयोगिता है। विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावहारिक प्रतिष्ठान नौकरी–विश्लेषण का विभिन्न रूपों में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार का विश्लेषण कर्मचारियों के चुनाव के लिए, मानदंड स्थापित करने एवं वेतनक्रमों के निर्धारण में उपयोगी सिद्ध होता है। रोजगार सूचना की दृष्टि से नौकरी विश्लेषण की अपनी उपयोगिता है।

### नौकरी अथवा कृत्य विश्लेषण की परिभाषा

ब्लूम के अनुसार, "यह कार्य के विभिन्न पक्षों का शुद्ध अध्ययन है। इसका संबंध केवल कार्य की आवश्यकताओं और दशाओं के विश्लेषण से ही न होकर कर्मचारी में अपेक्षित व्यक्तिगत योग्यताओं से भी है।"

जे.डी. हेकेट के शब्दों में, "इस विधि के अंतर्गत कार्य के आवश्यक अंशों का निर्धारण होता है तथा कर्मचारी के उन गुणों का पता लगाया जाता है जिनके फलस्वरूप वह अपने कार्य को सफलतापूर्वक निष्पादित कर पाता है।"

रेड एवं मेटकॉफ के अनुसार, "कार्य विश्लेषण एक वैज्ञानिक अध्ययन है। इसमें कार्य से संबंधित उन समस्त तथ्यों के बारे में विवरण प्रस्तुत किया जाता है जो इसकी विषय वस्तु तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक तत्वों पर प्रकाश डालते हैं।"

टिप्पणी

### कृत्य विश्लेषण के उद्देश्य

कृत्य विश्लेषण के निम्न चार उद्देश्य हैं–

- कार्य करने की विधियों में सुधार लाना।
- व्यवसायरत कर्मियों के स्वास्थ्य में सुधार लाना तथा उनकी सुरक्षा के प्रयास करना।
- कर्मचारियों को कुशल बनाने से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को मितव्ययी एवं सक्रिय बनाना।
- उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त स्थान दिलाने का प्रयास करना।

### 2. सर्वेक्षण पद्धति

रोजगार सूचना एकत्र करने की दृष्टि से जो सर्वेक्षण किये जाते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं– (क) प्रश्नावली सर्वेक्षण पद्धति (Questionnaire Survey Method), (ख) वैयक्तिक सर्वेक्षण पद्धति (Personal Survey Method)।

### (क) प्रश्नावली सर्वेक्षण पद्धति

कम समय में रोजगार सूचनाओं को एकत्र करने के लिए प्रश्नावली सर्वेक्षण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस विधि के अंतर्गत सर्वेक्षणकर्ता एक प्रश्नावली किसी विशेष कार्य में लगे व्यक्तियों को भरने के लिए बांट देते हैं। प्रश्नावली बनाते समय इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि जिस कार्य से संबंधित रोजगार है। उसी से संबंधित प्रश्नों को रखा जाये। प्रश्नावली सर्वेक्षण के परिणाम तभी सही आते हैं जबकि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि प्रश्नावली को भरने वाले बिना किसी संकोच के बिना कुछ छिपाये सब कुछ सत्यता के साथ भरें। प्रश्नावली इस प्रकार तैयार की जाए कि उसके प्रश्नों के साथ–साथ उत्तर भी संक्षिप्त में हों। ऐसा करने से उनका मूल्यांकन करने में आसानी रहेगी।

### (ख) वैयक्तिक सर्वेक्षण पद्धति

इस पद्धति के अंतर्गत सर्वेक्षण करने में समय एवं श्रम अधिक व्यय होता है। लेकिन इस विधि के माध्यम से रोजगार सूचना एकत्र करना अधिक वास्तविक एवं सत्यता के निकट रहता है। किसी भी अन्य विधि के परिणाम इतने सत्यता को लिए हुए नहीं होते हैं जितने की वैयक्तिक सर्वेक्षण पद्धति के। इसमें सर्वेक्षणकर्ता को कार्य विशेष में लगे हुए विभिन्न व्यक्तियों, कर्मचारियों, तकनीशियनों, निरीक्षकों, अधिकारियों आदि से अलग–अलग मिलकर सूचना एकत्र करनी होती है। यह सर्वेक्षणकर्ता पर निर्भर करता है कि वह कितने प्रश्न पूछे अर्थात वह अपनी आवश्यकतानुसार प्रश्नों को पूछ सकता है और उनके उत्तरों को स्वरूप लेखबद्ध करता जाता है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में

जिन–जिन बातों को शामिल करना हो उनके विषय में पहले से ही सोच विचार कर लेना आवश्यक होता है। कार्य विशेष में लोगों की अनुपस्थिति, कार्य में नियुक्तियों के अवसर, उससे होने वाली आय एवं संतोष, उन्नति आदि की परिस्थितियों को आवश्यकतानुसार ग्रहण किया जा सकता है।

## रोजगार सूचना को प्रयोग के अनुकूल स्थिति में रखना

केवल रोजगार सूचनाओं को एकत्र करना ही इतिश्री नहीं है बल्कि उनका संग्रह इस प्रकार किया जाए जिससे वे आवश्यकतानुसार एवं जरूरतमंद लोगों को आसानी से उपलब्ध हो सकें। इसके लिए निम्न बातें आवश्यक हैं–

1. **अच्छी योजना बनाना** (Making good planning)– सूचना सामग्री एकत्र होने के बाद आवश्यकता इस बात की होती है कि उसे प्रयोग के लिए उपयोगी बनाया जाए। समस्त सूचना सामग्री को तर्कसंगत ढंग से रखा जाए जिससे विद्यार्थी अपने काम के प्रकाशनों को सरलता के साथ निकाल सकें। इस सारी सामग्री की पुस्तकालय की सहायता लेकर फाइलें तैयार कर लेनी चाहिए तथा परामर्शदाताओं को पुस्तकालय के सहयोग से संस्था के सभी छात्रों के लिए उपयोगी योजनाएं बनानी चाहिए।
2. **तार्किकता** (Logical)– जब रोजगार सूचना सामग्री को एकत्रित किया जाता है तब उसके प्रदर्शन एवं वितरण के समय परामर्शदाता एवं पुस्तकालयाध्यक्ष के सामने दो बातें होनी चाहिए– पहली यह कि रोजगार सूचना सामग्री विविध प्रकार की हो, दूसरी यह कि उसका प्रयोग भी विविध प्रकार से किया जाए। इस संपूर्ण सामग्री का तभी सही प्रकार से उपयोग होगा जब कि पुस्तकालय के सामान्य पुस्तक संग्रह कक्षों से अलग विभाग या कमरे की व्यवस्था की जाए।
3. **सूचीकरण** (Listing)– जब रोजगार सूचना सामग्री को फाइलों में लगाकर अलमारी में रखे जाने की व्यवस्था की जा रही हो उससे पहले उन्हें 'कैटलॉग' में अंकित या लिख लिया जाना चाहिए। इसी प्रकार पुस्तकालय में पुस्तकों, अखबारों, पत्र–पत्रिकाओं, लेख–पत्रों तथा पर्चों (Used Question Papers) को भी फाइलों अथवा अलमारी में व्यवस्थित रूप में लगाकर रखना चाहिए। इसके साथ–साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जो सामग्री स्थायी रूप में काम आने वाली है उसे मोटी जिल्द के बड़े–बड़े फोल्डरों में लगा कर रखना चाहिए। पुस्तकालयाध्यक्ष एवं सूचना जानने वाले व्यक्तियों के लिए पुस्तकालय द्वारा अलमारियों, सूचना–पटों तथा फोल्डरों पर बड़े–बड़े अक्षरों में विषय एवं सूचना सामग्री का विवरण संक्षेप में लिखा जाना चाहिए।
4. **कार्ड–फाइल** (Card-file)– पुस्तकालय में जिस प्रकार पुस्तकों की कार्ड–फाइलें कैटलॉग में पुस्तक के नाम और लेखकों के नाम से विशेष कोड

नंबर जारी करके व्यवस्थित की जाती हैं, ठीक उसी प्रकार एक छोटा कैटलॉग बनाकर रोजगार सूचना सामग्री की फाइलें तैयार की जानी चाहिए।

टिप्पणी

**जिल्द रहित बिखरी हुई सामग्री रखने की योजना** (Cataloging unband materials)

बिना सिली हुई तथा जिल्द रहित सामग्री को सुव्यवस्थित ढंग से रखने के लिए 'बेरा एवं रोयबर' (Bera and Roeber) चार बातों पर ध्यान देने के लिए कहते हैं। ये चार बातें निम्न हैं–

1. **सरल** (Easy)– योजना इस प्रकार की होनी चाहिए कि बिना अनुभव के भी व्यक्ति अपने प्रयत्न से वांछनीय सामग्री को हासिल करने में सफलता प्राप्त कर ले और उसे किसी दूसरे पर निर्भर न होना पड़े।
2. **सुविधाजनक** (Facilitating)– रोजगार सूचना सामग्री के लिए इस प्रकार की योजनाएं बनानी चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसमें विस्तार किया जा सके। संबद्ध नई सामग्री को बिना किसी कठिनाई के बीच में रखा जा सके।
3. **क्रमबद्धता** (Systematic)– अल्मारियों तथा कैटलॉगों को रखे जाने वाली अल्मारियों की बाह्य रूप–सज्जा, आकर्षक, क्रमबद्ध तथा स्वच्छ होनी चाहिए। सभी फाइलों को भी क्रम में लगाकर व्यवस्थित करना चाहिए। ऐसा करने से संबद्ध व्यक्ति को किसी प्रकार की परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता है।
4. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण** (Psychological Attitude)– सूचना सामग्री को रखने की व्यवस्था प्रयोक्ताओं की रुचियों, योग्यताओं तथा आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए। इससे संबंधित योजनाएं बनाते समय मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को सामने रखना चाहिए।

**राष्ट्रीय वर्गीकरण के आधार पर सूचना सामग्री को फाइल करना** (Filing according to National classification of occupations)

रोजगार वर्गीकरण के स्वीकृत सिद्धांतों के आधार पर व्यवसायों का राष्ट्रीय वर्गीकरण किया गया है। इन वर्गों को 75 रोजगार समूहों तथा इन रोजगार समूहों को 331 नौकरी परिवारों में विभाजित किया गया है। हर रोजगार का एक कोड नंबर दिया गया है, उसका स्तर, वैकल्पिक शीर्षक तथा रोजगार का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। इसके साथ–साथ अंग्रेजी शब्द कोष (English Dictionary) की भांति सुविधापूर्वक जानकारी हासिल करने के लिए हिंदी वर्णमाला के क्रम सूचक कोश भी दिये जाते हैं। ऐसे रोजगार जिनमें प्रवेश लेने के लिए किसी विशेष अनुभव या तकनीकी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं होती है उनको 'एक्स विभाग' के अंतर्गत रखने का प्रावधान बनाया हुआ है। राष्ट्रीय वर्गीकरण के आधार पर सूचना सामग्री इसलिए रखी जाती है जिससे कि प्रयोग करने के इच्छुक व्यक्ति बिना किसी असुविधा के उसका प्रयोग कर सकें।

**टिप्पणी**

**रोजगार सूचना के प्रयोग के समय ध्यान रखने योग्य बातें** (Some points to be kept in mind when using occupational information)

आज के वैज्ञानिक युग में रोजगार सूचनाओं के प्रयोग के समय प्रयोक्ताओं तथा परामर्शदाताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उद्योग एवं व्यवसाय आधुनिक युग में बड़ी तीव्रता के साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तन कर रहे हैं जिसके कारण निरंतर परिवर्तन होते जा रहे हैं। रोजगार के अवसरों, कर्मचारियों की आवश्यक योग्यताएं, प्रशिक्षण अपेक्षाओं तथा उनकी सैलरी (वेतन) परिवर्तित होती रहती हैं। अर्थव्यवस्था में तथा तकनीकी परिवर्तन के कारण रोजगार क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों को लक्ष्य करते हुए रोजगार सूचना को यथासंभव पहली स्थिति में ही रखना आवश्यक है या यह भी कहा जा सकता है कि रोजगार सूचनाओं का संग्रह तो एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। रोजगार सूचना सामग्री को प्रस्तुत करते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि इस सूचना सामग्री में स्थानीय एवं राष्ट्रीय दोनों प्रकार के आंकड़े हों। विद्यार्थियों की जीवन–चर्या के निर्धारण के समय दूरगामी जनसंख्या वृद्धि एवं औद्योगिक परिवर्तनों की संभावनाएं ध्यान में रखी जाएं।

रोजगार सूचना सामग्री को बांटते समय परामर्शदाताओं तथा शिक्षकों को निम्न तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. **नवीन जानकारी** (Latest knowledge)– परामर्शदाताओं का कार्य केवल सूचनाएं एकत्रीकरण ही नहीं है बल्कि रोजगार से संबंधित नवीन जानकारी होना अनिवार्य है। सूचनाओं का लगातार दुबारा से निरीक्षण एवं एकत्रीकरण का कार्य बिना किसी लापरवाही के करते रहना चाहिए।
2. **सही विवरण** (True account)– परामर्शदाताओं का प्रमुख कार्य केवल सूचनाओं का सही विवरण देना है। उपबोध्य के लिए किसी विशेष चुनाव पर जोर देना, लाभ के स्थान पर उस हानि दे सकता है।
3. **विशेषताओं का उपयोग** (Utilisation of specialities)– रोजगार जानकारी लेते समय शिक्षक अथवा परामर्शदाता एक अच्छे शिक्षण की सभी विशेषताओं का प्रयोग कर सकता है। एक अध्यापक जब शिक्षण कार्य करता है तो वह इस बात का ध्यान रखता है कि वह अपने विद्यार्थियों के लिए विषय में रोचकता एवं जिज्ञासा बनाये रखे जिससे कि छात्र कक्षा में भी जायेंगे और शिक्षक से कुछ अधिक जान सकेंगे। ठीक इसी प्रकार की रोचकता एवं जिज्ञासा रोजगार सूचना वितरित करते समय भी बना कर रखनी चाहिए।

## रोजगार सूचना का प्रस्तुतीकरण या वितरण

छात्रों एवं रोजगार निर्देशन के चाहने वाले व्यक्तियों तक रोजगार सूचना देने के लिए दो विधियों का प्रयोग किया जाता है। ये विधियां निम्न हैं–

(1) वैयक्ति विधि (Individual Method)

(2) सामूहिक विधि (Group Method)।

**(1) वैयक्तिक रूप से रोजगार सूचना प्रदान करना** (Individual method of presenting occupational information)

इसका सबसे अच्छा माध्यम परामर्शदाता द्वारा उपबोध्य का साक्षात्कार है। रोजगार सूचनाएं प्रदान करते समय 'बेरा और रोयबर' के अनुसार परामर्शदाता के सम्मुख निम्न चार प्रश्न होने चाहिए–

(क) **परामर्श साक्षात्कार में रोजगार सूचना किन दशाओं में प्रयुक्त की जाती है?** (In what circumastances occupational information is provided in counselling interview?)– अधिकांशतः परामर्श प्रार्थी अपने मन में विचार किये रोजगार के विषय में जानकारी हासिल करना चाहता है। परामर्शदाता का यह कर्तव्य बनता है कि वह परामर्श प्रार्थी को उस विषय की जानकारी तो प्रदान करे ही साथ ही में उसकी क्षमता एवं संभावनाओं का सही मूल्यांकन करने एवं उनके अनुरूप रोजगार का पुनर्निर्धारण के लिए भी प्रेरित करे।

(ख) **परामर्श प्रार्थी को व्यावसायिक सूचना का उपयोग करने में परामर्शदाता कितनी मदद करता है** (How much help is done by counsellors to the counsellee in utilising occupational information)– बहुत से परामर्श प्रार्थी इस प्रकार के होते हैं जो कि अपनी वांछित सूचनाओं को प्राप्त करने के बाद उनका प्रयोग स्वयं करने में समर्थ होते हैं। इसके विपरीत कुछ इस प्रकार के भी होते हैं जो कि परामर्शदाता की सहायता लेना चाहते हैं। इसलिए जहां तक हो सके परामर्शदाता को रोजगार सूचना सामग्री के अध्ययन में परामर्श प्रार्थी की सहायता करनी चाहिए।

(ग) **परामर्श के लिए कौन–सी रोजगार सूचना सामग्री उपयुक्त है, इसका निश्चय परामर्शदाता किस प्रकार करता है** (Which occupational information is proper for the counsellee, how does a counseller determinate it)– परामर्श प्रार्थी को पढ़ने एवं प्रकाशित सामग्री के अध्ययन की क्षमता उसके अनुभव की पृष्ठभूमि, उपलब्ध सामग्री के अध्ययन के प्रति उत्साह तथा रोजगार चुनने के प्रति रुचि आदि को जानने के बाद परामर्शदाता उसके अनुसार सूचना सामग्री का निश्चय कर सकता है।

(घ) **परामर्श साक्षात्कारों में प्रदत्त रोजगार सूचना के उपयोग का मूल्यांकन परामर्शदाता किस प्रकार करता है** (How does the counsellor evaluate the utility of occupational information, provided in counselling interview)– इस विधि के माध्यम से यह देखा जाता है कि परामर्श प्रार्थी ने जो सूचना साक्षात्कार से प्राप्त की थी, उसके उपयोग से रोजगार चयन में कोई लाभ हुआ क्या? उसने जो व्यवसाय चुना उसमें जाने के बाद चयन सही लगा क्या? अथवा सूचना अनुपयुक्तता के कारण चयन ठीक न हुआ हो? इसके अतिरिक्त क्या ऐसा है कि परामर्श प्रार्थी एक बार रोजगार संबंधी

जानकारी लेने के बाद पुनः परामर्शदाता के साथ साक्षात्कार की आवश्यकता महसूस करता है। इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों के साथ सूचना सामग्री के उपयोग का मूल्यांकन किया जा सकता है तथा उसके अनुसार साक्षात्कार में आवश्यक परिवर्तन भी किये जा सकते हैं।

वैयक्तिक स्तर पर संपर्क प्रायः सामूहिक विधि से अधिक सफल माना जाता है, क्योंकि वैयक्तिक संपर्क के कारण परामर्श प्रार्थी की अनेक प्रकार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई परमार्श प्रार्थी किसी विशेष रोजगार या कार्यक्षेत्र की जानकारी प्राप्त करने की रुचि रखता है जबकि दूसरों के द्वारा उसमें कोई रुचि नहीं रखी जाती है। ये परिस्थितियां व्यक्तिगत संपर्क की आवश्यकता को जन्म देती हैं। कभी किसी परामर्श प्रार्थी को वैयक्तिक समस्याओं के प्रति जानकारी करने की जिज्ञासा होती है तो परामर्शदाता उसकी इस जिज्ञासा को साक्षात्कार के माध्यम से पूरी कर देता है। इसके माध्यम से दृष्टिकोणों एवं विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकता है।

**(2) रोजगार सूचना प्रदान करने की सामूहिक पद्धतियां** (Group methods of presenting occupational information)

वैयक्तिक अथवा साक्षात्कार संपर्क रोजगार जानकरी प्राप्त करने का एक अच्छा माध्यम है परंतु निर्देशन कर्मचारियों की सीमित संख्या, समय तथा धन का अभाव तथा परामर्श प्रार्थियों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक छात्र का परामर्शप्रार्थी से वैयक्तिक संपर्क बनाना संभव नहीं होता है। ऐसा करने में श्रम, धन एवं समय अधिक व्यय होता है। इसलिए वैयक्तिक संपर्क केवल वहीं तक सीमित रखा जाता है, जहां तक कि सामूहिक पद्धति से जानकारी मिलना कठिन एवं मुश्किल होता है। वैयक्तिक संपर्क में कुछ कठिनाइयों के कारण व्यावसायिक सूचनाएं देने के लिए कुछ सामूहिक विधियों को विकसित किया गया है, जो कि निम्न हैं–

(क) **एक विषय के रूप में रोजगार सूचना छात्रों को प्रदान करना** (Occupational information as a regular subject)– छात्रों को व्यावसायिक जगत की वस्तुस्थिति से परिचित कराने के लिए व्यावसायिक सूचना एक पाठ्यचर्चा के रूप में रखी जानी चाहिए। जॉन एम. ब्रिवर ने तो 'रोजगार सूचना' विद्यालयों में एक विषय के रूप में पढ़ाये जाने के लिए कहा है। उनका यह विचार बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। छात्रों की व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसी के अनुसार पाठ्य चर्चा में रोजगार सूचनाएं उनके समक्ष प्रस्तुत की जाएं। इससे सभी छात्रों को लाभ पहुंचेगा। छात्र अपने अध्ययन में रोजगार निर्देशन की आवश्यकताएं इस माध्यम से पूरी कर पाएंगे तथा अन्य विषयों में भी उनकी रुचि उत्पन्न होगी। ऐसे परिणाम भी देखने में आये हैं कि विषय के रूप में व्यावसायिक सूचना अधिक वैज्ञानिक ढंग से संयोजित की जा सकती है।

**टिप्पणी**

कीफोबर एवं हैंड ने अपनी पुस्तक 'अप्रेजिंग गाइडैंस इन सेकन्डरी स्कूल्स' (Aprising Guidance in Secondary Schools) में कहा है कि छात्र रोजगार सूचना सामग्री का एक पाठ्यचर्चा के रूप में अध्ययन करते हैं। परिणामस्वरूप वे अच्छा रोजगार चुनने में सफलता प्राप्त करते हैं। इसका अध्ययन वैज्ञानिक रूप में सफल करने के लिए इसे एक विषय के रूप में रखा जाये। तभी छात्र कार्यजगत में विख्यात से परिचित होंगे। लोगों और उनके रोजगार जीवन के अनेक स्तरों निःसंदेह यह ज्ञान उपयोगी होगा।

स्पैनवल के अनुसार रोजगार सूचना को एक विषय के रूप में मानने के दो उद्देश्य हो सकते हैं– ये उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- छात्रों को रोजगार का अध्ययन करने की विधियों से परिचित कराना है जिससे वे अपने जीवन के लिए कार्य का बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव कर सकें।
- भावी शिक्षा के लिए उसके अंदर रुचि एवं उत्साह पैदा करना। इस प्रकार का अध्ययन करने से छात्रों में श्रम के प्रति आदर एवं श्रमिक जीवन की वास्तविकताओं को नजदीक से देखने की भावना उत्पन्न होती है। इस विषय को जब छात्रों के सामने रखा जाए तब इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जो भी अध्यापक अथवा परामर्शदाता शिक्षा दे रहा है वह केवल सैद्धांतिक पक्ष को ही न समझाता हो, व्यावहारिक पक्ष जानना भी उसके लिए उतना ही महत्वपूर्ण है।

(ख) **रोजगार करियर सूचना सम्मेलन** (Occupational carrier information conference)– सामूहिक पद्धति के द्वारा रोजगार सूचना देने के लिए करियर सूचना सम्मेलनों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ये सम्मेलन शिक्षा का नया सत्र प्रारंभ होने के समय पर, वार्षिक जलसों के समय, परीक्षा समाप्ति के समय पर अथवा अन्य किसी अवसर पर आयोजित किये जा सकते हैं। उद्योगों में कार्य करने वाले बड़े पदों पर आसीन उद्योगपति, शिक्षाविद् अथवा अन्य क्षेत्रों के कार्यों का अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को अतिथि, मुख्य अतिथि के रूप में सम्मेलन में भाषण के लिए आमंत्रित किया जा सकता है। ये सम्मेलन तभी सफल हो सकते हैं जब कि उनका नियोजन ठीक प्रकार से किया जाये। एक समिति बनाई जाये, उसके विषय, कार्यविधि एवं विचारों को पहले से तैयार कर लिया जाये, छात्र भाषण में रखी जाने वाली सामग्री को प्राप्त कर सकें। ऐसा करने से छात्र सम्मेलनों तथा भाषणों के महत्व को स्वीकार कर पाएंगे। भाषण समाप्ति के बाद छात्रों के प्रश्न पूछने का सत्र भी होना चाहिए। यह सत्र छात्रों के लिए अधिक हितकर होगा। सामूहिक सम्मेलनों में यदि वैयक्तिक साक्षात्कारों के लिए भी व्यवस्था की जाए तो वह और भी अधिक लाभकारी होगी।

(ग) **महाविद्यालय दिवस का आयोजन** (College day programme)– शैक्षिक एवं रोजगार प्रशिक्षण संस्थाओं के जीवन के बारे में जानकारी प्रदान करने में

'महाविद्यालय दिवस' का आयोजन अत्यंत महत्वपूर्ण है। माध्यमिक संस्थाओं में एक दिन कॉलेज के छात्र प्रतिनिधियों, प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा विद्यालय के छात्रों को विभिन्न कॉलेजों, विश्वविद्यालयों एवं प्रशिक्षण संस्थाओं से संबंधित सूचनाएं प्रदान की जाती हैं। अध्ययन एवं प्रशिक्षण का समय तथा अवधि, शुल्क, कौन–कौन से कोर्स पढ़ाये जा रहे हैं तथा महाविद्यालय की अन्य गतिविधियों के विषय में छात्र 'महाविद्यालय दिवस' के दिन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि उस दिन महाविद्यालय का प्राचार्य अपने विद्यालय की सभी गतिविधियों की आख्या का वाचन करता है जिससे पूरी जानकारी मिल जाती है।

(घ) **पोस्टरों एवं विज्ञापन द्वारा व्यावसायिक सूचनाओं का प्रदर्शन** (Demonstration by posters and advertisements for occupational information)– छात्रों तक रोजगार सूचनाओं को पहुंचाने के लिए विद्यालय के नोटिस बोर्ड, क्लास रूम्स, पुस्तकालय के नोटिस बोर्ड तथा कक्षाओं के बाहर सुंदर एवं आकर्षक पोस्टर्स एवं विज्ञापन लगाकर सूचनाएं पहुंचाई जा सकती हैं।

(ङ) **चार्ट्स, ग्राफ्स एवं प्रकाशित सामग्री के प्रदर्शन द्वारा** (By display of charts, graphs and other published material)– व्यावसायिक सूचना पैम्पलेट्स समाचार पत्र के अंदर रखकर वितरित करवाये जा सकते हैं। इसी प्रकार कक्षाओं के अंदर तथा पुस्तकालय के कुछ विशेष कमरों में व्यावसायिक सूचना से संबंधित प्रदर्शनी, चार्ट, आंकड़े आदि लगाये जा सकते हैं।

(च) **व्यावसायिक सूचना संबंधी फिल्मों के प्रदर्शन** (Showing motion pictures, films related to occupational information)– रोजगार सूचनाएं सामूहिक रूप में प्रदर्शित करने के लिए इससे संबंधित प्रभावशाली फिल्में बनाई जाएं जिनका प्रदर्शन बेहतर है क्योंकि फिल्मों के माध्यम से सूचनाओं को अधिक प्रमाणित ढंग में प्रस्तुत किया जा सकता है जो छात्रों के ऊपर अधिक अच्छी छाप छोड़ेंगी।

(छ) **रोजगार सूचना वितरित करने के उद्देश्य से बनाये गए छात्र क्लब** (Student's clubs for presenting occupational information)– कॉलेज तथा महाविद्यालयों में छात्रों के क्लब बनाये जाएं जो कि रोजगार सूचना वितरित करने का कार्य करें। यह एक सामूहिक प्रयास होगा छात्रों के द्वारा सूचना देने का।

(ज) **विषय विशेष के शिक्षकों द्वारा** (Through special subject teachers)– रोजगार सूचना देने का कार्य विषय विशेषज्ञों के द्वारा करवाया जा सकता है। जो जिस विषय का अध्यापक है वह उसकी सूचना दे सकता है। जैसे– वाणिज्य, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान, कृषि, अर्थशास्त्र आदि।

**टिप्पणी**

(झ) **अभिनय** (Dramatisation)– व्यावसायिक सूचनाओं को देने के लिए अभिनय या एकांकी नाटक किये जा सकते हैं। छात्र जब किसी पद के लिए आवेदन पत्र भरता है और भरते समय उससे कुछ गलतियां हो जाती हैं या फिर साक्षात्कार के समय अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाता है से संबंधित बातों को अभिनय द्वारा बड़े अच्छे मनोरंजक एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि छात्र के लिए बहुत ही उपयोगी होगा।

(ञ) **पुस्तकालय** (Library)– पुस्तकालय पुस्तकों का भंडार होता है। इसलिए इसे रोजगार सूचना का महत्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। एकत्रित रोजगार सूचना को प्रयोग के लायक स्थिति में रखने एवं रोजगार सूचना वितरित करने के लिए पुस्तकालय में एक विशेष विभाग या कक्ष की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ट) **औद्योगिक एवं व्यापारिक संस्थाओं का भ्रमण** (Visit of industrial and commercial establishments)– विद्यालयों के निर्देशन विभाग छात्रों को विभिन्न औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों में ले जाकर उन्हें कार्य संबंधी जानकारी निकट से प्राप्त करा सकते हैं। छात्रों के द्वारा वहां के तकनीशियनों, निरीक्षकों एवं कर्मचारियों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं। लेकिन छात्रों को भ्रमण पर ले जाने से पहले भ्रमण का उद्देश्य, पूछे जाने वाले प्रश्नों के स्वरूप आदि के विषय में जानकारी दे देनी चाहिए।

(ठ) **रेडियो और टेलीविजन** (Radio and television)– आधुनिक युग का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया यानी रेडियो एवं टेलीविजन इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण सामूहिक रूप में सूचना देने का कार्य कर सकते हैं। अभिनय द्वारा (नुक्कड़ नाटक के रूप में) रेडियो और टी.वी. पर काफी लोगों को इससे जोड़ा जा सकता है। समय–समय पर व्यावसायिक सूचना संबंधी घोषणाएं आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा की जा सकती हैं।

(ड) **व्यावसायिक सूचना–संबंधी प्रदर्शनियों का आयोजन** (Organisation of exhibitions related to occupational information)– रोजगार से संबंधित अनेक सूचनाओं को प्रदर्शनियों द्वारा व्यक्तियों के सामने लाया जा सकता है। लेकिन जब भी प्रदर्शनियों के माध्यम से सूचनाएं दी जाएं इस बात का ख्याल जरूर रखा जाए कि सूचनाएं सही हों। संपूर्ण एवं विस्तृत जानकारी तो प्रदर्शनियों के माध्यम से नहीं दी जा सकती है।

समय एवं धन की बचत को देखते हुए सामूहिक पद्धति द्वारा व्यापक पैमाने पर सूचनाएं एक साथ पहुंचाई जा सकती हैं। इससे अनेक व्यक्तियों के अनुभवों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि सामूहिक पद्धति के कारण वैयक्तिक पद्धति का अपना कोई महत्व नहीं है। सही एवं अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए दोनों विधियों का प्रयोग आवश्यक है। दोनों ही एक गाड़ी के दो पहिये हैं जो एक के बिना नहीं चल सकते हैं। अतः दोनों का अपना–अपना महत्व है।

**टिप्पणी**

वर्तमान युग में रोजगार स्थिति बड़ी तेजी के साथ परिवर्तित हो रही है। अतः रोजगार सूचना प्रदान करते समय रोजगार प्रार्थी को भविष्य की स्थिति के विषय में अनुमान लगाते हुए जानकारी का उपयोग करने की सलाह दी जानी चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो समय, श्रम तथा धन के व्यय से प्रशिक्षण प्राप्त होने पर भी बेरोजगारी की स्थिति आ सकती है। ऐसी स्थिति किसी भी क्षेत्र में हो सकती है किंतु विचार एवं विश्लेषण से उपयुक्त विशिष्ट व्यवसाय की भावी स्थिति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है और उसी के अनुसार रोजगार सूचनाओं का उपयोग किया जाना चाहिए।

इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए रोजगार निर्देशन सेवा की व्यवस्था होना जरूरी है। हमारे देश में इसके लिए जो भी प्रयास किये गए हैं वे पर्याप्त नहीं हैं। जब तक शिक्षा, उद्योग एवं संबंधित अन्य मंत्रालय इस क्षेत्र में संगठित होकर योजना नहीं बनाते हैं तब तक स्थिति में सुधार आना असंभव है लेकिन यदि शिक्षण संस्थाएं आगे आ जाएं तब जनकल्याण संभव है।

## रोजगार वर्गीकरण

किसी भी व्यक्ति के रोजगार चुनने में निर्देशक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है यदि वह रोजगार के विषय में पूरी–पूरी जानकारी रखता है। व्यक्ति से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए निर्देशन कर्मचारी के पास अनेक साधन होते हैं। इन साधनों की सहायता से वह छात्रों के विषय में सही जानकारी प्राप्त कर सकता है। परंतु एक व्यक्ति के द्वारा व्यवसाय जगत की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी होने के कारण आधुनिक युग में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। जिसके परिणामस्वरूप अनेक नये रोजगार पनपते चले जा रहे हैं। रोजगारों की संख्या भी बढ़ रही है और करियर निर्देशक भी बढ़ रहे हैं और उनका कार्य क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में लगभग 60,000 रोजगार हैं। जब इतनी अधिक संख्या में रोजगार है तो उनको सुव्यवस्थित करना आवश्यक होता है। एक नीति भी बनानी होगी, तथ्यों को एकत्रित करना होगा। ये सारे कार्य एक निर्देशक द्वारा किये जाने बहुत अधिक कठिन है।

डॉ. सुपर का कहना है कि "युवकों को निर्देशित करने के लिए निर्देशक को उन प्रमुख क्षेत्रों का अवबोध होना आवश्यक है जिनके आधार पर रोजगार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। वह कार्य के इन विभिन्न आयामों का ज्ञान रोजगारों का वर्गीकरण करने के प्रयोग में लाता है और इस प्रकार व्यवसायों की अव्यवस्था को दूर कर उनको व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इस प्रकार मस्तिष्क में वर्गीकरण की रूप रेखा की उपस्थिति तथा युवक का अध्ययन उपबोधक को यह जानने में सहायक होता है कि युवक किस रोजगार में प्रवेश के अनुकूल है।"

मनुष्य के जीवन का अधिकांश भाग उसके रोजगार करते हुए व्यतीत होता है। इसलिए किसी भी व्यक्ति की जीवन शैली को वह प्रभावित करता है। रोजगार के माध्यम

टिप्पणी

से व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा भी बनती है। डॉ. सुपर के अनुसार 'व्यक्ति का कार्य उसके सामाजिक स्तर के साथ सीधे संबंधित है।' यह तथ्य अनेक शोधों द्वारा भी सामने आ चुका है कि रोजगार और सामयिक स्तर में उच्च सहसंबंध पाया जाता है। वस्तुतः रोजगार स्थल की भौतिक दशाएं व्यक्ति के व्यवहार और शैली पर अत्यधिक प्रभाव डालती हैं। जैसे स्वागत कक्ष में बैठा हुआ व्यक्ति लोगों के निरंतर संपर्क में आने के कारण मृदुभाषी बन जाता है, सेल्समैन अभ्यास के कारण वाक्पटु हो जाते हैं। डॉ. सुपर ने मानव जीवन पर रोजगार के प्रभाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है– "कार्य एवं रोजगार का व्यक्ति के सामाजिक स्तर, मूल्य, अभिवृत्ति तथा जीवनयापन की शैली को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यद्यपि इनमें से कुछ रोजगार को निश्चित करने वाले तत्व हैं, लेकिन स्वयं ये सभी तत्व अंश रूप में व्यवसाय द्वारा निश्चित होते हैं। रोजगार केवल जीवकोपार्जन का साधन ही नहीं है वरन जीवन जीने का तरीका है, एक सामाजिक कृत्य भी है।"

रोजगार संबंधी सूचनाएं इतनी विस्तृत होती हैं कि उनका संग्रह करना, आलेख करना तथा उन्हें वितरित करना बहुत कठिन कार्य होता है। इसलिए इन सूचनाओं को याद रखने तथा सूक्ष्म करने के लिए कुछ विधियों को बनाया गया है। ये विधियां निम्न हैं–

**(क) कार्य के प्रकार** (Types of Activities)

कार्य के वर्गीकरण में व्यक्तित्व एवं रुचि को आधार बनाया गया है। ई.के स्ट्रांग (E.K. Strong) ने विभिन्न रोजगारों में कार्य करने वाले व्यक्तियों की सूचियों को आधार बनाकर रोजगार का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है–

1. सामाजिक कल्याण रोजगार (Social Welfare Occupation)
2. जीव विज्ञान से संबंधित रोजगार (Biological Science Occupation)
3. साहित्यिक–विधि रोजगार (Literacy-Legal Occupation)
4. भौतिक विज्ञान से संबंधित रोजगार (Physical Science Occupation)
5. वाणिज्य संपर्क रोजगार (Business Contact Occupation)
6. उपव्यावसायिक तकनीकी रोजगार (Sub-Professional Technical Occupation)
7. वाणिज्य रोजगार (Business Occupation)

कार्य के आधार पर रोजगार वर्गीकरण की यह विधि कर्मचारियों के व्यक्तित्व पर आधारित है। इसके अंतर्गत यह मान्यता मानी जाती है कि कोई रोजगार समान व्यक्तित्व संबंधी गुण वाले व्यक्तियों को आकर्षित करता है या फिर कर्मचारियों को उनकी आवश्यकतानुसार परिवर्तित होने के लिए मजबूर करता है या यह कहा जा सकता है कि किसी प्रकार कर्मचारी रोजगार के साथ आत्मसात करता है। ऐसा माना जाता है कि यह रोजगार वर्गीकरण की विधि अधिक उपयोगी नहीं है।

**(ख) सामाजिक–आर्थिक वर्गीकरण** (Socio-economic classification)

कुछ रोजगारों के वर्गीकरण का आधार सामाजिक एवं आर्थिक भी माना जाता है। सामाजिक स्तर के अनुसार रोजगारों का वर्गीकरण करने में सामाजिक स्तरीकरण से सहायता मिलती है। परंतु इस प्रकार की प्रक्रिया को अत्यधिक कठिन माना गया है क्योंकि प्रतिष्ठा, वेतन, दक्षता स्तर तथा प्रतिष्ठा या हीनता के विभिन्न आयामों को परस्पर संबंधित करके देखा जा सकता है लेकिन वे कभी भी एक समानता की स्थिति में नहीं हो सकते हैं। सामाजिक–आर्थिक स्तर पर रोजगारों का वर्गीकरण करने वाले प्रमुख विद्वान निम्न हैं– हाल, एडवर्ड, वार्नर, केपलो आदि। वर्तमान समय में प्रगति के कारण परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से हो रहे हैं जिसके कारण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन भी होते रहते हैं। इसलिए ऐसा महसूस किया जा रहा है कि यह प्रक्रिया वर्गीकरण निर्देशन में अधिक उपयोगी नहीं है। इतना होने के बाद भी समाजशास्त्री इसी वर्गीकरण में अपनी रुचि रखते हैं क्योंकि समाजशास्त्रियों के द्वारा सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखकर ही रोजगारों के विषय में अध्ययन किया जाता है।

**(ग) उपक्रम के प्रकार या कार्य की स्थिति** (Types of Enterprises or Location of work)

इस विधि के अंतर्गत रोजगारों का वर्गीकरण उद्यम के आधार पर किया जाता है। यू. एस. ब्यूरो ऑफ बजट द्वारा एक प्रमाणीकृत औद्योगिक वर्गीकरण (Standardized Industrial Classification) तैयार किया गया है। इसके अंतर्गत उद्योगों को 9 प्रधान समूहों तथा 519 उपसमूहों में विभाजित किया गया है। उपसमूहों के अंतर्गत परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित उद्योगों को रखा जाता है। ये उपसमूह 1530 उद्योगों में बांटे गए हैं। प्रो. रो (Prof. Roe) द्वारा इसका वर्गीकरण निम्न है–

1. सामाजिक और व्यक्तिगत सेवा (Social & Personal Services)
2. मानवीय विज्ञान (Humanities)
3. वाणिज्य (Business)
4. जीव विज्ञान (Biological Science)
5. कला (Arts)
6. भौतिक (Physical)
7. गणित, भौतिक विज्ञान (Mathematics, Physical Science)
8. राजकीय उद्योग (Government Industry)

इस वर्गीकरण को द्विमापक माना गया है। इसमें एक स्तर से तथा दूसरा क्षेत्र से संबंधित होता है। प्रथम वर्गीकरण में स्तर–उत्तरदायित्व दक्षता, बुद्धि, शिक्षा, प्रतिष्ठा के संबंधित रूपों को दिखाता है। दूसरा वर्गीकरण के मापक क्षेत्र से संबंधित हैं। स्तर निम्न हैं–

1. दक्षतापूरित एवं जीविका (Skilled support and maintenance)

टिप्पणी

2. व्यावसायिक और प्रबंध संबंधी (नियमित) (Professional and Managerial [Regular])
3. अकुशल सहयोग एवं अनुरक्षण (Unskilled support and maintenance)
4. व्यावसायिक और प्रबंध संबंधी (नियमित) (Professional and Managerial [Regular])
5. अर्ध–दक्ष सहयोग एवं अनुरक्षण (Semi-skilled support and Maintenance)
6. अर्ध–व्यावसायिक और निम्न प्रबंधक संबंधी (Semi-Professional and Lower Managerial)

**(घ) रोजगार का त्रिआयामी वर्गीकरण** (Three-dimentional Classification of Occupation)

रोजगार के त्रिआयामी वर्गीकरण के अंतर्गत एक ही चित्र में स्तर, क्षेत्र एवं उपक्रम एक साथ आ जाते हैं।

**(ङ) बौद्धिक भिन्नता के अनुसार वर्गीकरण** (Classification according to intellectual differences)

मनोविज्ञान का अध्ययन भी रोजगारों के वर्गीकरण को प्रभावित करता है। इसके परीक्षण इस बात को सिद्ध कर देते हैं कि अलग–अलग रोजगारों के लिए अलग–अलग बुद्धि स्तर के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसी आधार पर रोजगारों को अपेक्षित बुद्धि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

प्रो. बार के द्वारा ऐसा प्रयास किया गया था लेकिन उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उनके द्वारा सभी रोजगारों के लिए समान बुद्धि को आधार बनाया गया था जबकि रोजगारों में भिन्नता लाने के लिए केवल सामान्य बुद्धि ही आधार नहीं होती है। इसके अतिरिक्त और भी आधार माने गए हैं–

**रोजगार सूचनाओं को भरना** (Filling up career information)

रोजगार सूचनाओं को इकट्ठा करना ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि यह भी बहुत जरूरी है कि इन सूचनाओं को उचित प्रकार से भरा जाए जिससे उनका सही उपयोग हो सके। यह कार्य पुस्तकालय तकनीक से संबंधित माना जाता है। इन सूचनाओं से संबंधित अनुसूची (index) बनाई जाती है। यह अनुसूची इसलिए तैयार की जाती है जिससे सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण एवं प्रसार किया जा सके। जब इनको भरा जाता है तब उसके लिए सरलतम विधि अपनाई जाती है। निर्देशन के अंशकालिक रूप में रखे जाने वाले लाइजन अधिकारी इन सूचनाओं को भरने में किसी भी सरल विधि का प्रयोग करते हैं। विधि निम्न हैं–

1. रोजगार के खंड में सूचनाओं को भरना
2. वर्णमाला के क्रम में सूचनाओं को भरना

3. राष्ट्रीय वर्गीकरण के अनुसार रोजगारों को भरना
4. अध्ययन विषयों के अनुसार सूचनाओं को भरना

रोजगार संबंधी सूचनाओं को भरने का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है–

**टिप्पणी**

1. **रोजगार खंड में सूचनाओं को भरना** (Filling-up information according to division of occupations)– 'श्री मेहता' जी ने रोजगार संबंधी सामग्री को 24 वर्गों के अंतर्गत विभाजित किया है। ये वर्ग निम्न हैं–
   - वैज्ञानिक
   - जैविक वैज्ञानिक
   - न्यायधीश
   - कृषि
   - सुरक्षा आर्मी
   - अभियंता
   - मनोवैज्ञानिक, निर्देशक, परामर्शदाता
   - पत्रकारिता
   - लिपिक एवं कार्यकर्ता
   - मछली का कार्य
   - डॉक्टर
   - प्राचार्य, अध्यापक
   - कलावृत्ति
   - यातायात
   - नर्स तथा स्वास्थ्य कार्यकर्ता
   - अभिलेखा अधिकारी
   - प्रशासक, अधिकारी, प्रबंधक
   - सामाजिक कार्यकर्ता
   - विक्रेता
   - खान खोदना
   - सम्प्रेषण कर्ता
   - वन विभाग
   - पुलिस कार्यकर्ता
   - अर्थशास्त्री
2. **वर्णमाला के रूप में सूचनाओं को भरना** (Filling-up information in alphabetical order)– इसके अंतर्गत अंग्रेजी वर्णमाला का क्रम लिया जाता

है। अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम को सरल माना जाता है इसलिए इसे अपनाया जाता है। सूचनाएं कम होने के स्थिति में वर्णमाला के क्रम में भरना बहुत सरल होता है। सभी संदर्भों को वर्णमाला क्रम में ही भरा जाता है।

**टिप्पणी**

3. **राष्ट्रीय वर्गीकरण के अनुसार रोजगारों को भरना** (Filling up occupations according to national classification)– राष्ट्रीय स्तर पर रोजगारों का वर्गीकरण दो–प्रकार से किया गया है। वे दो प्रकार निम्न हैं–

- राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण (National Industrial Classification [NIC])
- राष्ट्रीय रोजगार वर्गीकरण (National Classification of Occupations [NCO])

इस वर्गीकरण में सूचनाएं तीन प्रकार से भरी जाती हैं–

(क) **प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों संबंधी सूचनाओं को भरना**– प्रशिक्षण संबंधी सूचनाओं को प्रार्थी की शैक्षिक योग्यता एवं अभिरुचि के अनुसार भरा जाता है। इसके अंतर्गत पाठ्यक्रम सूचनाएं भरी जाती हैं। इस पत्रावली में पाठ्यक्रम संबंधी सूचनाएं भी रहती हैं। उनकी क्रम संख्या संदर्भ रूप में भरी जाती हैं।

(ख) **रोजगार संबंधी सूचनाओं को भरना**– राष्ट्रीय वर्गीकरण के अंतर्गत रोजगार से संबंधित सूचनाओं को उनके वर्ग में अंकित कर दिया जाता है। इसमें सात खंड तथा 95 समूह दिए गए हैं। 95 पत्रकों में समूह से संबंधित सूचनाओं को भरना चाहिए। रोजगार के एक समूह के अंतर्गत कई वर्ग होते हैं, जैसे– समूह 13 में 9 वर्ग शामिल किये जाते हैं। इन सूचनाओं को एकत्रित करने का माध्यम अनेक स्रोत होते हैं। इन्हें वर्ग के एक पत्रक पर अंकित किया जाता है। इसलिए रोजगार को समूचित समूह के वर्ग के अंतर्गत भरा जाना चाहिए।

(ग) **छात्रवृत्ति संबंधी सूचनाओं को भरना**– ये सूचनाएं अलग पत्रावली में भरी जाती हैं। इसमें संदर्भ संख्या भी अंकित की जाती है। नौकरी तथा प्रशिक्षण अवसरों की पत्रावली भी बनाई जाती है। विवरण के स्तर संदर्भ में भी उसे अंकित किया जाता है। इसलिए एक संदर्भ कार्ड भी तैयार किया जाता है जिससे विभिन्न पत्रावलियों का उपयोग करना सरल हो जाता है। हर प्रकार के आवेदन के लिए संदर्भ कार्ड का प्रबंध किया जाता है तथा पत्रावलियों की अनुसूची बनाई जाती है।

4. **अध्ययन विषयों के अनुसार सूचनाओं को भरना** (Filling-up information according to study subjects at college)– इन सूचनाओं को पत्रावली की सहायता से भरा जाता है। हर विषय की पत्रावली अलग–अलग होती है। अगर विषय के उपसमूह होते हैं तो उपसमूह के अनुसार भी पत्रावलियों का निर्माण

किया जाता है। विभिन्न विषयों के साथ रोजगार संबंधी सूचनाओं का पत्रक भी लगा दिया जाता है।

टिप्पणी

**अपनी प्रगति जांचिए**

13. रोजगार सूचना का प्रमुख स्रोत है–
    (क) वेबसाइट
    (ख) देश में प्रकाशित रोजगार सूचना
    (ग) पत्र, पत्रिकाएं, समाचार पत्र
    (घ) उपर्युक्त सभी
14. रोजगार सूचना प्राप्त करने की विधि है–
    (क) नौकरी अथवा कृत्य विश्लेषण
    (ख) सर्वेक्षण पद्धति
    (ग) उपर्युक्त दोनों
    (घ) इनमें से कोई नहीं
15. व्यवसाय चयन के प्रमुख सिद्धांत कौन से हैं?
    (क) जिन्जबर्ग का सिद्धांत
    (ख) हालेंड का सिद्धांत
    (ग) सुपर का सिद्धांत
    (घ) उपर्युक्त सभी

## 1.6 समूह निर्देशन

मार्गदर्शन व्यक्तिगत के साथ ही सामूहिक रूप में भी प्रदान किया जा सकता है। इसमें निर्देशन की वे गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, जो एक समूह की स्थिति में इसके सदस्यों को बुद्धिमत्तापूर्ण शैक्षिक, व्यावसायिक और सामाजिक निर्णयों के लिए वांछित हैं, यहां तक कि आवश्यक अनुभवों हेतु सहायता प्रदान करने में संचालित किए जाते हैं। ऐसी समूह गतिविधियां समय एवं धन की बचत करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सामान्य समस्याओं की उपयोगी चर्चा विद्यार्थी समूहों के मध्य की जा सकती हैं। यह व्यक्तिगत मार्गदर्शन हेतु मार्ग भी निर्मित करता है। विशेष आवश्यकता, समस्या तथा निजता को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श भी किया जाता है।

समूह मार्गदर्शन की कुछ गतिविधियाँ समूह चर्चा, अभिविन्यास कार्यक्रम, व्यवसाय सम्मेलन, कक्षा वार्ताएं तथा समूह व्यवसाय योजना है। यह खेल समूहों के कई अनौपचारिक प्रकारों को भी सम्मिलित करता है।

यह निश्चित प्रकार की निर्देशन गतिविधियों के लिए उपयुक्त है। जैसे व्यवसायों के बारे में जानकारी या विद्यालयों में नवागंतुकों का विद्यालय के बारे में मार्गदर्शन। यहां पर व्यक्तिगत निर्देशन मात्र समय की बर्बादी होगा तथा क्रियाकलाप में संलग्न अन्य संसाधनों को भी व्यर्थ करना होगा।

यह विद्यार्थियों और निर्देशन कार्यकर्ता के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करता है, जो अन्य निर्देशन सेवाओं के लिए मार्गों का सृजन करता है। उदाहरण के लिए कक्षा ग्यारहवीं के नवागंतुक "अपने व्यवसाय का प्रभावी नियोजन कैसे करें" पर वार्ता के बाद विद्यालय परामर्शदाता से विषय के चयन हेतु भी सहायता चाहते हैं।

**टिप्पणी**

यह अपरिचित स्थितियों के बारे में नए अनुभवों के लिए दिशा–निर्देश प्रदान करता है। उदाहरण के लिए 10+2 स्तर पर आए नए बैच ने सरलता का अनुभव किया, जब एक परामर्शदाता ने उन्हें विद्यालय, विद्यालय में उपलब्ध विभिन्न सुविधाओं, नियमों तथा विनियमों और उनसे अपेक्षाओं के बारे में बताया।

यह सामान्य समस्याओं पर सामूहिक ध्यान केन्द्रित करता है। एक समस्या का समाधान प्राप्त करने में व्यक्ति यदि अकेला ही कार्य करे, तो इसकी तुलना में एक समूह स्थिति उसे समाधान हेतु अधिक सहजता प्रदान करती है तथा ऐसी स्थिति में अपनी समस्या दूसरों द्वारा भी साझा की जा रही होती है। इससे भावनात्मक तनाव दूर हो जाता है और चर्चा के दौरान प्राप्त सुझाव उसके लिए अधिक स्वीकार्य होते हैं।

यह व्यक्ति को वास्तविक समूह–जीवन और अन्य व्यक्तियों के साथ संचलन का अवसर प्रदान करता है। समूह–स्थिति में विद्यार्थी विविध समूह गतिविधियों के प्रति अधिक उन्मुख होते हैं, जो उन्हें अपने व्यवहार को सामाजिक रूप से स्वीकार्य ढंग से संशोधित करने में सहायक होते हैं। वे दूसरों के विचारों का सम्मान करना भी सीखते हैं।

## समूह निर्देश के लाभ

1. निम्नलिखित बिंदुओं से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं–
   (क) उच्च शिक्षा की भावी संभावनाएं;
   (ख) व्यावसायिक अवसर और व्यावसायिक तैयारी;
   (ग) खाली समय के क्रियाकलाप;
   (घ) सामाजिक और नागरिक परिस्थितियों की जानकारी;
2. सहयोगी जीवन के अनुभव जो निम्नलिखित क्षेत्रों में विकास करते हैं;
   (क) अन्तर्वैयक्तिक कौशल (ख) अच्छी खेल भावना
   (ग) स्वयं तथा दूसरों को समझना (घ) सामाजिक कौशल
3. निम्नलिखित द्वारा व्यक्ति की योग्यताओं और रुचियों का विकास होता है;
   (क) समूह परियोजनाओं में सहभागिता
   (ख) विद्यार्थियों द्वारा आरंभ क्रियाकलापों का आयोजन
   (ग) विद्यालयों तथा अन्य संस्थानों में विशेष सेवाओं और कार्यक्रमों का आयोजन।

## समूह निर्देशन के समय ध्यान रखने योग्य बातें

यदि समूह मार्गदर्शन की गतिविधियों को प्रभावी ढंग से संगठित करना हो तो कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है :

(1) यह एक सामूहिक कार्य है, इसमें विद्यालय व्यवस्था के विद्यार्थी, शिक्षक और प्रशासनिक स्टॉफ सभी के सहयोग की आवश्यकता होती है परंतु समूह का आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए।

(2) चयनित समूहों की आवश्यकताएं और समस्याएं समान होनी चाहिए, उदाहरण के लिए यदि कक्षा वार्ता "प्रभावी व्यावसायिक नियोजन" पर कक्षा छठी के विद्यार्थियों के लिए की जा रही हो तो यह एक व्यर्थ प्रयास होगा, क्योंकि इसके महत्व को समझने के लिए वे बहुत छोटे हैं।

(3) इसमें टीम के सभी सदस्यों की प्रतिभागिता आवश्यक है। अतः ऐसी विधियों का उपयोग होना चाहिए जिससे विद्यार्थी प्रश्न पूछने/मुद्दों को सामने रखने की जिज्ञासा महसूस कर सकें। उदाहरण के लिए कक्षा–वार्ताओं के संगठन के दौरान विद्यार्थियों को अपने स्व–अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

## 1.6.1 समूह निर्देशन की विभिन्न गतिविधियां

छात्र का अभिविन्यास तभी प्रारंभ हो जाता है जब अभिभावक अपने बच्चे को सर्वप्रथम एक नर्सरी विद्यालय में ले जाते हैं। यह यहां पर समाप्त नहीं होता बल्कि विद्यालय जीवन, व्यावसायिक जीवन तथा व्यक्तिगत जीवन में आजीवन चलता रहता है। अभिविन्यास, विद्यालय अवधि के दौरान प्रत्येक विद्यार्थी को प्रदान किया जाना चाहिए क्योंकि वह विद्यालय में प्रत्येक सत्र में नई कक्षा में प्रवेश करता है।

अभिविन्यास कार्यक्रम प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के लिए एक समान नहीं हो सकते। आवश्यकता के आधार पर इन्हें विभिन्न स्तरों पर भिन्न होना चाहिए। समूह निर्देशन के विभिन्न स्तरों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

### (क) व्यावसायिक स्तर

इसमें विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों पर सूचना प्रदान करने के लिए गोष्ठियों की श्रृंखला का आयोजन किया जाता है, जो उनके भावी शिक्षा और व्यवसाय के नियोजन में उनके लिए सहायक होंगे। यह विद्यार्थियों को व्यावसायिक सूचना प्रदान करता है और शिक्षकों, अभिभावकों तथा सामान्य रूप से समुदाय को निर्देशन कार्यक्रम के महत्व के बारे में जागरूक बनाता है।

### (ख) व्यावसायिक परिचर्चा

व्यावसायिक वार्ताएँ, कक्षा वार्ताओं से भिन्न होती हैं। कक्षा वार्ता के शीर्षक सामान्य और विभिन्न होते हैं, जबकि व्यावसायिक वार्ताओं का केन्द्र विविध व्यवसायों की सूचनाओं के बारे में होता है। उदाहरण के लिए कक्षा वार्ताओं के लिए शीर्षक "प्रभावशाली अध्ययन आदतें" या "समय प्रबंधन" हो सकते हैं जबकि व्यावसायिक वार्ता के लिए विषय "चार्टेड एकाउंटेंसी व्यवसाय" होगा। व्यावसायिक वार्ताओं की तैयारी में सामान्य बिन्दु कक्षा वार्ता के समान होते हैं। व्यावसायिक वार्ताओं के आयोजन हेतु कुछ अतिरिक्त दिशा–निर्देश भी हो सकते हैं।

### (ग) कक्षा परिचर्चा

समूह निर्देशन प्रदान करने की प्रभावशाली विधियों में से यह एक प्रमुख विधि है। कक्षा वार्ताएँ एक कक्षा के उन विद्यार्थियों के लिए आयोजित की जा सकती हैं जिनकी

रूचियां एक समान होती हैं। उदाहरण के लिए कक्षा नौवीं के विद्यार्थियों के लिए "समय प्रबंधन" पर कक्षा वार्ता आयोजित की जा सकती है।

**टिप्पणी**

कक्षा वार्ता आयोजित करते समय कुछ बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

- चयनित प्रकरण विद्यार्थियों की आवश्यकता और स्तर के अनुसार होना चाहिए।
- इसको दैनिक जीवन के पर्याप्त उदाहरणों एवं दृष्टांतों के साथ सरल शब्दों में प्रस्तुत करना चाहिए। कठिन शब्दों का उपयोग नहीं होना चाहिए।
- विद्यार्थियों की प्रतिभागिता को सुनिश्चित करना चाहिए।

यह विद्यार्थियों से प्रश्न पूछकर या उन्हें अपने जीवन के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करके किया जा सकता है। यह विद्यार्थियों को वार्ता को रोचक और उसमें संलग्न होने का अहसास कराने में सहायक होता है।

- वार्ता के मुख्य बिन्दुओं को प्रभावशाली ढंग से प्रकाशित करने के लिए चार्टों, पोस्टरों, पर्चों आदि का उपयोग किया जा सकता है।
- वार्ता बहुत लम्बे समय की नहीं होनी चाहिए।
- विद्यार्थियों की संख्या 45/50 से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- वार्ता का समय, विषय, स्थान और अन्य विस्तृत विवरणों की सूचना विद्यार्थियों को अग्रिम रूप से दी जानी चाहिए।
- पूरक सामग्री जैसे : चार्टों, पोस्टरों, फिल्म, सुविधाअनुसार होनी चाहिए।

कक्षा वार्ता अग्रलिखित विषयों/शीर्षकों पर होनी चाहिए, जैसे : समय प्रबंधन, अध्ययन आदतें, परीक्षा की तैयारी कैसे करें, जीवन कौशल, भोजन की स्वस्थ आदतें, स्वस्थ जीवन, सामाजिक कौशल आदि।

### उद्योग का भ्रमण

संयंत्रों का भ्रमण विद्यार्थियों को उपलब्ध विविध व्यवसायों के प्रति जागरूक होने के उत्तम अवसर प्रदान करते हैं। उद्योग और व्यापारिक संस्थानों के ये भ्रमण कक्षा समूहों के लिए निर्देशन कार्यक्रम के अंग के रूप में आयोजित किए जा सकते हैं।

संयंत्रों के भ्रमण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों और व्यवसाय कार्य में लगे लोगों के साथ परस्पर क्रिया द्वारा व्यवसाय के बारे में विद्यार्थियों की जागरूकता में वृद्धि करना है।

### (घ) सामूहिक चर्चा

समूह चर्चा, समूह निर्देशन का लाभदायक क्रियाकलाप है। एक अनुमोदक स्थिति में जहां सभी सदस्यों की समान आवश्यकताएं हों, विद्यार्थी उन विषयों पर चर्चा करना सीखते हैं जो उन्हें व्याकुल करते हैं। इससे विद्यार्थियों को अपनी आयु के व्यक्तियों, जो उनके समान समस्याओं का सामना कर रहे हों, के साथ कार्य सम्बन्ध बनाने और एक स्वीकार्य समूह के साथ जुड़ने में सहायता मिलती है।

**टिप्पणी**

कभी–कभी कुछ विद्यार्थियों का समूह चर्चा पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, अतः समूह को 7 से 10 विद्यार्थी प्रति समूह में छोटे–छोटे 4–5 समूहों में बांटना चाहिए। विषय का परिचय देने या समूह को उत्साहित करने के लिए वार्तालाप सत्र एक उपयोगी विधि है। शिक्षक, श्यामपट्ट पर एक चिंतन–उत्तेजक प्रश्न/मुद्दा लिखता/लिखती है और उन्हें चर्चा करने के लिए उत्साहित करता/करती है। इसे वार्तालाप सत्र कहते हैं।

### (ङ) व्यावसायिक प्रदर्शनी का भ्रमण एवं प्रश्नोत्तरी

व्यावसायिक मेला विद्यार्थियों को उनके लिए उपलब्ध विभिन्न रास्तों को खोजने में सहायता हेतु प्रचुर अवसर प्रदान करता है। हममें से कई व्यक्ति व्यावसायिक मेले की अवधारणा से परिचित नहीं हैं। एक व्यावसायिक मेले में विभिन्न पाठ्यक्रमों को प्रदान करने वाले विविध संस्थानों द्वारा स्टाल स्थापित किए जाते हैं : उदाहरण के लिए, फैशन प्रौद्योगिकी का संस्थान, होटल प्रबंधन संस्थान या विविध विश्वविद्यालय। वे उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों के बारे में सूचना प्रदान करते हैं। विद्यार्थियों को एक ही स्थान पर विभिन्न पाठ्यक्रमों की सूचना प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

कभी–कभी ये संस्थान वीडियो कैसेट्स, स्लाइड शो, फिल्मों आदि का उपयोग उस व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य की प्रकृति को दर्शाते के लिए करते हैं। वे भ्रमणकर्ताओं को सूचना पुस्तिकाएं या पर्चों का निःशुल्क वितरण भी करते हैं।

छात्रों को अपने शहर में संगठित इस प्रकार की व्यावसायिक प्रदर्शनी/मेलों की खोज कर इनका लाभ उठाना चाहिए। समय–समय पर समाचारपत्रों में इनका विज्ञापन दिखाई देता है।

ये मेले समय और मेहनत की बचत करते हैं। विद्यार्थियों को पाठ्यक्रमों की सूचना प्राप्त करने के लिए एक संस्थान से दूसरे संस्थान तक जाने की आवश्यकता नहीं होती है। परंतु छात्रों को सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि क्या वे पाठ्यक्रम संबद्ध नियामक संस्था द्वारा मान्यता प्राप्त हैं? यदि वे पाठ्यक्रम मान्यता प्राप्त नहीं हैं तो बाद में उनके द्वारा कोई व्यवसाय प्राप्त नहीं भी हो सकता है।

व्यवसाय सम्बन्धी सूचना प्रदान करने में व्यावसायिक प्रश्नोत्तरी सत्र भी उपयोगी मार्ग है। यह क्रियाकलाप विद्यार्थियों को सूचना प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है क्योंकि वे प्रश्नोत्तरी में प्रतिभागी बन सकते हैं। कम अवधि की ऐसी प्रश्नोत्तरी को अतिरिक्त पाठ्यक्रम सारिणी में नियमित रूप से रखा जा सकता है। एक शब्द वाले उत्तर, सही/गलत कथन आदि प्रकार के प्रश्न इसमें दिए जा सकते हैं। इसके कुछ उदाहरण निम्न हैं–

- एन.आई.एफ.टी., आई.टी.आई., एम.बी.ए., बी.एड., आई.आई.एम., बी.आई.टी.एस., एन.आई.डी., एन.आई.आई.टी., एन.डी.ए. आदि का पूरा रूप बताइए।
- एन.डी.ए. में प्रवेश के लिए शैक्षिक योग्यता बताइए।
- रक्षा बलों के नौसेना विंग में जाने के लिए कौन सी विषयशाखा की आवश्यकता होती है?

इस प्रकार के लघु प्रश्न पूछे जा सकते हैं। संदर्भ के लिए उनसे समाचार पत्रों को तथा समय–समय पर बुलेटिन बोर्ड में प्रदर्शित सूचना को देखने के लिए कहा जा सकता है।

**टिप्पणी**

## 1.6.2 समूह गतिविधियों की सीमाएं

यद्यपि समूह क्रियाकलाप उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं परंतु इन्हें व्यक्तिगत परामर्श के विकल्प के रूप में नहीं लिया जा सकता है। समूह क्रियाकलाप, विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम के कई उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, परंतु सभी की नहीं। यह विद्यार्थियों को उनकी एक समान समस्याओं में सहायता प्रदान करते हैं। परंतु विभिन्न व्यक्तियों में अपनी कठिनाइयों पर कार्य करने के लिए आवश्यक सहायता की मात्रा में अंतर होता है। इसके अतिरिक्त समूह में विद्यार्थी अपनी निजी समस्याओं को सामने रखने में संकोच महसूस करते हैं। अतः इन मामलों में समूह निर्देशन सहायक नहीं हो सकता है। समूह गतिविधियों को कुछ विद्यार्थी गंभीरतापूर्वक नहीं लेते।

समूह निर्देशन क्रियाकलाप उपयोगी प्रयोजनों विशेषकर समय और श्रम की बचत की पूर्ति करते हैं। इन गतिविधियों के आयोजन में एक परामर्शदाता, जिन समस्याओं का सामना कर सकता है, वे निम्नलिखित हैं :

- एक कठोर प्रकार का प्रशासन प्रायः मुसीबत का मुख्य कारण है। सामान्यतः जब एक परामर्शदाता इन निर्देशन गतिविधियों के संचालन हेतु समय सारिणी में समय अवधि की मांग करता/करती है, तो वह हतोत्साहित करने वाला उत्तर प्राप्त करता/करती है, "समय–सारिणी पहले से ही पूर्ण होती है।" तब परामर्शदाता के पास सिवाय वैकल्पिक/व्यवस्था कालांश में कार्य करने के कोई अन्य विकल्प नहीं रहता।
- प्रशासन तथा स्टॉफ सदस्यों के सहयोग का अभाव, जो इस प्रकार की गतिविधियों के आयोजन में समस्याएं उत्पन्न करते हैं। शिक्षक महसूस कर सकते हैं कि निर्देशन क्रियाकलाप एक अतिरिक्त भार है।
- पर्याप्त निधियों का अभाव एक अन्य समस्या है।

इन समस्याओं का निराकरण थोड़े से नियोजन, धैर्य और साहस के साथ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए समय–सारिणी की समस्या, जिसमें निर्देशन गतिविधियों के लिए कोई कालांश नहीं होता, इसके लिए परामर्शदाता कार्य अनुभव/एस. यू.पी.डब्ल्यू की कक्षाएं ले सकते हैं। पाठ्य–सहगामी गतिविधियों को प्रत्येक सप्ताह में नियमित आवर्तन में लिया जा सकता है। यदि संपूर्ण योजना की चर्चा प्रशासन/प्रबंधन के साथ की जाए तो व्यावसायिक प्रश्नोत्तरी की व्यवस्था बिना किसी कठिनाई के संपन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त निर्देशन का उपयोग शिक्षण में, कामचोरी एवं अनुशासनहीनता को दूर करने में तथा कम उपलब्धि का संप्रेषण शिक्षकों तक करने में किया जा सकता है। एक बार जब वे दोनों के बीच सकारात्मक सहसम्बन्ध पाएंगे तो वे सहायता हेतु सर्वाधिक इच्छुक होंगे। जहां तक निधियों की पर्याप्तता का सम्बन्ध है, प्रबंधन को न्यूनतम आवश्यकता के बारे में समझाने की आवश्यकता होगी।

**टिप्पणी**

**अपनी प्रगति जांचिए**

16. समूह निर्देशन में ध्यान रखने वाली मुख्य बात है–
    (क) समूह का छोटा आकार (ख) सामूहिक कार्य
    (ग) प्रश्न पूछने तथा जानकारी लेने की जिज्ञासा
    (घ) उपर्युक्त सभी
17. निम्न में से कौन सामूहिक निर्देशन का एक भाग है–
    (क) कक्षा परिचर्चा (ख) व्यावसायिक परिचर्चा
    (ग) उद्योग का भ्रमण (घ) उपर्युक्त सभी

## 1.7 समूह परामर्श

समूह परामर्श का महत्व वृहद स्तर पर है क्योंकि यह कम खर्चीला है। इसमें कम धन, संसाधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों से एक ही समय में व्यक्तियों के पूरे समूह को परामर्श दिया जा सकता है। समूह में बैठने से परामर्श ग्रहणकर्ता की निजी पहचान छिप जाती है और वह इसी वजह से अधिक स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया करता है। समाज में कुछ विशेष वर्ग जैसे नशा करने वाले, उत्पीड़ित वर्ग या ऐसे कुछ अन्य वर्ग, समूह परामर्श अथवा उपबोधन से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

समूह परामर्श में व्यक्ति अपनी समस्याओं की मिल–जुलकर खोजबीन करते हैं और उनका विश्लेषण भी करते हैं जिससे समस्याओं को वे बेहतर तरीके से समझ सकें, समस्याओं का सामना करना सीख सकें और उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर सकें और अंतिम निर्णय भी ले सकें।

समूह परामर्श या उपबोधन में व्यक्तिगत परामर्श के तीनों आयामों अर्थात् उपचारात्मक, निवारक और विकासात्मक का समावेश होता है। विद्यालयों में सामान्य तौर पर निवारक और विकासात्मक पहलुओं पर जोर दिया जाता है। विद्यालयों में समूह परामर्श मुख्य रूप से समस्याओं से बचने पर जोर देता है ताकि बाद में ये सौहार्दपूर्ण विकास में बाधा न खड़ी करें या विद्यार्थियों को अक्षम न बनाएं।

समूह परामर्श कुछ विशेष पूर्वधारणाओं पर आधारित है।

पहली पूर्वधारणा है कि व्यक्तियों में समूह के सदस्यों के बीच एक–दूसरे पर विश्वास करने और परामर्श करने की आवश्यक योग्यता और क्षमता होती है। उनमें समूह के अन्य सदस्यों के प्रति सरोकार होना चाहिए। इससे समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं और प्रत्येक सदस्य के लिए सहयोग और सुरक्षा का वातावरण विकसित होता है जिसमें वे मिल–जुलकर व्यक्तिगत समस्याओं का अनुभव करते हैं और उनके निवारण पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।

दूसरी पूर्वधारणा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक क्षमता होती है कि वह आत्म–परिवर्तन का उत्तरदायित्व ले सके।

टिप्पणी

तीसरी पूर्वधारणा है कि समूह सदस्य, समूह प्रक्रिया के उद्देश्यों और क्रियाविधियों से यह समझ सकते हैं कि मुख्य उद्देश्य सदस्यों में सुधार लाना है।

**समूहों की संरचना**

**(क) समूह का आकार एवं संघटन**

समूह परामर्श प्राप्त करने वाले समूह का आकार अपेक्षाकृत छोटा होना चाहिए। हालांकि किसी विशेष संख्या का सुझाव देना कठिन होगा, फिर भी लगभग दस से पंद्रह सदस्यों को ही किसी एक समूह में शामिल किया जा सकता है। बड़े समूहों को नियंत्रित करना कठिन होता है। लेकिन समूह बहुत छोटे भी नहीं होने चाहिए क्योंकि इससे संसाधन भी अति सीमित हो जाएंगे और भाग लेने के दबाव से तनाव भी बढ़ जाएगा। इसके अतिरिक्त छोटे समूह में एक या अधिक सदस्यों के अनुपस्थित होने से पूरा समूह निष्क्रिय हो जाता है।

परामर्श के लिए समूहों का संघटन समस्या, शिक्षा, बुद्धि, आयु, लिंग या ऐसे ही अन्य पहलुओं के आधार पर किया जा सकता है।

**(ख) सभा का समय और अवधि**

अधिकांशतः सप्ताह में एक या दो बार बैठक के आयोजन की अनुशंसा की गई है। सामुदायिक एजेंसी, कॉलेज या निजी कार्यालय में दो घंटे के साप्ताहिक सत्र के विकल्प की अनुशंसा की जाती है, परंतु स्कूल विद्यार्थियों के लिए सप्ताह में दो बार थोड़े–थोड़े समय के सत्र अधिक उपयुक्त होंगे क्योंकि छोटे बच्चे जल्दी थक जाते हैं या कहें कि उनकी अवधान विस्तृति छोटी होती है। स्कूलों में आमतौर पर 11 से 15 सप्ताह का समय उपबोधन के लिए निर्धारित किया जाता है। यह अधिक सुविधाजनक है और साथ ही साथ समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति में यह पर्याप्त समय को सुनिश्चित भी करता है।

## 1.7.1 समूह परामर्श के चरण

समूह परामर्श प्रक्रिया को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। ये चरण इस प्रकार हैं :

**(क) अन्वेषी चरण**

प्रारंभिक सत्रों में समूह सदस्य प्रायः एक–दूसरे से अपरिचित होते हैं। वे ऐसी स्थिति में शायद एक–दूसरे से बातचीत करना पसंद न करें और यदि करते भी हैं तो वे केवल हल्के–फुल्के सामान्य मुद्दों पर ही चर्चा करते हैं। वे प्रारंभ में शर्मीले और सहमे से नज़र आते हैं। वे अन्य सदस्यों की तुलना में केवल अपने आप पर ही ध्यान केंद्रित करना पसंद करते हैं। ऐसी अवस्था में उपबोधक अपनी भूमिका की व्याख्या के साथ–साथ समूह सदस्यों की भूमिकाओं का भी वर्णन करता है। परामर्श के मध्य सदस्यों को अपने विचारों और भावनाओं को खुलकर अभिव्यक्त करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। जब परामर्श ग्रहणकर्ता पाते हैं कि परामर्शदाता उनके सही और गलत विचारों को सकारात्मक ढंग से स्वीकार कर रहा है तो वे भी उसकी बातों को तत्परता से और यथोचित ढंग से स्वीकार करते हैं।

### (ख) संक्रमण चरण

जैसे–जैसे समूह प्रारंभिक अन्वेषण अवस्था से अगली अवस्था की ओर अग्रसर होता है, इस अवस्था तक आते–आते सभी सदस्यों में एक–दूसरे के प्रति विश्वास जागृत हो जाता है। लेकिन फिर भी यह भावना अभी पक्की नहीं बन पाई है और वे उत्सुक, उभयभवी और रक्षात्मक रूप से कार्य करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि ज्यों–ज्यों वे अधिक गहन रूप से अपने आपको खोजेंगे, उनके समक्ष कष्टकर संवेदनाएं और भावनाएं प्रकट होती चली जाएंगी। इस अवस्था में कुछ को भय रहता है कि यदि वे अपनी भावनाओं को खुलकर व्यक्त करेंगे तो बाकी सदस्य इन्हें अस्वीकृत कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य सोच सकते हैं कि ऐसी अभिव्यक्ति के दौरान उपबोधक या अन्य सदस्य उनका उपहास कर सकते हैं।

ये सभी व्यवहार कष्टकारी भावनाओं की खोज में अवरोध प्रदर्शित करते हैं अवरोध/प्रतिरोध ऐसा संकेत है जो बताता है कि सदस्य समस्याओं के निपटान की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

### (ग) कार्यकारी चरण

इस अवस्था में सदस्य एक–दूसरे के काफी निकट आ जाते हैं और दूसरों की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं। चूंकि इस अवस्था तक विश्वास बढ़ जाता है, अब वे भावनाओं और विचारों के व्यक्त करने हेतु अधिक जोखिम उठाने से भी नहीं कतराते। इसलिए वे एक–दूसरे को रचनात्मक प्रतिपुष्टि देते हैं। अब वे एक–दूसरे को अधिक सहयोग और सहायता प्रदान करना चाहते हैं। अब एक–दूसरे पर उनका विश्वास गहरा हो जाता है।

धीरे–धीरे समूह उत्पादक रूप धारण कर लेता है और महत्वपूर्ण समस्याओं के गूढ़ अध्ययन के प्रति वचनबद्ध हो जाता है और समूह में होने वाले अंतः परिवर्तनों पर पूरा ध्यान देना भी आरंभ कर देता है। इस अवस्था में अब वे उपबोधक पर कम निर्भर करते हैं और विशिष्ट व्यक्तिगत–लक्ष्यों और समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ध्यान केंद्रित करना शुरू कर देते हैं। अब समूह सदस्य एक–दूसरे से आसानी से तर्क–वितर्क कर सकते हैं और चुनौतियों को बदलाव लाने में रचनात्मक साधनों के रूप में स्वीकार करना पसंद करते हैं।

### (घ) समेकन और समाप्ति

समाप्ति का अर्थ केवल परामर्श बंद करना नहीं है। वास्तव में यह 'समूह परामर्श' प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण अवस्था है। समूह उपबोधन में समाप्ति की तारीख–समय पहले से ही तय करना एक सामान्य बात है। बेहतर होगा यदि अंतिम सत्र से पहले के तीन या चार सत्रों में समाप्ति सत्र के बारे में विचार–विमर्श करना आरंभ कर दिया जाए। इससे परामर्शदाता पर निर्भरता से मुक्ति से पहले मनोवैज्ञानिक या संवेगात्मक भावनाओं को नियंत्रित करने में पर्याप्त समय और बाहरी दुनिया में नए अनुभव अंतरित करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है और अधूरी समस्याओं को निर्धारित समय में पूरा किया जा सकता है।

### 1.7.2 विशेष परिस्थितियों में परामर्श

टिप्पणी

भारतीय समाज अनेकता में एकता के रूप में गठित है। इसमें विभिन्न संस्कृति, समूह, जाति, जनजाति, सामाजिक आर्थिक वर्ग, धर्म, भाषा, अल्पसंख्यक, लिंग, आयु, लैंगिक पूर्वाभिमुखीकरण, भौगोलिक स्थिति आदि के आधार पर अंतर हैं। यह वास्तविकता विद्यालय समुदाय में भी प्रतिबिंबित होती है। शिक्षक और छात्र एक–सी ही पृष्ठभूमि से आये हों यह आवश्यक नहीं होता है। विद्यार्थी समुदाय में भी आपस में अंतर होता है। इसलिए बहु–संस्कृति परामर्श विद्यालय के परामर्श प्रदान करने के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। एक बहु–संस्कृति परामर्श कार्यक्रम में परामर्शदाता को अतिरिक्त बहु–संस्कृति योग्यताएं प्राप्त करने और प्रदर्शित करने की आवश्यकता होती है। बहु–संस्कृति परामर्श में व्यक्ति की संस्कृति के विषय में जानने, उनकी समाजीकरण की प्रक्रियाओं को समझने की आवश्यकता होती है। एक सांस्कृतिक रूप से दक्ष परामर्शदाता में अपने साथ काम करने वालों की पृष्ठभूमि के अंतरों को समझने और उनका सम्मान करने की योग्यता होनी चाहिए।

#### (क) आपातकालीन परामर्श

जीवन में अचानक आने वाले परिवर्तन हमारी सामान्य रूप से काम करने की क्षमता को समाप्त कर देते हैं। हमें उस कठिन स्थिति का सामना करने और सामान्य स्थिति में वापिस आने के लिए ममद की आवश्यकता पड़ती है। एक आपातकालीन स्थिति व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार से आ सकती है। किसी प्रियजन की मृत्यु, अक्षम कर देने वाली चोट, बीमारी, शारीरिक अत्याचार, यौन उत्पीड़न, प्राकृतिक आपदा, युद्ध, युद्ध में संलग्नता, नागरिक संघर्ष/अव्यवस्था व अन्य आपातकालीन स्थितियां घटनाओं के कारण उत्पन्न हो सकती हैं। बच्चे भी अपने जीवन में इस प्रकार की घटनाओं का सामना करते समय संकट का अनुभव कर सकते हैं। ये घटनाएं गहन होती हैं तथा तनावपूर्ण होती हैं और व्यक्ति द्वारा इनका सामना करने की योग्यता को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। कई बार व्यक्ति इनका अकेले सामना कर पाने में कठिनता अनुभव करता है और इससे उसका दिन–प्रतिदिन का सामान्य जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। संकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए प्रदान की गई व्यावसायिक सहायता परामर्श प्रदान करने का एक अत्यंत विशेषज्ञता प्राप्त क्षेत्र है।

#### (ख) शोषण की स्थिति में परामर्श

ऐसे परामर्श में बालकों के दुरुपयोग में शारीरिक या मानसिक अत्याचार, भावात्मक उपेक्षा, यौन उत्पीड़न, वाणिज्यिक शोषण या कोई अन्य काम जो बालक के हित को नुकसान पहुंचाए अथवा उनके जीवन को संकट में डाले, सम्मिलित होता है। बालकों का दुरुपयोग करने वाले माता–पिता या कोई अन्य जो उनकी देखभाल करने वाला हो सकता है। यदि बच्चे ने शारीरिक/मानसिक अत्याचार या यौन उत्पीड़न का सामना किया है तो इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंच सकती है, उनमें आत्महीनता की भावना आ सकती है, उनमें व्यग्रता, हताशा, डर, आक्रमणशील व्यवहार या आत्महत्या की प्रवृत्ति भी आ सकती है। वे बच्चे जो स्वयं का दुरुपयोग किए जाने का अनुभव करते हैं वे अपने जीवन में एक संकटकालीन स्थिति से गुज़रते हैं और

उनको सहायता की आवश्यकता होती है। अध्यापक व स्कूल का परामर्शदाता बालक के साथ नज़दीक से पारस्परिक क्रिया करते हैं वे बहुत–सा समय एक साथ व्यतीत करते हैं। इसलिए अध्यापक परामर्श लेने वाले के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन को, अच्छी तरह से समझने की स्थिति में होते हैं।

टिप्पणी

### (ग) लंबी बीमारी की स्थिति में परामर्श

लंबे समय तक चलने वाली या गंभीर बीमारी बालक के जीवन में संकटकालीन स्थिति का कारण हो सकती है। बालक स्वयं या उसके परिवार का कोई सदस्य गंभीर बीमारी से ग्रसित हो सकता है। यदि कोई बालक या उसके परिवार का कोई सदस्य एचआईवी/एड्स से ग्रसित है तो वह बालक स्कूल व समुदाय में अलग–थलग कर दिया जाता है। उस पर आरोपित अलगाव उस बालक व परिवार के लिए एक मानसिक आघातपूर्ण अनुभव होता है। अध्यापक व परामर्शदाता को प्रभावित परिवार, अन्य विद्यार्थियों तथा आस–पास के समुदाय को परामर्श देकर जागरूकता लानी चाहिए कि यह रोग किस प्रकार एक से दूसरे को संचरित होता है, इसके लिए क्या–क्या उपचार उपलब्ध हैं। परामर्श देकर, उनकी सोच में परिवर्तन लाकर रोगी के साथ उपयुक्त व्यवहार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इस प्रकार दोहरा परामर्श प्रभावित लोगों के मानसिक तनाव को घटाने में मदद करता है।

### (घ) स्पर्धा से उपजी हताशा में परामर्श

आज भी प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में बच्चे आत्महत्या कर रहे हैं। ऐसे बहुत–से कारण हैं जिनकी वजह से लोग आत्महत्या कर सकते हैं। बोर्ड की परीक्षाओं के समय या बोर्ड परीक्षाओं के परिणाम की घोषणा, परीक्षा की तैयारी के तनाव, परीक्षा में पास न होने, नम्बर कम आने, मनचाहे क्षेत्र में दाखिला न मिल पाने आदि कारण हो सकते हैं। आत्महत्या हताशा (depression), किसी प्रियजन की मृत्यु, किसी संबंध में असफलता, बाल शोषण, मादक द्रव्य व्यसन आदि के कारण भी हो सकती है। यदि संभावित पीड़ित व्यक्ति के आस–पास के व्यक्तियों में संकट के लक्षणों को पहचानने की योग्यता हो तो आत्महत्या को रोका जा सकता है। वह व्यक्ति जो आत्महत्या के बारे में सोचता है वह बहुत अधिक व्यग्रता, हताशा, थकान आदि प्रदर्शित करता है। इसलिए अध्यापक और परामर्शदाता को उन बच्चों को परामर्श देना चाहिए जिनको खतरा हो।

## समूह परामर्श की सीमाएं

समूह परामर्श अन्य विधियों की तुलना में कम खर्चीला है क्योंकि समूह उपबोधन के अंतर्गत एक साथ व्यक्तियों की बड़ी संख्या को उपबोधक द्वारा लाभान्वित किया जा सकता है और इससे समय और पैसे की बचत होती है। इससे व्यक्तियों को अपनी अभिवृत्तियों, व्यवहार का समाजीकरण तथा निर्णयन करने में सहायता मिलती है।

कुछ सदस्य जो व्यक्तिगत परामर्श से लाभान्वित नहीं होते, वे समूह परामर्श से समस्या का निवारण करने में सफल हो जाते हैं। समूह परामर्श स्थिति में उत्तेजना, अकेलेपन की भावना कम हो जाती है और सदस्य खुलकर बातचीत करने में सक्षम हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त समूह परामर्श से उपबोधक को भी समूह निर्माण की प्रारंभिक अवस्था में व्यक्तियों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है।

किंतु समूह परामर्श सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ व्यक्ति समूह में भय महसूस करते हैं और कुछ व्यक्तियों में सहनशक्ति का स्तर अत्यंत निम्न होता है और वे समूह की मांगों के अनुरूप व्यवहार बदलने में सक्षम नहीं होते। इसी प्रकार से समूह में व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समूह परामर्श के दौरान स्थिति के ऊपर उपबोधक का नियंत्रण कम होता है और कभी–कभी सदस्यों से अच्छे संबंध स्थापित करने में परामर्शदाता पिछड़ जाता है। इन स्थितियों के बावजूद समूह परामर्श का महत्व अक्षुण्ण है क्योंकि समूह में आए परामर्श लेने वाले अधिकांश व्यक्ति लाभान्वित होते हैं।

**अपनी प्रगति जांचिए**

18. किस स्थिति में परामर्श सेवा की आवश्यकता ली जाती है?
    (क) आपातकालीन स्थिति (ख) शोषण
    (ग) लंबी बीमारी एवं हताशा (घ) उपर्युक्त सभी
19. समूह परामर्श के लाभ में शामिल है–
    (क) कम खर्च (ख) उत्तेजना की भावना कम होना
    (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

## 1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (घ)
3. (घ)
4. (घ)
5. (घ)
6. (ग)
7. (घ)
8. (घ)
9. (ग)
10. (घ)
11. (घ)
12. (घ)
13. (घ)
14. (ग)
15. (?)

टिप्पणी

16. (घ)
17. (घ)
18. (घ)
19. (ग)

## 1.9 सारांश

मार्गदर्शन व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों और अवस्थाओं के लिए बहुत जरूरी है। आज के इस आधुनिक समय में मानव जीवन में विभिन्न अवस्थाओं तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रायः सभी को अपने सामने मौजूद विकल्पों में से कुछेक विकल्पों के चयन की जरूरत पड़ती है। इन विकल्पों के चयन के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे जीवन में संतोष, तालमेल, अच्छी सेहत तथा प्रगति में सहायक हों। ऐसे समय में व्यक्ति को अन्य लोगों से विचार विमर्श करने की जरूरत महसूस होती है। ऐसी जरूरतें सभी युगों में विद्यमान रही हैं किंतु आधुनिक समय में जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण ऐसे बाहरी सहयोग की आवश्यकता अब और भी अधिक अनुभव की जा रही है जो कि बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करने एवं सही व सटीक निर्णय करने में व्यक्ति को समर्थ बनाए। इस प्रक्रिया के लिए मार्गदर्शन सहायक सिद्ध होता है।

पाश्चात्य समय में, जब समाज बहुत कम जटिल था उस समय यदि किसी समुदाय या परिवार में किसी सदस्य को किसी प्रकार की समस्या होती थी तो परिवार का मुखिया अथवा समुदाय का नेता उसका मार्गदर्शन कर देता था। लेकिन इस प्रकार का यह मार्ग दर्शन समस्या की गहरी और पूरी जानकारी के बिना तात्कालिक परामर्श होता था यद्यपि यह किसी भी प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण के बिना ही होता था। इस मार्गदर्शन का आधार अनुभव होता था। इस प्रकार का मार्गदर्शन देना उन अध्यापकों और अभिभावकों का अधिकार क्षेत्र होता था, किंतु यह सहायता मदद के बजाय भ्रामक होती थी, लेकिन अब समाज में विभिन्न परिवर्तनों के कारण ऐसा संभव भी नहीं है, इसलिए व्यक्ति के मार्गदर्शन के लिए व्यावसायिक रूप से या अन्य किसी रूप से व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

मार्गदर्शन जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए आवश्यक है, जैसे– शिक्षा, व्यवसाय, पारिवारिक एवं वैवाहिक समायोजन तथा स्वास्थ्य आदि जिसके बारे में पहले भी जान चुके हैं लेकिन इसका जीवन में कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। यह तो मात्र एक प्रक्रम है जिसका उद्देश्य ही सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति के वांछित विकास में सहायता पहुंचाना है। यह प्रक्रिया निरंतर ही गतिशील रहती है। मार्गदर्शन की प्रकृति ही है कि वो व्यक्ति के वांछित विकास में उसकी सहायता करे। इसकी यह प्रक्रिया मनुष्य के स्वभाविक विकास में मदद करती है। मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति को इस प्रकार की सहायता पहुंचाई जाती है कि इससे व्यक्ति स्वयं को समझे साथ ही अपनी क्षमताओं, रुचियों तथा अन्य योग्यताओं का अधिकतम संभावित उपयोग अपने विकास में कर सके और अपने समय के परिवेश में आनी वाली विभिन्न

परिस्थितियों में अपना समायोजन कर सके। मार्गदर्शन के सहयोग से व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपनी समस्याओं का समाधान खोजते हुए विभिन्न परिस्थितियों में बुद्धिमतापूर्वक निर्णय ले सकता है तथा अपनी अधिकतम संभावित क्षमता के अनुसार समाज को अपना योगदान दे सकता है।

मार्गदर्शन का जीवन में कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। मार्गदर्शन सेवाएं पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग मानी जाती हैं। आज से कुछ समय पूर्व मार्गदर्शन सेवाओं को विद्यालय पद्धति में विस्तार कार्यकलाप माना जाता था और इसे विद्यालयों के लिए बिल्कुल अनावश्यक एवं अनुपयुक्त माना जाता था। लेकिन शिक्षकों और जनप्रतिनिधियों द्वारा विस्तृत और उपयुक्त मूल्यांकनों द्वारा मार्गदर्शन सेवाओं को स्वीकार कर लिया गया है। इसे शैक्षिक प्रक्रिया के लिए प्रमुख एवं महत्वपूर्ण माना गया है। कहा जा सकता है कि मार्गदर्शन सेवाएं पूरे शैक्षिक प्रयास का मुख्य और अभिन्न अंग हैं किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये सेवाएं अध्यापन अथवा प्रशासन के समरूप हैं अथवा इनका स्थान ले सकती हैं या इनकी प्रतिस्थानी हैं।

मार्गदर्शन व्यक्तिगत रूप एवं समूह रूप दोनों ही प्रकार से दिया जा सकता है। इस मार्गदर्शन के अन्तर्गत वे क्रियाएं ही सम्मिलित हैं जो समूह परिस्थितियों में की जाती है। समूह मार्गदर्शन का उद्देश्य अपने सदस्यों को वांछित अनुभव प्राप्त करने में सहायता करना है ताकि समूह के सभी व्यक्तियों एवं छात्रों को शैक्षिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के निर्णय विवेकपूर्ण ढंग से लेने में मदद मिल सके। इस प्रकार की क्रियाओं से धन एवं समय दोनों की ही बचत होती है और एक दूसरे के प्रति पारस्परिक सहयोग की भावना भी उत्पन्न होती है जो समाज के लिए उपयोगी है।

समूह मार्गदर्शन से ये जागरूकता विकसित होती है कि जो भी समस्या है वह किसी व्यक्ति विशेष के लिए नई नहीं है। समूह के अन्य सदस्यों से भी वह समान रूप से संबंधित है जिससे वह समूह में समस्या की चर्चा तनावमुक्त होकर करता है और संवेगात्मक तनावों से मुक्त हो जाता है। समूह में चर्चा करने पर जो सुझाव दिए जाते हैं वे सभी के लिए ग्राह्य एवं मान्य होते हैं।

आज के इस आधुनिक युग में मार्गदर्शन प्रक्रिया के द्वारा संगठित रूप में मार्गदर्शन प्रदान किया जा रहा है, परन्तु संगठित रूप से मार्गदर्शन प्राप्त करने की प्रक्रिया का आरम्भ व्यावसायिक मार्गदर्शन के रूप में ही हुआ था। परन्तु कुछ समय पश्चात् से ही माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत मार्गदर्शन का आरम्भ हुआ। मार्गदर्शन प्रक्रिया के तकनीकी एवं संगठनात्मक प्रणालियों के क्षेत्र में विकास के फलस्वरूप ही प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में भी मार्गदर्शन कार्यक्रमों को अपनाया गया है। आज के इस विकसित समाज में सभी प्रकार के स्कूलों में सभी आयु वर्गों के लिए मार्गदर्शन की सेवाएं प्रदान की जा रही है क्योंकि हर स्तर के विद्यार्थियों की दशाएं एक दूसरे से पृथक होती हैं। इसलिए प्राथमिक, माध्यमिक एवं कॉलेज के स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं में मार्गदर्शन कार्यक्रम के प्रकार्य, मार्गदर्शन कार्य तथा संगठनात्मक स्वरूप आदि में बहुत अन्तर होता है।

**टिप्पणी**

परामर्श शब्द दो व्यक्तियों से संबंध रखता है परामर्शदाता तथा परामर्शप्रार्थी या परामर्श चाहने वाला। परामर्श चाहने वाले की कुछ समय समस्याएं होती है जिनको वह अकेला बिना किसी राय या सुझाव के पूरा नहीं कर सकता है। इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए उसे मनोवैज्ञानिक राय की आवश्यकता होती है और यही मनोवैज्ञानिक राय या सुझाव ही परामर्श कहलाता है। जो कि परामर्शदाता द्वारा दिये जाते हैं। इससे अन्य शब्दों में कहें तो परामर्शदाता परामर्श चाहने वाले व्यक्ति की समस्या या कठिनाई को समझने का प्रयास करता है तथा उससे विचारों का आदान प्रदान करके उसकी समस्याओं का समाधान करने में सहायता प्रदान है और इस प्रकार की सहायता ही परामर्श कहलाती है।

बाल्यकाल से वयस्क अवस्था तक विकास की प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण एवं सुनिश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक माना जाता है। सभी व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता, सक्षमता, ज्ञान, आत्मबोध परिवेशीय सूझ–बूझ एवं जानकारी तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से प्रभावशीलता का विकास भी आवश्यक समझा जाता है। इस विकास की पूरी प्रक्रिया की अवधि में अनेक संक्रमण काल आते हैं। अनेक प्रकार की दुविधाएं प्रकट होती है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने पड़ते हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करना पड़ता है तथा विकास के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं, कठिनाइयों और समस्याओं को दूर भी करना पड़ता है इस प्रक्रिया को अधिक सहज और सफल बनाने के लिए मार्गदर्शन परामर्श की आवश्यकता पड़ती है।

परामर्श का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है इसलिए परामर्शदाता के सहयोग की आवश्यकता घर, विद्यालय, व्यवसाय, कार्यस्थल, चिकित्सालय, आवासीय संरक्षण केंद्र, सामुदायिक केंद्र और स्वयं सेवी संस्थानों सब जगहों पर पड़ती है। इसलिए इन समस्त केंद्रों पर सुप्रशिक्षित या अल्प–प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की पूर्णकालिक एवं अल्पकालिक सेवाएं ली जाती हैं। इस प्रकार से परामर्शदाता के रूप में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों के लिए रोजगार के अवसर ऐसे सभी स्थलों पर उपलब्ध हो सकते हैं। हमारे जीवन में सभी आयु अवस्थाओं में परामर्श की आवश्यकता पड़ती है इन्हीं आवश्यकताओं के आधार पर परामर्शदाता के क्षेत्र निर्धारित किये गये हैं।

परामर्श केवल सलाह मात्र नहीं इसमें परामर्शदाता परामर्श देते समय व्यक्ति के लिए खुद ही किसी प्रकार का निर्णय नहीं लेता है। वरन व्यक्ति को ही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है और उसे उस कार्य के लिए सलाह देता है और तब उसकी परामर्श की प्रक्रिया उसी समय समाप्त नहीं हो जाती है, और इस तरह से परामर्श प्राप्त करने वाले को परामर्शदाता किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायता दे देता है। व्यक्ति की इस प्रकार मदद हो जाती है और वह समस्या से उबर जाता है। इस प्रकार से परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी को सही मार्ग निर्देशित करता है। उस पर चलना परामर्शप्रार्थी का कार्य होता है जो वही करता है।

निर्देशन व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों और अवस्थाओं के लिए आवश्यक है, किन्तु मुख्यतः निर्देशन को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में माना गया है। इसलिए विद्यालयों में निर्देशन सेवा अति आवश्यक है। निर्देशन को विद्यालय के सामान्य जीवन

टिप्पणी

से पृथक नहीं किया जा सकता है। यह कोई वस्तु या सामान नहीं है जिसे विद्यालय के किसी कक्ष या कोने में खोजा जा सके। निर्देशन एक ऐसा कार्यक्रम है जो विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों का आवश्यक अंग है। निर्देशन के कार्यक्रमों में शिक्षक की कुछ–न–कुछ सुनिश्चित जिम्मेदारी होती है। इसके साथ–साथ विद्यालय के अन्य कर्मियों एवं व्यवस्थापकों की भी एक सुनिश्चित जिम्मेदारी होती है। विद्यालय के बाहर स्थित माता–पिता एवं सामुदायिक संगठनों के बिना भी निर्देशन के लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। इस तरह से निर्देशन एक ऐसा प्रकार्य अथवा कार्यक्रम है जिसमें सभी की भागीदारी होती है इसलिए यह एक निश्चित नीति (Policy) के अनुरूप संगठित (Organised) और प्रशासित (Administered) होना चाहिए।

छात्रों को निर्देशन की बहुत आवश्यकता होती है और सही निर्देशन पाकर व्यक्ति भविष्य में अच्छा इनसान बन जाता है इसलिए अध्यापक का मूल उद्देश्य तो शिक्षा प्रदान करना ही है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य छात्रों का अधिक से अधिक विकास करना है। आज के इस विकसित समाज में विद्यालयों को सभी आयु वर्गों हेतु निर्देशन सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार बच्चों की उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय परिवेश और वांछित बाहरी तत्वों के बीच उपयुक्त समन्वय की आवश्यकता है और इस समन्वय हेतु संगठन तथा प्रशासन की एक उपयुक्त रूपरेखा होनी चाहिए। ऑर्थर जोन्स का मत है कि बच्चे के निर्देशन संबंधी कार्यक्रमों में सदैव निर्देशन प्राप्त करने वाले बच्चे को ही केन्द्र में रखा जाना चाहिए

सेवार्थी के मनोवैज्ञानिक पक्ष का पर्याप्त बोध करने की दृष्टि से सूचनाएं प्राप्त करने की मानकीकृत तकनीकों का विशेष महत्व है। इन मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा सेवार्थी की बुद्धि, रुचि, अभिरुचि एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

गैर–मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत– आकस्मिक निरीक्षण आलेख, आत्मकथा, प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन, समाजमितीय, निरीक्षण, निर्धारण मापनी तथा संचयी आलेख पत्र का तथा मानकीकृत तकनीकों के अंतर्गत बुद्धि–परीक्षण, अभिरुचि मापनी, व्यक्तित्व परीक्षण तथा प्रवीणता परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।

निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत सूचनाओं का विशेष महत्व होता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक एवं वैयक्तिक पक्षों से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त करके ही यह ज्ञात हो पाता है कि सेवार्थी की क्या स्थिति है तथा उसे किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। इस जानकारी के अभाव में निर्देशन व तथ्य आकलन की प्रक्रिया ही नहीं हो सकती है। सूचना निर्देशन की प्रक्रिया से संबंधित प्रमुख मूल सामग्री है और ये सूचनाएं अधिक वस्तुनिष्ठ ढंग से प्राप्त की जानी चाहिए। सेवार्थी के संबंध में प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं के प्रति किसी भी प्रकार का व्यक्तिनिष्ठ अथवा उपेक्षित दृष्टिकोण उसका समस्त अध्ययन व्यर्थ कर सकता है। सूचना प्राप्त करने से संबंधित अनेक विधियों का निर्धारण अप्रमाणीकृत तथा प्रमाणीकृत विधियों के रूप में किया जा सकता है तथा सूचना प्राप्त करने की इन विधियों का ज्ञान निर्देशन की प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है।

व्यावसायिक निर्देशन एक अधिक व्यापक, जटिल एवं व्यावहारिक प्रक्रिया है क्योंकि इस प्रकार के निर्देशन से जीवन वृत्त के लिए सहायता प्रदान की जाती है। इसमें शैक्षिक व्यावसायिक, व्यक्तिगत व सामाजिक निर्देशनों की भी सहायता ली जाती है।

जीविका (व्यवसाय) जीवन की मेरुदंड है। यथार्थ तो यह है कि उचित व्यवसाय यानी रोजगार में स्थान प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति को न केवल जीवनयापन का साधन ही प्राप्त होता है, अपितु उसे आत्म–संतुष्टि भी प्राप्त होती है व उसमें आत्मबल का संचार भी होता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी बेरोजगार रहता है तो वह कुंठा व हीन भावना का शिकार हो जाता है तथा वह स्वयं को परिवार व समाज पर बोझ मानता है। उचित जीविकोपार्जन द्वारा व्यक्ति परिवार, कुटुम्ब एवं समाज में आदर व सम्मान का पात्र होता है तथा उसके भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है।

यदि व्यक्ति को रोजगार से संबंधित सही, पूर्ण, व्यवस्थित जानकारी प्रारंभ से प्रदान की जाए तो वह अपने लिए अपनी प्रतिभा एवं योग्यता के अनुसार नौकरी का चयन कर सकता है। ऐसा करने पर वह जो भी नौकरी चुनेगा उससे उसे संतोष प्राप्त होगा और वह उसमें अच्छे परिणाम या उपलब्धियां भी हासिल करेगा क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए धन अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है परंतु धन से अधिक जीवन में महत्वपूर्ण होता है सच्चा या वास्तविक सुख। यह सच्चा या वास्तविक सुख व्यक्ति अपनी पसंद और योग्यता के अनुसार मिले रोजगार से ही प्राप्त कर सकता है।

मार्गदर्शन व्यक्तिगत के साथ ही सामूहिक रूप में भी प्रदान किया जा सकता है। इसमें निर्देशन की वे गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, जो एक समूह की स्थिति में इसके सदस्यों को बुद्धिमत्तापूर्ण शैक्षिक, व्यावसायिक और सामाजिक निर्णयों के लिए वांछित हैं, यहां तक कि आवश्यक अनुभवों हेतु सहायता प्रदान करने में संचालित किए जाते हैं। ऐसी समूह गतिविधियां समय एवं धन की बचत करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सामान्य समस्याओं की उपयोगी चर्चा विद्यार्थी समूहों के मध्य की जा सकती हैं। यह व्यक्तिगत मार्गदर्शन हेतु मार्ग भी निर्मित करता है।

यद्यपि समूह क्रियाकलाप उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं परंतु इन्हें व्यक्तिगत परामर्श के विकल्प के रूप में नहीं लिया जा सकता है। समूह क्रियाकलाप, विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम के कई उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, परंतु सभी की नहीं। यह विद्यार्थियों को उनकी एक समान समस्याओं में सहायता प्रदान करते हैं। परंतु विभिन्न व्यक्तियों में अपनी कठिनाइयों पर कार्य करने के लिए आवश्यक सहायता की मात्रा में अंतर होता है। इसके अतिरिक्त समूह में विद्यार्थी अपनी निजी समस्याओं को सामने रखने में संकोच महसूस करते हैं। अतः इन मामलों में समूह निर्देशन सहायक नहीं हो सकता है। समूह गतिविधियों को कुछ विद्यार्थी गंभीरतापूर्वक नहीं लेते।

समूह परामर्श का महत्व वृहद स्तर पर है क्योंकि यह कम खर्चीला है इसमें कम धन, संसाधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों से एक ही समय में व्यक्तियों के पूरे समूह को

**टिप्पणी**

परामर्श दिया जा सकता है। समूह में बैठने से परामर्श ग्रहणकर्ता की निजी पहचान छिप जाती है और वह इसी वजह से अधिक स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया करता है। समाज में कुछ विशेष वर्ग जैसे नशा करने वाले, उत्पीड़ित वर्ग या ऐसे कुछ अन्य वर्ग, समूह परामर्श अथवा उपबोधन से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

समूह परामर्श में व्यक्ति अपनी समस्याओं की मिल–जुलकर खोजबीन करते हैं और उनका विश्लेषण भी करते हैं जिससे समस्याओं को वे बेहतर तरीके से समझ सकें, समस्याओं का सामना करना सीख सकें और उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर सकें और अंतिम निर्णय भी ले सकें।

समूह परामर्श या उपबोधन में व्यक्तिगत परामर्श के तीनों आयामों अर्थात् उपचारात्मक, निवारक और विकासात्मक का समावेश होता है। विद्यालयों में सामान्य तौर पर निवारक और विकासात्मक पहलुओं पर जोर दिया जाता है। विद्यालयों में समूह परामर्श मुख्य रूप से समस्याओं से बचने पर जोर देता है ताकि बाद में ये सौहार्दपूर्ण विकास में बाधा न खड़ी करें या विद्यार्थियों को अक्षम न बनाएं।

समूह परामर्श सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ व्यक्ति समूह में भय महसूस करते हैं और कुछ व्यक्तियों में सहनशक्ति का स्तर अत्यंत निम्न होता है और वे समूह की मांगों के अनुरूप व्यवहार बदलने में सक्षम नहीं होते। इसी प्रकार से समूह में व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समूह परामर्श के दौरान स्थिति के ऊपर उपबोधक का नियंत्रण कम होता है और कभी–कभी सदस्यों से अच्छे संबंध स्थापित करने में परामर्शदाता पिछड़ जाता है। इन स्थितियों के बावजूद समूह परामर्श का महत्व अक्षुण्ण है क्योंकि समूह में आए परामर्श लेने वाले अधिकांश व्यक्ति लाभान्वित होते हैं।

## 1.10 मुख्य शब्दावली

- **समेकन** – संयुक्त करना, एकीकरण
- **परामर्श** – उपबोधन, सलाह

## 1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. निर्देशन और परामर्श को परिभाषित कीजिए।
2. मार्गदर्शन और परामर्श का सामान्य अर्थ बताइए।
3. विद्यालयों में निर्देशन की आवश्यकता के कुछ प्रमुख कारण बताइए।
4. व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम के लाभ बताइए।
5. निर्देशन और परामर्श की कुछ प्रमुख तकनीकों के नाम बताइए।
6. निर्देशन और परामर्श में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रियाओं के संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

7. व्यावसायिक जानकारी के महत्व पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
8. समूह निर्देशन और समूह परामर्श के लिए आदर्श परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

**दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न**

1. निर्देशन एवं परामर्श का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।
2. समूह मार्गदर्शन और व्यक्तिगत मार्गदर्शन के सभी पक्षों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. निर्देशन और परामर्श से संबंधित तकनीक और प्रक्रियाओं को विस्तार से समझाइए।
4. व्यावसायिक सूचना तथा समूह निर्देशन और परामर्श का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।

## 1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. प्रो. के.पी. पांडेय (2019), शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, (उ.प्र.)
2. प्रो. के.पी. पांडेय (2018) शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी (उ.प्र.)
3. प्रो. अरुण कुमार सिंह, (2017) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी (उ.प्र.)
4. प्रो. एस.पी. गुप्ता, अनुसंधान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (उ.प्र.)
5. डॉ. एस.सी. ओबेराय, (2019) शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन और परामर्श, आर. लाल पेपरबैक्स
6. डॉ. एस.सी. ओबेराय (2019), निर्देशक एवं परामर्श, बुकमैन पब्लिसर्स
7. डॉ. हंसराज पाल, (2009) मापन आकलन एवं मूल्यांकन, शिप्रा पब्लिकेशन
8. Bengalee, M.D. (1999). Guidance and Counselling: A trend report. In Buch, M.B. (ed.), Fourth survey of research in education, 1983-1988 (vol.I), New Delhi: NCERT
9. Bhatnagar, Asha (1997) a trend report. In fifth survey,1988-1992 (vol. I)
10. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Conselling, Rex Printing company phillipines.
11. Nayak, A.K. (1997). Guidance and Counselling, Delhi: APH Publishing.
12. Narayan. Rao, S. (1991). Counselling and Guidance, New Delhi: Tata Mcgraw Hill.

टिप्पणी

13. Naik, P.S. (2013). Conselling Skills for Educationsists Soujanya Books.
14. Pal. O.B. (2011). Educational and Vocational Guidance and Counselling, Soujanya Books.
15. Rao, V.K. and Reddy, R.S. (2003). Academic Environment: Advice, Cousel and Activities, Soujanya Books.
16. Shah, A. (2008). Basics in Guidance and Couselling, Global vision Publishing House.
17. Sharma, V.K. (2005). Education and Training of Educational and Vocational Guidance, Soujanya Books.
18. Bhatnagar, Asha and Gupta, Nirmala (1999). Guidance and Counselling, volume II: A Practical approach, New Delhi: Vikas Publishing House.

# इकाई 2 अभिवृत्ति विकास और छात्रों का मार्गदर्शन



## संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अभिवृत्ति के विकास हेतु कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण
2.3 अभिवृत्ति प्रारूप
 2.3.1 अभिवृत्ति प्रारूप
 2.3.2 अभिवृत्ति प्रारूप के चरण
 2.3.3 अभिवृत्ति प्रारूप के प्रकार
 2.3.4 अभिवृत्ति योजना में शिक्षक एवं माता–पिता की भूमिका
2.4 अभिवृत्ति विकास
 2.4.1 अभिवृत्ति विकास एवं मानवीय आवश्यकताएं
 2.4.2 अभिवृत्ति विकास की अवधारणा
 2.4.3 विभिन्न विद्वानों के मत में व्यक्तित्व विकास एवं अभिवृत्ति विकल्प
 2.4.4 प्रमुख और माध्यमिक मान्यताओं के बीच एक एकीकरण के रूप में व्यावसायिक विकल्प
 2.4.5 अभिवृत्ति विकास का सामाजिक शिक्षण सिद्धांत
2.5 विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों का मार्गदर्शन
 2.5.1 असामान्य बालकों की समस्याओं के समाधान संबंधी प्रावधान
 2.5.2 राज्य सरकारों द्वारा मुहैया करवाए जाने वाले लाभ और योजनाएं
 2.5.3 दिव्यांग कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रमुख योजनाएं एवं दिव्यांग जन अधिनियम 1995
 2.5.4 प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालक
2.6 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं : सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं
 2.6.1 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं
 2.6.2 सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं, वंचित समूहों जैसे एससी, एसटी और लड़कियों की सामाजिक–भावनात्मक समस्याएं
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

## 2.0 परिचय

बहुत से लोग जैसी भी नौकरी मिल जाए उसे कर लेते हैं और फिर जीवनभर असंतुष्ट रहते हैं जबकि अगर वे सही समय पर सही मार्गदर्शन और परामर्श लेकर उसके अनुसार एक योजनाबढ़ तरीके से प्रयास करते हैं तो एक लाभदायक और संतोषप्रद नौकरी/अभिवृत्ति भी पा सकते थे जिससे उनके अभिवृत्ति विकास का ग्राफ कुछ और हो सकता था। लेकिन अधिकतर लोग स्कूल जाते हैं क्योंकि उन्हें एक नौकरी मिल सकती है क्योंकि उन्हें इसकी जरूरत होती है और उन्हें लगता है कि वे जो भी पा सकते थे वे वह पा चुके हैं और यही सबसे अच्छा विकल्प है।

लेकिन एक नौकरी अभिवृत्ति नहीं होती है अभिवृत्ति तो रिटायरमेंट तक चलने वाला लाभदायक और संतोषप्रद कार्य (नौकरी) होता है जो अलग–अलग कार्यों (नौकरियों) की एक श्रृंखला भी हो सकता है। कोई एक नौकरी या कई काम करते हुए 25 साल बिता सकता है लेकिन फिर भी अपने लिए अभिवृत्ति नहीं बना पाता है। अभिवृत्ति विकास तो भविष्य की योजना को आज बनाने और नौकरी को अभिवृत्ति में बदलने का एक साधन है जिससे रिटायरमेंट पर व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति (कार्य–नौकरी) से अर्थ लाभ के आलावा संतोष का भी अनुभव कर पाता है।

अभिवृत्ति विकास का मतलब है अपनी अभिवृत्ति का प्रारम्भ से ही प्रबंधन करना। अभिवृत्ति विकास व्यक्तिगत विकास, आत्म–सुधार या आत्म–विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसमें नए कौशल प्राप्त करना, प्रशिक्षण प्राप्त करना और अपनी अभिवृत्ति में आगे बढ़ने में मदद करने के लिए लक्ष्य निर्धारित करना भी शामिल है।

सबसे महत्वपूर्ण बात, अभिवृत्ति और व्यक्तिगत विकास एक सतत, आजीवन प्रक्रिया है जो सही तरीके से लागू होने पर आपको अपना वांछित परिणाम प्राप्त करने में सक्षम करेगी जो कि होगा– एक सफल अभिवृत्ति।

अभिवृत्ति की योजना जल्द शुरू करनी होती है, आमतौर पर जब हम स्कूल या कॉलेज छोड़ने वाले होते हैं तब तक तो हमारे सही या गलत अभिवृत्ति का मार्ग निश्चित हो चुका होता है। इसमें कोई गलती न हो और हम सही अभिवृत्ति विकल्पों को जान सकें और फिर सही अभिवृत्ति का चयन कर सकें इस हेतु सहायता प्राप्त करने के लिए हमें एक विशेषज्ञ से मार्गदर्शन और परामर्श की आवश्यकता होती है। जिससे उम्मीद बनती है कि हम एक सही अभिवृत्ति की राह पर आगे बढ़ सकें।

जो आप पाना चाहते हैं, जो हासिल करना चाहते हैं, उसकी मैपिंग करके अपने अभिवृत्ति विकास की योजना बनाकर उस पर अमल करना होता है और फिर आप अपनी नौकरी से वह सब पा सकते हैं जो आप उम्मीद करते हैं।

सक्षम छात्रों के अलावा विशिष्ट, कमजोर वंचित छात्रों को भी मार्गदर्शन और परामर्श के साथ–साथ सरकार तथा अन्य विभागों द्वारा विशेष सहायता की आवश्यकता होती है और ऐसे छात्रों की सहायता हेतु विद्यालय, कॉलेज, स्वयंसेवी संस्थाएं, उद्योग और व्यापार, सरकार आदि सभी अपने–अपने तरीकों से प्रयास करते हैं जिससे उनका जीवन भी आसान और समर्थ हो सके।

इस इकाई में हम अभिवृत्ति विकास और छात्रों के मार्गदर्शन के विभिन्न पक्षों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अभिवृत्ति के विकास में कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण की भूमिका को समझ पाएंगे;

- अभिवृत्ति प्रारूप और अभिवृत्ति विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर पाएंगे;
- विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों, उनकी सामाजिक–भावनात्मक समस्याओं और वंचित छात्रों की समस्याओं के हर पक्ष को समझ पाएंगे।



## 2.2 अभिवृत्ति के विकास हेतु कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण

उपर्युक्त विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है।

जीविकोपार्जन की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए किसी न किसी व्यवसाय में संलग्न होना अति आवश्यक होता है। इन समस्त कार्यों (व्यवसायों) के विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता का विशेष महत्व होता है। व्यवसाय से संबंधित नवीन संभावनाओं, वांछित कुशलताओं, व्यवसायों की परिवर्तित परिस्थितियों तथा समस्याओं की जानकारी विश्लेषणात्मक अध्ययन के द्वारा संभव हो सकती है। इस प्रकार किसी कार्य (व्यवसाय) से संबंधित विशिष्ट पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ही व्यावसायिक विश्लेषण के रूप में जाना जाता है।

कार्य विश्लेषण के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि हम किसी कार्य विश्लेषण को पूर्ण अथवा अंतिम विश्लेषण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। कोई भी कार्य विश्लेषण एक सुनिश्चित परिस्थिति से ही संबंधित होता है और उस परिस्थिति में ही उसकी सार्थकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त इसके विश्लेषण की पद्धति में भी परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन होते रहते हैं। कार्य क्षेत्र में होने वाले सतत परिवर्तन, इस विश्लेषण को लोचनीय बनाने तथा उसमें यथानुरूप परिवर्तन करने पर बल देते हैं।

### कार्य विश्लेषण

व्यवसायों के अध्ययन के अंतर्गत, व्यावसायिक दशाओं एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं की जानकारी अपेक्षित होती है। इस जानकारी के आधार पर ही यह ज्ञात किया जाता है कि किस विशिष्ट व्यवसाय के लिए किस प्रकार की योग्यताएं एवं कौशल अपेक्षित हैं। व्यवसायों से संबंधित आवश्यकताओं एवं अपेक्षित योग्यताओं आदि का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ ढंग से किया जा सकता है।

विभिन्न व्यवसायों के लिए कुशल व्यक्तियों के चयन हेतु प्रमाणिक प्रवणता परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। इनके नियोजन के सोपान में रोजगार विश्लेषण किया जाता है। यह प्रवणता परीक्षण निर्माण एवं व्यवसाय निर्देशन प्रक्रिया हेतु एक वैज्ञानिक प्रविधि है। इसके दो मुख्य पक्ष हैं–

- रोजगार की कार्य–प्रणाली की आवश्यकताओं तथा दशाओं का विश्लेषण करना।
- रोजगार हेतु कार्यकर्ताओं में अपेक्षिक योग्यताएं, क्षमताओं एवं कौशलों का विश्लेषण करना।

टिप्पणी

रोजगार विश्लेषण की अनेक परिभाषाएं हैं, उनमें से कुछ का यहां वर्णन किया गया है। वे परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

ब्लूम के अनुसार, "रोजगार संबंधी विभिन्न पक्षों का शुद्ध रूप में अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत कर्तव्यों, भूमिकाओं तथा कार्य करने की परिस्थिति का ही विश्लेषण नहीं किया जाता है अपितु कर्मचारी की अपेक्षित योग्यताओं एवं क्षमताओं का भी विश्लेषण करते हैं।" (According to Bloom, "A job analysis is an accurate study of the various components of a job. It is not only concerned with an analysis of the duties and conditions of the work but also with the individual qualifications of the worker.")

जे.डी. हेकेट के अनुसार, "रोजगार विश्लेषण द्वारा विशिष्ट रोजगार संबंधी आवश्यक तत्वों का निर्धारण किया जाता है और उसके सफल संपादन के लिए कर्मचारी की योग्यताओं एवं क्षमताओं का विशेष महत्व होता है।" (According to JD. Hackett, "Job analysis involves a determination of the essential elements in the job and the qualification of a worker should have for its successful performance.")

रेड एवं मेटकॉफ के अनुसार, "कार्य विश्लेषण एक वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें रोजगार संबंधी सभी तथ्यों के संबंध में विवरण तैयार किया जाता है जो रोजगार की कार्य–प्रणाली की पाठ्यवस्तु और उसे प्रभावित करने वाले कारणों पर आधारित होता है।" (According to Read and H.C. Matcaff– "Job analysis is the scientific study and statement of all the facts about a job which reveals its content and the modifying factors which surround it."

## कार्य विश्लेषण के उद्देश्य (Objectives of Job Analysis)

कार्य विश्लेषण के चार उद्देश्यों का निर्धारण मैन के द्वारा किया गया है, जो निम्नांकित हैं–

1. कार्य करने की विधियों में सुधार लाना।
2. व्यवसायरत कार्मिकों के स्वास्थ्य में सुधार लाना तथा उनकी सुरक्षा हेतु।
3. कर्मचारियों को कुशल बनाने से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को मितव्ययी एवं सक्रिय बनाना।
4. उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त स्थान दिलाने की दृष्टि से।

## रोजगार विश्लेषण की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाओं में रोजगार विश्लेषण की विशेषताओं को प्रगट किया गया है, जो निम्नलिखित हैं–

1. विशिष्ट रोजगार संबंधी आवश्यक तत्वों का निर्धारण करना।
2. रोजगार के कर्मचारियों के कर्तव्यों, भूमिकाओं तथा कार्य परिस्थिति का विश्लेषण करना।
3. रोजगार संपादन की परिस्थिति में निहित कार्य प्रणाली का तथा पाठ्यवस्तु का विश्लेषण करना।

टिप्पणी

4. रोजगार के सफल संपादन हेतु कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यताओं, क्षमताओं एवं कौशलों का विश्लेषण करना।

इन परिभाषाओं में मुख्य रूप से तीन पक्षों को महत्व दिया गया है। इस प्रकार विश्लेषण के तीन पक्ष निम्नांकित हैं–

1. रोजगार संपादन की कार्य प्रणाली तथा परिस्थिति,
2. कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यताएं एवं क्षमताएं,
3. रोजगार की कार्य प्रणाली को प्रभावित करने वाले कारक।

इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर रोजगार के लिए व्यक्ति का चयन किया जाए तथा व्यावसायिक निर्देशन में रोजगार में रखा जाए। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के प्रशिक्षण में कर्तव्यों, भूमिकाओं के अनुकरणीय प्रविधि का उपयोग किया जाए। रोजगार संबंधी कौशलों के विकास हेतु पृष्ठपोषण प्रविधियों को प्रयुक्त करना चाहिए।

रोजगार के प्रवणता परीक्षण के निर्माण में भी इन्हीं विशेषताओं का विश्लेषण तथा निर्धारण करके और रोजगार संबंधी पाठ्यवस्तु को पहचान करके, उपयोग किया जाए, जिससे उसकी वैधता अधिक हो सकती है। एक प्रभावशाली चयन का मानदंड हो सकता है।

## रोजगार विश्लेषण की आवश्यकता

रोजगार विश्लेषण की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से होती है–

1. रोजगार विश्लेषण से व्यवसाय के मूलभूत तत्वों को पहचानने, जिनमें व्यक्ति को कार्य करना पड़ता है।
2. व्यक्ति को कुशल संपादन हेतु अपेक्षित योग्यताओं एवं क्षमताओं की पहचान होती है।
3. किसी रोजगार हेतु चयन प्रणाली के लिए प्रवणता परीक्षण का निर्माण किया जाता है। प्रवणता परीक्षण के निर्माण में सहायता मिलती है।
4. व्यवसाय निर्देशन में रोजगार विश्लेषण के आधार पर कुशल तथा सक्षम व्यक्तियों का चयन किया जा सकता है।
5. व्यवसाय के चयन हेतु व्यक्ति को वैज्ञानिक निर्देशन दिया जाता है।

## रोजगार विश्लेषण के पक्ष

किसी रोजगार या व्यवसाय को कुशलतापूर्वक करने हेतु अनेक क्रियाएं करनी होती हैं। उन सभी क्रियाओं को चार मुख्य पक्षों में वर्गीकृत किया जाता है–

1. बौद्धिक कार्य (Mental Activities)
2. शारीरिक कार्य (Physical Activities)
3. सामाजिक कार्य (Social Activities) तथा
4. भावात्मक कार्य (Emotional Activties)।

इन्हीं चार प्रकार की क्रियाओं के आधार पर रोजगार विश्लेषण के मुख्य चार पक्ष होते हैं अथवा किसी रोजगार की क्रियाओं को कुशलता से करने हेतु चार प्रकार की योग्यताएं तथा क्षमताएं आवश्यक होती हैं–

**टिप्पणी**

1. बौद्धिक योग्यता (Mental Abilities)
2. शारीरिक क्षमता (Physical Efficiency)
3. सामाजिक क्षमता (Social Efficiency) तथा
4. भावनात्मक संतुलन (Emotional Adjustment)

### 1. बौद्धिक योग्यता

व्यावसायिक निर्देशन की दृष्टि से बुद्धि लब्धि (I.Q.) का कोई महत्व नहीं है अर्थात उसकी उपयोगिता नहीं है। थर्स्टन ने बुद्धि को प्राथमिक योग्यताओं का प्रारूप (P.M.A.) दिया है। इन्हीं योग्यताओं को पी.ई. वर्नन ने सामान्य व्यावसायिक योग्यताओं में विभाजित किया है। उसे यहां प्रस्तुत किया गया है–

| (i) V : ed | | V : ed | | (i) k : m |
|---|---|---|---|---|
| शैक्षिक योग्यताएं (Educational Abilities) | Vertual Type | Other major Jobs | k : m Mechanical Type | यांत्रिक योग्यताएं (Mechanical Abilities) |

**विशिष्ट रोजगार योग्यताएं**

पी.ई. वर्नन ने प्राथमिक योग्यताओं (pma) को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया है– प्रथम जिसे वी. : एड. शैक्षिक (v : ed), द्वितीय के.एम. यांत्रिक (k : m)। प्रथम वर्ग (v : ed) में शाब्दिक (vertual) तथा संख्यात्मक (Numerical) को सम्मिलित किया है जिसे शैक्षिक योग्यता भी कहा जाता है। इन योग्यताओं का उपयोग शिक्षा निर्देशन में किया जाता है। इसका रोजगार विश्लेषण में भी विशेष महत्व है। द्वितीय वर्ग यांत्रिक (k : m) के अंतर्गत तकनीकी विषयों का ज्ञान, हाथ से कार्य करने की कुशलता तथा ड्राइंग की कुशलता को सम्मिलित किया है। रोजगार विश्लेषण में दोनों वर्गों की योग्यताओं की पहचान की जाती है। जैसे शिक्षण व्यवसाय के लिए शाब्दिक, संख्यात्मक, तार्किक स्मृति तथा कल्पना शक्ति की योग्यता आवश्यक होती है। प्रवणता परीक्षण के निर्माण के समय अपेक्षित मानसिक योग्यताओं की सूची बना ली जाती है। इन्हें प्रभावशाली शिक्षक व्यवहार के निरीक्षण से पुष्टि भी करते हैं। इसके अंतर्गत शैक्षिक योग्यताओं को भी सम्मिलित किया जाता है।

### 2. शारीरिक क्षमताएं

किसी रोजगार या व्यवसाय की क्रियाओं को कुशलता से करने हेतु एक अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है। कहते भी हैं कि अच्छे स्वास्थ्य में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। इस प्रकार मानसिक तथा शारीरिक विशेषताओं का गहन संबंध है। कार्य क्षमता एवं कार्य कुशलता अच्छे स्वास्थ्य पर ही निर्भर होती है। अच्छा स्वास्थ्य होने पर कठिन कार्य किया जा सकता है और अधिक समय तक किया जा सकता है।

एक प्रभावशाली शिक्षक वही होता है जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो, उसकी अभिव्यक्ति, आवाज तथा बोलने पर ही आश्रित होती है। छात्रों के साथ अधिक समय तक कठिन परिश्रम स्वस्थ शिक्षक ही कर सकता है। शिक्षक की विकलांगता छात्रों के हंसने का साधन होती है इसलिए शिक्षक शारीरिक दृष्टि से सामान्य होना आवश्यक है। शिक्षक के वस्त्र भी कार्यकुशलता को बढ़ाते हैं। स्वस्थ्य शिक्षक प्रसन्न रहता है और शिक्षण अधिगम का समुचित वातावरण उत्पन्न करता है। यह शारीरिक क्षमताएं एक कुशल शिक्षक के लिए आवश्यक होती हैं।

### 3. सामाजिक क्षमताएं

रोजगार तथा व्यवसाय का संबंध सामाजिक परिस्थिति से होता है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति को सहयोग तथा संबंधों को विकसित करना होता है तभी उसे रोजगार में सफलता मिलती है। समाज अपने उत्थान, आवश्यकताओं तथा व्यवस्था बनाए रखने हेतु रोजगारों का विकास करता है अतः इस रोजगार की सामाजिक आवश्यकता तथा व्यवस्था को समझना तथा उसके अनुरूप संबंधों को विकसित करना तथा सहयोग की क्षमताओं की प्रकृति का विकास करना होता है।

एक कुशल शिक्षक वही होता है जो अपने छात्रों को समझता है और उनसे संबंध स्थापित करता है तथा सामाजिक मूल्यों का अनुकरण करता है जिससे छात्रों में भी अपेक्षित मूल्यों का विकास करता है। एक शिक्षक क्या करता है तथा कैसे व्यवहार करता है यह छात्रों को अधिक प्रभावित करता है। प्रत्येक रोजगार के सामाजिक कौशलों को पहचानना आवश्यक होता है।

### 4. भावनात्मक संतुलन

जीवन में भावनात्मक संतुलन का विशेष महत्व होता है। भावात्मक पक्ष को आंतरिक मानते हैं परंतु अनुभवों तथा प्रशिक्षण का भी प्रभाव पड़ता है। भावात्मक पक्ष में इच्छाओं, अभिवृत्तियों, अभिरुचियों तथा विश्वासों का समन्वय होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना–अपना भावात्मक पक्ष होता है जो दूसरों से भिन्न होता है।

किसी रोजगार तथा व्यवसाय में भावात्मक पक्ष का विशेष महत्व होता है। व्यक्ति को रोजगार में अभिरुचि होना, उसके प्रति घनात्मक अभिवृत्ति होना नितांत आवश्यक है। तभी वह रोजगार की क्रियाओं के संपादन में आनंद ले सकता है, वरना उसे भार स्वरूप लगता है। अभिरुचि तथा अभिवृत्तियों का विकास प्रशिक्षण से किया जा सकता है।

एक शिक्षक कक्षा शिक्षण में आनंद लेता है जब शिक्षण में उसकी रुचि होती है तथा अभिवृत्ति धनात्मक हो। एक कुशल शिक्षक अपनी अभिव्यक्ति में संतुलन रखता है। शिक्षक को आत्मविश्वास होता है। रोजगार में व्यक्ति का आत्म–विश्वास होना विशेष महत्व रखता है। एक कुशल शिक्षक की प्रमुख विशेषता उसका आत्मविश्वास होता है। कक्षा–शिक्षण में उसके व्यवहार से आत्मविश्वास का बोध होता है। रोजगार विश्लेषण में भावात्मक समायोजन के कारकों को पहचानना आवश्यक होता है। उपर्युक्त विवरण से भावात्मक पक्ष की प्रमुख विशेषताएं हैं–

- रोजगार से संबंधित अभिरुचियों का स्वरूप;

**टिप्पणी**

- रोजगार से संबंधित अभिवृत्तियों एवं विश्वासों की प्रवृत्ति का घनात्मक होना;
- रोजगार के कार्यों के संपादन में आत्म–विश्वास का होना;
- रोजगार के प्रति लगन तथा निष्ठा का होना;
- रोजगार के कार्यों के संपादन में आत्म नियंत्रण तथा संतुलित अभिव्यक्ति का होना।

## कार्य विश्लेषण का प्रयोग

कार्य विश्लेषण का प्रयोग अब तक जिन क्षेत्रों में किया गया है, उन क्षेत्रों की गत्यात्मकता एवं उद्देश्य केंद्रितता पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इन समस्त क्षेत्रों का अध्ययन प्रसिद्ध विद्वान जेग्रा द्वारा किया गया है। उन्होंने निम्नांकित संदर्भों में कार्य विश्लेषण के प्रयोग का उल्लेख किया है–

1. कार्य की श्रेणी एवं वर्गीकरण के निर्धारण के लिए।
2. वेतन का निर्धारण एवं उसका मानकीकरण।
3. अन्य विवरण से संबंधित व्यवस्था।
4. कार्य में अपेक्षित कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों के स्पष्टीकरण हेतु।
5. स्थानांतरण व प्रोन्नति हेतु।
6. उपयुक्त मांगों का अभियोजन।
7. कर्मचारियों एवं प्रबंधकों में विविध स्तरों के अवबोध विकसित करने हेतु।
8. प्रोन्नति का परिभाषीकरण व स्वरूप निर्धारण हेतु।
9. दुर्घटनाओं की खोज करने हेतु।
10. दोषयुक्त कार्यविधियों की दिशा में संकेत करने हेतु।
11. उपकरणों की देखभाल हेतु।
12. समय एवं गति का अध्ययन करने हेतु।
13. वरिष्ठ अधिकारियों की सीमाओं का निर्धारण करने हेतु।
14. वैयक्तिक योग्यता स्तर की ओर संकेत करने हेतु।
15. व्यक्तिगत असफलताओं के कारणों के निदान हेतु।
16. शिक्षा एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में।
17. कार्य–स्थान को सुगम बनाने हेतु।
18. थकान एवं स्वास्थ्य से संबंधित विवरण के अध्ययन के लिए।
19. वैज्ञानिक निदेशन प्रदान करने हेतु।
20. व्यावसायिक उपचार के लिए कार्यों की खोज हेतु।

उपर्युक्त समस्त क्षेत्रों में कृत्य विश्लेषण के अनुप्रयोग को देखने से यह ज्ञात होता है कि कृत्य विश्लेषण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके आधार पर

व्यावसायिक दक्षताओं, व्यवसाय से संबंधित कार्य पद्धतियों आदि के क्षेत्र में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है।



## कृत्य विश्लेषण के अध्ययन की आधारभूत रूपरेखा

राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देशन संघ से संबद्ध शोध विभाग के द्वारा इस रूपरेखा पर प्रकाश डाला गया है। यह रूपरेखा निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में दी गई है–

- व्यवसाय का इतिहास।
- व्यवसाय का महत्व व समाज से उसका संबंध।
- व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों की संख्या।
- श्रमिक प्रवृत्तियों की आवश्यकता।
- कार्य– विशिष्ट कार्य व व्यवसाय की कानूनी परिभाषा।
- योग्यताएं।
- तैयारी।
- प्रवेश की विधियां।
- कुशलता प्राप्ति की अवधि।
- उन्नति के अवसर एवं दिशा।
- कृत्य से संबद्ध धंधे।
- आय।
- घंटे।
- रोजगार की नियमितता।
- स्वास्थ्य एवं खतरे।
- रोजगार से संबद्ध कर्मचारियों के संगठन।
- रोजगार के विशिष्ट स्थान।
- पूरक सूचना

उपर्युक्त रूपरेखा पर आधारित विभिन्न बिंदुओं का स्पष्टीकरण, व्यावसायिक निर्देशन विधियों का अध्ययन निम्नांकित विचारणीय तथ्यों द्वारा किया जा सकता है–

प्रत्येक व्यक्ति को, किसी भी व्यवसाय का चयन करने से पूर्व उस–व्यवसाय का अध्ययन करना चाहिए। कृत्य का अध्ययन करने के लिए कतिपय सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है। व्यवसाय से संबंधित कौन सी सूचनाएं प्राप्त करनी आवश्यक हैं तथा कौन–सी नहीं? इस संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं, लेकिन एक व्यवसाय का अध्ययन करने के लिए कुछ प्रमुख शीर्षकों को व्यक्ति तथा व्यवसाय के स्वभावानुसार अधिक एवं कम किया जा सकता है–

1. **कार्य का महत्व** (Importance of the work)– कार्य के महत्व के अंतर्गत, कार्य के सामाजिक महत्व को देखा जाता है। उस व्यवसाय में कितने व्यक्ति संलग्न

**टिप्पणी**

हैं? क्या व्यवसाय उन्नत अवस्था में है, अथवा विकास की ओर अग्रसारित हो रहा है?

2. **कार्य का स्वभाव** (Nature of the work)– व्यवसाय के कार्य के स्वभाव में यह देखना चाहिए कि श्रमिक किस प्रकार का कार्य करते हैं? और कार्य किस प्रकार का है?
3. **रूचि की दशाएं** (Conditions of the work)– कर्मचारियों एवं श्रमिकों को किस प्रकार की परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है अथवा भ्रमण को जाना होता है? स्वच्छता कैसी है? हवा, जल एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था है अथवा नहीं? कितने घंटे तक कार्य करना होता है? आदि समस्त बातों के संबंध में जानकारी कार्य की दशाओं के अंतर्गत की जाती है।
4. **व्यवसाय हेतु वांछनीय योग्यताएं** (Desirable abilities)– व्यवसाय हेतु किस प्रकार की योग्यता आवश्यक है– मानसिक अथवा शारीरिक? मानसिक योग्यता हेतु कितनी बुद्धि लब्धि होनी आवश्यक है? कितने संवेग की आवश्यकता है? व्यक्ति में कितनी स्थिरता, धैर्य एवं साहस होना आवश्यक है? व्यक्ति का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए? यदि शारीरिक योग्यता आवश्यक है तो क्या कार्य संपूर्ण शरीर से करना होगा अथवा शरीर के कुछ विशेष अंगों का ही प्रयोग किया जाना है।
5. **उन्नति के अवसर** (Opportunity of the progress)– कार्य में प्रविष्ट होने की क्या पद्धति है? कितनी आयु की आवश्यकता है? कितने दिन औसतन कार्य करना पड़ेगा? निरीक्षण कार्य किस प्रकार होता है? भावी जीवन में उन्नति के कितने अवसर हैं? इत्यादि बातों का अध्ययन, उन्नति के अवसर में किया जाता है।
6. **वेतन** (Salary)– व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात प्रारंभिक वेतन कितना है? वेतन में प्रतिवर्ष कितनी वृद्धि होगी? अंतिम वेतन कितना है? वेतन किस प्रकार दिया जाता है यथा प्रतिदिन, साप्ताहिक अथवा मासिक? वेतन के अतिरिक्त अन्य सुविधाएं प्राप्त हैं अथवा नहीं।
7. **व्यवसाय का इतिहास** (History of the vocation)– व्यवसाय का इतिहास क्या है? इस संबंध में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। व्यवसाय की दीर्घता एवं स्थायित्व के संबंध में जानकारी व्यवसाय के इतिहास से ही होती है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय के इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि व्यवसाय उन्नति की ओर है अथवा अवनति की ओर।
8. **वांछनीय प्रशिक्षण** (Desirable training)– इस बात की जानकारी करनी चाहिए कि किसी व्यवसाय, अथवा जिस व्यवसाय में वह प्रविष्ट होना चाहता है उसके लिए कितनी सामान्य शिक्षा होनी चाहिए? किसी विशेष व्यवसाय प्रशिक्षण की आवश्यकता है अथवा नहीं? वह प्रशिक्षण कितना व्यवसाय युक्त है एवं कहां से प्राप्त किया जा सकता है?

9. **कार्यकाल की अवधि** (Duration of the work)– क्या कार्यकाल पूरे वर्ष रहता है अथवा कुछ माह? आदि बातों की जानकारी कार्यकाल की अवधि के अंतर्गत आती हैं।
10. **व्यवसाय की व्यवस्था/संगठन** (Organisation of the vocation)– व्यवसाय के गठन में यह देखना चाहिए कि व्यवसाय का गठन किस प्रकार का है? क्या साझेदारी व्यवसाय है अथवा एकाधिकार व्यवसाय? क्या व्यवसाय अथवा व्यापार संयुक्त कंपनी का है, क्या वह सहकारी सिद्धांतों पर आधारित है? निजी क्षेत्र में है अथवा सरकारी?
11. **वांछनीय अनुभव** (Desirable Experiences)– व्यवसाय में कितने समय के अनुभव की आवश्यकता है? अथवा अनुभव के बिना ही कार्य हो जाएगा? व्यवसाय हेतु उस अनुभव को कहां से प्राप्त किया जा सकता है? इत्यादि बातों का अध्ययन वांछनीय अनुभवों के अंतर्गत किया जाता है।
12. **स्थानापन्न** (Placement)– स्थानापन्न के अंतर्गत कार्य स्थल की जलवायु, परिवेश, यातायात के स्थान, खाद्य सामग्री तथा अपने निवास स्थान से दूरी इत्यादि बातों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाता है।
13. **अन्य कार्मिकों का अध्ययन** (Study of the other employees)– किसी भी कार्य का चुनाव करने से पूर्ण यह भी ज्ञात करना चाहिए कि उस व्यवसाय में किस प्रकार के कार्मिकों की अधिक संख्या है? क्योंकि उन्हीं कार्मिकों के साथ उसे कार्य करना होगा।
14. **पदार्थ/सामान जिस पर कार्य है** (Study of the materials)– जिस प्रकार के सामान पर कार्य करना है, वह सामान स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालने वाला तो नहीं है? इसके संबंध में जानकारी प्राप्त करना अति आवश्यक है।

## रोजगार विश्लेषण की विधियां

रोजगार विश्लेषण में अनेक विधियों को प्रयुक्त करते हैं। एक ही रोजगार के विश्लेषण में एक से अधिक विधियों को प्रयुक्त करते हैं। रोजगार विश्लेषण की प्रमुख विधियां निम्नांकित हैं–

1. वैयक्तिक मनोलेखन विधि (Individual Psychographic Method)
2. प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
3. रोजगार मनोलेखन विधि (Job Psychographic Method)
4. परीक्षण द्वारा रोजगार–विश्लेषण (Job Analysis by Test)
5. क्रिया द्वारा रोजगार विश्लेषण (Job Analysis by Activity)
6. समय तथा गति का अध्ययन (Time and Motion study) तथा
7. कौशल विश्लेषण (Skill Analysis)

उपर्युक्त बिंदुओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

## 1. वैयक्तिक मनोलेखन विधि

इसके अंतर्गत सर्वप्रथम व्यवसाय के तथाकथित सफल व्यक्तियों के गुणों की सूची बनाई जाती है। सफल व्यक्ति के पारिवारिक इतिहास, व्यक्तिगत विकास, स्मृति, भाषा कुशलता आदि पर विचार करते हुए उसकी मानसिक प्रक्रियाओं तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण की पूरी प्रक्रिया में साक्षात्कार, प्रक्षेपण तथा परीक्षण आदि का प्रयोग होता है तथा प्रमुख व्यक्तियों की विशेषताओं को चित्रित करने वाले मनोलेख निर्मित किये जाते हैं। इस प्रकार व्यवसाय में चयन हेतु ऐसे मनोलेखों की सहायता ली जाती है। इस संबंध में विशेष सावधानी के प्रति सचेत करते हुए वाइटेल्स ने कहा है कि "किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से आवश्यक विशेषकों का निर्धारण हेतु यह अपेक्षित है कि व्यक्ति पर न ध्यान देकर कार्य में निहित उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाए जिसे करने में वह प्रवृत्त है।"

## 2. प्रश्नावली विधि

व्यवसाय से संबंधित कार्यों, दायित्वों एवं आवश्यकताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली विधि को सबसे अधिक उपयोगी समझा जाता है। कार्य विश्लेषण हेतु प्रश्नावली विधि के प्रयोग का श्रेय उलरिच को दिया जाता है, जिन्होंने अपनी प्रश्नावली को व्यक्ति, कर्मचारियों के संगठनों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण में लगे लोगों को दिया। इसके अंतर्गत 121 व्यवसायों में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन किया गया। इसमें पूछे गए प्रश्न इस प्रकार के थे–

(क) क्या आपके व्यवसाय के लिए अमुक गुण या विशेषता आवश्यक या अनावश्यक है?

(ख) क्या अमुक गुण प्रायः, यदा–कदा या बिलकुल आवश्यक नहीं है?

(ग) क्या अमुक गुण को प्रशिक्षण के द्वारा अच्छी तरह, बहुत कम, बिल्कुल नहीं विकसित किया जा सकता है?

उलरिच ने ऐसी प्रश्नावली निर्मित की जिसके उपयोग से उच्च व्यवसायों के लिए अपेक्षित विशेषताओं तथा आवश्यक गुणों का मापन किया जा सके। इसमें प्रयुक्त प्रश्नों को चार वर्गों में रखा गया– भौतिक–अभिक्षमता, मनोभौतिक अभिक्षमता, मानसिक अभिक्षमता तथा अनुकूलनशीलता।

यहां ध्यान देना होगा कि प्रश्नावली विधि की मुख्य सीमाओं में इसका आत्मनिष्ठ होना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके माध्यम से विशिष्ट गुणों की सूचना सही रूप में होना संभव नहीं है। साथ ही, उत्तरदाता–कर्मचारियों द्वारा प्रदत्त उत्तरों को पूर्णतया शुद्ध उत्तर नहीं माना जा सकता है।

## 3. कार्य–मनोलेखन विधि

व्यावसायिक योग्यताओं को जानने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन करने की दृष्टि से तीन बातों पर ध्यान देना पड़ता है। प्रथम, विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का साधारण वर्गीकरण जिसमें मानकीकृत परीक्षाओं का प्रयोग होता है। द्वितीय, रेटिंग की मानक

तकनीकी जिसमें कुछ विशेष बिंदुओं पर रोजगार के लिए अपेक्षित गुणों का निर्धारण होता है। तृतीय, प्रशिक्षित प्रेक्षपकों द्वारा रोजगार में निहित क्रियाओं का प्रत्यक्ष रूप से जांच जिसमें यह पूरी कोशिश होती है कि कार्य की क्रियाओं की विस्तृत विवरण प्राप्त कर लिया जाए। इसके द्वारा रोजगार के सहायक एवं बाधक तत्वों का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। किंतु इसके उचित उपयोग हेतु कुशल एवं प्रशिक्षित विशेषताओं तथा मूल्यांकनकर्ताओं की आवश्यकता है।

### 4. परीक्षण द्वारा रोजगार विश्लेषण

विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए अपेक्षित मानसिक योग्यताओं का विश्लेषण प्रायः किया गया है। लिंक ने इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण परीक्षाओं का गठन किया है। परीक्षाओं के निर्माण से पूर्व उन्होंने कार्यों का विश्लेषण किया है और ऐसे परीक्षणों का चयन किया जो कार्य से संबंधित योग्यता का मापन करते थे। इसके बाद इन चुने हुए परीक्षणों को ऐसे कर्मचारियों को दिया जो कार्य में सबसे अधिक सफल समझे जाते थे। जिन परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक आये उनको उस कार्य की योग्यता का मापन कराने के लिए चुन लिया गया है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए एक परीक्षण माला प्रस्तुत की गई और उसकी सहायता से नये कर्मचारियों की चयन प्रक्रिया में सहायता ली गई। बाद में कोनर तथा हल आदि ने भी कार्य विश्लेषण के संदर्भ में परीक्षणों का उपयोग किया है।

### 5. क्रियाओं द्वारा रोजगार विश्लेषण

इसके अंतर्गत व्यवसाय में संपन्न होने वाली क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इस विधि का प्रयोग चार्ल्स तथा ह्विटले ने सचिवीय कार्यों में निहित विशेषताओं तथा उत्तरदायित्वों के विश्लेषण हेतु किया। कुछ समय बाद स्ट्रांग तथा उरबैक ने प्रेस में छपाई करने वाले कर्मचारियों का अध्ययन किया और यह देखा कि उन्हें प्रायः बीस से लेकर तीस क्रियाएं करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार किंट्सन ने प्रूफ पढ़ने में प्रूफ रीडर की आंखों की गतियों का अध्ययन किया। इस तरह के कार्य विश्लेषण से कार्य में की जाने वाली वास्तविक क्रियाओं का पता चल जाता है जिससे व्यावसायिक निर्देशन का कार्य सरल हो जाता है।

### 6. समय तथा गति का अध्ययन

गिलब्रेथ को इस विधि का प्रवर्तक कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने गति अध्ययन के अंतर्गत कार्य में निहित क्रियाओं की छोटी से छोटी इकाइयों का नमूना ज्ञात किया तथा शारीरिक गतियों का विश्लेषण किया। गिलब्रेथ ने सर्वप्रथम अपनी पत्नी के साथ सामान्य प्रक्षेपण तथा विराम घड़ी की मदद से समय तथा गति का अध्ययन किया। बाद में चलकर स्वचालित कैमरे का प्रयोग किया गया। इससे व्यक्ति द्वारा छोटे से कार्य में लगे समय की गणना करने तथा प्रक्रिया चार्ट (process chart) निर्मित करने का प्रयास होता है। कहना न होगा कि यह विधि ऐसे व्यवसायों के रोजगार विश्लेषण हेतु अधिक सटीक है जिसमें क्रियात्मक पक्ष विशेष महत्वपूर्ण होता है।

### 7. कौशल विश्लेषण

इसे समय तथा गति के अध्ययन का ही एक विस्तृत रूप माना जा सकता है। इसमें समय तथा गति का अध्ययन कार्य की परिस्थितियों में पाई जाने वाली मनोवैज्ञानिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस विधि का प्रयोग फेयर चाइल्ड ने मानसिक व्यापार से संबंधित व्यक्ति की प्रवीणता या कौशल का विश्लेषण करने हेतु किया। बाद में अधिकांश कौशल प्रधान व्यवसायों के अध्ययन के संबंध में इसका प्रयोग किया गया है।

रोजगार विश्लेषण की पद्धति द्वारा रोजगार की विशेषताओं तथा उसमें निहित क्रियात्मक व्यवस्थाओं का पता लगाना मुख्य उद्देश्य है। इससे संबंधित एक अन्य प्रक्रिया को रोजगार विवरण की संज्ञा दी जाती है।

### रोजगार विश्लेषण की प्रक्रिया

रोजगार विश्लेषण में सर्वप्रथम उस रोजगार में निहित क्रियाओं एवं व्यवहारों की सूची तैयार की जाती है जिन्हें विशेषताएं भी कह सकते हैं। इसके लिए रोजगार के कौशलों की भी पहचान कर सकते हैं। जैसे डॉक्टर के लिए निदानात्मक कौशल सबसे महत्वपूर्ण होता है। निदान के लिए एक डॉक्टर को विशिष्ट क्रियाएं करनी चाहिए, इनकी पहचान एक अच्छे डॉक्टर के निदान से कर सकते हैं। इसी प्रकार एक प्रभावशाली शिक्षक के लिए प्रश्नों के कौशल, पुनर्बलन, कौशल तथा संप्रेषण की क्षमताओं के कौशल की आवश्यकता है। रोजगार विश्लेषण को चार्ट द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है–

**रोजगार विश्लेषण**

|

| | |

|

कौशल–1 कौशल–2 कौशल–3

कौशल–4

(Skill-I) (Skill-2) (Skill-3)

(Skill-4)

| | |

|

| | | | | | | | | | | | | | | |

| |

1.1 1.2 1.3 1.4 1.5 1.6 2.1 2.2 2.3 2.4 3.1 3.2 3.3 3.4 4.1 4.2

4.34.4

### कौशलों में विशिष्ट क्रियाएं (Specific activities among the skills)

एक प्रभावशाली शिक्षक के लिए 'पुनर्बलन कौशल' की क्षमता आवश्यक है। इसके लिए निम्नांकित क्रियाएं करनी होती हैं–

1. वांछित व्यवहारों की शाब्दिक तथा अशाब्दिक प्रशंसा तथा प्रोत्साहन करना।
2. वांछित व्यवहारों की शाब्दिक तथा अशाब्दिक रूप में भर्त्सना करके हतोत्साहित करना।

3. छात्रों के संवेगात्मक रूप में तथा मानसिक रूप में कक्षा की क्रियाओं में भाग लेना।
4. छात्रों की अनुक्रियाओं तथा स्वरूप को स्वीकार करना तथा अपने प्रस्तुतीकरण में स्वीकार करना।
5. शिक्षक के अपनी क्रियाओं तथा प्रस्तुतीकरण में तल्लीन होने से छात्र भी प्रोत्साहित होते हैं।

रोजगार से संबंधित क्रियाओं की सूची तैयार की जाती है। इसलिए रोजगार में कार्यरत व्यक्तियों से राय ली जाती है तथा रोजगार की परिस्थिति में व्यक्तियों के कार्यों एवं व्यवहारों का निरीक्षण भी किया जाता है।

### रोजगार विश्लेषण हेतु श्रेणी मापनी (Rating scale for job analysis)

रोजगार संबंधी आवश्यक तथा अनावश्यक क्रियाओं की सूची की सहायता से एक श्रेणी मापनी की रचना की जाती है। इसको तीन बिंदुओं– अधिक आवश्यक, आवश्यक तथा अनावश्यक पर विशेषज्ञों द्वारा रेटिंग करायी जाती है। रेटिंग की प्रक्रिया प्रत्यक्ष निरीक्षण का सारांश होती है। इसमें क्रियाओं, व्यवहारों तथा रोजगार की विशेषताओं का गुणात्मक वर्णन होता है। इसमें निम्नांकित आवश्यक विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है– (1) शारीरिक विशेषताएं, (2) मानसिक विशेषताएं, (3) सामाजिक विशेषताएं, (4) भावात्मक विशेषताएं, (5) शैक्षिक विशेषताएं, (6) अभिरुचि संबंधी विशेषताएं तथा (7) अभिवृत्ति संबंधी विशेषताएं।

रोजगार की विशेषताओं के साथ रोजगार की कार्यप्रणाली का विश्लेषण क्रियाओं के स्वरूप में भी किया जाता है–

1. क्रियाओं के संपादन की सूची,
2. संपादन में प्रयुक्त होने वाली सामग्री,
3. कार्य संपादन के स्थान का विवरण एवं व्यवस्था,
4. कार्य संपादन की विधियों तथा प्रविधियों का विवरण,
5. व्यक्ति का उत्तरदायित्व तथा विभिन्न भूमिका निर्वाह,
6. संचालित क्रियाओं का पर्यवेक्षण तथा सुझाव,
7. कार्य संपादन की प्रभावशीलता का मानदंड अथवा कसौटी या उत्पादन,
8. अन्य रोजगार से संबंध तथा अपेक्षित सहयोग,
9. कार्यकाल की अवधि तथा सुविधाएं,
10. व्यक्तियों को प्रगति हेतु अवसर तथा
11. कार्यकर्ताओं की चयन प्रणाली तथा प्रशिक्षण।

रोजगार के लिए उपर्युक्त विशेषताओं तथा क्रियाओं के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। उसके आधार पर प्रवणता परीक्षणों का निर्माण किया जाता है तथा चयन की प्रविधियों तथा कसौटियों का विकास करते हैं। किसी रोजगार के लिए विभिन्न योग्यताओं और क्षमताओं को कितना महत्व दिया जाए इसके लिए 'रोजगार मनोअनुस्थित'

प्रविधि का प्रयोग करते हैं– अति आवश्यक, आवश्यक, आवश्यकता नहीं। इन्हें अनुभवी कार्यकर्ताओं तथा विशेषज्ञों द्वारा रेटिंग कराया जाता है और उनका अंकन करके विशेषताओं के महत्व का निर्धारण कर लेते हैं।



शिक्षण रोजगार के लिए मनोलेखन प्रविधि के उपयोग को स्पष्ट किया गया है। इस प्रविधि का विकास वाइटेल्स ने किया था। इसमें शिक्षण के विश्लेषण में सात बिंदुओं को सम्मिलित किया गया है। इसमें सात योग्यताओं को प्राथमिकता दी गई है। इन योग्यताओं को कितना महत्व दिया जाए उसके लिए तीन बिंदुओं की अनुमापनी का निर्माण किया गया है। इसको अनुभवी शिक्षकों से भरवाया जाता है। इसके परिणामों को आगे तालिका में दिया गया है–

**शिक्षण हेतु मनोलेखन**

| शिक्षण हेतु योग्यताएं | अति आवश्यक | आवश्यक | आवश्यक नहीं |
|---|---|---|---|
| 1. शारीरिक क्षमताएं | – | + + + | – |
| 2. मानसिक योग्यताएं | + + + | – | – |
| 3. सामाजिक विशेषताएं | + + | – | – |
| 4. भावात्मक समायोजन | + + | – | – |
| 5. शैक्षिक योग्यताएं | + + + | – | – |
| 6. शिक्षण में अभिरुचि | – | + + | – |
| 7. शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति | – | + + + | – |

अनुभवी शिक्षकों तथा प्रशिक्षकों से रेटिंग कराके इन बिंदुओं को 4.2 तथा 0 (शून्य) अंकों का महत्व देकर अंकन कर लिया जाता है। उनका योग करके रोजगार संबंधी योग्यताओं की वरीयता का निर्धारण कर लेते हैं।

## रोजगार विवरण

रोजगार मनोलेखन प्रविधि से रोजगार संबंधी अतिआवश्यक तथा आवश्यक योग्यताओं एवं क्षमताओं का विवरण तैयार करते हैं। रोजगार विवरण कार्य के प्रभावशाली संपादन के लिए आवश्यक होता है। इसके अंतर्गत उन सभी योग्यताओं और कुशलताओं को सम्मिलित किया जाता है जो एक कुशल कर्मचारी के लिए अपेक्षित है।

ओटिस तथा लिकार्ट के अनुसार रोजगार विवरण में तीन प्रश्नों के उत्तरों का विवरण होता है–

- रोजगार क्या है? जो उसके स्वरूप का विवरण प्रस्तुत करता है।
- रोजगार का प्रभावशाली संपादन कैसे होता है? इसमें निहित क्रियाओं तथा उनके लिए अपेक्षित कौशल तथा योग्यताओं का विवरण होता है।
- रोजगार का संपादन क्यों किया जाता है? इसमें रोजगार के उत्पादन, उपादेयता तथा आवश्यकता का विवरण दिया जाता है।

**टिप्पणी**

रोजगार विवरण द्वारा कार्य की सामाजिक, भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों, संदर्भों तथा भूमिकाओं का उल्लेख किया जाता है जिससे कार्य के स्थल एवं भौतिक पर्यावरण अन्य विशेषताओं, स्वच्छता एवं सामान्य स्वास्थ्य की दशाओं, उसमें सहकर्मियों के कार्य में निहित खतरों तथा उनके लिए अपेक्षित सावधानियों का पता चलता है। कार्य में क्या होता है? किस प्रकार के कार्यकर्ता उसमें भर्ती किये जाते हैं, कार्य की विशेष शर्तें तथा सुविधाएं क्या हैं, आदि के बारे में निश्चित एवं स्पष्ट जानकारी इस प्रकार के विवरण द्वारा प्राप्त की जाती है।

रोजगार विवरण की आवश्यकता कई दृष्टियों से है। निर्देशन कर्मियों तथा उपबोधकों के इसकी विशेष रूप में जरूरत होती है। पहला, इससे कार्य को भली प्रकार समझने में सहायता मिलती है जिससे निर्देशन कर्मी उचित प्रकार के निर्देशन देने के प्रति क्रियाशील होता है। दूसरा, इससे कार्य के चयन, उसके लिए अपेक्षित प्रशिक्षण तथा व्यवस्थाओं के संबंध में जानकारी बढ़ती है। तीसरा, निर्देशन की प्रक्रिया में सेवार्थी का विश्वास जाग्रत करने की दृष्टि से भी कार्य विवरण उपयोगी प्रमाणित होता है। चौथा, रोजगार के संबंध में प्रारंभिक परिचय कराने के लिए भी कार्य विवरण महत्वपूर्ण माना जाता है।

**आवश्यक सूचनाएं** (Required informations)

रोजगार विवरण हेतु प्रायः जिन सूचनाओं तथा तथ्यों के बारे में स्पष्टीकरण की जरूरत होती है वे इस प्रकार हैं–

1. रोजगार के अवसर (Job Opportunities)
2. रोजगार की प्रकृति (Nature of Job)
3. रोजगार की अपेक्षाएं (Requirements of Job)
4. फर्म या संस्थान (Firm or Organization)
5. रोजगार स्थान एवं भौतिक पर्यावरण (Place of work and Physical environment)
6. सह–कर्मी तथा अन्य अधिकारी (Co-workers and Officers)
7. वेतन (Emoluments) तथा सुविधाएं
8. भावी संभावनाएं (Future prospects) तथा
9. अवकाश एवं छुट्टियां (Vacations and off-hours)।

**रोजगार सारांश** (Job Summary)

इसके अंतर्गत रोजगार संबंधी सभी महत्वपूर्ण विवरण को सारांश रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कार्य, योग्यताएं, निहित भूमिकाओं, उत्तरदायित्वों का वर्णन स्पष्ट रूप में किया जाता है। सारांश के आधार पर रोजगार की संपूर्ण जानकारी स्पष्ट एवं शुद्ध रूप में दी जाती है। रोजगार सारांश में निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है–

1. रोजगार के बारे में दिया गया विवरण संक्षिप्त एवं सही–सही ढंग से दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

2. रोजगार का विवरण प्रस्तुत करने हेतु शब्दों का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
3. अस्पष्ट पदों एवं व्याख्याओं से बचना चाहिए।
4. एक रोजगार से दूसरे कार्य में सही ढंग से भेद स्थापित करने हेतु भाषा का प्रयोग अत्यंत विशुद्ध रूप में होना चाहिए।
5. रोजगार का उद्देश्य पूरी स्पष्टता के साथ अंकित करना चाहिए।
6. रोजगार में निहित महत्वपूर्ण क्रियाओं तथा कार्यों का सही एवं स्पष्ट रूप में उल्लेख होना चाहिए।
7. इसमें रोजगार की प्रकृति (क्या), प्रक्रिया (कैसे) तथा संपन्न होने के प्रयोजनों (क्यों) का विवरण देना परमावश्यक है।
8. सामान्य शब्दों का प्रयोग वर्जित होना चाहिए क्योंकि ऐसे शब्दों द्वारा कार्य के लक्षण तथा उसकी परिस्थितियों के संबंध में भ्रामक धारणाएं बनती हैं।
9. रोजगार के अंतर्गत होने वाले पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर देना चाहिए जिससे कार्यकर्ता को अपनी सही स्थिति का पूर्वाभास मिल जाए।

### रोजगार विवरण के उपयोग

निर्देशन तथा परामर्श के संदर्भों के अलावा भी रोजगार विवरण का उपयोग किया जाता है। इसकी सहायता से रोजगार की रेटिंग, उसका मूल्यांकन तथा वर्गीकरण करना सरल हो जाता है। इसके माध्यम से कार्यकर्ता की योग्यता का निर्धारण तथा उसके लिंग विषयक अपेक्षाओं संबंधी सभी जानकारी होती है। इसका उपयोग कई रूपों में हुआ है। पूर्व वर्णित कार्य–विश्लेषण की प्रक्रिया में भी इस तरह का विवरण अधिक उपयोगी पाया गया है। कर्मचारियों तथा अधिकारियों के आपसी संबंधों को स्पष्ट एवं मधुर बनाए रखने में भी इसकी पर्याप्त भूमिका होती है।

रोजगार से संबंधित विशेष गुणों तथा कार्यों को प्रकाश में लाना कार्य–विवरण का मुख्य उद्देश्य होता है, जिससे संगठन, प्रबंध एवं परस्पर संबंधों के बारे में कठिनाइयां न उत्पन्न हो सकें। इसके अंतर्गत जिन प्रमुख विशेषताओं का विवरण देने पर बल दिया जाता है, वे अधोलिखित हैं–

1. **कार्यकर्ता की शारीरिक क्षमताएं** (Physical Efficiency of worker)– जिसमें रोजगार के लिए अपेक्षित स्वास्थ्य दशा, कद, वजन, मांसपेशियां, गति, शक्ति तथा शारीरिक बनावट आदि संबंधी विवरण दिये जाते हैं।
2. **ज्ञान इन्द्रिय प्रारूप** (Sensory modality)– जिसमें रोजगार के लिए आवश्यक संवेदनात्मक क्षमता, जैसे– सुनना, देखना, स्पर्श आदि के बारे में विवरण दिया जाता है।
3. **प्रत्यक्षीकरण की योग्यता** (Perceptial ability)– जिसमें प्रत्यक्षीकरण विषयक गुणों या विशेषताओं का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है।

टिप्पणी

4. **बौद्धिक योग्यता** (Intellectual ability)– जिसमें आकलन के लिए कुशल एवं सफल निष्पादन को दृष्टिगत रखकर अपेक्षित न्यूनतम बौद्धिक योग्यता स्तर के बारे में बताया जाता है। इसके लिए प्रायः, बुद्धि लब्धि का उपयोग किया जाता है।
5. **शैक्षिक योग्यताएं** (Academic qualifications)– जिसमें कार्यकर्ता की शैक्षिक उपलब्धियों, उनमें अर्जित स्तरों तथा प्रवेश हेतु न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इससे केवल निर्देशन कर्मी या उपबोधक को ही मदद नहीं मिलती है, बल्कि सेवार्थी भी लाभान्वित होता है।
6. **अभिरुचियों का प्रारूप** (Interest patterns)– जिसमें आकलन की सफलता हेतु आवश्यक रुचियों का उल्लेख होता है। उदाहरणार्थ जो 'लाइफ इन्श्योरेंस' का कार्य करना चाहते हैं उनमें सामाजिक कल्याण के अलावा व्यापारिक मामलों में पर्याप्त अभिरुचि होनी चाहिए। इसी तरह जो मिस्त्री का कार्य करना चाहता है उसे यांत्रिक क्षेत्रों में रुचि प्रदर्शित करनी चाहिए।
7. **प्रवणता** (Aptitude)– जिसके मापन से सफल अभियोजन हेतु आवश्यक अभिक्षमता या विशिष्ट योग्यता का उल्लेख अपेक्षित है।
8. **सामाजिक समायोजन** (Social adjustment)– जिसमें व्यावसायिक सफलता के लिए अपेक्षित सामाजिक समायोजन के स्तरों तथा सामाजिक संबंधों का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।
9. **सांवेगिक दशाएं** (Emotional conditions)– जिसमें रोजगार के लिए अपेक्षित महत्वपूर्ण सांवेगिक विशेषताओं तथा धैर्य, संतुलन, जोखिम उठाने की सामर्थ्य, परिपक्वता एवं आवेश पर नियंत्रण आदि का उल्लेख विशेषकर होता है।
10. **अभिवृत्ति** (Attitude)– किसी रोजगार में प्रभावशाली संपादन में व्यक्ति की अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का विशेष महत्व है। रोजगार के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति घनात्मक होनी चाहिए।

## रोजगार विश्लेषण की उपादेयता

रोजगार विश्लेषण का उपयोग अब तक कई क्षेत्रों में किया जा चुका है तथा विभिन्न रोजगारों के लिए प्रवणता परीक्षणों का निर्माण किया गया है। इसके उपयोग से रोजगार की प्रभावशीलता में वृद्धि हुई है तथा प्रवणता परीक्षणों द्वारा कुशल व्यक्तियों का चयन हो सकता है। रोजगार के क्षेत्र में गतिशीलता आई है इसका उपयोग निम्नांकित संदर्भों में किया गया है–

1. **रोजगार संबंधी व्यवस्था**– रोजगार की व्यवस्था का स्थान, उपकरण, समय तथा कार्यकाल की अवधि, आने–जाने के लिए वाहन की सुविधा, अन्य सुविधाएं तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण की सुविधाएं।
2. **कर्मचारियों से संबंधित**– शैक्षिक योग्यता, चयन की प्रक्रिया, वेतन निर्धारण तथा वेतन क्रम, कर्तव्य तथा भूमिकाएं, प्रोन्नति के अवसर, स्थानांतरण, कर्मचारियों को निवास आदि की सुविधाएं। कर्मचारियों की मांगों के प्रति दृष्टिकोण, दुर्घटनाओं के लिए सुरक्षा।

टिप्पणी

3. **रोजगार संबंधी अन्य कारण**– रोजगार का भावी नियोजन, वैज्ञानिक निर्देशन, तकनीकी का विकास, निदान तथा उपचार संबंधी अध्ययन व्यवस्था।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 'वार मैन पॉवर कमीशन' ने रोजगार विश्लेषण के संबंध में लिखा है, "रोजगार विश्लेषण किसी रोजगार की प्रकृति के बारे में निरीक्षण एवं अध्ययन द्वारा संबद्ध सूचना को पुष्ट करने एवं सूचित करने का उपक्रम है। यह नौकरी के लिए वांछित कौशल, ज्ञान, योग्यताओं तथा सफल श्रमिक के लिए आवश्यक उत्तरदायित्वों को निर्धारित करने वाले एवं नौकरी को अन्य सभी नौकरियों से भिन्न करने वाले उपक्रमों का निर्धारण करता है।" ("Job analysis is the process of determining by observation, study and reporting pertinent information related to the nature of a specific job. It is the determination as of the tasks which comprise the job and of the skills, knowledge, abilities and responsibilities required of the worker for successful performance and which differentiate the job from all other."– U.S. War Manpower)

विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावहारिकता प्रतिष्ठान रोजगार–विश्लेषण का विभिन्न रूपों में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार का विश्लेषण कर्मचारियों के चुनाव के लिए मानदंड स्थापित करने, कर्मचारियों के प्रशिक्षण, कार्यक्रमों की विषय वस्तु एवं विधियों के निर्धारण करने एवं वेतनक्रमों के निर्धारण में उपयोगी सिद्ध होता है। रोजगार सूचना की दृष्टि से रोजगार–विश्लेषण की अपनी उपयोगिता है।

## रोजगार से संतुष्टि

व्यावसायिक निर्देशन तथा प्रवणता परीक्षण की उपादेयता तथा प्रभावशीलता का मानदंड 'व्यक्ति की' रोजगार से संतुष्टि होता है। प्रवणता परीक्षण की वैद्यता भी 'रोजगार से संतुष्टि' से ज्ञात की जाती है। अनुगामी कार्यक्रम में भी व्यक्ति के रोजगार से संतुष्टि को महत्व दिया जाता है। प्रवणता परीक्षण का निर्माण तथा व्यावसायिक निर्देशन का आधार 'रोजगार विश्लेषण' होता है। 'रोजगार विश्लेषण' की शुद्धता एवं क्षमता की परख व्यक्ति की इसी 'रोजगार संतुष्टि' से की जाती है।

### अर्थ एवं परिभाषा

रोजगार से संतुष्टि की अनेक परिभाषाएं की गई हैं परंतु निम्नांकित परिभाषा को सभी स्वीकार करते हैं–

रोजगार संतुष्टि में रोजगार से संबंधित सभी योग्यताओं, क्षमताओं तथा कारकों को सम्मलित करते हैं जिनसे व्यक्ति उस रोजगार के कार्यों को करना पसंद करता है और उसी रोजगार में रहकर प्रगति की इच्छा रखता है।" ("Job satisfaction is the whole matrix of job factors that make a person like his work situation and be willing to head for it without distaste at the beginning of his work day.")

इस परिभाषा में रोजगार संतुष्टि की दो विशेषताओं को महत्व दिया गया है–

1. रोजगार की कार्य प्रणाली को पसंद करता है और उसको करने में आनंद लेता है।

2. उसी रोजगार में रहने की इच्छा रखता है और प्रगति करना चाहता है। रोजगार संतुष्टि तीन क्षेत्रों के सफल समायोजन का परिणाम होता है–
   (अ) स्वयं का समायोजन अर्थात रोजगार को पसंद करना।
   (ब) समाज में समायोजन रोजगार से समाज में स्थान मिलता है उसे प्रसन्नता है, संतुष्टि भी है तथा
   (स) रोजगार की कार्य प्रणाली में अच्छा समायोजन है।

## रोजगार संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारक

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया में यह नितांत आवश्यक होता है कि व्यक्ति को रोजगार संबंधी योग्यताओं, क्षमताओं तथा कौशलों की जानकारी देने के साथ उस रोजगार से होने वाले लाभ तथा प्रगति के लिए क्षेत्र का भी ज्ञान दिया जाए। परंतु उपर्युक्त समायोजन के क्षेत्र को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, जिससे रोजगार संतुष्टि में बाधा होती है और समायोजन नहीं हो पाता है। इनमें से कुछ कारक आंतरिक तथा कुछ बाह्य होते हैं। मुख्य कारक तीन प्रकार के होते हैं–

1. व्यक्तिगत कारक, इन्हें आंतरिक कारक भी कहते हैं।
2. रोजगार से संबंधित, निहित कारक।
3. व्यवस्था तथा प्रशासन के नियंत्रण संबंधी कारक होते हैं।

**1. व्यक्तिगत कारक** (Personal factors)– यह कारक व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, व्यक्तित्व, शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के होते हैं– (अ) लिंग, (ब) आयु, (स) बुद्धि, (द) शैक्षिक योग्यता, (व) व्यक्तिगत तथा (र) पारिवारिक परिस्थितियां।

अध्ययन कार्यों से यह पाया गया है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अपने रोजगार से अधिक संतुष्टि होती है। इसका कारण यह होता है– स्त्रियों की आर्थिक आवश्यकताएं अधिक होती हैं और वे कोई भी कार्य करने को तत्पर हो जाती हैं। आयु का विशेष प्रभाव नहीं पाया जाता है परंतु अधिक आयु होने पर व्यक्ति रोजगार को बदलना कम पसंद करते हैं तथा युवावस्था में रोजगार परिवर्तन अक्सर करते हैं।

रोजगार के कार्यों के अनुरूप बौद्धिक योग्यताओं का विशेष महत्व है। पी.ई. वर्नन ने इसका उल्लेख अपने सिद्धांत में प्राथमिक योग्यता का वर्गीकरण रोजगार के अनुसार किया है।

रोजगार संतुष्टि में शैक्षिक योग्यताओं का विशेष महत्व है। शैक्षिक योग्यताओं के अनुरूप रोजगार मिलने पर व्यक्ति अधिक संतुष्ट रहता है। उच्च शिक्षा ग्रहण करने के बाद उसके अनुरूप रोजगार न मिलने पर वह संतुष्ट नहीं होता है। आज की स्थिति में प्रमुख कारण यही है।

व्यक्ति का असमायोजन किसी भी क्षेत्र से है तब वह रोजगार की परिस्थिति को प्रभावित करता है। घर का समायोजन सभी अन्य क्षेत्रों के समायोजन को भी प्रभावित करता है।

**2. रोजगार की कार्य–प्रणाली में निहित कारक** (Factors inherent in the job)– रोजगार की कार्य–प्रणाली तथा प्रशासन व्यवस्था समुचित न होने पर भी व्यक्ति अपने

टिप्पणी

कार्य से संतुष्ट नहीं होता है। अपेक्षित कौशल का विकास प्रशिक्षण से नहीं हो सकता है तब उसे कार्य करने में कठिनाई होगी और अपने कार्य को कुशलता एवं आत्म–विश्वास से नहीं कर सकता है। यदि समाज में रोजगार का स्तर महत्व नहीं रखता है तब भी उसे अपने कार्य से संतुष्टि नहीं होती है। इनके अतिरिक्त व्यक्ति के रोजगार की व्यवस्था का आकार भी प्रभावित करता है। छोटे आकार की व्यवस्था में बड़े आकार की व्यवस्था से संतुष्टि कम होती है अपेक्षा, क्योंकि बड़े आकार की व्यवस्था में प्रगति क्षेत्र अधिक होती है तथा रोजगार की सुरक्षा भी अधिक होती है। रोजगार की सुरक्षा (job security) आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण कारण है।

**3. रोजगार व्यवस्था तथा प्रशासन का नियंत्रण** (Factors controlling management)– इसके अंतर्गत कई कारक हैं, प्रमुख कारक इस प्रकार है– वेतन क्रम, भुगतान प्रणाली, रोजगार की सुरक्षा, प्रगति के अवसर, कार्य करने की परिस्थितियां, सहकार्यकर्ता तथा अन्य सुविधाएं। राज्य तथा केंद्रीय प्रशासन द्वारा संचालित रोजगार में प्रगति की दर अपेक्षाकृत अधिक है तथा अन्य सुविधाएं भी अधिक हैं। वेतन–वृद्धि की दर भी अधिक है। यही कारण है कि राज्य तथा केंद्र प्रशासन द्वारा संचालित संस्थाएं घाटे में रहती हैं और अन्य संस्थाएं सदैव लाभ में रहती हैं क्योंकि कुशल कार्यकर्ताओं को समुचित सुविधाएं तथा वेतन क्रम एवं वेतन वृद्धि की सुविधाएं हैं। जबकि प्रशासनिक संस्थाओं में ऐसा कुछ भी नहीं है। कुशल तथा अकुशल कार्यकर्ताओं को समान सुविधाएं दी जाती हैं। इसलिए प्रशासन संस्थाओं के कार्यकर्ता अपने रोजगार से संतुष्ट नहीं होते हैं।

## रोजगार संतुष्टि का महत्व

रोजगार संतुष्टि का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का महत्व है तथा उसके लिए उपयुक्त रोजगार के मिलने की समस्या के मुख्य तत्वों का विवरण इस प्रकार है–

**(1) सैद्धांतिक महत्व** (Theoretical Importance)– व्यावसायिक निर्देशन की प्रभावशीलता अनुगामी प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण मानदंड होता है। व्यवसायिक निर्देशन कितना प्रभावशाली रहा है यह व्यक्तियों की रोजगार संतुष्टि से पता चलता है।

रोजगार के चयन हेतु प्रवणता परीक्षण तथा अभिरुचि अनुसूचियों का निर्माण करते हैं, उनकी वैधता का मानदंड भी व्यक्तियों की 'रोजगार संतुष्टि' होती है। ई.के. स्ट्रांग ने अपनी 'अभिरुचि अनुसूचि' की वैधता के लिए 16 वर्ष बाद व्यक्ति के रोजगार संतुष्टि संबंध, मानदंड का उपयोग किया था क्योंकि प्रवणता परीक्षण तथा अभिरुचि अनुसूचियों के आधार पर व्यक्ति के भविष्य की कार्य कुशलता का पता किया जाता है।

**(2) व्यावहारिक महत्व** (Practical Importance)– इस क्षेत्र के अध्ययनों से विदित होता है कि व्यक्ति की रोजगार संतुष्टि से सभी को लाभ होता है। व्यवस्था का उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन में गुणवत्ता आती है। इस प्रकार व्यवस्था की प्रगति होती है जिसका लाभ कार्यकर्ताओं को भी मिलता है।

शोध अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है तथा व्यक्तियों ने स्वयं अनुभव भी किया है कि रोजगार की संतुष्टि से उच्च नैतिक मूल्यों का विकास होता है। रोजगार के कार्यों से आनंद मिलता है। कार्य के प्रति निष्ठा का भी विकास होता है। व्यक्ति की

टिप्पणी

कार्य कुशलता में वृद्धि होती है जिससे वह प्रगति करता है। जिसका लाभ समाज को भी मिलता है। राष्ट्र के उत्पादन में वृद्धि होती है। जिसका उदाहरण जापान के व्यक्ति अकसर देते हैं वे कार्यकुशल होने के साथ अपने कार्य के प्रति निष्ठावान अधिक हैं। जबकि भारत में आये दिन हड़ताल, सत्याग्रह तथा तालाबंदी की समस्याएं रहती हैं। कार्य कुशलता के साथ कार्य के प्रति निष्ठा तथा राष्ट्रीय भावना का होना भी आवश्यक है।

## रोजगार के लिए कुशल व्यक्तियों के मिलान की आवश्यकता

निर्देशन की सेवा का उपयोग व्यक्ति ने आत्म–बोध जागृत करने एवं उसकी व्यावसायिक, शैक्षिक, व्यक्तिगत निपुणता संबंधी संभावनाओं को बढ़ाने हेतु प्रायः किया गया है। किंतु प्रत्येक समाज में उसके विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल व्यक्तियों तथा उनकी क्षमताओं को दृष्टिगत रखकर इनका उपयुक्त रोजगार के साथ तालमेल बैठाने की समस्या साधारणतः देखने को मिलती है। आज विश्व के विकसित राष्ट्रों में भी इस समस्या को ठीक ढंग से सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। भारत जैसे विकासशील देशों में मिलान की यह समस्या कई कारणों से जटिल एवं गंभीर बनती जा रही है।

रोजगार मिलान के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्ति के बारे में समुचित जानकारी के अभाव में उसके लिए उपयुक्त व्यवसाय का मिलान प्रायः नहीं हो पाता है। हमारे यहां व्यक्तिगत सिफारिशों का बोल–बाला होने के कारण व्यक्तियों के बारे सही जानकारी न देकर उनमें गुटों के आधार पर बढ़ा–चढ़ाकर कथन देने की बात आमतौर से देखी जा सकती है।
2. व्यक्ति की योग्यताओं, अभिरुचियों तथा रुचियों के संबंध में वस्तुनिष्ठ प्रवणता परीक्षाओं की कमी के फलस्वरूप इनके मापन एवं मूल्यांकन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता जिससे हमारे यहां निर्देशन तथा परामर्श के अंतर्गत व्यक्ति को सही ढंग से जानने–समझने का प्रयास प्रायः नहीं होता है।
3. भारतीय संदर्भों में विविध रोजगारों तथा व्यवसायों से संबंधित रोजगार–विश्लेषण एवं रोजगार विवरण विकसित करने की दिशा में अब तक सराहनीय पग नहीं उठाए जा सके हैं जिससे सेवार्थी को अपनी स्वोपक्रम (initiative) के आधार पर उचित उद्यमों के मिलान कर सकने के अवसर प्रायः कम ही मिल पाते हैं।
4. हमारे यहां 'शिक्षित बेरोजगारी' की समस्या इतनी विशाल हो चुकी है कि किसी विशिष्ट व्यवसाय में रिक्त स्थानों के लिए आवेदकों की संख्या बहुत होती है तथा उसमें चुनाव की प्रक्रिया पूर्णतः आत्मनिष्ठ हुआ करती है। ऐसी परिस्थिति में उपयुक्त कार्य के लिए कुशल व्यक्ति का चयन संभव नहीं हो पाता है।
5. रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में सुनियोजित विकास का न हो पाना, इस संबंध में अन्य कठिनाई है। उदाहरणार्थ– शिक्षण, विधि तथा चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में जितने शिक्षक, वकील या डॉक्टर चाहिए उनसे कहीं अधिक मात्रा में उन्हें बाजार में भेजा जा रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यवसायों तथा

**टिप्पणी**

उनके भीतर पाए जाने वाले विविध कार्यों के सम्यक संचालन हेतु उपयुक्त पात्रों का चयन करना एक गंभीर समस्या बन जाती है।

6. व्यक्तियों के अनुकूल कार्य या रोजगार के अनुकूल व्यक्तियों के चुनाव में सबसे बड़ी बाधा यह है कि हमारे यहां संस्थाओं में चयन प्रक्रिया को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का न तो प्रयास है और न इसके प्रति विशेष आग्रह है। इसके दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। कई राज्यों में रोजगार दिलाने वाली अवांछनीय संस्थाएं ग्रामीण युवाओं से पैसे लेती हैं तथा कई अन्य ढंगों से अपनी स्वार्थपूर्ति करती हैं। ऐसी संस्थाओं के विरुद्ध सरकार भी कोई कानूनी कार्यवाही करने में हिचकती है।
7. शैक्षिक व्यवस्थाओं की योजनाशील एवं दूरदर्शी न होने के कारण उनसे हुए स्नातक अपने बारे में प्रायः असंभव एवं अकुशल व्यक्ति की छवि बना लेते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) इस छवि को सुधारने में कितनी प्रभावी सिद्ध होगी, अभी इस संबंध में कुछ कहना ठीक नहीं लगता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों तथा समस्याओं का प्रमुख कारण नियोजन का अभाव तथा राजनैतिक गतिविधियां तथा गलत नीतियां ही हैं।

## राष्ट्रीय व्यावसायिक वर्गीकरण

व्यावसायिक सूचनाओं को एन. सी. ओ. के आधार पर व्यवस्थित किया जाता है। इसके अंतर्गत व्यवसायों का वर्गीकरण समूहों तथा परिवारों में किया जाता है। इसके अंतर्गत 11 मंडल तथा 75 समूह हैं, जिन्हें 331 परिवारों में विभाजित किया गया है। यह प्रणाली व्यवसायिक सूचनाओं को व्यवस्थित करने में प्रयुक्त की जाती है।

रोजगार संबंधी सामग्री को मेहता ने 24 वर्गों में विभाजित किया है– (1) अभियंता, (2) वैज्ञानिक, (3) जैविक वैज्ञानिक, (4) डॉक्टर, (5) नर्स तथा स्वास्थ्य कार्यकर्ता, (6) अध्यापक, प्राचार्य, (7) न्यायाधीश, (8) अभिलेखा अधिकारी, (9) अर्थशास्त्री, (10) सामाजिक कार्यकर्ता, (11) मनोवैज्ञानिक, निर्देशन, परामर्शदाता, (12) पत्रकारिता, (13) कलाकृति, (14) प्रशासक, अधिकारी, प्रबंधक, (15) लिपिक तथा कार्यकर्ता, (16) कृषि, (17) विक्रेता (सेल्समेन), (18) मछली का कार्य, (19) खान खोदना, (20) वन विभाग, (21) यातायात, (22) संप्रेषण, (23) सुरक्षा आदमी तथा (24) पुलिस कार्यकर्ता।

## व्यवसायों का वर्गीकरण (Classification of Occupations)

विभिन्न व्यवसायों को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं–

1. **शिक्षा, प्रशिक्षण एवं स्तर के आधार पर** (On the basis of education, training and status)– बैकमैन (Backman) ने शैक्षिक स्तर, प्रशिक्षण एवं सामाजिक स्तर के आधार पर व्यवसायों को निम्नांकित ढंग से वर्गीकृत किया है–
   (क) कार्यकारी, प्रबंधकीय एवं व्यावसायिक (Executive, Managerial and Professional)– इस वर्ग में ये व्यवसाय आते हैं–
   - मौखिक (Verbal) जैसे– न्यायधीश, वकील, संपादक, प्रोफेसर, लेखा–निरीक्षक आदि।

- वैज्ञानिक (Scientific), जैसे– डॉक्टर, इंजीनियर, लेखाकर आदि।
- कार्यकारी अथवा प्रबंधकीय (Executive or Managerial)– जैसे विभिन्न प्रबंधक और प्रशासनिक अधिकारी।

(ख) व्यापार एवं उप–व्यावसायिक व्यवसाय (Business and sub-professional occupation)– इस वर्ग में निम्न व्यवसाय आते हैं–

- व्यापार (Business) जैसे व्यापारी, सेल्समेन, एजेंट आदि।
- उप–व्यावसायिक व्यवसाय (Sub-professional) जैसे– अभिनेता, फोटोग्राफर, डिजाइन आदि।

(ग) कौशलपूर्ण व्यवसाय (Skilled occupations)– इस वर्ग में निम्न व्यवसाय सम्मिलित किये जाते हैं–

- शारीरिक काम (Manual works) जैसे बिजली का काम करने वाले, रंग वाले, मशीनमैन, मैकेनिक आदि।
- बौद्धिक (Intellectual), जैसे– क्लर्क, निरीक्षक, स्टैनोग्राफर, खजांची आदि।

(घ) अर्द्ध–कुशलतायुक्त व्यवसाय (Semi-skilled occupation)– जैसे सिपाही, बस–कंडक्टर, ड्राइवर, गार्ड आदि।

(ङ) कुशलताविहीन व्यवसाय (Unskilled occupation) जैसे मजदूर, चपरासी चौकीदार आदि।

2. **कार्य की प्रकृति एवं स्वरूप के आधार पर** (On the basis of structure and nature of work)– कार्य की प्रकृति और स्वरूप के आधार पर व्यवसायों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

(क) सामाजिक व्यवसाय (Social occupations)– इस वर्ग के व्यवसायों में सामाजिक गुणों तथा उच्च स्तरीय सामाजिक विकास की आवश्यकता होती है। इस वर्ग के व्यवसायों में आते हैं– वकील, प्रशासक, प्रबंधक, अध्यापक, सेल्समैन आदि।

(ख) हस्त–कौशलयुक्त व्यवसाय (Occupations with manual skill)– इन व्यवसायों के अंतर्गत उपकरणों का प्रयोग किया जाता है तथा उच्च स्तर के हस्त–कौशल की आवश्यकता होती है, जैसे– बढ़ई, जिल्दसाज, पेंटर, मैकेनिक, इंजीनियर आदि।

(ग) शैक्षिक एवं विद्वतापूर्ण व्यवसाय (Intellectual and scholarly occupation)– इस वर्ग के व्यवसायों में बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है, जैसे– कवि, लेखक, वैज्ञानिक तथा अनुसंधानकर्ता आदि।

(घ) कार्यालय संबंधी व्यवसाय (Occupations related to office work)– इन व्यवसायों में सम्मिलित हैं– क्लर्क, खजांची, सुपरिंटेंडेंट, चपरासी आदि।

3. **रुचियों और अभिरुचियों के आधार पर** (On the basis of interests and aptitudes)– रुचियों तथा अभिरुचियों के आधार पर व्यवसायों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

(क) मैकेनिकल व्यवसाय (Mechanical occupations)
(ख) क्लर्की संबंधी व्यवसाय (Clerical occupations)
(ग) कलात्मक व्यवसाय (Artistic occupations)
(घ) संगीतात्मक व्यवसाय (Musical occupations)
(ङ) वैज्ञानिक व्यवसाय (Scientific occupations)
(च) साहित्यिक व्यवसाय (Literary occupations)
(छ) समाज–सेवा संबंधी व्यवसाय (Social service occupations)
(ज) गणनात्मक व्यवसाय (Computational occupations)।

## व्यवसाय चयन के सिद्धांत

व्यवसाय चयन के अपने कुछ सिद्धांत हैं। उनको ध्यान में रखकर व्यवसाय का चयन करना उत्तम रहता है। वास्तविक रूप में देखा जाए तो मालूम पड़ता है कि व्यावसायिक विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। 1951 में एली जिन्जबर्ग (Eli Ginzberg) ने व्यवसायों का अध्ययन किया और कहा कि 'व्यवसाय चयन एक प्रक्रिया है'। व्यवसाय चयन के निम्न सिद्धांत हैं–

## जिन्जबर्ग के सिद्धांत

इन्होंने व्यवसाय चयन प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित किया है–

(क) **कल्पनाएं** (Fantasy)– जिन्जबर्ग मानते हैं कि व्यावसायिक विकास प्रक्रिया बालक के जन्म से ही प्रारंभ हो जाती है और फिर यह ताउम्र चलती है। इसका अध्ययन बच्चे की सात वर्ष की उम्र से किया जा सकता है क्योंकि किसी भी बच्चे की कल्पनाओं का काल 11 वर्ष तक माना जाता है।

(ख) **सम्भाव्य चयन** (Tentative choice)– इस चयन में 11 से लेकर 17 वर्ष तक की आयु आती है। सम्भाव्य चयन को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

- **रुचि स्तर** (Interest stage): इस स्थिति को रुचि स्तर इसलिए कहा गया है क्योंकि इस स्तर पर बच्चों की रुचियों का विकास प्रारंभ हो जाता है।
- **क्षमता स्तर** (Capacity stage): जब रुचि स्तर का विकास हो जाता है तब उसके पश्चात बच्चा अपनी क्षमताओं को बढ़ाने का प्रयास करता है तो यह समय उनकी क्षमताओं में वृद्धि करने का स्तर माना जाता है।
- **मूल्य स्तर** (Value stage): क्षमता स्तर को पार करने के पश्चात बच्चा अपने मूल्यों का अध्ययन तथा विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। इसलिए उसे मूल्य स्तर कहा जाता है।

(ग) **वास्तविक चयन** (Realistic choice)– ऐसा माना जाता है कि 17 वर्ष से ऊपर की उम्र वास्तविक चयन की उम्र होती है। जिन्जबर्ग ने वास्तविक चयन को भी तीन स्तरों में विभाजित किया है–

टिप्पणी

- **खोज स्तर** (Exploration stage): इस स्तर में बच्चों के द्वारा प्रमुख रूप से व्यवसाय की खोज करने की एवं प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है इसलिए इसे 'खोज स्तर' के नाम से जाना जाता है।
- **निश्चयीकरण स्तर** (Crystallization stage): इस अवस्था में आकर बच्चे इस बात का निश्चय करने लगते हैं कि आगे चलकर उन्हें किस व्यवसाय की ओर रुख करना है। इसलिए इसे 'निश्चयीकरण स्तर' के नाम से जाना जाता है।
- **विशिष्टीकरण स्तर** (Specification stage): इस अवस्था में पहुंचकर बच्चे व्यवसायों के विशिष्ट समूह को ग्रहण करते हैं। इसलिए इस आयु को 'विशिष्टीकरण स्तर' के नाम से जाना जाता है।

**आलोचना** (Critisism)– सुपर (Super) ने जिन्जबर्ग के सिद्धांत की आलोचना की है। सुपर ने व्यवसाय चयन तथा व्यावसायिक विकास के लिए अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बातों का विश्लेषण किया है। उनके द्वारा बताई गई महत्वपूर्ण बातें निम्न हैं–

(क) सुपर का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति में अंतर्गत योग्यता, रुचि तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से भिन्नताएं निश्चित रूप से पाई जाती हैं।

(ख) ये भिन्नताएं ही विभिन्न व्यक्तियों में अलग–अलग व्यवसायों के प्रति रुचियों का विकास करती हैं।

(ग) समय परिवर्तन के साथ–साथ व्यक्ति की रुचि और व्यावसायिक साधनों में परिवर्तन होना स्वाभाविक होता है।

(घ) अलग–अलग व्यवसाय के लिए अलग–अलग योग्यताओं, व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं तथा कुशलताओं की आवश्यकता होती है।

(ङ) सुपर ने व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया को इस क्रम में विभक्त कर अध्ययन करने का प्रयास किया है– (i) कल्पनाएं, सामान्य पसंद और व्यवसायों की वास्तविक खोज; (ii) विभिन्न प्रयास तथा व्यावसायिक स्तर का स्थाई स्तर।

(च) बच्चा जब अपनी व्यावसायिक स्थिति को निर्धारित करने जाता है तो उसकी इस प्रक्रिया में अनेक कारण उत्तरदायी होते हैं। उदाहरणार्थ– उसके परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति किस प्रकार की है, उसकी मानसिक योग्यता किस स्तर की है? उसके व्यक्तित्व की विशेषताएं तथा सबसे प्रमुख परिवार के अन्य सदस्यों के क्या व्यवसाय हैं?

(छ) व्यावसायिक विकास का सामूहिक निर्देशन संभव है। व्यावसायिक विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति की योग्यताओं, रुचियों तथा कुशलताओं की परिपक्वता (Maturity) तथा आत्मानुभूति (Self-realization) का बोध करा देना अति आवश्यक है।

टिप्पणी

(ज) किसी भी कार्य को करने में संतोष प्राप्त करना तथा जीवन में संतुष्टि का अनुभव करना इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति अपने व्यवसाय, योग्याताओं, रुचियों, व्यक्तित्व गुण, मूल्यों तथा मान्यताओं का सही उपयोग कर पा रहा है अथवा नहीं।

## हालैंड का व्यावसायिक चयन का सिद्धांत

हालैंड ने सुपर तथा जिन्जबर्ग के व्यावसायिक सिद्धांतों की कटु आलोचना की है। ये कहते हैं कि सुपर एवं जिन्जबर्ग के सिद्धांतों को यदि आधार माना जाये तो व्यवसयी के बारे में निर्णय लेना एक कठिन कार्य है। इसी कारण हालैंड ने 1949 में अपना एक पृथक सिद्धांत 'व्यावसायिक चयन का सिद्धांत' प्रस्तुत किया। आपका कहना है कि व्यावसायिक चयन विशेष कारणों का परिणाम है–

1. अभिभावक (Parents)
2. सामाजिक स्तर (Social status)
3. वंशानुक्रम (Heredity)
4. संगी साथी (Friends)
5. प्रौढ़ व्यक्ति (Matured person)
6. संस्कृति एवं सभ्यता (Culture and civilisation)
7. भौतिक वातावरण (Physical Environment)

प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों के कारण अपने वातावरण के साथ एक विशेष प्रकार का व्यवहार करना सीख जाता है। यही व्यवहार उसे आगे चलकर अपने लिए व्यवसाय ढूंढ़ने के लिए मजबूर करता है तथा आत्म संतुष्टि प्राप्त करने के लिए वह कोई व्यवसाय भी अपनाना चाहता है। व्यक्ति के द्वारा अपनी सुविधानुसार इन व्यवसायों को कुछ समूहों में विभाजित कर लिया जाता है। हॉलैंड इन व्यवसायों के समूहों को 'व्यावसायिक वातावरण' (Occupational Environment) के नाम से बुलाते हैं। हालैंड ने इस प्रकार के 6 व्यावसायिक वातावरण के विषय में बताया है। ये निम्न हैं–

1. परंपरागत वातावरण (Conventional environment)
2. वास्तविक वातावरण (Realistic environment)
3. बौद्धिक वातावरण (Intellectual environment)
4. उद्यमशीलता (Enterprising)
5. सौंदर्यात्मक वातावरण (Aesthatic environment)
6. सामाजिक वातावरण (Social environment)

हालैंड आगे चर्चा करते हुए कहते हैं कि हर प्रकार के व्यावसायिक वातावरण के लिए एक निश्चित प्रकार की जीवन शैली आवश्यक होती है। यदि व्यक्ति की योग्यता

टिप्पणी

उसके व्यवसाय के अनुसार है तो उसे कार्य करना अच्छा भी लगेगा और संतोष भी प्राप्त होगा।

**हॉलैंड की व्यावसायिक चयन के लिए प्रक्रिया** (Process of vocational choice)

आपने व्यावसायिक चयन के लिए निम्न प्रक्रिया बताई है–

1. व्यक्ति को अपनी जीवन शैली के अनुरूप व्यावसायिक वातावरण का चुनाव करना चाहिए।
2. व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार व्यावसायिक वातावरण अथवा व्यावसायिक समूह का चुनाव करना चाहिए।
3. उपर्युक्त दोनों प्रक्रियाओं पर व्यक्ति के ज्ञान, व्यावसायिक सूचनाओं, मित्रों, पारिवारिक व्यक्तियों व सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों का प्रभाव पड़ता है।
4. व्यवसाय का चुनाव करते समय आयु पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है क्योंकि आयु तथा व्यवसाय दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं और आयु व्यवसाय चयन को प्रभावित करती है।
5. यदि व्यवसाय को शीघ्रता के साथ निश्चित करना है तो व्यक्ति की रुचियों में समन्वय ठीक होना चाहिए।
6. व्यवसाय चयन के लिए बाहरी तत्वों की ओर ध्यान देना भी बहुत जरूरी होता है। ये बाहरी तत्व हैं– बेरोजगारी, उपलब्ध व्यवसाय, व्यवसायों के सामाजिक मूल्य तथा मान्यताएं आदि।
7. व्यक्ति की जीवन शैली के विकास की एक ही दिशा होने पर व्यवसाय चयन शीघ्र होता है। जीवन शैली अनिश्चित हो जाने पर व्यवसाय का चयन भी कठिन होगा।
8. सुगम व्यवसाय चयन के लिए व्यवसाय वातावरण या व्यवसाय समूह का ज्ञान सही होना चाहिए।
9. सही आत्म ज्ञान सुनिश्चित व्यवसाय चयन के शीघ्र करने के लिए अति आवश्यक है। आत्म ज्ञान के अभाव में व्यवसाय चयन की दिशा तथा स्तर भी अनिश्चित ही रहते हैं।

यह सिद्धांत इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यवसाय पसंद करना और न करना अनेक तत्वों पर निर्भर करता है। लेकिन व्यावसायिक चयन के सिद्धांत पूर्ण रोजगार की दिशा में ही लागू हो पाते हैं। जब बेरोजगारी की स्थिति देश के अंतर्गत होती है उस समय व्यक्ति की पसंद और नापसंद का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। उन परिस्थितियों में जो भी व्यवसाय उपलब्ध होते हैं उन्हीं को स्वीकार करना पड़ता है। बेशक व्यक्ति उसे पसंद करता हो या नहीं।

टिप्पणी

## सुपर का व्यावसायिक चयन का सिद्धांत

डोनाल्ड ई. सुपर (Donald E. Super) ने अपनी पुस्तक 'व्यवसायों का मनोविज्ञान' (The Psychology of Careers) में व्यावसायिक चयन के सिद्धांत का वर्णन किया है। सुपर ने अपने सिद्धांत को आयु वर्गों में विभाजित कर अध्ययन किया है–

1. **वृद्धि** (Growth)– इस वर्ग को 15 वर्ष की आयु तक माना गया है। इसमें निम्न अवस्थाएं आती हैं–

 (क) **कल्पनात्मक अवस्था** (Fantasy state): इसमें 4 से 10 वर्ष तक की आयु को रखा गया है।

 (ख) **रुचि अवस्था** (Interest stage): इसमें 11 से 12 वर्ष के मध्य तक की आयु को रखा गया है।

 (ग) **क्षमता अवस्था** (Capacity stage): 13 से 14 वर्ष की आयु के मध्य

2. **अन्वेषण** (Exploration)– यह अवस्था 15 से 24 वर्ष के मध्य की मानी जाती है। इसको तीन अवस्थाओं में विभाजित कर अध्ययन किया गया है–

 (क) **सम्भाव्य अवस्था** (Tantative stage): 15 से 17 वर्ष के मध्य।

 (ख) **संक्रमण अवस्था** (Transition stage): 18 से 21 वर्ष के मध्य।

 (ग) **प्रयास अवस्था** (Trial stage): 22 से 24 वर्ष के मध्य।

3. **स्थापना** (Establishment)– इस अवस्था को 25 से 40 वर्ष के बीच का माना जाता है। इसको दो भागों में विभाजित किया गया है–

 (क) **प्रयास अवस्था** (Trial stage): 25 से 30 वर्ष के मध्य।

 (ख) **स्थायीकरण अवस्था** (Stabilisation): 30 से 40 वर्ष के मध्य।

4. **अनुरक्षण** (Maintainance)– 45 से 64 वर्ष के मध्य।

5. **पतन** (Decline)– 65 वर्ष से उपरांत की।

## व्यावसायिक चयन का हैबीघर्स्ट का सिद्धांत

हैवीघर्स्ट ने भी सुपर की भांति अपने व्यावसायिक सिद्धांत को आयु अवधि के आधार पर बांटा है। इनके सिद्धांत की विकास की निम्न अवस्थाएं हैं–

- **पहचान की अवस्था** (Identification stage)– इस अवस्था में आयु सीमा 5 से 10 वर्ष मानी गई है। इस स्थिति में बच्चा अपने परिवार के किसी सदस्य से संपर्क करता है। अधिकांशतः यह परिवार का सदस्य पिता है। बच्चा परिवार में जिस प्रकार का व्यवहार एवं स्वभाव देखता है आगे चलकर वह भी उसी प्रकार का करता है।
- **अर्जित करने की व्यवस्था** (Acquisition stage)– इस अवस्था में आयु सीमा 10 से 15 वर्ष मानी जाती है। इस आयु में वह उन गुणों एवं योग्यताओं को प्राप्त करना चाहता है जिनसे आगे चलकर वह अपने जीवन को सफल

बनाना चाहता है। इस अवस्था में बच्चे को अपने दायित्वों का भी अनुभव होने लगता है। कार्यों के प्रति बच्चे की स्वयं की धारणा विकसित होने लगती है अर्थात स्कूल तथा घर के कार्यों के लिए जिम्मेदारी समझने लगता है।

- **व्यावसायिक अवस्था** (Vocational stage)– इस अवस्था में 15 से 25 वर्ष तक की आयु सीमा रखी गई है। इस स्थिति में आकर छात्र अपने व्यवसाय के प्रति स्पष्ट निर्णय लेने की अवस्था में होता है तथा इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रयास भी करता है।
- **उत्पादक अवस्था** (Productive stage)– 25 से 40 वर्ष की आयु सीमा इसके अंतर्गत आती है। यह स्थिति व्यक्ति को उसकी सफलता के शिखर पर ले जाती है। उसकी यह उत्पादकता 40 से 70 वर्ष तक रहती है तथा उसे बनाये रखने का प्रयत्न करता है। इसी समय उसे व्यवसाय में प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है।

## संरचनात्मक सिद्धांत

इस सिद्धांत में इस बात का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाता है कि व्यावसायिक चयन के पीछे ऐसे कौन से व्यक्तिगत गुण एवं विशेषताएं हैं जो किसी भी व्यक्ति को एक विशेष व्यवसाय चुनने के लिए प्रेरित करते हैं। 'ऐनी रो' (Ane Roe) के अनुसार 'बाल्यावस्था में बालक के साथ माता–पिता के व्यवहार का अनुभव बहुत महत्वपूर्ण होता है।' बाल्यावस्था के अनुभवों का संबंध इच्छाओं एवं आवश्यकताओं से जुड़ा होता है। इन आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति बाल्यावस्था में ही होने से व्यक्ति को व्यवसाय चयन के लिए अभिप्रेरणा मिलती है। ऐनी रो के अनुसार व्यक्ति की योग्यता और कार्यकुशलता के निर्धारण में उसके बाल्यकाल की बौद्धिक योग्यता तथा परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती है।

**व्यवसाय चयन करते समय विचारणीय तत्व** (Important facts while selecting an occupation)

किसी भी व्यवसाय का चुनाव करने से पूर्व उस व्यवसाय के संबंध में सभी तरह की सूचनाएं अच्छी प्रकार से जान लेनी चाहिए। यद्यपि यह निश्चितता के साथ नहीं कहा जा सकता कि चुनाव से पूर्व कौन–कौन सी जानकारी हासिल करना अनिवार्य हैं। इसमें निम्न शीर्षकों पर अध्ययन किया जाता है–

1. **वेतन** (Salary)– व्यवसाय का चुनाव करने के बाद यह देखना आवश्यक है कि वेतन कितना है? हर वर्ष वेतन कितना बढ़ेगा? नौकरी के अंत में कितना वेतन होगा? वेतन देने का तरीका किस प्रकार का है– साप्ताहिक, प्रतिदिन अथवा महीनेवार? वेतन के अतिरिक्त अन्य सुविधाएं जैसे– मकान, बीमारी, बच्चों की पढ़ाई आदि प्राप्त हैं अथवा नहीं।
2. **कार्य की दशाएं** (Conditions of the work)– कर्मचारी तथा श्रमिक किन परिस्थितियों में काम करते हैं? क्या कार्य मात्र चारदीवारी के अंदर ही करना

पड़ता है अथवा भ्रमण पर भी जाना होता है। सफाई व्यवस्था किस प्रकार की है? हवा, जल एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था है अथवा नहीं? श्रमिकों एवं कर्मचारियों को कितने घंटे कार्य करना होता है? आदि समस्त बातों के संबंध में जानकारी कार्य की दशाओं के अंतर्गत की जाती है।

3. **व्यवसाय का महत्व** (Importance of the occupation)– जिस व्यवसाय में वह काम कर रहा है उसका सामाजिक महत्व क्या है? उसमें कितने व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त है? क्या व्यवसाय विकसित अवस्था में है? विकसित है अथवा विकासशील?
4. **नियोग का स्थान** (Placement)– नियोग के स्थान के अंतर्गत कार्य स्थल की जलवायु, परिवेश, यातायात के साधन, खाद्य सामग्री तथा अपने निवास स्थान से दूरी इत्यादि बातों को देखा जाता है।
5. **उन्नति के अवसर** (Opportunity of the progress)– किसी भी व्यवसाय में कैसे प्रवेश किया जा सकता है, व्यवसाय के लिए कितनी आयु होनी चाहिए, कितने दिन औसतन कार्य करना होगा, निरीक्षण करने की पद्धति क्या है? भविष्य में उन्नति के अवसर कैसे है आदि बातों का अध्ययन उन्नति के अवसर बिंदु के अंतर्गत किया जाता है।
6. **कार्य की नियमितता** (Duration of the work)– कार्य की नियमितता में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक होता है कि कार्य पूरे वर्ष रहता है अथवा वर्ष के कुछ महीनों में।
7. **पदार्थ/सामान जिस पर कार्य करना है** (Study of the meterial)– इसके अंतर्गत इस बात की जानकारी लेने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति जहां पर और जिस समान के साथ कार्य कर रहा है वह उसके स्वास्थ्य को तो प्रभावित नहीं करता है?
8. **कार्य का स्वभाव** (Nature of work)– इसके अंतर्गत इस बात को देखा जाता है कि  कार्य किस प्रकार का है तथा श्रमिक किस प्रकार का कार्य कर रहे हैं?
9. **वांछनीय प्रशिक्षण** (Desirable Training)– व्यवसाय में आने वाले व्यक्ति की योग्यताओं को देखना आवश्यक है अर्थात जिस कार्य के लिए आया है उसके लिए कितनी शिक्षा होनी चाहिए? क्या किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है, प्रशिक्षण अवधि कितनी होनी चाहिए तथा इसको कहां से और कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
10. **अन्य कर्मियों का अध्ययन** (Study of other employees)– किसी भी व्यवसाय का चुनाव करने से पहले इस बात की जानकारी लेना भी अति आवश्यक है कि वहां पर कितने कर्मचारी काम करते हैं तथा किस प्रकार के कर्मचारियों की संख्या है। क्योंकि इन्हीं कर्मचारियों के बीच में रहकर उसे कार्य करना होगा।

**टिप्पणी**

11. **व्यवसाय हेतु वांछनीय योग्यताएं** (Desirable abilities)– जिस व्यवसाय के अंतर्गत व्यक्ति जाना चाहता है वहां पर किस प्रकार की योग्यता जरूरी है। उसके लिए मानसिक योग्यता चाहिए अथवा शारीरिक। अगर मानसिक योग्यता आवश्यक है तो उसके लिए बुद्धि का क्या स्तर होना चाहिए, कितने संवेगों की आवश्यकता है, उस व्यक्ति में कितनी सहनशक्ति, स्थिरता, मानवता, धीरता एवं साहस होना चाहिए और सबसे महत्वपूर्ण है कि उसका व्यक्तित्व कैसा हो? इसके विपरीत यदि शारीरिक योग्यता आवश्यक है तो यह देखना पड़ेगा कि इस कार्य के लिए संपूर्ण शरीर की आवश्यकता है अथवा शरीर के कुछ अंगों की।
12. **वांछनीय अनुभव** (Desirable experience)– व्यवसाय करने के लिए कितने वर्ष का अनुभव आवश्यक है? क्या ऐसा भी संभव है कि बिना अनुभव के भी कार्य संपन्न हो जाएगा और यदि अनुभव की आवश्यकता है तो वह कहां से प्राप्त होगा।
13. **व्यवसाय का इतिहास** (History of occupation)– अन्य सभी बिंदुओं की भांति व्यवसाय का इतिहास जानना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। व्यवसाय की समय अवधि अर्थात दीर्घता एवं स्थायित्व के संबंध में जानकारी व्यवसाय के इतिहास में होती है। व्यवसाय का इतिहास भूत से लेकर वर्तमान तक उसका इतिहास बताता है कि व्यवसाय उन्नति कर रहा है, स्थिर है अथवा प्रगति की ओर अग्रसर है।
14. **व्यवसाय का गठन** (Organisation of occupation)– इसके अंतर्गत इस बात को परखने की आवश्यकता होती है कि व्यवसाय का गठन किस आधार पर तथा किस प्रकार किया गया है? व्यवसाय व्यक्तिगत है अथवा साझेदारी में, क्या व्यवसाय अथवा व्यापार संयुक्त स्कंद कंपनी है? इसके अतिरिक्त क्या वह सहकारी सिद्धांतों पर आधारित है, निजी है अथवा सरकारी आदि।

## अपनी प्रगति जांचिए

1. "मैन" ने कार्य विश्लेषण के कितने उद्देश्य निर्धारित किए हैं?

   (क) 4 (ख) 5

   (ग) 6 (घ) 3

2. किसी रोजगार या व्यवसाय को कुशलतापूर्वक करने हेतु की जाने वाली क्रियाओं को कितने मुख्य पक्षों में वर्गीकृत किया जाता है?

   (क) 5 (ख) 4

   (ग) 3 (घ) 6

## 2.3 अभिवृत्ति प्रारूप

टिप्पणी

'अभिवृत्ति प्रारूप' शब्द की उत्पत्ति समाजशास्त्र के क्षेत्र में हुई थी। अभिवृत्ति (अभिवृत्ति) विकास व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का हिस्सा है। आज, 'अभिवृत्ति' अध्ययन के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक के रूप में उभरी है। यदि आप अभिवृत्ति (करियर) साहित्य प्रकाशनों की जांच करते हैं तो इसके बारे में लोगों की रुचि में नाटकीय वृद्धि दिखाई देती है।

### 2.3.1 अभिवृत्ति प्रारूप

अभिवृत्ति प्रारूप (Career Patterns) शब्द का अर्थ पद, नौकरी, पेशा, अभिवृत्ति, वृत्ति और जीवन वृत्ति जैसे अंतर–परिवर्तनीय शब्दों से नितांत भिन्न है। अतः अभिवृत्ति प्रारूप और इन शब्दों में अंतर को समझने हेतु एक ऐसी संस्था का उदाहरण लेते हैं जहां लोग अलग–अलग काम करते हैं। मान लीजिए कि एक संगठन में विभिन्न स्तरों पर 1000 कर्मचारी हैं, जैसे कि चपरासी, क्लर्क, अधिकारी, कुशल श्रमिक, कार्यकारी, प्रबंधक आदि। इन विभिन्न स्तरों को तकनीकी रूप से पद (position) कहा जाता है। एक ही श्रेणी में समान पदों की संख्या को नौकरी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, स्टेनो एक प्रकार की नौकरी में आते हैं और क्लर्क की नौकरी चपरासी आदि से अलग होती है। उदाहरण के लिए संस्थान में 5 चपरासी, 30 क्लर्क हो सकते हैं। सभी चपरासी समान कार्य करते हैं और सभी क्लर्क समान कार्य करते हैं। इसलिए, लिपिक एक काम है। व्यवसाय समान कार्यों का एक समूह है जिसमें लोग अनिवार्य रूप से एक ही कार्य करते हैं, जो एक ही प्रकार के ज्ञान पर आधारित होते हैं और जो व्यक्ति के निजी कौशल पर आधारित न होकर मूल कौशल का उपयोग करते हैं।

अभिवृत्ति उन सभी गतिविधियों को संदर्भित करता है जिन्हें एक व्यक्ति अपने पूरे जीवन में करता है। तकनीकी रूप से, एक अभिवृत्ति नौकरियों या व्यवसायों में पदों का एक अनुक्रम है, जिसका एक व्यक्ति ने अपने जीवन के दौरान अनुसरण किया है।

पेशा का अर्थ है कि व्यक्ति उच्च स्तर पर अपेक्षित योग्यताओं को पूरा करता है। उदाहरण के लिए, डॉक्टर नामक पेशेवर व्यक्ति एमबीबीएस या एमएस है। वह तकनीकी रूप से योग्य है।

व्यवसाय शब्द का प्रयोग किसी व्यवसाय को निरूपित करने के लिए और किसी ऐसे व्यवसाय की विशेषता बताने के लिए किया जाता है, जिसमें अभिवृत्ति के कुछ व्यक्तिगत अर्थ शामिल होते हैं। एक व्यवसाय के चुनाव में, तीन व्यापक कारक होते हैं;

1 स्पष्ट समझ– अपने आप की (अस्मिता), अपने सहज–रुझान की, अपनी योग्यताओं, रुचियों, महत्वाकांक्षाओं, संसाधनों, सीमाओं और उनके कारणों की स्पष्ट समझ।

2 विभिन्न प्रकार के कार्य में सफलता, लाभ और हानि, प्रतिफल/पारितोषिक, अवसरों और संभावनाओं की आवश्यकताओं और शर्तों का ज्ञान।

3 उपर्युक्त दो समूहों के संबंध पर सही विवेकपूर्ण विचार।

यह विभेदन निम्नलिखित पैरा से स्पष्ट हो सकता है :

'तीस साल पहले, मैं अध्यापन को अपनी **अभिवृत्ति** बनाना चाहता था। मैंने वह **पेशा** अपना लिया और रोज़मर्रा की नौकरी की ज़रूरतों में रम गया और अपने **व्यवसाय** की माँगों को पूरा किया। पिछले तीस वर्षों में मेरे समर्पण को **विभिन्न पदोन्नतियों** से पुरस्कृत किया गया है। लोग कहते हैं कि मैं बेहतरीन **प्रोफेशन** से जुड़ा हूं। मेरे **पेशेवर अनुभव** का उपयोग कार्यशालाओं, सेमिनारों, अतिथि प्राध्यापकों आदि में मेरी भागीदारी के माध्यम से हुआ है। आज, मैं इस तरह की विविध गतिविधियों और अपनी **अभिवृत्ति के विकास** से खुश हूं।'

अभिवृत्ति प्रारूप किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के जीवन में व्यवसायों के अनुक्रम को संदर्भित करता है।

उपरोक्त चर्चा से अभिवृत्ति (अभिवृत्ति) शब्द और इस क्षेत्र में आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले अंतर–परिवर्तनीय शब्दों के बीच सूक्ष्म अंतर स्पष्ट हो जाता है।

**जीवन के चरणों के साथ अभिवृत्ति प्रारूप का संबंध**

व्यावसायिक चयन उन लोगों के लिए निर्णय लेने की एक आजीवन प्रक्रिया है जो अपने काम से उच्च स्तर की संतुष्टि चाहते हैं। यह उन्हें बार–बार पुनर्मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करता है कि कैसे वे अपने बदलते अभिवृत्ति लक्ष्यों और काम की दुनिया की वास्तविकताओं के बीच समायोजन में सुधार कर सकते हैं, और समाज में एक उत्पादक जीवन जी सकते हैं। ये सभी अभिवृत्ति प्रारूप से संबंधित हैं। अभिवृत्ति प्रारूप की अवधारणा जीवन के चरणों की मनोवैज्ञानिक अवधारणा के काफी समानांतर है।

## 2.3.2 अभिवृत्ति प्रारूप के चरण

इस संबंध को समझने के लिए, आइए देखें कि मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने जीवन के चरणों को कैसे परिभाषित किया है।

**'सुपर'** (1957) ने जीवन के पांच चरणों को निम्न प्रकार से परिभाषित किया हैः

विकासशील चरण – 0 – 14 वर्ष लगभग

अन्वेषी चरण– 14 – 25 वर्ष

स्थापना चरण – 25 – 45 वर्ष

अनुरक्षण चरण – 45 – 66 वर्ष

अपक्षय का चरण – 65 – + वर्ष

'सुपर' ने अभिवृत्ति विकास को एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया माना है जो विकास के चरणों की एक श्रृंखला से गुजरती है तथा अभिवृत्ति विकल्प निर्णय एक समय में एक निर्णय के बजाय निर्णयों की एक श्रृंखला का संचयी प्रभाव होता है।

**विकास चरण (0–14)** : यह चरण अभिवृत्ति प्रारूप का आधार है। यह आज के समय में अभिवृत्ति के चयन के लिए अभिवृत्ति प्रारूप की तैयारी है। इस स्तर पर बच्चे, कुछ हद तक, यह विचार करने में सक्षम होते हैं कि वे वयस्कों के रूप में वे क्या बनना चाहेंगे। इस स्तर पर, बच्चा सामान्य रूप से मध्य स्तरीय विद्यालय में होता है।

स्कूलों में, 10 + 2 स्तर पर उपयुक्त विषयों के चयन में उचित निर्णय लेने की आशा के साथ, उन्हें काम की दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न संभावनाओं से अवगत कराया जाता है, जिसमें वे प्रवेश कर सकते हैं। विभिन्न विषयों के बारे में सामान्य जानकारी के साथ, छात्र विभिन्न विषय क्षेत्रों के प्रति कुछ पसंद और नापसंद विकसित करते हैं। स्कूल के विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धियों के संदर्भ में उनकी अभिरुचि और रुचियां भी प्रकट होने लगती हैं। इस चरण में अभिवृत्ति प्रारूप प्रक्रिया व्यक्ति को उसकी रुचियों और कौशल के बारे में जागरूक होने में मदद करती है, ताकि इन्हें एक उपयुक्त नौकरी के साथ जोड़ा जा सके। इस प्रकार व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी पसंद को ठोस बनाए। परिवार के महत्वपूर्ण व्यक्तियों तथा स्कूल की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। 11–12 वर्ष की आयु के दौरान रुचियां आकांक्षाओं और गतिविधियों की प्रमुख निर्धारक होती हैं। बढ़ती सामाजिक भागीदारी और वास्तविकता परीक्षण के कारण रुचि के साथ–साथ क्षमता अधिक महत्वपूर्ण होती जाती है। 13–14 वर्ष की आयु में योग्यताओं को अधिक महत्व दिया जाता है और नौकरी की आवश्यकताओं पर विचार किया जाता है।

**अन्वेषी चरण (14–25)** : किशोर अन्वेषण में स्वयं की समझ विकसित करना, नवोदित वयस्क की भूमिका का प्रयास करना, एक साथी की तलाश करना, एक व्यवसाय खोजना और समुदाय में अपना स्थान खोजना शामिल है। यह वह चरण है जब छात्र विभिन्न क्षेत्रों की खोज करना शुरू करते हैं। इस स्तर पर छात्रों को यह निर्णय लेना होता है कि वे किस स्ट्रीम का अध्ययन करना चाहते हैं– कला, वाणिज्य, विज्ञान, ललित कला आदि। ये विषय कुछ हद तक अभिवृत्ति उन्मुख हैं और उन्हें चुने हुए विषयों पर टिके रहना होता है। वर्तमान में कई स्कूलों में मिक्स एंड मैच प्रारूप भी प्रचलन में है। छात्र कोई भी पांच विषय चुन सकते हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञान के छात्र अर्थशास्त्र ले सकते हैं। कॉमर्स के छात्र राजनीति विज्ञान जैसे विषय ले सकते हैं। कला के छात्र यदि रुचि रखते हैं तो गणित अपना सकते हैं, क्योंकि यह सभी क्षेत्रों में प्रयोग होने वाला एक महत्वपूर्ण विषय है।

इस स्तर पर छात्र आत्मनिर्भर भी बनना चाहते हैं, इसलिए वे कोई साइड जॉब भी करते हैं। इस स्तर पर मार्गदर्शन और परामर्श की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। किशोर यह तय करने के लिए विभिन्न व्यवसायों की खोजबीन करना शुरू कर देता है कि वह किस व्यवसाय को अपनाना चाहेगा। वह उस क्षेत्र के बारे में जानने के लिए प्रशिक्षु के रूप में भी काम करता है जिसमें उसकी रुचि है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि एक व्यक्ति न केवल कमाना चाहता है, बल्कि ऐसी नौकरी करना भी पसंद करता है जो मनोवैज्ञानिक रूप से संतोषजनक हो और माता–पिता की स्थिति या महत्वाकांक्षाओं को पूरा कर रही हो। इसलिए सामाजिक मानदंड, व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक जरूरतें किसी व्यवसाय के चयन में महत्वपूर्ण होती हैं। कार्यों के विभिन्न क्षेत्र परस्पर जुड़े हुए होते हैं और अभिवृत्ति की पूरी समझ को व्यक्ति की अन्य गतिविधियों, विश्वासों, सामाजिक स्थिति, बौद्धिक स्तर आदि के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। स्कूल में, अवकाश गतिविधियों और अंशकालिक कार्य में स्व–परीक्षा, भूमिका परीक्षण और व्यावसायिक अन्वेषण होते हैं। इस चरण में निम्नलिखित तीन उप चरण हैं :

(i) **संभावित** – 15–17 वर्ष की आयु में, जरूरतों, रुचियों, क्षमताओं, मूल्यों और अवसरों पर विचार किया जाता है। अस्थायी विकल्प बनाए जाते हैं, जो कल्पना (नाटक आदि), चर्चा, पाठ्यक्रम, कार्य आदि में आजमाए जाते हैं।

(ii) **संक्रमण** – 18–21 वर्ष की आयु में, यथार्थ/वस्तुस्थिति के विचार को, अभिवृत्ति विकास को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि अब युवा श्रम बाजार या पेशेवर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश करते हैं।

(iii) **परीक्षण** – यह लगभग 22–24 वर्ष की आयु में शुरू होता है। जब एक उपयुक्त प्रतीत होने वाला क्षेत्र/ विषय व्यक्ति के दिमाग में स्थिर हो जाता है और वह इसमें एक प्रारंभिक कार्य (फर्स्ट जॉब) प्राप्त करता है और इसे एक जीवन वृति के रूप में आजमाने को तैयार होता है।

**स्थापना चरण (24–25)** : जैसे–जैसे अभिवृत्ति का प्रारूप स्पष्ट होता जाता है व्यक्ति अपने क्षेत्र में अपना एक सुरक्षित स्थान बनाने के लिए प्रयास करता है। अधिकांश व्यक्तियों के लिए ये रचनात्मक वर्ष होते हैं। स्थापना चरण में एक परिवार की स्थापना, एक घर का निर्माण और समुदाय में एक भूमिका के साथ–साथ एक कार्य प्रणाली आधारित एक व्यवसाय का निर्माण शामिल है।

इस अवस्था में व्यक्ति अपना नाम कमाना चाहता है। वह काम के अपने क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनने की कोशिश करता है ताकि उसे मान्यता मिल सके और बड़े पैमाने पर समाज की सेवा और योगदान कर सके। आत्म–समायोजन की इस प्रक्रिया में, वह पेशेवर परिपक्वता प्राप्त करके आत्म–साक्षात्कार की ओर बढ़ता है, और इसके अलावा, सांस्कृतिक और नैतिक विरासत में योगदान देता है। घरेलू मोर्चे पर भी, वह अपने बच्चों को काम की दुनिया और सामाजिक जीवन के प्रति पहल करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**अनुरक्षण का चरण (45–65)** : काम की दुनिया में जगह बनाने के बाद अब चिंता उसे बरकरार रखने की है। अनुरक्षण की प्रक्रिया में परिवार में अपना स्थान बनाए रखने, घर को अक्षुण्ण रखने, समुदाय में उपस्थिति बनाए रखने और अपने व्यवसाय/पेशे को फलते–फूलते देखना शामिल है। इस स्तर पर, आमतौर पर यह देखा गया है कि व्यक्ति ने अपने पेशे में बहुत अनुभव प्राप्त कर लिया होता है। इसलिए, जो हासिल किया है उसे वह बनाए रखने का प्रयास करते हैं जिसके लिए वे कुछ नया करने, नए कौशल हासिल करने या नई चुनौतियों की तलाश करने का भी प्रयास करते हैं। हालांकि, इस स्तर पर बहुत बड़ी सफलता हासिल करना मुश्किल होता है। व्यक्ति सक्रिय रूप से आत्म–साक्षात्कार के लक्ष्य की ओर बढ़ता है क्योंकि अन्य सभी जरूरतें कमोबेश पूरी हो चुकी होती हैं। धन का उपयोग आत्म–साक्षात्कार की प्रक्रिया हेतु एक साधन के रूप में किया जाता है।

**अपक्षय का चरण (65 प्लस)** : जैसे–जैसे शारीरिक और मानसिक शक्तियां घटती जाती हैं, कार्य गतिविधि में परिवर्तन होता है, और धीरे–धीरे ये गतिविधियां कम होकर फिर समाप्त हो जाती हैं। इस चरण में अपने लिए नई भूमिकाएँ विकसित की जानी चाहिए, क्योंकि गिरावट न केवल शारीरिक रूप से (कम ऊर्जा और सहनशक्ति में) और व्यावसायिक रूप से, बल्कि अन्य मामलों में भी प्रकट होती है, जैसे कि

पारिवारिक और सामुदायिक जिम्मेदारियों में भी कमी आने लग जाती है। गिरावट के चरण में दो मुख्य उप चरण होते हैं :

(i) **अवमन्दन (65–70)** : काम की गति धीमी हो जाती है, अपने कार्यों / कर्तव्यों को दूसरों को स्थानांतरित कर दिया जाता है और घटती क्षमताओं के अनुरूप काम की प्रकृति बदल जाती है। कई व्यक्ति अपने पूर्णकालिक कार्य के स्थान पर अंशकालिक नौकरी ढूंढते हैं।

(ii) **सेवानिवृत्ति (70– +)** : इस चरण में सभी के लिए व्यवसाय की पूर्ण समाप्ति का समय आ जाता है; कुछ को आसानी से और सुखद रूप से, दूसरों को कठिनाई और निराशा के साथ, और कुछ को केवल मृत्यु के साथ, ('सुपर', एट अल। 1957)।

### जीवन चरण और कार्य अवधि

**मिलर और फॉर्म (1951)** ने कार्य के इर्द–गिर्द केंद्रित सामाजिक जीवन के चरणों को परिभाषित किया है। इनके द्वारा पांच जीवन चरण या कार्य अवधि निम्न प्रकार से हैं–

**प्रस्तावना कार्य अवधि** : इस अवधि में, घर, पड़ोस और स्कूल की गतिविधियों के माध्यम से काम की दुनिया का एक अभिविन्यास होता है। जैसा कि हम देख सकते हैं यह चरण 'सुपर' द्वारा परिभाषित विकास चरण की तरह है।

**प्रारंभिक कार्य अवधि** : यह अवधि लगभग 14 वर्ष की आयु में पहले अंशकालिक या ग्रीष्मकालीन कार्य अनुभव से शुरू होती है। किशोर को अंशकालिक प्रतिभागी के रूप में काम की दुनिया से सीधे परिचित कराया जाता है। यह अवधि खोजपूर्ण चरण से मेल खाती है।

**परीक्षण कार्य अवधि** : यह अवधि स्थापना के चरण की प्रतिकृति है। यह नियमित श्रम बाजार में प्रवेश की तरह है। यह 16–25 साल की उम्र में होता है। यह तब तक जारी रहता है जब तक कि एक उपयुक्त कार्य स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती, आमतौर पर नौकरियों में काफी बदलाव के बाद व्यक्ति को इस प्रकार का काम मिल जाता है, जहां वह संतुष्ट महसूस करता है और यह कार्य आगे सफलता प्रदान करता है।

**स्थिर कार्य अवधि (35–60 / 65)** : इस स्तर पर व्यक्तियों को एक ऐसी कार्य स्थिति मिल जाती है जो प्रकृति में कमोबेश स्थायी होती है। किंतु यदि वे बेहतर संभावनाओं के लिए अपने इस काम को बदलते हैं, तो कभी–कभी वे एक बार फिर परीक्षण अवधि में प्रवेश कर सकते हैं।

**सेवानिवृत्ति की अवधि (60–65+)** : सेवानिवृत्ति की अवधि 'सुपर' द्वारा परिभाषित गिरावट के चरण की प्रतिकृति है।

## 2.3.3 अभिवृत्ति प्रारूप के प्रकार

अभिवृत्ति प्रारूप के प्रकार मिलर और फॉर्म द्वारा परिभाषित जीवन चरणों की अवधारणा से भिन्न होते हैं। ये समय अवधि के संदर्भ में चुने गए अभिवृत्ति की प्रकृति के संदर्भ

में हैं। **डेविडसन और एंडरसन** (1937) ने इस संबंध में चार प्रकार के अभिवृत्ति प्रारूप पाए हैं जो इस प्रकार हैं :

(i) **स्थिर अभिवृत्ति प्रारूप** : यह प्रारूप उन व्यक्तियों पर लागू होता है जो स्कूल या कॉलेज से सीधे एक विशेष प्रकार के काम को करने लग जाते हैं और फिर उसे वे लगातार करते हैं, यानी, उन्होंने परीक्षण कार्य अवधि चरण को छोड़ दिया है/इसमें प्रवेश ही नहीं किया है। एक व्यक्ति एक अभिवृत्ति चुनता है और सेवानिवृत्त होने तक उस पर टिका रहता है। स्थिर अभिवृत्ति प्रारूप वाले लोगों के कुछ उदाहरण रक्षा सेवाएं, बैंकिंग, सिविल सेवा, केंद्रीय सेवाएं, आयकर, शिक्षण, सचिवीय सेवाएं, चार्टर्ड अकाउंटेंसी आदि हो सकते हैं।

(ii) **पारंपरिक अभिवृत्ति प्रारूप** : इस मामले में स्थिर रोजगार तक का सफर प्रारंभिक कार्य से आरम्भ होकर परीक्षण स्तर से गुजरता है। प्रबंधकीय, लिपिक, एमबीए, कंप्यूटर इंजीनियरिंग, कार्यकारी/अधिशासी इत्यादि इस प्रकार के कार्य हो सकते हैं। व्यक्ति ने एक स्थिर अभिवृत्ति से आरम्भ नहीं किया होता है। वह अलग–अलग अभिवृत्ति में अपनी किस्मत आजमाता है, जब तक कि वह अंत में किसी स्थिर या स्थायी अभिवृत्ति को अपनाए, जो उसके लिए संतोषजनक हो।

(iii) **अस्थिर अभिवृत्ति प्रारूप** : इसमें, परीक्षण–स्थिर–परीक्षण अनुक्रम का पालन किया जाता है। इस श्रेणी में, हम फैशन प्रौद्योगिकी, नृत्य, संगीत आदि विभिन्न शिल्प से संबंधित अभिवृत्ति पर विचार कर सकते हैं। व्यक्ति एक से दूसरे अभिवृत्ति या व्यवसाय या अंशकालिक नौकरी में सलाहकार, प्रॉपर्टी डीलर आदि के रूप में गमन करता है।

(iv) **बहु–परीक्षण अभिवृत्ति प्रारूप** : इस पद्धति में रोजगार में बार–बार परिवर्तन होता है, जिसमें कोई व्यक्ति पर्याप्त रूप से लंबे समय तक किसी एक रोजगार या अभिवृत्ति में स्थापित व्यक्ति कहलाए जाने लायक नहीं होता है। सलाहकार, तकनीकी सहायक आदि जैसे उदाहरण इस हेतु उद्धृत किए जा सकते हैं।

## अभिवृत्ति प्रारूप के निर्धारक

व्यक्तियों के समूह के एक नौकरी से दूसरी नौकरी में परिवर्तन से उभरने वाले प्रारूप को अभिवृत्ति प्रारूप कहा जाता है। अनुक्रम, आवृत्ति और परीक्षण तथा स्थिर नौकरियों की अवधि कई कारकों द्वारा निर्धारित होती है। उनमें से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :

- व्यक्तिगत–अभिभावक सामाजिक–आर्थिक स्तर;
- मानसिक क्षमता;
- कौशल;
- व्यक्तित्व विशेषताएँ (ज़रूरतें, मूल्य, रुचियाँ, लक्षण और आत्म–अवधारणा);
- अभिवृत्ति की परिपक्वता; तथा
- वे अवसर जो व्यक्ति के सामने आते हैं।

टिप्पणी

स्व–अवधारणा (अस्मिता) और सामाजिक–आर्थिक स्थिति, अभिवृत्ति प्रारूप के निर्धारक के रूप में सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं क्योंकि वे :

(i) अवसरों को बढ़ाने या घटाने की प्रवृत्ति; तथा

(ii) व्यावसायिक अवधारणाओं को आकार देने में मदद करते हैं।

**क्रुम्बोल्ट्ज़** (1989) व्यवसाय के चुनाव में निर्णय प्रक्रिया का वर्णन करता है अभिवृत्ति प्रारूप निम्नलिखित चार कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता हैः

- परिवेश की स्थिति और घटनाएँ (नौकरियों की संख्या और प्रकृति, प्रशिक्षण के अवसर, सामाजिक नीतियां तथा प्रशिक्षुओं और श्रमिकों के चयन की प्रक्रिया, तकनीकी विकास और सामाजिक संगठनों में परिवर्तन)।
- आनुवंशिक गुण और विशेष योग्यताएं (जाति, लिंग, शारीरिक बनावट और विशेषताएं, बुद्धि, कंप्यूटिंग क्षमता, पेशीय समन्वय)।
- सीखने के अनुभव (जिसमें पूर्ववर्ती, गुप्त और प्रत्यक्ष व्यवहार संबंधी प्रतिक्रियाएं और परिणाम शामिल हैं)।
- कार्य दृष्टिकोण कौशल (दृष्टिकोण, ज्ञान, कौशल, प्रदर्शन मानक और मूल्य, काम करने की आदतें, अवधारणात्मक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं, मानसिक सेट और भावनात्मक प्रतिक्रिया जो एक व्यक्ति नई स्थितियों और कार्यों में प्रयुक्त करता है)। यह कौशल विकास बाधाओं से निपटने के लिए तत्परता विकसित करते हैं।

उपर्युक्त सभी कारक निर्धारक हैं, न कि प्रक्रियाएँ। निर्धारकों के बीच परस्पर क्रिया/अन्योन्यक्रिया ही प्रक्रिया कहलाती है। व्यक्ति और समाज के बीच परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप आत्म–अवलोकन सामान्यीकरण होता है। ये स्वयंसिद्ध हैं। स्व–अवधारणा सिद्धांत में इन उपदेशों को संगठित आत्म–अवलोकन या आत्म–अवधारणाओं ('सुपर' और अन्य, 1953) के रूप में देखा जाता है। सामाजिक अधिगम, अनुभवात्मक अधिगम और अंतःक्रियात्मक अधिगम सामान्य रूप से आत्म–अवधारणा और विशेष रूप से व्यावसायिक आत्म–अवधारणा के निर्माण में शामिल प्रक्रियाएं हैं।

सामाजिक–आर्थिक स्थिति, बुद्धि और शैक्षणिक उपलब्धि अभिवृत्ति प्रारूप को प्रभावित करती है। गरीबों के बच्चों में दूसरों की तुलना में अस्थिर या कई अभिवृत्ति प्रारूप होने की संभावना होती है। दूसरी ओर, अमीरों के बच्चों में स्थिर अभिवृत्ति की संभावना अधिक होती है।

## अभिवृत्ति की परिपक्वता

अभिवृत्ति परिपक्वता शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विशेषताओं का एक तानाबाना है। यह संज्ञानात्मक और भावात्मक दोनों होती है। इसमें अभिवृत्ति विकास के आरम्भ के चरणों और उप–चरणों में सफलता के विभिन्न स्तर शामिल होते हैं। हालांकि, अभिवृत्ति की परिपक्वता एक काल्पनिक निर्माण है। इसकी परिभाषा शायद

उतनी ही कठिन है जितनी कि बुद्धि की। अभिवृत्ति की परिपक्वता जीवन अभिवृत्ति पटल द्वारा दर्शाया गया पहला आयाम है। यह अनुदैर्ध्य है और एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन काल को समाविष्ट करता है।

अभिवृत्ति की परिपक्वता को आमतौर पर आत्मविकास हेतु व्यक्ति की तत्परता के रूप में परिभाषित किया जाता है। अभिवृत्ति डेवलपमेंट इन्वेंटरी (सीडीआई) के शोध के अनुसार यह तत्परता भावात्मक और संज्ञानात्मक दोनों है। CDI दो भावात्मक चरों का आकलन करता है, जैसे कि अभिवृत्ति प्लानिंग (या प्लानफुलनेस), और अभिवृत्ति एक्सप्लोरेशन (या जिज्ञासा)। यह तीन संज्ञानात्मक विशेषताओं का भी आकलन करता है जिनमें शामिल हैं :

1 अभिवृत्ति निर्णय लेने के सिद्धांतों का ज्ञान और उन्हें वास्तविक विकल्पों पर लागू करने की क्षमता;

2 अभिवृत्ति, व्यवसायों और काम की दुनिया की प्रकृति का ज्ञान; तथा

3 उस कार्य के क्षेत्र का ज्ञान जिसमें व्यक्ति को व्यावसायिक वरीयता प्राप्त होती है।

अभिवृत्ति परिपक्वता का एक घटक, जो अनुकूलन में पहचाना गया है, वह यथार्थवाद है, 'सुपर' और अन्य (1957) द्वारा अभिवृत्ति प्रारूप अध्ययन (सीपीएस) मोनोग्राफ और क्रिट्स (1978)।

यथार्थवाद एक मिश्रित भावात्मक और संज्ञानात्मक इकाई है। इसका मूल्यांकन व्यक्तिगत, स्व–रिपोर्ट और वस्तुनिष्ठ डेटा के संयोजन से किया जाता है और व्यक्ति की योग्यता की तुलना उस व्यवसाय में विशिष्ट लोगों की योग्यता के साथ की जाती है, जिसकी वह इच्छा रखता है।

यथार्थवाद एक "विशेषता" है इसका आकलन अभिवृत्ति डेवलपमेंट इन्वेंटरी (CDI) या अभिवृत्ति मैच्योरिटी इन्वेंटरी (CMI) के माध्यम से किया जा सकता है। हालांकि, किसी भी एक उपाय को परिपक्वता नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कोई भी परीक्षण या इन्वेंट्री स्कोर एक सम्पूर्ण जटिलता के एक या अधिक पहलुओं का अधिक से अधिक एक आकलन ही होता है।

### व्यावसायिक सफलता

व्यावसायिक सफलता स्वायत्तता की भावनाओं की ओर ले जाती है, जो कि वर्तमान और यहां तक कि कुछ हद तक व्यक्ति के भविष्य पर भी नियंत्रण प्रदान करती है। यह उन चीजों में रुचि के विकास की ओर भी ले जाता है जिनमें व्यक्ति सफल रहा है। यह पता लगना कि व्यक्ति कुछ हद तक अपनी गतिविधियों को नियंत्रित कर सकता है, आत्म–सम्मान के विकास में मदद करता है। साथ ही, इससे यह समझ विकसित होती है कि व्यक्ति भविष्य की घटनाओं हेतु योजना बना सकता है और उन्हें आकार देने में सफलता प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार योजना बनाने, समस्याओं को पहचानने और हल करने और निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है।

## व्यावसायिक अनुकूलन

जब कोई व्यक्ति नौकरी और उसकी चुनौती से अपेक्षाकृत अप्रभावित रहता है तो इसे व्यावसायिक अनुकूलन कहा जाता है। इसे व्यावसायिक समायोजन भी कहते हैं। आप पूर्व शिक्षकों और वर्तमान शिक्षकों से अपेक्षाओं में अंतर कर सकते हैं। उस समय शिक्षक ही सूचना का एकमात्र स्रोत थे। आज के शिक्षक टीवी कार्यक्रमों, समाचार पत्रों, कंप्यूटरों, सीडी, आईसीटी आदि जैसे अन्य स्रोतों का उपयोग सूचना प्रदाताओं के रूप में कर रहे हैं और एक शिक्षक के रूप में अपनी नौकरी की आवश्यकता के अनुसार उन्होंने खुद को अनुकूलित किया है।

## व्यावसायिक समायोजन का मानदंड

व्यावसायिक समायोजन उस डिग्री का एक कार्य है जिस तक कोई व्यक्ति अपनी आत्म–अवधारणा को लागू करने में सक्षम होता है, अपने काम और अभिवृत्ति में अपनी महत्वपूर्ण जरूरतों को पूरा करने के लिए जिस तरह की भूमिका वह निभाना चाहता है उसका अर्थ है आत्मज्ञान।

व्यावसायिक समायोजन में सुधार किस हद तक समायोजन के अन्य पहलुओं में सुधार ला सकता है?

तार्किक रूप से, व्यावसायिक समायोजन में सुधार से समायोजन के अन्य पहलुओं में सुधार आना चाहिए, क्योंकि सामान्य समायोजन विशिष्ट समायोजनों का संश्लेषण है। तनाव को दूर करने, भावनाओं को स्पष्ट करने, अंतर्दृष्टि प्राप्त करने, सफलता प्राप्त करने से, एक व्यक्ति सक्षमता की भावना विकसित करता है जो व्यावसायिक समायोजन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। व्यक्ति द्वारा जीवन के अभिवृत्ति प्रारूप के अन्य पहलुओं के साथ पर्याप्त रूप से सामना करने की क्षमता का एहसास करना संभव है, इस प्रकार सामान्य समायोजन में सुधार लाने से अन्य पक्षों में सुधार होगा।

जैसे किसी ग्राहक को उसकी संपत्ति के बेहतर व्यावसायिक समायोजन करने में सहायता करने के परिणामस्वरूप परामर्शदाता स्वयं अपने जीवन के अन्य क्षेत्रों में बेहतर समायोजन करने में सक्षम होगा।

दुरनुकूलित (कुसमायोजित) व्यक्ति, जिसे व्यावसायिक समायोजन में बहुत समस्याएँ हैं, की परामर्शदाताओं द्वारा मदद की जा सकती है। यह पाया गया है कि व्यावसायिक समायोजन में सुधार से ऐसे व्यक्तियों के समग्र समायोजन में सुधार हुआ है।

व्यावसायिक समायोजन समस्या के हल हेतु व्यक्ति की तत्परता समझदारी का एक मानदंड है। फिर भी, यह अकेला पर्याप्त नहीं है, कुसमायोजित व्यक्ति को अन्य क्षेत्रों में अपनी संबंधित भावनात्मक समस्याओं पर कम से कम कभी–कभी तो काम करने के लिए तैयार रहना ही चाहिए। यह व्यावसायिक समायोजन के कार्यक्रम के लिए एक पूर्वापेक्षा हो सकती है।

## 2.3.4 अभिवृत्ति योजना में शिक्षक एवं माता–पिता की भूमिका

एक ऐसा कोर्स चुनना जो किसी के चुने हुए अभिवृत्ति (करियर) के लिए योग्य हो, एक मुश्किल काम है। चुनाव स्ट्रीम, विषय, अवधि, स्थान और वित्तीय व्यय जैसे कई कारकों पर निर्भर करता है और इनमें से दो या अधिक विशिष्टताओं को संरेखित करना इतना आसान नहीं है। आज की जटिल तकनीकी दुनिया में, सफलता की खिड़की गहरी सोच में नजर आती है। किसी भी अभिवृत्ति को चुनने से पहले बहुत कुछ सोचना पड़ता है। प्रोडक्शन डायरेक्टर, टीवी जर्नलिस्ट, वीडियो एडिटर, साउंड रिकॉर्डर, वेब–इंजीनियर आदि जैसे कई नए अभिवृत्ति क्षेत्र उभर रहे हैं। छात्रों के लिए ट्रैक रखना मुश्किल है। इस जटिल स्थिति में शिक्षक छात्रों के अभिवृत्ति प्रारूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षकों के लिए इस क्षेत्र में अलग से डिग्री की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उन्हें इस क्षेत्र में थोड़ी रुचि लेनी होगी।

आज, अधिकांश प्रमुख दैनिक समाचारपत्र, राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय दोनों, युवाओं की अभिवृत्ति संबंधी जरूरतों को पूरा करते हैं। प्रत्येक प्रमुख समाचार पत्र ने अभिवृत्ति की जानकारी पर एक पूरक शामिल करने के लिए सप्ताह का एक दिन आरक्षित किया होता है; आमतौर पर इसमें अभिवृत्ति प्रारूप के सभी प्रमुख पहलुओं को शामिल किया जाता है। इसमें किसी विशेष अभिवृत्ति, या किसी संस्थान पर लेख शामिल होते हैं। यह अभिवृत्ति सूचना प्रश्नों, वर्तमान अभिवृत्ति मेलों, विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश आदि से संबंधित होता है। यह संस्थानों के प्रमुखों / निदेशकों के साथ साक्षात्कार तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश परीक्षा की तैयारी, के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता है। इसके अलावा यह शैक्षिक मंडलों या विश्वविद्यालय परिसरों में होने वाली घटनाओं और विभिन्न व्यवसायों में बेहतर प्रदर्शन के लिए गुणों, कौशल और दृष्टिकोण के विकास पर लेखों से संबंधित होता है।

### अभिवृत्ति की खोज को सुगम बनाना

शिक्षक को छात्रों की अभिवृत्ति योजना को विकसित करने में मदद करने का प्रयास करना चाहिए। प्रभावी अभिवृत्ति अन्वेषण का आयोजन करते समय, शिक्षक को मौजूदा कार्यक्रम के भीतर सीखने के उद्देश्यों, छात्रों की सीखने की शैली, उपलब्ध संसाधन, उपलब्ध स्टाफ और तकनीकों की अनुकूलता पर विचार करना चाहिए।

अभिवृत्ति की खोज में आत्म–अन्वेषण, निर्णय लेने के कौशल का विकास, शैक्षिक और अभिवृत्ति की संभावनाओं की खोज और रोजगार की दुनिया के साथ संपर्क शामिल है। यह निम्नलिखित सहित कई लक्ष्यों को पूरा करता है :

- अपने बारे में छात्रों के ज्ञान, उनकी रुचि, योग्यताओं, जरूरतों और मूल्यों में वृद्धि।
- सकारात्मक कार्य दृष्टिकोण का विकास।
- व्यावसायिक संभावनाओं, रोजगार की दुनिया की संरचना, नौकरी हेतु आवश्यक कर्तव्यों और आवश्यकताओं के बारे में छात्रों के ज्ञान में वृद्धि।

- शैक्षिक और व्यावसायिक चयन के लिए व्यावसायिक और आत्म–ज्ञान के निहितार्थ को इंगित करना।
- निर्णय लेने, समस्या को सुलझाने और योजना बनाने के कौशल विकसित करने में उनकी मदद करना।
- व्यावसायिक जानकारी की खोजबीन करने, निर्माण करने, मूल्यांकन करने और संचारण करने के कौशल में सुधार करना।
- नौकरी तलाशने के कौशल का विकास करना।
- छात्रों को नियमित रूप से स्कूलों में उपस्थित होने के लिए प्रेरित करना।
- समूह सेटिंग अभिवृत्ति अन्वेषण में मिथ्याभास (simulation) का उपयोग करने का अवसर प्रदान करती है।

## अभिवृत्ति की जानकारी प्रदान करना

युवा लड़के और लड़कियों को अभिवृत्ति संबंधी जानकारी की बहुत आवश्यकता है। रोजगार की दुनिया के लिए अपनी आँखें खोलने के अलावा, जानकारी उन्हें रोजगार चुनने और तैयारी करने के लिए भी प्रेरित करती है। अभिवृत्ति की जानकारी का प्रसार प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शुरू होना चाहिए। यहां शिक्षक को अपने विषय वस्तु के शिक्षण में अभिवृत्ति सूचना को भी समावेशित करना चाहिए। वह विभिन्न विषय सामग्री के संबंध को विभिन्न प्रकार के रोजगारों के साथ–साथ अपने शिक्षण विषय से सम्बंधित अभिवृत्ति विकल्पों के बारे में बता सकता है। स्कूल के शिक्षक को सभी स्तरों पर अभिवृत्ति और निर्णय लेने की तैयारी को बढ़ावा देना चाहिए। उन्हें भविष्य के अभिवृत्ति के लिए उपयुक्त मूल्यों को विकसित करने में भी उनकी मदद करनी चाहिए।

## अभिवृत्ति साहित्य प्रदान करना

व्यवसायों/ रोजगारों के बारे में पढ़ना अत्यधिक विचारोत्तेजक होता है। यह विभिन्न व्यवसायों, काम की प्रकृति, आवश्यक योग्यता, प्रवेश की विधि, वेतन और अन्य लाभों तथा आगे बढ़ने की संभावना के बारे में समझ विकसित करने में मदद करता है। शिक्षक को अभिवृत्ति की किताबें, प्रवेश नोटिस, पत्रिकाएं और अभिवृत्ति तथा अन्य सम्बंधित सामग्री पर पत्रिकाओं की तलाश करनी चाहिए और अपने छात्रों को नवीनतम अभिवृत्ति की जानकारी से अवगत कराना चाहिए। वह अभिवृत्ति साहित्य प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय को सिफारिश कर सकता है। अभिवृत्ति साहित्य छात्रों को अभिवृत्ति की योजना बनाने और संबंधित निर्णय लेने के लिए प्रेरित करने में बहुत मदद करता है।

## रोल मॉडल प्रदान करना

जैसा कि पहले कहा गया है, किशोरों में कार्यक्षेत्र को जानने के लिए उपयुक्त रोल मॉडल की कमी होती है। उन्हें रोल मॉडल के रूप में ऐसे लोगों की जरूरत होती है जो अचीवर्स, अभिवृत्ति ओरिएंटेड और सफल हों। रोल मॉडल को विभिन्न प्रकार के अभिवृत्ति (पारंपरिक और गैर–पारंपरिक) क्षेत्रों से चुना जाना चाहिए, जो अपने अभिवृत्ति और जीवन शैली से संतुष्ट हों क्योकि इस प्रकार के रोल मॉडल छात्रों को अपनी आत्म–छवि को बेहतर बनाने में मदद कर सकते हैं, उनमें उपयुक्त अभिवृत्ति चुनने के

लिए आत्मविश्वास पैदा कर सकते हैं और अपने चुने हुए अभिवृत्ति पथ में आत्म–पूर्ति का अनुभव कर सकते हैं। रोल मॉडल को कई तरीकों से प्रस्तुत किया जा सकता हैः



1) आदर्श रूप से, रोल मॉडल के रूप में चुने गए अतिथि वक्ताओं को छात्रों के साथ बातचीत करने के लिए स्कूल में आमंत्रित किया जाना चाहिए जिसमें वे अपने कार्य, अपनी उपलब्धियों और उन्होंने कैसे वो उपलब्धि हासिल की और खुद को स्थापित किया इस बारे में अपने अनुभव बता सकते हैं।

2) शिक्षक पारंपरिक और गैर–पारंपरिक व्यवसायों में सफल कर्मचारियों के बारे में बात कर सकते हैं।

3) विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों की उपलब्धियों, जैसे शैक्षणिक और सह–पाठयक्रम गतिविधियों में टॉपर्स, पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं, नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, लेखकों, प्रतिष्ठित शोधकर्ताओं, रक्षा और पुलिस सेवाओं आदि पर फाइल बनाई जा सकती हैं। यहां तक कि छात्रों को भी इस प्रकार की सामग्री एकत्र करने और फाइल करने के लिए कहा जा सकता है।

4) विद्यालय के पूर्व सफल छात्रों के चित्र उनकी उपलब्धियों के साथ प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

5) स्टाफ सदस्यों की विशेष उपलब्धियों को प्रदर्शनी के माध्यम से या स्कूल असेंबली में बताया जा सकता है।

6) स्थानीय उपलब्धि प्राप्त करने वालों और समाज के वंचित वर्ग के उपलब्धि प्राप्तकर्ताओं के बारे में उल्लेख किया जा सकता है।

रोल मॉडल स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रदान किए जा सकते हैं और अभिवृत्ति विकास को बढ़ावा देने में प्रभावी होते हैं।

### व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना

हो सकता है कि उपर्युक्त रणनीतियाँ कुछ ऐसे विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त न हों जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता है। ऐसे छात्रों में लड़कियां और छात्रों के अन्य वंचित वर्ग शामिल हैं। ऐसे छात्रों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। शिक्षक उनको सहयोग और देखरेख के माध्यम से उनके आत्म–सम्मान को बढ़ाने में उनकी मदद कर सकते हैं। लेकिन चूंकि शिक्षकों के पास प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से काम करने के लिए सीमित समय होता है, इसलिए उन्हें ऐसे छात्रों की पहचान करनी चाहिए और उन्हें स्कूल काउंसलर के पास भेजना चाहिए। लेकिन शिक्षकों के रूप में उन्हें उन छात्रों के सामाजिक और भावनात्मक विकास को सुगम बनाना चाहिए और उन्हें अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

### माता–पिता की भूमिका

अपने बच्चों के अभिवृत्ति विकास में माता–पिता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वे अभिवृत्ति के विकास के लिए अनुकूल अवसर, सुविधाएं और परिवेश प्रदान करते हैं। अभिवृत्ति के विकास को बढ़ावा देने के लिए माता–पिता निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं।

**टिप्पणी**

(i) उन्हें अपने बच्चों का उन व्यक्तियों के रूप में विचार करना चाहिए जिन्हें इस दुनिया में अपना विकास करने और आनंद लेने का अधिकार है। उनका पालन–पोषण इस प्रकार करना चाहिए कि उनमें सकारात्मक गुण उत्पन्न हों।

(ii) विशेष रूप से लड़कियों के मामले में माता–पिता को शिक्षा के महत्व को समझना चाहिए। उन्हें केवल उपयुक्त वर प्राप्त करने या आकस्मिकता की स्थिति में रोजगार प्राप्त करने के लिए लड़कियों को शिक्षित करने की अपनी सोच बदलनी चाहिए।

**अतः सारांशतः**

अभिवृत्ति प्रारूप के विश्लेषण से पता चलता है कि पेशेवर व्यक्ति आमतौर पर विभिन्न प्रारंभिक कार्य अनुभव पसंद करते हैं और कॉलेज से तुरंत स्थिर व्यावसायिक रोजगार की ओर भी बढ़ सकते हैं। हमारे देश में, आमतौर पर हम इस प्रकार के अभिवृत्ति प्रारूप का अनुसरण करते हुए पेशेवर कर्मचारी जैसे इंजीनियर, चिकित्सा व्यवसायी, रक्षा कर्मी आदि को पाते हैं।

ब्लू–कॉलर (शारीरिक श्रम / भागदौड़) श्रमिकों की तुलना में व्हाइट–कॉलर (ऑफिस कार्य) कर्मचारियों के पास आमतौर पर सुरक्षित प्रकार के अभिवृत्ति प्रारूप होते हैं। इस पेशे में सचिव, कार्यालय अधीक्षक, लिपिक इत्यादि आते हैं। ब्लू–कॉलर जॉब्स में अस्थिर और मल्टीपल ट्रायल अभिवृत्ति प्रारूप, और व्हाइट–कॉलर जॉब्स में पारंपरिक और स्थिर प्रारूप का प्रचलन आम तौर पर पाया जाता है।

भारत में अभिवृत्ति प्रारूप बदल रहा है। उभरते हुए नए अभिवृत्ति क्षेत्र नए विकास के साथ समाहित हो रहे हैं। नई सेवाएं आ रही हैं। चीजें, जो पहले देखी–सुनी नहीं गयी थीं, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, बहुत लोकप्रिय हो रही हैं।

इन दिनों, अभिवृत्ति जो पहले साइड बिजनेस था, शिक्षित व्यक्तियों का पूर्ण पेशा बन गया है। उदाहरण के लिए, कला–शिल्प, क्ले मॉडलिंग, फूलों की व्यवस्था, आंतरिक सज्जा, कोचिंग सेंटर या निजी ट्यूशन। निजी या तथाकथित पब्लिक स्कूल खोलना, टेक्सटाइल डिजाइनिंग, कंप्यूटर संस्थान खोलना, फास्ट फूड जॉइंट, 'सुपर' मार्केट, चार्टर्ड बस चलाना, प्रॉपर्टी डीलिंग, पत्रिका प्रकाशन, निजी फर्म, फिल्म बनाना, कैसेट, ज्वैलरी क्राफ्टिंग आदि कई लोगों के लिए अभिवृत्ति विकल्प बन गए हैं।

## अपनी प्रगति जांचिए

3. निम्न में से कौन सा शब्द अभिवृत्ति प्रारूप हेतु अंतर–परिवर्तनीय शब्द के रूप में ले लिया जाता है?

   (क) जीवनवृत्ति (ख) अभिवृत्ति

   (ग) नौकरी (घ) उपर्युक्त सभी

4. अभिवृत्ति प्रारूप के कितने प्रकार हैं?

   (क) 4 (ख) 5

   (ग) 6 (घ) 7

## 2.4 अभिवृत्ति विकास

इसका विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

**टिप्पणी**

### 2.4.1 अभिवृत्ति विकास एवं मानवीय आवश्यकताएं

लोगों की आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतें काम (रोजगार) से ही संतुष्ट हो सकती हैं। मनोवैज्ञानिक और सामाजिक जरूरतें, हालांकि इतनी स्पष्ट नहीं होती हैं किंतु ये बहुत मजबूत अभिप्रेरणा हो सकती हैं।

#### मनोवैज्ञानिक जरूरतें

**आत्म–सम्मान :** व्यक्ति कार्य से प्राप्त होने वाले आत्म–सम्मान की भावना के लिए काम करते हैं। कुछ करने में सक्षम होना और समाज का उत्पादक सदस्य बनना व्यक्ति के लिए अत्यधिक संतोषजनक हो सकता है।

हालाँकि, प्रत्येक व्यक्ति हेतु संतुष्टि का अर्थ एवं स्तर भिन्न–भिन्न होता है। यह लोगों की और खुद व्यक्ति की स्वयं से अपेक्षा के स्तर पर निर्भर करता है

**पहचान :** काम व्यक्ति को एक पहचान देता है, खासकर आज के समाज में, जहां लोग अपने काम से ज्यादा जाने जाते हैं। व्यक्ति का अस्तित्व, उसकी जीवन शैली, उसका परिवेश, सभी उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य से प्रभावित होते हैं।

**कौशल और क्षमता की आत्म–अभिव्यक्ति :** कार्य विभिन्न क्षमताओं, रुचियों, कौशलों और यहां तक कि उनके द्वारा अर्जित मूल्यों और दृष्टिकोणों को व्यक्त करने के अवसर प्रदान करता है। कार्य संतोषजनक हो जाता है यदि व्यक्ति अपनी योग्यता और कौशल का प्रयोग करने में सक्षम होते हैं। यदि कार्य विशेष प्रशिक्षण या कौशल या ज्ञान का उपयोग करने के अवसर प्रदान करता है जो एक व्यक्ति ने वर्षों में हासिल किया है, तो व्यक्ति इसके बारे में अच्छा महसूस करता है।

**प्रतिबद्धता और आत्म–मूल्य :** कार्य का एक अन्य आयाम, जो किसी व्यक्ति को प्रेरित करता है, वह कार्य के प्रति उसकी अपनी प्रतिबद्धता है। एक व्यक्तिगत मिशन को पूरा करने की भावना, या एक लक्ष्य प्राप्त करने की भावना, अत्यधिक स्फूर्तिदायक और प्रेरक हो सकती है। व्यक्ति का आत्म–मूल्य उसकी प्रतिबद्धता, मूल्यों और प्राथमिकताओं की पूर्ति की इस भावना पर भी निर्भर करता है।

#### सामाजिक आवश्यकताएं

**स्वतंत्रता :** जब भी कोई व्यक्ति समूह में आता है, तो शायद ही कभी संबंध बराबरी के होते हैं। व्यक्ति अधिकतर या तो अधीनस्थ या श्रेष्ठ की स्थिति ग्रहण करता है। इस प्रकार, अपनी पसंद की सीमाओं के भीतर, वे एक निश्चित डिग्री की स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं। यदि नौकरी उन्हें वह स्वतंत्रता नहीं देती है जो वे अपने कर्तव्यों के निष्पादन में प्राप्त करना चाहते हैं, तो वे असहज महसूस करते हैं।

**आपात स्थिति/कल्याणकारी गतिविधियों के लिए प्रावधान :** श्रमिक अपने सेवा समय, योग्यता के बदले में उचित व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। उचित

टिप्पणी

व्यवहार में उनकी विशेषज्ञता, अनुभव के स्तर और सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित वेतन शामिल है। जब कोई कर्मचारी बीमार पड़ता है या अक्षम हो जाता है तो वह संगठन से क्षतिपूर्ति की अपेक्षा करता है ताकि वह जीवित रह सके। यदि नौकरी से प्राप्त होने वाले उपचार का व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन संतोषजनक नहीं है तो वह नौकरी से खुश नहीं रहता है।

**व्यक्ति की स्थिति** : कार्य व्यक्ति को सामाजिक दर्जा देता है। नौकरी से प्राप्त स्थिति (position) एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में भिन्न होती है। व्यवसायों, प्रबंधकीय और ऐसे ही अन्य रोजगारों में व्यक्ति की स्थिति उच्च हो सकती है। अर्ध–कुशल और अकुशल नौकरियां कर्मचारी को निम्न सामाजिक स्थिति प्रदान करती हैं। हालांकि, व्यक्ति की नौकरी और स्थिति से उसकी संतुष्टि उसके विशिष्ट परिवेश में हासिल की गई जरूरतों के अपने प्रारूप पर निर्भर करती है।

## आर्थिक जरूरतें

**वर्तमान आय** : वर्तमान आय स्तर से संतुष्टि व्यक्ति की आकांक्षा के स्तर और उसी के सामान शिक्षा, अनुभव वाले अन्य लोगों की आय के स्तर से प्रभावित होती है। साथी सहकर्मियों के समान आय मिलने पर श्रमिक संतुष्ट महसूस करते हैं। लेकिन अगर उसे लगता है कि उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जा रहा है और उसे अनुभव और क्षमता में उसके समान अन्य लोगों की तुलना में कम आय दी जा रही है तो वह असंतुष्ट महसूस करता है।

**नौकरी की सुरक्षा** : श्रमिक केवल उस नौकरी से संतुष्ट नहीं होते हैं जो संतोषजनक आय प्रदान करती है या उन्हें शिक्षा, उम्र और अनुभव में उनके जैसे अन्य लोगों के बराबर की सामाजिक स्थिति बनाए रखने में मदद करती है। वे भविष्य की आय के लिए भी सुनिश्चित होना चाहते हैं। उच्च दुर्घटना दर वाली नौकरियां या मौसमी रोजगार कर्मचारी को भविष्य की आय के बारे में असुरक्षित कर देते हैं। जिन्हें केवल मासिक वेतन मिलता है वे पेंशन या अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की पेशकश करने वाली नौकरियों को प्राथमिकता देते हैं। सेवानिवृत्त व्यक्तियों द्वारा भी ऐसी नौकरी करने की संभावना हो सकती है जिसमें आय अर्जित करने और नौकरी को बनाए रखने में सक्षम होने के लिए कम शारीरिक प्रयास और जिम्मेदारी की आवश्यकता होती है।

## कार्य जीवन जीने के तरीके को प्रभावित करता है

कार्य ही व्यक्ति की जीवन शैली को निर्धारित करता है। अलग–अलग नौकरियों में अपेक्षित दैनिक/साप्ताहिक समयावधि भी अलग–अलग होती है। बिजनेस और उच्च स्तरीय नौकरियों की कार्यावधि कार्यालय समय के भीतर समाप्त नहीं होती हैं बल्कि व्यक्ति ऑफिस की नियमित दैनिक समयावधि के बाद भी व्यस्त रहता है। न केवल समय बल्कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति भी उच्च पद या व्यवसाय से प्रभावित होती है। यद्यपि सामाजिक स्थिति (position) एक जटिल प्रश्न है और यह कई कारकों से प्रभावित होती है किन्तु उच्च पद या व्यवसाय एक मजबूत प्रभाव है जो वर्तमान समाजों में स्थिति (position) को निर्धारित करता है।

## व्यवसाय और स्थिति

नौकरियों को प्रतिष्ठा, आय, कौशल या प्रशिक्षण की आवश्यकता, शैक्षिक स्तर, रुचियों और क्षमता के अनुसार श्रेणीबद्ध तरीके से वर्गीकृत किया जा सकता है। ऐसा ही एक वर्गीकरण व्यवसायों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित करता है :

पेशेवर, मालिकाना और प्रबंधकीय, लिपिक और बिक्री, कुशल और पर्यवेक्षी, अर्ध–कुशल और अकुशल।

विभिन्न स्तरों के बीच का अंतर स्पष्ट है। पदानुक्रम के इन व्यावसायिक स्तरों पर व्यक्ति जितना अधिक ऊंचे स्तर पर होगा, आय, प्रतिष्ठा और जिम्मेदारी उतनी ही अधिक होगी।

## कार्य दिनचर्या और व्यवसाय

सफेदपोश कर्मचारी आम तौर पर कार्यालय में नियमित समय में काम खत्म करते हैं जबकि पेशेवर लोग (जैसे प्रोफेसर, अधिवक्ता, कर सलाहकार) कार्यालय समय के बाद भी काम करते हैं। या तो उन्हें अपने तकनीकी कौशल में सुधार के लिए समय देना पड़ सकता है या वे अपने पेशेवर विकास के लिए काम कर रहे होते हैं। चूंकि, काम पर बिताया गया समय अलग–अलग होता है अतः व्यक्ति कितना समय अवकाश, परिवार और अन्य शौक के लिए समर्पित कर पायेगा, यह व्यावसायिक मांगों के अनुसार स्वचालित रूप से संरचित (adjust) हो जाता है।

## कार्य दृष्टिकोण और मूल्यों को प्रभावित करता है

कार्य गतिविधियों के सन्दर्भ में एक व्यक्ति का व्यवसाय, स्थिति (position), आय, समय की दिनचर्या, अवकाश दिवस आदि दूसरे व्यक्ति से भिन्न हो सकते हैं। अलग–अलग व्यक्तियों की गतिविधियों, कार्य, दिनचर्या और अवकाश के लिए अलग–अलग प्राथमिकताएं होती हैं। स्थिति या आय का भी अलग–अलग मूल्यांकन किया जा सकता है। इसलिए, लोग आमतौर पर अपने मूल्यों और दृष्टिकोण के अनुसार व्यवसाय का चयन करते हैं लेकिन ये सभी अपनी पसंद के व्यवसाय में प्रवेश करने में सफल नहीं भी हो सकते हैं। इसलिए, एक व्यवसाय में विभिन्न पसंद और नापसंद वाले लोग होते हैं।

## सामाजिक परिवेश

व्यक्ति किन लोगों के संपर्क में आ सकता है, सामाजिक स्थिति यह निर्धारित करती है। एक ही प्रकार के व्यवसाय, रुचि और शौक वाले उपलब्ध लोगों की सीमित संख्या के साथ होने और रहने से व्यक्ति में परिवर्तन आ जाता है।

## पोशाक और भाषा

केवल रुचि और शौक ही नहीं बल्कि पहनावा, भाषा और आचरण भी व्यवसाय से प्रभावित होते हैं। व्यक्ति अनजाने में, अवचेतन रूप से और संयोग से खुद को उस भाषा में व्यक्त करना सीखते हैं जो उस व्यवसाय में लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली विशिष्ट भाषा होती है। सफेदपोश नौकरियों से जुड़ी भाषा श्रम प्रधान नौकरियों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा से बहुत अलग होती है। ऑफिस से बाहर कार्यरत पेशेवर लोगों की पोशाक (कपड़े) ऑफिस के अंदर काम करने वाले लोगों की तुलना में अलग

होते हैं। औपचारिक और अनौपचारिक पोशाक का चुनाव भी काफी हद तक अलग होता है।

## 2.4.2 अभिवृत्ति विकास की अवधारणा

अभिवृत्ति की योजना में अपनी क्षमताओं, आदतों, रुचियों और मूल्यों के बारे में जागरूक होना शामिल है। काम की दुनिया की बढ़ती जटिलताएं नए कौशल और दक्षताओं के साथ–साथ उनके लिए तैयारी की मांग करती हैं। इन कौशलों और दक्षताओं को उपयुक्त शैक्षिक पाठ्यक्रमों का अनुसरण करके या विभिन्न संस्थानों के माध्यम से विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करके प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह के पेशेवर प्रशिक्षण प्राप्त करने और स्कूल स्तर पर उपयुक्त पाठ्यक्रम चुनने के लिए उनके बारे में सटीक जानकारी रखने की आवश्यकता है। इस प्रकार, अभिवृत्ति की योजना बनाने की प्रक्रिया में जीवन भर के अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल होती है।

अभिवृत्ति में प्रवेश करने के बाद भी ऐसा नहीं है कि व्यक्ति नौकरी नहीं बदलता या उसी पद पर बना रहता है। विशेषज्ञता के अपने क्षेत्र में, वे नौकरी में प्रवेश करने के बाद भी अधिक शिक्षा, या प्रशिक्षण प्राप्त करना जारी रख सकते हैं। अभिवृत्ति के विकास का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह प्रक्रिया कुछ हद तक अपरिवर्तनीय है। एक बार जब बच्चा किशोरावस्था तक विकसित हो जाता है तो उसकी रुचियां, योग्यताएं और मूल्य आदि कुछ दिशाओं/क्षेत्रों हेतु अधिक प्रभावी हो जाते हैं। कुछ संभव विकल्प दिखाई देने लगते हैं जो भविष्य की अभिवृत्ति को निर्देशित करते हैं। इसलिए समय से पहले या समय पर निर्णय होशपूर्वक और निष्पक्ष रूप से किए जाने चाहिए। बच्चों को सचेत रूप से योजना बनाने और उनके लिए संभव शैक्षिक और व्यावसायिक विकल्पों को तथ्यात्मक जानकारी पर आधारित करने में मदद करने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि अभिवृत्ति से संबंधित जानकारी तक उनकी पहुंच हो जो उन्हें विवेकपूर्ण तरीके से योजना बनाने में मदद करेगी। उन्हें न केवल अभिवृत्ति की जानकारी की आवश्यकता है, बल्कि शैक्षिक और व्यक्तिगत विकास से संबंधित जानकारी की भी आवश्यकता है, ताकि उन्हें विकसित होने और विकल्पों की सूची में से चुनने का अवसर मिले।

### अभिवृत्ति विकास की ''सुपर'' की अवधारणा

अभिवृत्ति विकास को मनोवैज्ञानिक जीवन चरणों के समानांतर माना गया है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, तथापि, सुविधा की दृष्टि से हो रहे प्रतिमान परिवर्तनों को चरणों में विभाजित किया गया है। इन चरणों के नाम वृद्धि, अन्वेषण, स्थापना, अनुरक्षण और गिरावट हैं। व्यावसायिक विकास प्रत्येक चरण का सबसे महत्वपूर्ण और केंद्रीय विषय है।

'सुपर'ने अभिवृत्ति के विकास की इस प्रक्रिया को विस्तृत किया था और प्रक्रिया को आगे गिरावट के चरण तक परिभाषित किया था। 'सुपर'(1953) द्वारा परिभाषित विकास के चरण इस प्रकार हैं :

(क) विकास चरण (14 साल तक)

(ख) अन्वेषण (15–25 वर्ष)
- संभावित
- संक्रमण
- परीक्षण

(ग) स्थापना (25–45 वर्ष)
- परीक्षण
- उन्नति

(घ) अनुरक्षण (45–65 वर्ष)

(ङ) अपक्षय (65 से आगे)

### (क) विकास चरण

अभिवृत्ति विकास के 'सुपर' के सिद्धांत में, विकास चरण बचपन और पूर्व–किशोरावस्था के मनोवैज्ञानिक जीवन चरण से मेल खाता है। क्षमताओं, रुचियों और दृष्टिकोणों का विकास इस समय होता है।

विभिन्न प्रकार के लोगों, व्यवसायों और गतिविधियों के संपर्क में आने से उन्हें ऐसे अनुभव और जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है जो उनकी क्षमताओं, रुचियों आदि के विशिष्टीकरण को प्रभावित करते हैं। हालाँकि अभिवृत्ति की उनकी पसंद तथ्य आधारित न होकर काल्पनिक होती हैं।

### (ख) अन्वेषण चरण

यह चरण अभिवृतों के विकल्पों के अस्थायी चरण से शुरू होता है। यहां लड़के और लड़कियां अपने आस–पास के परिवेश अर्थात स्कूल, माता–पिता, शिक्षक और साथियों, आदि से प्राप्त फीडबैक पर विचार करते हैं। यह फीडबैक उन्हें बाद में अपनी स्वयं की अवधारणा को एक विकल्प में बदलने में मदद करता है। अभिवृत्ति विकास सिद्धांत में 'सुपर'का योगदान विशेष रूप से आत्म–अवधारणा के विकास और कार्यान्वयन की अवधारणा से संबंधित है। जैसे ही व्यक्ति व्यवसायों के बारे में जानकारी के संपर्क में आता है; वह अभिवृत्ति चयन में अपनी क्षमताओं, रुचियों और मूल्यों पर अधिक ध्यान देता है। उसकी स्वयं की अवधारणा उसकी अपनी विशेषताओं और उपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में अधिक यथार्थवादी हो जाती है। संक्रमण के चरण में वे अभिवृत्ति में अपनी सामान्य वरीयता का परीक्षण करते हैं और इसे एक विशिष्ट विकल्प हेतु अंतिम रूप देते हैं। अपने परीक्षण चरण में एक विशिष्ट अभिवृत्ति पर निर्णय लेने के बाद, छात्र उपयुक्त प्रशिक्षण लेता है और कार्य के चुने हुए क्षेत्र में एक स्थान प्राप्त करता है।

### (ग) स्थापना चरण

अपनी आत्म–अवधारणा की वास्तविकता के आधार पर – ऐसे व्यक्ति जिनकी आत्म–अवधारणा अवास्तविक हो वे अभिवृत्ति में स्थापित होने और उसमें आगे बढ़ने से पहले लंबे समय तक लड़खड़ा सकते हैं। इस प्रकार परीक्षण चरण स्थापना अवधि में भी जारी रह सकता है। विशेष अभिवृत्ति में रहने और उसमें आगे बढ़ने की प्रतिबद्धता

के उत्पन्न होने पर अभिवृत्ति स्थिर हो जाती है और इसे परीक्षण चरण का अंत और स्थापना अवधि का सही आरम्भ माना जा सकता है।

टिप्पणी

### (घ) अनुरक्षण चरण

यह अवस्था 45 वर्ष की आयु के आसपास शुरू होती है। इस समय तक अधिकांश व्यक्तियों को एक जिम्मेवार व्यक्ति के रूप में हैसियत और स्थिति मिल गई होती है। यदि व्यक्ति की आत्म–अवधारणा उसके द्वारा धारण की गई नौकरी के अनुरूप है, तो व्यक्ति संतुष्ट और खुश महसूस करता है, अन्यथा उसकी अभिवृत्ति में निराशा और असंतोष होता है। अगला चरण पतन का चरण है, व्यक्ति की ऊर्जा में गिरावट जिसकी विशेषता है। इस चरण में मुख्य काम कार्य की गतिविधियों को कम करके नई स्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित करना होता है हालाँकि कार्य जारी रहता है।

### (ङ) अपक्षय चरण

यह अवस्था 65 वर्ष की आयु के आसपास शुरू होती है। शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं में कमी आने से व्यावसायिक ही नहीं अपितु पारिवारिक और सामुदायिक जिम्मेवारियों में भी कमी आने लग जाती है। कार्य की प्रकृति पूर्णकालिक से अंशकालिक होकर धीरे–धीरे शून्य हो जाती है और इस चरण का अंत मृत्यु से होता है।

## 2.4.3 विभिन्न विद्वानों के मत में व्यक्तित्व विकास एवं अभिवृत्ति विकल्प

**(क) रो का सिद्धांत**– ऐनी रो के सिद्धांत का केंद्र अभिवृत्ति के विकास और व्यक्तित्व के बीच संभावित संबंध है। यह सिद्धांत रोजगारों/व्यवसायों की पूरी शृंखला को व्यक्ति के साथ उनके संबंध, पृष्ठभूमि में अंतर, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक चरों और अनुभवों के संदर्भ में देखता है। अपने निष्कर्षों को रो ने साधारण शब्दों में इस प्रकार कहा कि विविध रोजगारों/व्यवसायों में शामिल होने वाले लोगों के बीच अंतर प्रमुखतया व्यक्तित्व का होता है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों और चीजों के साथ होने वाली अंतःक्रिया अलग–अलग होती है। वह एक और निष्कर्ष पर पहुंची कि व्यक्तित्वों में जो अंतर मौजूद होते हैं, वे आंशिक रूप से बाल्यकाल की लालन–पालन की प्रथाओं के प्रभाव का परिणाम होते हैं।

### व्यावसायिक समूहों का विवरण

रो ने पहले लोगों के हितों के आधार पर रोजगारों/व्यवसायों को आठ समूहों में विभाजित किया, जो विशेष व्यावसायिक समूह में गतिविधियों के प्राथमिक फोकस को दर्शाता है।

**1) सेवा** : ये व्यवसाय मुख्य रूप से अन्य व्यक्तियों की जरूरतों को पूरा करने, कल्याणकारी सेवा करने और उनकी देखभाल करने से संबंधित हैं। इस समूह में सामाजिक कार्य, मार्गदर्शन, घरेलू और सुरक्षात्मक सेवाओं जैसे व्यवसाय शामिल हैं। इस समूह के रोजगारों में महत्वपूर्ण तत्व एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे

के लिए कुछ कर रहा है (उदाहरण, परामर्शदाता, सामाजिक कार्यकर्ता, पुलिस कार्मिक)।

**2) व्यावसायिक संपर्क** : ये व्यवसाय मुख्य रूप से वस्तुओं, निवेश, अचल संपत्ति और सेवाओं की आमने–सामने बिक्री से संबंधित हैं। इस समूह के रोजगारों/व्यवसायों में व्यक्ति से व्यक्ति का संबंध महत्वपूर्ण है, लेकिन यह मदद करने के बजाय कार्रवाई के लिए अनुनय–विनय पर केंद्रित है। यदि उसकी सलाह का पालन किया जाता है तो प्रेरक को लाभ होगा (विक्रेता, जनसंपर्क अधिकारी, दलाल, बीमा एजेंट)।

**3) संगठन** : ये रोजगार/व्यवसाय, उद्योग और सरकार में प्रबंधकीय और सफेदपोश नौकरियों के रूप में होते हैं। ये व्यवसाय मुख्य रूप से संगठन और वाणिज्यिक उद्यमों और सरकार के कुशल कामकाज से संबंधित गतिविधियाँ हैं। इनमें व्यक्ति से व्यक्ति की बातचीत की गुणवत्ता बहुत औपचारिक होती है (उद्योगपति, बैंकर, वित्तीय कार्यपालक, कैशियर)।

**4) प्रौद्योगिकी** : इस समूह में निम्न व्यवसाय शामिल हैं :

वस्तुओं और जनोपयोगी सेवाओं के उत्पादन, रखरखाव और परिवहन आदि। इसलिए इस रोजगार समूह के अंतर्गत इंजीनियरिंग, शिल्प, और मशीन ट्रेडों के साथ–साथ परिवहन और संचार में भी उपजीविकाएँ होती हैं। पारस्परिक संबंध अपेक्षाकृत कम महत्व के होते हैं और चीजों/स्थितियों से निपटने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है (जहाज के कप्तान, मुख्य अभियंता, अनुप्रयुक्त वैज्ञानिक, आदि)

**5) आउटडोर** : इस समूह में मुख्य रूप से फसलों की खेती, संरक्षण और संग्रह, समुद्री या अंतर्देशीय जल संसाधन, खनिज संसाधन, वन उत्पाद और अन्य प्राकृतिक संसाधनों और पशुपालन से संबंधित व्यवसाय शामिल हैं। पारस्परिक संबंध काफी हद तक अप्रासंगिक हैं। इनमें से कुछ व्यवसायों के बढ़ते मशीनीकरण के कारण इस समूह में पहले से वर्गीकृत कई नौकरियां उपर्युक्त समूह –4 में स्थानांतरित हो गई हैं। उदाहरण के लिए, परामर्श विशेषज्ञ, आर्किटेक्ट, वैज्ञानिक, वन रेंजर।

**6) विज्ञान** : इस समूह में मुख्य रूप से विज्ञान पर आधारित व्यवसाय शामिल हैं और इसके अलावा प्रौद्योगिकी निर्दिष्ट परिस्थितियों में भी इसके अनुप्रयोग हैं (अनुसंधान वैज्ञानिक, चिकित्सा विशेषज्ञ, चिकित्सा तकनीशियन)।

**7) सामान्य संस्कृति** : ये व्यवसाय मुख्य रूप से सामान्य सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संचरण से संबंधित हैं। यहां रुचि विशेष व्यक्तियों के बजाय मानवीय गतिविधियों में होती है। इस समूह में शिक्षा, पत्रकारिता, भाषा विज्ञान और आमतौर पर मानविकी कहे जाने वाले विषयों के व्यवसाय शामिल हैं। अधिकांश प्राथमिक और उच्च विद्यालय के शिक्षकों को इस समूह में रखा गया है। उच्च स्तर के शिक्षकों को विषय के आधार पर समूहों में रखा जाता है – उदाहरण : विज्ञान या कला या मानविकी के शिक्षक (सर्वोच्च और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, वकील, शिक्षक, विद्वान)।

**8) कला और मनोरंजन** : इस व्यवसाय समूह में वे लोग शामिल हैं जो रचनात्मक कलाओं और मनोरंजन में विशेष कौशल के उपयोग से संबंधित हैं। उनमें

फोकस एक व्यक्ति (या एक संगठित समूह) और आम जनता के बीच संबंध पर है। पारस्परिक संबंध महत्वपूर्ण है लेकिन न तो उतना प्रत्यक्ष है और न ही उस प्रकृति का है जैसा कि समूह 1 और 2 (रो और क्लोस 1972 से अनुकूलित) के रोजगारों/वयवसायों में होता है। इस समूह में रचनात्मक कलाकार, विशेष कौशल वाले कलाकार, एथलीट, डिजाइनर, संगीतकार, आंतरिक सज्जाकार आदि को रखा गया है।

रो ने आगे प्रत्येक समूह को छह स्तरों में विभाजित किया। जो जिम्मेदारी के स्तर, क्षमता और कौशल की डिग्री पर आधारित होते हैं। हालांकि ये मानदंड सर्वथा सहसंबद्ध नहीं हैं, लेकिन जब भी निर्णय लेने में कठिनाई होते है, तो जिम्मेदारी का स्तर निर्णायक होता है। उत्तरदायित्व में न केवल संख्या और किए जाने वाले निर्णयों की कठिनाई का स्तर शामिल है, बल्कि यह भी शामिल है कि कितनी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना किया गया है। अतः रो द्वारा किए इस विभाजन में निभाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियां और कठिनाई के स्तर महत्वपूर्ण हैं।

## प्रत्येक समूह के स्तर

प्रत्येक समूह में छह स्तर होते हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया है :

1) **पेशेवर और प्रबंधकीय (स्वतंत्र जिम्मेदारी)** : इस स्तर में नवप्रवर्तनकर्ता और निर्माता तथा शीर्ष प्रबंधकीय और प्रशासनिक लोग, साथ ही पेशेवर शामिल हैं जिनके पास महत्वपूर्ण मामलों में स्वतंत्र जिम्मेदारी होती है। इस स्तर पर व्यवसायों के लिए, आमतौर पर सामाजिक समूह की तुलना में कोई उच्च अधिकार नहीं होता है। इस स्तर के लिए सुझाए गए मानदंड हैं :
   (i) महत्वपूर्ण, स्वतंत्र और विविध जिम्मेदारियां
   (ii) नीति–निर्माण
   (iii) शिक्षा (उच्च स्तर की शिक्षा)
2) **पेशेवर और प्रबंधकीय** : इस स्तर और पिछले स्तर के बीच का अंतर मुख्य रूप से डिग्री का है। वास्तविक स्वायत्तता मौजूद हो सकती है लेकिन पिछले स्तर की तुलना में कम महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों के साथ। इस स्तर के लिए सुझाए गए कुछ मानदंड हैं :
   (i) महत्व और विविधता दोनों के संबंध में स्वयं और दूसरों के लिए मध्यम स्तर की जिम्मेदारियां।
   (ii) नीति व्याख्या।
   (iii) स्नातक की डिग्री के स्तर पर या उससे ऊपर की शिक्षा लेकिन डॉक्टरेट स्तर से नीचे।
3) **अर्ध–पेशेवर और लघु व्यवसाय** : इस स्तर के लिए सुझाए गए मानदंड हैं:
   (i) दूसरों के लिए जिम्मेदारी का निम्न स्तर।
   (ii) केवल स्वयं के लिए नीति या दृढ़ संकल्प (एक छोटे व्यवसाय में प्रबंधन के रूप में)।
   (iii) हाई स्कूल या तकनीकी स्कूल के स्तर पर शिक्षा या समकक्ष।

**टिप्पणी**

4) **कुशल** : यह स्तर और निम्न स्तर कुशल व्यवसायों के क्लासिक उप–विभाग हैं जिन्हें शिक्षुता या अन्य विशेष प्रशिक्षण या अनुभव की आवश्यकता होती है।

5) **अर्ध–कुशल** : इन व्यवसायों के लिए कुछ प्रशिक्षण और अनुभव की आवश्यकता होती है, लेकिन स्तर –4 में व्यवसायों की तुलना में काफी कम होती है। इसके अलावा, इन व्यवसायों में स्वायत्तता और पहल की अनुमति बहुत कम होती है।

6) **अकुशल** : इन व्यवसायों के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण या शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है और सरल निर्देशों का पालन करने और सरल दोहराव वाले कार्यों में संलग्न होने की आवश्यकता से अधिक क्षमता की आवश्यकता नहीं होती है। इस स्तर पर, समूह विभेदन मुख्य रूप से व्यावसायिक सेटिंग पर निर्भर करता है। (रो और क्लोस, 1972 से अनुकूलित)।

## जरूरतों और रुचियों की उत्पत्ति पर रो का प्रस्ताव

1) आनुवंशिक वंशानुक्रम सभी विशेषताओं के संभावित विकास की सीमा निर्धारित करता है।

2) क्या ये विरासत में मिली विशेषताएँ अपनी क्षमता को प्राप्त करेंगी, उन्हें बेहतर करेंगी या कमतर रह जाएँगी, यह न केवल व्यक्ति के अद्वितीय अनुभवों से निर्धारित होता है, बल्कि जाति, लिंग, परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति और सामान्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जैसे कारकों से भी निर्धारित होता है।

3) रुचियों, दृष्टिकोणों और अन्य व्यक्तित्व चरों के विकास की दिशा, जिनका आनुवंशिक नियंत्रण अपेक्षाकृत कम है, पूरी तरह से व्यक्तिगत अनुभवों से निर्धारित होता है।

संभावित विविधताएं निम्नलिखित हैं :

- प्रकट होने पर जो जरूरतें नियमित रूप से संतुष्ट कर दी जाती हैं वे अनजाने में प्रेरक नहीं बन जाती हैं।
- जिन आवश्यकताओं की न्यूनतम संतुष्टि भी शायद ही कभी हासिल हो पाती है, तो यदि यह उच्च क्रम की हो, तो समाप्त हो जाएगी, यदि निम्न क्रम की है, तो उच्च क्रम की जरूरतों को प्रकट होने से रोकेंगी और प्रभावशाली और सीमित करने वाले प्रेरक बन जाएंगे।
- जिस आवश्यकता की संतुष्टि में देरी होती है, लेकिन अंततः पूरी हो जाती है, संतुष्टि की डिग्री के अनुसार अनिच्छित प्रेरक बन जाएगी।
- ध्यान की दिशा के संदर्भ में मानसिक ऊर्जाओं का अंतिम स्वरूप, रुचियों का प्रमुख निर्धारक है।
- इन जरूरतों की तीव्रता और उनकी संतुष्टि, तथा उनका संगठन, व्यक्त प्रेरणा की डिग्री के प्रमुख निर्धारक हैं।
- एन रो ने तब सुझाव दिया कि व्यक्ति की आनुवंशिक पृष्ठभूमि योग्यताओं और रुचियों को रेखांकित करती है, जो बदले में व्यावसायिक पसंद से संबंधित हैं। आनुवंशिक कारकों और आवश्यकता पदानुक्रमों का संयोजन जीवन में बाद में

किसी व्यवसाय के चयन पर प्रभाव डालता है। व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने की इच्छा की तीव्रता व्यक्ति की आवश्यकता, संरचना की ताकत पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, समान अनुवांशिक निधियों को देखते हुए दो व्यक्तियों के बीच व्यावसायिक उपलब्धियों में अंतर उनके प्रेरणा स्तरों में विसंगतियों का परिणाम हो सकता है और आवश्यकता, संरचना और प्रेरणा की ताकत में ये अंतर, बचपन के दौरान जरूरतों की संतुष्टि में अंतर के कारण होता है, रो ने यह सुझाव दिया। नतीजतन, रो ने प्रस्तावित किया कि बच्चे के पालन–पोषण की प्रथाएं जीवन में बाद में वयस्कों द्वारा व्यक्त किए गए प्रेरक व्यवहार से सीधे संबंधित हैं।

## बच्चे के पालन–पोषण के तरीके

रो ने प्रस्तावित किया कि जिस तरह से माता–पिता बच्चे के साथ अंतःक्रिया करते हैं, वह बच्चे की प्रेरक तीव्रता पर प्रमुख प्रभावों में से एक है। विभिन्न पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चों में विशिष्ट व्यवहार प्रारूप उत्पन्न करेंगी। उसने उन्हें इस प्रकार अवधारणाबद्ध किया:

क) बच्चे पर भावनात्मक एकाग्रता : इसका स्वरूप या तो अति–सुरक्षात्मक या अत्यधिक मांग करने वाला हो सकता है। अति–सुरक्षात्मक माता–पिता बच्चे की निम्न क्रम की आवश्यकताओं को पूरी तरह से और जल्दी से संतुष्ट करेंगे, लेकिन प्यार और सम्मान जैसी उच्च क्रम की जरूरतों को पूरा करने में संकोच कर सकते हैं, साथ ही साथ सामाजिक रूप से वांछनीय व्यवहार को पुरस्कृत करेंगे। इस प्रकार की अन्योन्यक्रिया बच्चे को भौतिक मांगों के तत्काल या त्वरित संतुष्टि पर जोर देने के लिए प्रेरित करेगी। उच्च स्तर की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वह दूसरों पर निर्भरता और सामाजिक रूप से वांछनीय व्यवहार के अनुरूप होने की इच्छा प्रदर्शित करता है। इन उच्च क्रम की ज़रूरतों को प्यार, सम्मान या अपनेपन की भावना की आवश्यकता हो सकती है। अधिक मांग वाले माता–पिता में अति–सुरक्षात्मक माता–पिता जैसी कई समानताएं होती हैं। अति–संरक्षित माता–पिता भौतिक आवश्यकताओं को तुरंत और पर्याप्त रूप से संतुष्ट करेंगे। अत्यधिक मांग वाले माता–पिता अपने मूल्यों के अनुरूप होने की शर्तें और बच्चे को दिए गए प्यार के बदले में सामाजिक उपलब्धि निर्धारित करते हैं। बच्चे की आत्म–साक्षात्कार की ज़रूरतें तब पूरी की जाती हैं जब वे बच्चे के लिए माता–पिता की आकांक्षाओं के अनुसार हों।

ख) बच्चे का परिहार या तो भावनात्मक अभाव या उपेक्षा के रूप में व्यक्त किया जाता है। रो ने आगे कहा कि जो माता–पिता केवल बच्चे की भौतिक भलाई की उपेक्षा करते हैं, वे उतना हानिकारक प्रभाव नहीं डाल रहे होते हैं जितना कि वे माता–पिता डालते हैं जो बच्चे की भावनात्मक जरूरतों की उपेक्षा करते हैं। बच्चे की यह भावनात्मक अस्वीकृति धीमे भावनात्मक विकास की ओर ले जाती है, हालांकि यह गैर–आनुपातिक विकास का कारण नहीं बन सकता है।

ग) बच्चे की स्वीकृति, या तो लापरवाही से या प्यार से। स्वीकार करने वाले माता–पिता अपने बच्चों की जरूरतों को अधिकांश स्तरों पर थोड़े अलग तरीकों से और अलग–अलग डिग्री में संतुष्ट करेंगे। स्वीकार करने वाले माता–पिता के

बच्चों में जो व्यक्तित्व विकसित होता है, वह सभी स्तरों पर आवश्यकताओं की संतुष्टि प्राप्त करने में सक्षम होता है।

रो ने तब परिकल्पना की थी कि लोगों के दो मूल रुझान या तो व्यक्तियों की ओर होते हैं या नहीं होते। ये अभिविन्यास बचपन के अनुभवों पर निर्भर थे, और उन्होंने व्यावसायिक चयन को प्रभावित किया।

## (ख) व्यावसायिक व्यक्तित्व और कार्य परिवेश का हॉलैंड का सिद्धांत

हॉलैंड स्थिरता और अभिवृत्ति परिवर्तन से संबंधित व्यक्तिगत और परिवेशीय विशेषताओं के बारे में स्पष्टीकरण खोजने में रुचि रखता था। यहां मूल प्रश्न अभिवृत्ति की समस्याओं वाले लोगों की मदद करने के लिए प्रभावी तरीके खोजने के लिए एक मजबूत प्रतिबद्धता का है। उनका सिद्धांत सरल, सहज, व्यावहारिक परिभाषाओं और नपे–तुले आयामों पर आधारित है। इसलिए लोगों और परिवेश दोनों पर लागू विचारों के समानांतर सेट का इसमें स्थान है। सिद्धांत का परीक्षण न केवल अनुभवजन्य शोध के परिणामों पर किया जाता है, बल्कि पेशेवरों और जनता द्वारा भी इसे स्वीकृत किया गया है।

यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि, चूंकि व्यावसायिक रुचि व्यक्तित्व के पहलुओं में से एक है, इसलिए किसी व्यक्ति की व्यावसायिक रुचि का विवरण भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विवरण है। यहां व्यक्तित्व लक्षणों की पहचान स्कूली विषयों, सह–पाठ्यचर्या संबंधी गतिविधियों, शौक और काम के लिए वरीयताओं द्वारा की जाती है, और व्यावसायिक हितों को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।

### प्रकृति

यह सिद्धांत संरचनात्मक है – प्रकृति में अंतःक्रियात्मक। इसका अर्थ है कि यह विभिन्न व्यक्तित्व विशेषताओं और संबंधित नौकरी के बीच स्पष्ट संबंध प्रदान करता है। हॉलैंड के अनुसार, विभिन्न संरचनात्मक–संवादात्मक दृष्टिकोणों के विवरण में निम्न शामिल हैं :

- व्यवसाय का चुनाव व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है न कि एक आकस्मिक घटना, हालांकि संयोग की भी एक भूमिका है।
- एक व्यावसायिक समूह के सदस्यों का व्यक्तित्व समान होता है और व्यक्तिगत विकास का इतिहास भी समान होता है।
- क्योंकि एक व्यावसायिक समूह के लोगों का व्यक्तित्व समान होता है, वे किसी भी स्थिति और समस्याओं के प्रति समान तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं।
- व्यावसायिक उपलब्धि, स्थिरता और संतुष्टि किसी के व्यक्तित्व और नौकरी के माहौल के बीच एकरूपता पर निर्भर करती है।

इसका केंद्र बिंदु व्यक्तित्व और इसका प्रारूप वर्गीकरण है। उनका तर्क है कि प्रत्येक व्यक्ति, कुछ हद तक, छह बुनियादी व्यक्तित्व प्रकारों में से किसी एक जैसा दिखता है। जैसे व्यक्तित्व छह प्रकार के होते हैं, वैसे ही छह प्रकार के परिवेश होते हैं, जिन्हें व्यक्तित्व की तरह कुछ विशेषताओं के अनुसार वर्णित किया जा सकता है।

टिप्पणी

परिवेश उन लोगों की विशेषता है जो इसमें काम करते हैं। उदाहरण के लिए, थिएटर में व्यक्तियों का व्यक्तित्व प्रकार कंप्यूटर पर काम करने वाले व्यक्तियों से भिन्न होता है।

इसी प्रकार प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षक महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में कार्यरत अपने समकक्षों से भिन्न होते हैं।

## मान्यताएं

यह सिद्धांत चार मान्यताओं पर आधारित है। वो इस प्रकार हैं :

- "सामान्य तौर पर, अधिकांश व्यक्तियों को छह प्रकारों में से एक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है : यथार्थवादी, खोजी, कलात्मक, सामाजिक, उद्यमी या पारंपरिक।"
- "छह प्रकार के परिवेश होते हैं : यथार्थवादी, खोजी, कलात्मक, सामाजिक, उद्यमी या पारंपरिक।" .
- "लोग ऐसे परिवेश की खोज करते हैं जो उन्हें अपने कौशल और क्षमताओं का प्रयोग करने, अपने दृष्टिकोण और मूल्यों को व्यक्त करने, समस्याओं का सामना करने और भूमिकाओं को निभाने में मदद करे।" एक जैसे लोग एक साथ रहने का प्रयास करते हैं / चोर – चोर मौसेरे भाई / एक ही थैली के चट्टे–बट्टे कहावत से यह विचार अच्छी तरह व्यक्त होता है।
- "व्यवहार व्यक्तित्व और परिवेश के बीच अंतःक्रिया से निर्धारित होता है।"

## छह आदर्श परिवेश

हॉलैंड मूल रूप से मानता था कि व्यक्ति को छह प्रकारों में से एक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। उनका सुझाव है कि जहां छह प्रकारों में से एक आमतौर पर लोगों में प्रबल होता है, वहीं उप–प्रकार या व्यक्तित्व प्रारूप भी होते हैं जो अधिक संपूर्ण विवरण प्रदान करते हैं।

- प्रत्येक परिवेश में एक निश्चित प्रकार के व्यक्तित्व का प्रभुत्व होता है और प्रत्येक परिवेश विशेष समस्याओं और अवसरों को प्रस्तुत करने वाले भौतिक विन्यास द्वारा निश्चित किया जाता है।
  - क) **यथार्थवादी परिवेश** – यह वह परिवेश है जो सफलता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है। यह ठोस और पूर्वानुमेय की दुनिया है जिसके पुरस्कार और मूल्य धन, संपत्ति और शक्ति हैं।
  - ख) **खोजी परिवेश** – यह वह परिवेश है जो बुद्धि के उपयोग और अमूर्त के जोड़–तोड़ में सफलता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है। यह अवलोकन, जांच और सिद्धांत की दुनिया है और इसके मूल्य और पुरस्कार पद (स्थिति) और सम्मान हैं।
  - ग) **कलात्मक परिवेश** – वह परिवेश है जो कलात्मक और रचनात्मक मूल्यों में सफलता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है। यह अमूर्त, सौंदर्य और मौलिक रूप की दुनिया है। यह सम्मान दे कर पुरस्कृत करता है और अपने तरीके से निर्माण करने की स्वतंत्रता को बढ़ाता है।

घ) **सामाजिक परिवेश** – यह वह परिवेश है जो सामाजिकता में सफलता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है और मूल्यों को बढ़ावा देता है तथा सामाजिक गतिविधियों को बढ़ावा देता है। यह लोगों और रिश्तों की दुनिया है जो लगातार बदल रही है, और यह सामाजिक कौशल और दूसरों में परिवर्तन को बढ़ावा देने की क्षमता को महत्व देती है। इसमें आपके साथियों तथा उन लोगों, जिन्हें मदद दी जा रही है, से मान्यता और अनुमोदन मिलता है।

च) **उद्यमशील परिवेश** – वह परिवेश है जो जोखिम लेने, कार्य गहन और नवीन गतिविधियों और मूल्यों में सफलता को प्रोत्साहित करता है और पुरस्कृत करता है। यह निरंतर नई चुनौतियों की दुनिया है जिनका सामना कर दूर किया जाना है, इसके मूल्य और पुरस्कार, शक्ति, पद (स्थिति) और धन हैं।

छ) **पारंपरिक परिवेश** – वह परिवेश है जो डेटा (आंकड़ों) और बारीकियों के सटीक प्रबंधन को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है। यह तथ्यों की दुनिया है जो व्यावहारिक और संगठित है जहां बारीकियों पर निर्भरता और तवज्जो को पुरस्कृत किया जाता है। पुरस्कार आर्थिक सफलता और पद (स्थिति) के रूप में होते हैं जिसमें भौतिक संपत्ति और वरिष्ठों और साथियों की मान्यता शामिल होती है।

लोग ऐसे परिवेश की खोज करते हैं जो उन्हें अपने कौशल और क्षमताओं का प्रयोग करने दें, जिसमें वे अपने दृष्टिकोण और मूल्यों को व्यक्त कर सकें तथा समस्याओं का सामना और भूमिकाओं को स्वीकार कर सकें। यथार्थवादी प्रकार के लोग यथार्थवादी परिवेश चाहते हैं। सामाजिक प्रकार वाले लोग सामाजिक परिवेश की तलाश करते हैं इसी तरह अन्य प्रकार वाले भी सम्बंधित प्रकार वाले परिवेश की तलाश करते हैं। कुछ हद तक, परिवेश भी मित्रता और भर्ती प्रथाओं/परम्पराओं के माध्यम से लोगों की खोज करता है। परिवेश की खोज व्यक्ति कई तरह से, चेतना के विभिन्न स्तरों पर और लंबी अवधि में करता है।

उपरोक्त प्रमुख धारणाएं कई माध्यमिक मान्यताओं की पूरक हैं जिन्हें व्यक्तियों और परिवेश दोनों पर लागू किया जा सकता है। माध्यमिक अवधारणाओं का उद्देश्य मुख्य अवधारणाओं से प्राप्त भविष्यवाणियों या स्पष्टीकरणों को बनाए रखना या संशोधित करना है।

क) **सादृश्यता** – सादृश्यता/अनुरूपता व्यक्तित्व प्रकारों के बीच या परिवेश मॉडल के बीच संबंध या समरूपता की डिग्री है। निरंतरता की डिग्री का व्यावसायिक प्राथमिकता पर प्रभाव पड़ता है।

ख) **विशिष्टीकरण** – कुछ व्यक्ति या परिवेश दूसरों की तुलना में अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति स्पष्ट रूप से एक ही प्रकार से मिलता–जुलता हो सकता है, जो अन्य प्रकारों से नगण्य सादृश्यता प्रदर्शित करता है, या एक ही प्रकार के प्रभाव का एक परिवेश पर प्रभुत्व हो सकता है। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो छह प्रकारों में प्रत्येक से कुछ समानता दिखाता

है, वह अविभेदित या अल्प परिभाषित होता है। कोई व्यक्ति या परिवेश जिस सीमा तक अच्छी तरह से परिभाषित होता है, वह उसके विशिष्टीकरण की डिग्री है।



ग) **एकात्मता / पहचान** – व्यक्तिगत एकात्मता को किसी के लक्ष्यों, रुचियों और प्रतिभाओं की स्पष्ट और स्थिर तस्वीर के रूप में परिभाषित किया जाता है। परिवेषीय पहचान तब मौजूद होती है जब किसी परिवेश या संगठन के पास स्पष्ट, एकीकृत लक्ष्य, कार्य और पुरस्कार होते हैं जो लंबे समय के अंतराल में स्थिर रहते हैं।

क) **सर्वांगसमता** – विभिन्न प्रकारों के लिए अलग–अलग परिवेश की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, यथार्थवादी प्रकार यथार्थवादी परिवेश में फलता–फूलता है क्योंकि ऐसा परिवेश अवसर प्रदान करता है और यथार्थवादी प्रकार की जरूरतों को पुरस्कृत करता है। असंगति तब होती है जब कोई प्रकार ऐसे परिवेश में रहता है जो ऐसे अवसर और पुरस्कार प्रदान करता है जो व्यक्ति की प्राथमिकताओं और क्षमताओं के लिए अवास्तविक (विपरीत) हैं।

### 2.4.4 प्रमुख और माध्यमिक मान्यताओं के बीच एक एकीकरण के रूप में व्यावसायिक विकल्प

यदि एक अभिविन्यास स्पष्ट रूप से दूसरों पर हावी है, तो व्यक्ति एक ऐसे व्यावसायिक परिवेश की तलाश करेगा जो उस अभिविन्यास से मेल खाता हो। लेकिन, वास्तविक क्रियान्वयन में, बहुत कम प्रतिशत लोग इस श्रेणी में आते हैं। अक्सर, यह संभव है कि दो या दो से अधिक अभिविन्यास लगभग एक ही तीव्रता के हों, अन्य बहुत कमजोर हों, या सिर्फ नाम भर को हों। ऐसे मामले में एक व्यक्ति व्यवसाय के चयन में दुविधा/अनिश्चितता/अनिर्णय का अनुभव करेगा। यहीं पर सादृश्यता, विशिष्टीकरण और एकात्मता/पहचान जैसे कारक काम आते हैं। एक व्यक्ति, जो कलात्मक और सामाजिक है, उसके लिए, कलात्मक और पारंपरिक व्यक्ति की तुलना में व्यवसाय का चयन करना आसान होगा। जब किसी व्यक्ति में एक विशेष अभिविन्यास दूसरों की तुलना में अच्छी तरह से परिभाषित होता है, तो व्यवसाय चयन त्वरित, निर्णायक और उपयुक्त होता है। दूसरी ओर, सभी अभिविन्यासों के प्रति लगभग समान तीव्रता का प्रदर्शन करने वाला व्यक्ति व्यवसाय चयन के बारे में भ्रमित, अनिर्णायक और अनिश्चित होगा। निर्णयों की सुगमता विकासात्मक पदानुक्रम की संरचना की स्पष्टता से प्रभावित होती है। अन्य परिवेषीय कारक भी उस सुगमता को प्रभावित करेंगे जिससे एक व्यावसायिक परिवेश का चयन किया जाता है। इनमें से कुछ पारिवारिक कारक हो सकते हैं, जैसे आकांक्षाएं और व्यावसायिक इतिहास, वित्तीय संसाधन, समाज में सामान्य आर्थिक स्थिति, शैक्षिक अवसर, जिसके परिणामस्वरूप एक विशेष व्यावसायिक परिवेश के लिए दबाव हो सकता है। विशेष प्रभावशाली व्यक्तिगत अभिविन्यास न केवल एक व्यक्ति की अभिवृत्ति की पसंद को प्रभावित करता है, बल्कि व्यक्ति के पदानुक्रम के भीतर अभिविन्यासिकरण का प्रारूप एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। अर्थात, एक ही प्रमुख अभिविन्यास वाले दो छात्र समान क्षेत्रों का चयन करेंगे, लेकिन उनकी पसंद की स्थिरता उनके व्यक्तिगत पदानुक्रम में अन्य पांच अभिविन्यासों के अनुक्रम पर निर्भर

करती है। यदि अनुक्रम सुसंगत है, और अन्य सभी कारक स्थिर हैं, तो विकल्प के स्थिर होने की संभावना है। यदि प्रारूप उस व्यावसायिक परिवेश के लिए असंगत है, तो विकल्प के अस्थिर होने की संभावना है। उदाहरण के लिए, कलात्मक, खोजी, सामाजिक, उद्यमशील, पारंपरिक और यथार्थवादी श्रेणीबद्ध क्रम वाले एक नाटककार के किसी अन्य नाटककार की तुलना में अपनी नाटकीय रचनाओं की खोज में अधिक स्थिर होने की संभावना है, जिसका पदानुक्रम कलात्मक, यथार्थवादी, खोजी, सामाजिक उद्यमी और पारंपरिक है। उपर्युक्त दोनों में से पूर्व का अनुक्रम नाटककारों के लिए एक अधिक विशिष्ट प्रारूप का प्रतिनिधित्व करेगा।

## परामर्श के निहितार्थ

छात्रों या वयस्कों को उनके व्यक्तिगत अभिविन्यास को जानने में मदद करने के लिए हॉलैंड ने विभिन्न अभिविन्यास वाले लोगों का विस्तृत विवरण दिया है। व्यक्तिगत अभिविन्यास के बारे में जानने हेतु एक ठोस उपाय के रूप में हॉलैंड ने स्व–निर्देशित खोज सूची का शोध और विकास किया, जो छह मानकों पर अंक देता है। अंत में एक कोड व्यक्ति का प्रमुख झुकाव देता है। इस जानकारी और व्यवसाय खोजक (हॉलैंड द्वारा विकसित) का उपयोग करके, जो विभिन्न कोडों के अनुसार व्यवसायों को वर्गीकृत करता है, सबसे उपयुक्त व्यवसायों को सूचीबद्ध किया जा सकता है। विभिन्न व्यावसायिक वातावरणों के वर्गीकरण का उपयोग परामर्शदाता द्वारा किसी व्यक्ति को कार्य की दुनिया में उन्मुख करने के लिए किया जा सकता है। यह एक व्यक्ति को इस बात की बेहतर समझ देता है कि अगर वह किसी विशेष व्यवसाय में शामिल होता है तो उससे क्या उम्मीद की जाएगी और वह उस व्यवसाय से क्या उम्मीद कर सकता है । हॉलैंड ने अलग–अलग व्यक्तिगत झुकाव रखने वाले लोगों की विशेषताओं के बारे में जो व्यापक डेटा दिया है, उसके आधार पर, एक परामर्शदाता के पास पहले से ही एक व्यक्ति/ग्राहक के बारे में जानकारी का एक बड़ा हिस्सा होता है, जो कि उसके जीवन के प्रमुख व्यक्तिगत अभिविन्यास को जानने के आधार पर होता है। यह परामर्शदाता को ग्राहक की पृष्ठभूमि, माता–पिता, ग्राहक के लक्ष्यों, मूल्यों, सामाजिक संबंधों, प्रेरकों और विचलित करने वालों के बारे में कुछ शिष्ट अनुमान लगाने में मदद करता है।

## गिंजबर्ग का सिद्धांत

गिंजबर्ग और उनके सहयोगियों ने पहले के शोध के आधार पर पाया कि व्यावसायिक चयन में **चार** महत्वपूर्ण चर शामिल थे।

**पहले** की पहचान एक वास्तविकता कारक के रूप में की गई, जो व्यक्ति पर अपने व्यावसायिक चयन का निर्णय करते हुए विभिन्न परिवेषीय कारकों को ध्यान में रखने के लिए दबाव डालता है।

**दूसरा** शिक्षा की मात्रा और गुणवत्ता का प्रभाव था जो एक व्यावसायिक निर्णय के दायरे को विस्तृत या संकीर्ण कर देता है।

**तीसरा** व्यक्ति का व्यक्तित्व और भावनात्मक बनावट/स्वभाव जो व्यावसायिक झुकाव को प्रभावित करता है।

**चौथा** व्यक्तिगत मूल्यों को महत्वपूर्ण माना गया क्योंकि विभिन्न अभिवृत्ति विभिन्न मूल्यों के अनुसार कार्य करने का अवसर देते हैं।

गिंजबर्ग ने व्यावसायिक चयन को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तावित किया, जो यथोचित रूप से स्पष्टतया चिह्नित अवधि में होता है और जो इच्छाओं और संभावनाओं के बीच व्यक्ति द्वारा किए गए समझौतों का परिणाम होता है।

## व्यावसायिक विकास प्रक्रिया की प्रमुख अवधि

**फंतासी अवधि :** जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है फंतासी अवधि की मुख्य विशेषता बच्चे की पसंद की आवेगमयी और मनमानी प्रकृति है जो अवधि के दौरान व्यक्त व्यावसायिक प्राथमिकताओं में व्यावहारिकता की कमी को दर्शाती है। प्रारंभिक व्यावसायिक विकास की इस अवधि के दौरान बच्चा जो महत्वपूर्ण कार्य पूरा करता है, वह एक नाटक अभिविन्यास से एक कार्य अभिविन्यास में परिवर्तन है। इस अवधि के प्रारंभिक चरण में, बच्चे व्यावसायिक प्राथमिकताएँ बताते हैं जो मुख्य रूप से आनंद के सिद्धांत पर आधारित होती हैं। इस सिद्धांत का तात्पर्य है कि बहुत छोटे बच्चे आनंद के लिए गतिविधियों में रुचि दिखाते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चा जॉकी बनना चाहता है क्योंकि उसे घुड़सवारी से मिलने वाले रोमांच का आनंद मिलता है। हालांकि, जैसे–जैसे बच्चा बढ़ता है और बाल्यकाल की काल्पनिक अवधि के अंत तक पहुंचता है, परिपक्वता आने लगती है। यह व्यावसायिक प्राथमिकताओं में परिलक्षित होता है, वह माता–पिता की स्वीकृति वाले वयवसायों को प्राथमिकता देना आरम्भ करता है जिससे उसे अमूर्त संतुष्टि और आनंद की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए, बच्चा डॉक्टर बनने की इच्छा व्यक्त करेगा, क्योंकि वह जानता है कि यह विकल्प उसके माता–पिता के लिए खुशी लाता है। जैसे–जैसे बच्चा काम की दुनिया के बारे में सीखता है, वह उन विकल्पों को व्यक्त करता है जिनमें बाह्य पुरस्कारों की संभावना होती है जैसे कि सफलता और धन जिससे भौतिक संपत्ति आदि खरीदना संभव होता है। उपरोक्त विकासात्मक परिवर्तन के साथ–साथ यह भी परिकल्पना है कि एक बच्चा अपने छोटे आकार और वयस्कों की तुलना में अप्रभावी होने के कारण निराशा का अनुभव करता है। असहायता की इस भावना को दूर करने के लिए बच्चे को वयस्क भूमिकाएँ निभाने में राहत मिलती है, जो उनकी कार्य भूमिकाओं में स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। यह बच्चे को वयस्क दुनिया के मूल्यों को आत्मसात करने में भी मदद करता है। गिंजबर्ग के अनुसार, फंतासी अवधि के दौरान बच्चे वास्तविकता, क्षमताओं और संभावनाओं तथा समय के परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा करते हैं जो व्यावसायिक पसंद प्रक्रिया के बहुत महत्वपूर्ण तत्व हैं।

**संभावित अवधि :** यह लगभग 11 से 18 वर्ष की आयु के बीच होती है। इसे विभिन्न चरणों में विभाजित किया जाता है ये चरण अपने व्यावसायिक विकास कार्यों में भिन्नता लिए होते हैं :

**अभिरुचि चरण :** यह अवस्था 11–12 साल की उम्र के आसपास आती है, जब बच्चा अपनी पसंद या नापसंद की गतिविधियों को पहचानने लगता है। हालांकि चुनाव मुख्य रूप से उनमें संलग्न होने के आंतरिक आनंद के कारण किए जाते हैं। ये विकल्प पिता या माता के साथ पहचान को भी दर्शा सकते हैं, हालांकि वे अभी भी एक अस्पष्ट

अवस्था में होते हैं। चयन में यह सुविधा किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक और भावनात्मक परिवर्तनों से संबंधित हो सकती है

**क्षमता चरण** : यह चरण आमतौर पर 12 से 14 वर्ष की आयु के बीच होता है। यह रुचि के चरण का अनुसरण करता है और बच्चा व्यावसायिक विचार में क्षमता के विचार को प्रस्तुत करके अधिक वास्तविकता अभिविन्यास प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए, यदि पहले बच्चे ने पूरी तरह से एक वास्तुकार बनने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि उसे अच्छी तरह से बनाए गए भवनों में आनंद मिलता है, तो अब वह मूल्यांकन करेगा कि क्या उसके पास वास्तुशिल्प पाठ्यक्रम के लिए प्रवेश परीक्षा पास करने की क्षमता है, क्या वह आवश्यक प्रयास कर सकता है आदि। दूसरे शब्दों में, बच्चे व्यावसायिक चयन पर प्रभाव के रूप में माता–पिता की पहचान के बजाय रुचि के क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन करने की अपनी क्षमता का आकलन करना शुरू करते हैं, और परिणामस्वरूप, व्यावसायिक चयन पर दूरस्थ के आदर्श के प्रभाव में समतुल्य रूप में वृद्धि होती है।

**मूल्य चरण** : यह चरण 15वें और 16वें वर्ष के दौरान होता है। यह व्यावसायिक चयन के लिए बच्चों के दृष्टिकोण में एक विशिष्ट परिवर्तन द्वारा चिह्नित है। इस उम्र में बच्चा हैसियत, पैसा कमाने और भौतिक संपत्ति के मालिक होने की आवश्यकता से भी बढ़कर संतुष्टि प्रदान कर पाने की व्यवसाय की क्षमता का एहसास करता है। उसके लिए यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि वह एक पायलट या सेल्स एक्जीक्यूटिव बन जाता है तो वह विभिन्न जीवन शैलियों का आनंद ले पायेगा।

**अंत में,** इस चरण के दौरान समय के प्रति जागरूकता से संबंधित दो महत्वपूर्ण विकास होते हैं। सबसे पहले, छात्र एक बड़ा समय परिप्रेक्ष्य विकसित करते हैं। वे अभिवृत्ति को एक आजीवन गतिविधि के रूप में सोचने लगते हैं जो उनके संपूर्ण जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाएगा। दूसरे, वे यह महसूस करने में तात्कालिकता की भावना प्रदर्शित करते हैं कि समय बीत रहा है और जल्द ही उन्हें खुद को एक व्यवसाय के लिए प्रतिबद्ध करना होगा।

**संक्रमण चरण** : यह चरण अस्थायी अवधि के अंत का प्रतीक है। लगभग 17 वर्ष की आयु में होने वाली इस अवस्था में पिछले चरणों की तुलना में अधिक परिपक्वता और शांति होती है। इस बिंदु पर व्यक्ति व्यावसायिक भविष्य के बारे में एक ठोस और यथार्थवादी निर्णय लेने की आवश्यकता से पीछे नहीं हट सकता है, और निर्णयों के परिणामों के लिए भी जिम्मेदार बनता है। यह चरण दिन–प्रतिदिन के मामलों की बढ़ती जागरूकता के लिए भी महत्वपूर्ण है। व्यक्ति वित्तीय पुरस्कारों के बारे में अधिक समझता है जो कि कार्य प्रदान करता है, विभिन्न अभिवृत्ति के लिए आवश्यक तैयारी का अध्ययन किया जाता है और अभिवृत्ति की विभिन्न जीवन परिस्थितियों के बारे में जागरूकता तेज होती है।

**यथार्थवादी अवधि** : यथार्थवादी अवधि 18 साल की उम्र से लेकर अलग–अलग उम्र तक होती है। अलग–अलग अभिवृत्ति के लिए अलग–अलग प्रशिक्षण अवधियों के कारण यह अवधि दूसरों की तुलना में अपने समय में अधिक भिन्न होती है। जबकि जैविक परिपक्वता अस्थायी अवधि के दौरान बच्चे के विकास पर एक मजबूत प्रभाव डालती है, इसका वास्तविक अवधि के दौरान प्रगति पर कोई असर नहीं पड़ता है। यह

टिप्पणी

संभव है क्योंकि जैविक परिवर्तन की दर 18 या 19 वर्ष की आयु तक स्पष्ट रूप से धीमी हो जाती है। यथार्थवादी अवधि को आगे तीन चरणों में विभाजित किया गया है :

**अन्वेषण चरण** : इस चरण का महत्वपूर्ण कार्य दो या तीन दृढ़ता से धारित हितों/विषयों में से एक पथ का चयन करना है।

**क्रिस्टलीकरण चरण** : इस चरण के दौरान छात्र अंततः एक विशिष्ट विकल्प के लिए प्रतिबद्ध होने की प्रक्रिया में होता है। क्रिस्टलीकरण के मामले में भी यह संभव है कि बाद में विभिन्न कारणों से एक छात्र के मन में परिवर्तन हो सकता है।

**विशिष्टता चरण** : यह यथार्थवादी अवधि का अंतिम चरण है। यह अभिवृत्ति के विकास का अंतिम बिंदु है, और कुछ के लिए यह चरण वास्तव में कभी नहीं आता है। यहां व्यक्ति विशिष्ट व्यवसाय में नौकरी की तलाश करके या चुने हुए व्यावसायिक क्षेत्र में आगे की विशेषज्ञता के लिए अंतिम प्रतिबद्धता बनाता है।

## प्रारूप में बदलाव

यद्यपि विभिन्न आयु समूहों को अलग–अलग अवधियों और चरणों में निर्दिष्ट करके व्यावसायिक प्रक्रिया के प्रारूप का वर्णन करने का प्रयास किया गया है, यह संभव नहीं है कि हर कोई दिए गए ढांचे का पालन करता है। जैविक, मनोवैज्ञानिक और परिवेषीय कारणों से व्यापक प्रारूप में व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं। इस तरह के मतभेद दो संभावित व्यवहार क्षेत्रों में होंगे। सबसे पहले, लोग समय के साथ व्यक्त व्यावसायिक विकल्पों के प्रतिकूल होंगे। कुछ लोग किसी एक को चुनने से पहले कई प्रकार की पसंद प्रदर्शित करते हैं। ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो अन्य विकल्पों का बहिष्कार कर केवल एक विकल्प पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। इसलिए वे अपनी विशेष व्यावसायिक पसंद के लिए जल्दी समझौता कर लेते हैं।

दूसरा क्षेत्र क्रिस्टलीकरण चरण के समय के संबंध में है। क्रिस्टलीकरण के उद्भव से संबंधित एक विस्तृत श्रृंखला हो सकती है। कुछ में यह अस्थायी अवधि के अंत में सामने आ सकता है, और कुछ में यह वर्ष या अधिक आयु में संभव हो सकता है।

गिंजबर्ग ने यह भी उल्लेख किया है कि विकास में विचलन प्रारूप हो सकते हैं जो सामान्य प्रक्रिया से भिन्न होते हैं। संभावित कारणों में से कुछ गंभीर भावनात्मक विकार, विभिन्न गतिविधियों के लिए बच्चे के सीमित जोखिम, असामान्य व्यक्तिगत और वित्तीय परिस्थितियां आदि हो सकते हैं।

## सिद्धांत की सामान्य अवधारणा

गिंजबर्ग ने निष्कर्ष निकाला कि ऐसे महत्वपूर्ण घटक हैं जो व्यक्ति को सही व्यावसायिक विकल्प पर पहुंचने में पर्याप्त मदद करते हैं। यदि इनमें से अधिकांश तत्व ठीक से विकसित नहीं हो पाते हैं, तो व्यक्ति की व्यावसायिक विकास प्रक्रिया को नुकसान होना तय है।

सिद्धांत की एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा है बच्चे की अभिवृत्ति विकास प्रक्रिया के दौरान उपयुक्त समय पर उपयुक्त आदर्श (मॉडल) के साथ तादात्म्य स्थापित करने

की क्षमता। व्यावसायिक विकास के विभिन्न चरणों में वयस्कों के साथ यह तादात्म्य स्थापित करना छात्रों को एक दिशा देता है और यथार्थवादी मोड (Mode) का पालन करना आसान बनाता है।

सिद्धांत की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कार्य के संबंध में दो बुनियादी व्यक्तित्व प्रकार मौजूद होते हैं; कार्य उन्मुख प्रकार और आनंद उन्मुख प्रकार। इसका मतलब यह नहीं है कि लोगों के पास इस या उस तरह का व्यक्तित्व है, बल्कि यह कि कोई एक विधा जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण से अधिक साम्यता रखती है। कार्योन्मुखी व्यक्ति को संतुष्टि प्राप्ति में होने वाली देरी का इंतज़ार करने की क्षमता से पहचाना जा सकता है, शायद कोई भी बात उसे अपने अभिवृत्ति के लक्ष्यों की खोज में विचलित नहीं कर सकती है। जबकि आनंद उन्मुख व्यक्ति में कार्य हेतु संतुष्टि को स्थगित करने की संभावना नहीं होती है बल्कि अन्य विकल्पों से विचलित होने की संभावना होती है जो यथोचित रूप से आकर्षक लग सकते हैं, जैसे कि एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम या उसके मुख्य कार्य से हटकर कोई अन्य अवसर। दो सिद्धांतों के संयोजन मोड (Mode) में व्यक्ति या तो सक्रिय या निष्क्रिय समस्या समाधानकर्ता हो सकता है। सक्रिय लोग समस्याओं से निपटते हैं, उन्हें हल करने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर, निष्क्रिय लोग प्रतिक्रियाशील होते हैं; उनके सामने समस्याएं आती हैं, वे उन पर प्रतिक्रिया करते हैं, पर शायद ही कभी समस्या समाधान वाली प्रतिक्रियाएं देते हैं।

## परामर्श के निहितार्थ

गिंजबर्ग और उनके सहयोगियों द्वारा प्रस्तावित सैद्धांतिक ढांचे का उपयोग छात्रों को उनके व्यावसायिक विकास में परामर्श देने में दो महत्वपूर्ण तरीकों से किया जा सकता है।

सबसे पहले, छात्रों के लिए अनुभवों और गतिविधियों की व्यवस्था करके इस जानकारी का अच्छी तरह से उपयोग किया जा सकता है ताकि यह विभिन्न चरणों के माध्यम से उनकी प्रगति को सुविधाजनक बना सके। प्रत्येक चरण के विकास कार्यों पर प्रकाश डाला जा सकता है तथा शिक्षकों और अभिभावकों के ध्यान में लाया जा सकता है, ताकि वे छात्रों को व्यावसायिक चयन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करने के लिए अपने प्रयासों को इकट्ठा या संकलित कर सकें।

दूसरे, सैद्धांतिक ढांचे का उपयोग शिक्षक द्वारा उन समस्याओं का अनुमान लगाने के लिए भी किया जा सकता है जिनका छात्रों को विकास के अनुमानित चरणों में सामना करना पड़ सकता है। इससे शिक्षक को समस्याओं का सामना करने के लिए निवारक प्रक्रियाओं को विकसित करने में मदद मिलेगी। उदाहरण के लिए, रुचि के चरण में शिक्षक माता–पिता और बच्चे को विभिन्न गतिविधियों के लिए समय समर्पित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है, इससे पहले कि वह अपनी रुचियों को दो या तीन विषयों/क्षेत्रों तक सीमित कर सके, बच्चे को पर्याप्त जोखिम लेने दें। इसी तरह, क्षमता के स्तर की परीक्षा हेतु वह माता–पिता और छात्रों को एक परीक्षण या खेल प्रदर्शन आदि में आवश्यकता से अधिक पढ़ने/अध्ययन करने के प्रति सावधान कर

सकता है, इस बात पर जोर देते हुए बताया जा सकता है कि छात्र की क्षमता को उसी क्षेत्र में अन्य लोगों की क्षमता के साथ मापा जायेगा।

**टिप्पणी**

### 2.4.5 अभिवृत्ति विकास का सामाजिक शिक्षण सिद्धांत

**क्रुम्बोल्ट्ज़** अभिवृत्ति सिद्धांतकारों में से एक हैं जिन्होंने **बंडुरा** के सामाजिक शिक्षण सिद्धांत के आधार पर अभिवृत्ति विकास सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा। अभिवृत्ति विकास के सामाजिक शिक्षण सिद्धांत से पता चलता है कि व्यक्ति, कुछ नियोजित लेकिन अधिकतर अनियोजित अनुभवों के आधार पर व्यावसायिक विकल्प चुनते हैं। लोगों से यह जानने की अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे भविष्य में वास्तव में क्या करेंगे, लेकिन उनके कार्यों से अनियोजित अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। जीवन की घटनाएं व्यक्ति द्वारा चुने गए अभिवृत्ति पथ को निर्धारित करती हैं। **क्रुम्बोल्ट्ज़, मिशेल एंड जोन्स** (1976) ने सुझाव दिया कि व्यक्तियों का अभिवृत्ति विकास निम्नलिखित चार कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

**1) आनुवंशिक प्रतिभा और विशेष योग्यताएँ**

व्यक्तियों को ऐसी योग्यताएँ और गुण विरासत में मिलते हैं जो उनके अभिवृत्ति के विकास (शारीरिक रूप, लिंग, विशेष योग्यता या इसकी कमी आदि) का विस्तार या इसे सीमित कर सकते हैं।

**2) परिवेश की स्थिति और घटनाएं**

व्यक्तियों के अभिवृत्ति विकास आदि के अवसर उनके नियंत्रण से परे कारकों (पारिवारिक संसाधन, भौगोलिक स्थिति, प्रशिक्षण और कौशल विकास के अवसर, सरकारी नीतियां, तकनीकी विकास) से प्रभावित होते हैं।

**3) सीखने के अनुभव**

सहायक, सहचारी और सीखने के विचित्र अनुभव और किए गए कार्यों के परिणाम व्यक्तियों के अभिवृत्ति विकल्पों को प्रभावित करते हैं।

**4) कार्य दृष्टिकोण कौशल**

यह कौशल सेट, काम करने की आदतों, मानसिक सेट, भावनात्मक और संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं को संदर्भित करता है जो व्यक्ति कार्य स्थितियों में दर्शाते हैं।

क्रंबोल्ट्ज़ और उनके सहयोगी व्यक्तियों के अभिवृत्ति विकल्प को निर्धारित करने में अनियोजित और आकस्मिक घटनाओं पर बहुत महत्व देते हैं। इन घटनाओं के परिणाम सकारात्मक या नकारात्मक हो सकते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, अनियोजित घटनाएँ और संयोग का सामना एक यादृच्छिक घटना होने के बजाय पहले के निर्णयों और व्यवहार का परिणाम है। अभिवृत्ति परामर्शदाता व्यक्तियों/ग्राहकों को इन घटनाओं से सीखने में मदद कर सकते हैं और उन्हें अपने अभिवृत्ति के विकास के लिए प्रासंगिक कार्रवाई करने या निर्णय लेने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग कर सकते हैं। आनुवंशिक और पर्यावरणीय कारक अभिवृत्ति के विकास को प्रभावित करते हैं लेकिन वे व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर हैं।

## अभिवृत्ति विकास का सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत

यह **लेंट, ब्राउन और हैकेट** (1994) द्वारा विकसित **बंडुरा** के सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत पर आधारित एक अन्य अभिवृत्ति विकास सिद्धांत है। उन्होंने एक वैचारिक ढांचा प्रदान करके अभिवृत्तिविकास के मौजूदा सिद्धांतों को एकीकृत करने का प्रयास किया है जो उस प्रक्रिया की व्याख्या करता है जिसके माध्यम से;

अ) अभिवृत्ति और अकादमिक हितों का विकास होता है,

ब) अभिवृत्ति से संबंधित विकल्प विकसित और अधिनियमित होते हैं, और

स) प्रदर्शन के परिणाम हासिल किए जाते हैं (पी.80)।

सामाजिक संज्ञानात्मक ढांचा अभिवृत्ति विकास प्रक्रिया में स्वयं की भूमिका और स्वयं के अभ्यास/परिश्रम को सुविधाजनक बनाने या प्रतिबंधित करने वाले अतिरिक्त–व्यक्तिगत कारकों पर जोर देता है।

इस प्रकार, सिद्धांत में प्रदान किए गए संज्ञानात्मक ढांचे पर ध्यान केंद्रित किया गया है :

अ) आत्म–प्रभावकारिता (किसी विशिष्ट कार्य को सफलतापूर्वक व्यवस्थित करने और उसे पूरा करने की उसकी क्षमताओं के बारे में किसी व्यक्ति के विश्वास को संदर्भित करता है),

ब) अपेक्षित परिणाम (किसी विशिष्ट कार्य को करने के परिणामों या संभावित प्रभावों के बारे में किसी व्यक्ति की मान्यताओं को संदर्भित करता है), और

स) लक्ष्य तंत्र (लोग विशिष्ट कार्य गतिविधियों को व्यवस्थित करने और पूरा करने के लिए लक्ष्य निर्धारित करते हैं। लक्ष्यों का मतलब वांछित कार्य परिणाम को पूरा करने का दृढ़ संकल्प), और अन्य व्यक्तिगत, प्रासंगिक और अनुभवजन्य कारकों के साथ उनका अंतर्संबंध।

उन्होंने अभिवृत्ति विकास के तीन इंटरलॉकिंग मॉडल प्रस्तुत किए हैं, जो इस प्रकार हैं :

1) रूचि विकास का मॉडल,
2) अभिवृत्ति चयन का मॉडल, और
3) कार्य–निष्पादन का मॉडल।

निष्कर्षों को प्रस्तावों के बारह सेटों के रूप में व्यवस्थित किया गया है जो नीचे दिए गए हैं–

1) किसी भी समय किसी व्यक्ति के व्यावसायिक या शैक्षणिक हित उसके वर्तमान आत्म–प्रभावकारिता विश्वासों और परिणाम अपेक्षाओं को दर्शाते हैं।
2) एक व्यक्ति के व्यावसायिक हित भी उसकी व्यावसायिक रूप से प्रासंगिक क्षमताओं से प्रभावित होते हैं, लेकिन यह संबंध किसी की आत्म–प्रभावकारिता मान्यताओं द्वारा व्यवहित होता है।

**टिप्पणी**

3) आत्म–प्रभावकारिता विश्वास प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से चयन लक्ष्यों और कार्यों को प्रभावित करते हैं।
4) परिणाम की अपेक्षाएं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से चयन के लक्ष्यों और कार्यों को प्रभावित करती हैं।
5) लोग ऐसे व्यवसायों या अकादमिक क्षेत्रों में प्रवेश करने की इच्छा रखेंगे जो उनके प्राथमिक रुचि क्षेत्रों के अनुरूप हों।
6) लोग ऐसे व्यवसायों या शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रवेश करने का प्रयास करेंगे जो उनके पसंद के लक्ष्यों के अनुरूप हों, बशर्ते कि वे अपने लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध हों और उनका लक्ष्य वास्तविक प्रवेश के बिंदु के समीप स्पष्ट शब्दों में बताया गया हो।
7) रुचियां प्रवेश के व्यवहार को अप्रत्यक्ष रूप से पसंद के लक्ष्यों पर अपने प्रभाव से प्रभावित करती हैं।
8) आत्म–प्रभावकारिता विश्वास प्रदर्शन लक्ष्यों पर अपने प्रभाव के माध्यम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अभिवृत्ति / शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं। परिणाम अपेक्षाएं केवल परोक्ष रूप से लक्ष्यों पर अपने प्रभाव के माध्यम से प्रदर्शन को प्रभावित करती हैं।
9) योग्यता (या उपयुक्तता) आत्म–प्रभावकारिता विश्वासों पर अपने प्रभाव के माध्यम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अभिवृत्ति / शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करेगी।
10) आत्म–प्रभावकारिता विश्वास विशेष शैक्षिक और व्यावसायिक रूप से प्रासंगिक गतिविधियों के संबंध में प्रदर्शन उपलब्धियों, प्रतिनिधिक शिक्षा, सामाजिक अनुनय और शारीरिक प्रतिक्रियाओं से प्राप्त होते हैं।
11) आत्म–प्रभावकारिता विश्वासों की तरह, शैक्षिक और व्यावसायिक रूप से प्रासंगिक गतिविधियों के साथ प्रत्यक्ष और प्रतिनिधिक अनुभवों के माध्यम से परिणाम की अपेक्षाएं उत्पन्न होती हैं।
12) परिणाम की अपेक्षाएं भी आंशिक रूप से आत्म–प्रभावकारिता विश्वासों द्वारा निर्धारित की जाती हैं, खासकर जब परिणाम (जैसे सफलता, असफलता) किसी के प्रदर्शन की गुणवत्ता या स्तर से निकटता से जुड़े होते हैं (लेंट, ब्राउन और हैकेट 1994)।

Krumboltz et.al.(1976) और Lent et.al. (1994) दोनों अभिवृत्ति के विकास पर आनुवंशिक प्रतिभा, विशेष योग्यता और पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। दोनों सिद्धांत अभिवृत्तिविकास प्रक्रिया में सीखने के अनुभवों के महत्व को उजागर करते हैं।

दोनों सिद्धांत कुछ पहलुओं में भिन्न हैं। क्रुम्बोल्ट्ज़ और सहयोगी चयन के व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करते हैं, लेंट और सहयोगी रूचि विकास, पसंद और प्रदर्शन की इंटरलॉकिंग प्रक्रिया पर केंद्रित हैं। सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत में, अभिवृत्ति की पसंद और विकास में आत्म–प्रभावकारिता तंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जबकि

क्रुम्बोल्ट्ज़ सिद्धांत में आत्म–प्रभावकारिता की भूमिका अपेक्षाकृत छोटी होती है। अभिवृत्ति विकास प्रक्रिया में लक्ष्य निर्धारण की उनकी भूमिका में भी दो मॉडल भिन्न होते हैं। लेंट के मॉडल में, लक्ष्य एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं, जबकि क्रुम्बोल्ट्ज़ अभिवृत्ति निर्णय लेने में लक्ष्यों को महत्व नहीं देते हैं (लेंट, ब्राउन एंड हैकेट, 1994, पीपी 85–87)।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. अभिवृत्ति विकास की "सुपर" की अवधारणा का चरण कौन–सा है?

| | |
|---|---|
| (क) विकास एवं अन्वेषण | (ख) स्थापना |
| (ग) अनुरक्षण एवं अपक्षय | (घ) उपर्युक्त सभी |

6. "रो" ने लोगों के हितों के आधार पर रोजगारों/अवसरों को कितने समूहों में विभाजित किया?

| | |
|---|---|
| (क) 7 | (ख) 8 |
| (ग) 9 | (घ) 10 |

## 2.5 विशिष्ट समस्यायुक्त छात्रों का मार्गदर्शन

जन्म से अथवा बाद में कुछ छात्र अन्य छात्रों से अलग नजर आते हैं वे सामान्य छात्रों से शारीरिक, मानसिक या अन्य वजहों से कमतर प्रदर्शन करते हैं। ऐसे छात्रों को भी विद्यालय और इसके प्रबंधन प्रेम एवं सहयोग से प्रेरित कर उनके आत्म विश्वास व क्षमता को बढ़ाकर उन्हें समाज में बराबरी पर लाने का प्रयास करते हैं। यहां हम ऐसे ही बालकों के बारे में अध्ययन कर उनसे संबंधित विभिन्न पक्षों को जानने का प्रयास करेंगे।

### नैदानिक एवं उपचारात्मक परीक्षण

परामर्श के अंतर्गत नैदानिक एवं उपचारात्मक परीक्षण के द्वारा मनोवैज्ञानिक मानसिक उपचार विधि और मूल्यांकन सहित उन प्रक्रियाओं एवं विधियों का अध्ययन और प्रयोग किया जाता है जो चिकित्सकीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। पारंपरिक रूप से परामर्श लोगों की सामान्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं में सहायक होता है। असामान्य बालकों जैसे दिव्यांग, व्यवहारात्मक समस्या वाले, प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालकों आदि के दैनिक जीवन में विविध समस्याएं होती हैं जिनका समाधान परामर्श के इन परीक्षणों के द्वारा किया जाता है।

### असामान्य बालक

असामान्य अर्थात शारीरिक अथवा व्यवहारात्मक रूप आदि से अक्षम। जब व्यक्ति शारीरिक क्षति एवं अक्षमता के कारण कोई कार्य नहीं कर पाता है तो उसके अंदर एक

हीन भावना बैठने लगती है जो उसे ऊपर ही नहीं उठने देती, लेकिन एक सही परामर्शदाता के परामर्श से व्यक्ति में एक संचार होता है और खुद से वो हर कार्य कर सकता है इसके लिए हमें कोशिश करने की आवश्यकता होती है।

**टिप्पणी**

## दिव्यांग बालक

दिव्यांग बालक शारीरिक रूप से अक्षम होता है। क्रो एवं क्रो ने शारीरिक अक्षमता एवं दिव्यांग बालक की परिभाषा देते हुए लिखा है– "वह बालक जिसका शारीरिक दोष उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है अथवा सीमित रखता है, शारीरिक अक्षमता से युक्त बालक कहा जाएगा।"

इस तरह से दिव्यांग बालक शारीरिक रूप से अक्षम होते हैं। बालक के ये शारीरिक दोष कम भी हो सकते हैं या अधिक भी हो सकते हैं। कुछ दिखाई पड़ सकते हैं और कुछ नहीं भी। जैसे– गूंगे बालक, बहरे बालक, हकलाने वाले बालक, कम दिखाई देने वाले बालक या दृष्टिहीन बालक। इन सभी में शारीरिक अक्षमता पायी जाती है और ये सभी दिव्यांग बालक की श्रेणी में आते हैं। शारीरिक अक्षमता वाले बालक में यद्यपि मानसिक दृष्टि से कोई न्यूनता नहीं होती है फिर भी अपनी शारीरिक विकृति या अंग भंग के कारण उसे उपहास का पात्र बनना पड़ता है। उसे समाज के सामने खुद को प्रस्तुत करने में एक झिझक महसूस होती है। ऐसे बालक सामान्य बालकों की तरह समाज के भिन्न–भिन्न कार्यों में सहजता से भाग नहीं ले सकते हैं। इसी कारण से उनमें आत्म दैन्य की भावना घर कर जाती है।

सभी प्रकार से दिव्यांग व्यक्ति की भी वही शारीरिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक आवश्यकताएं होती हैं जो अबाधाग्रस्त यानी किसी सामान्य व्यक्ति की होती है।

## सामाजिक संवेगात्मक समस्याओं का आविर्भाव

किसी भी प्रकार की अक्षमता एवं दिव्यांगता उस व्यक्ति की समाज में गतिशीलता को कई प्रकार से सीमित कर देती है। एक बाधाग्रस्त व्यक्ति की समाज में भूमिका उसका स्तर और व्यवहार समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा उसके प्रति दिखाए गए अंतर्वैयक्तिक व्यवहार छवि निर्माण एवं पसंद नापसंद आदि से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। इसी के परिणामस्वरूप उस दिव्यांग व्यक्ति का समाज से अलगाव हो जाता है क्योंकि दिव्यांगता केवल चिकित्सा जगत का क्षेत्र नहीं है बल्कि यह सामाजिक महत्व का क्षेत्र भी है।

यदि हम दिव्यांग व्यक्ति के साथ उसके परिवार और उससे नजदीकी संपर्क में आने वाले लोग आदर की भावना और सम्मान भाव से बर्ताव करे तो इससे उनकी स्वयं की छवि सुधरेगी अर्थात उनके स्वयं के विचार, चेतना और अर्द्धचेतना में भी सकारात्मकता दिखाई देगी।

व्यक्ति में किसी तरह की अक्षमता हो तो लोग उसका समान्यीकरण करते हुए ये मानने लगते हैं कि वह व्यक्ति पूरी तरह से बेकार ही है। दिव्यांग व्यक्तियों के बारे में ऐसा सामान्यीकरण लोगों का दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति दोषपूर्ण रवैया ही प्रकट करता है।

इस तरह से स्पष्ट है कि बाधाग्रस्त व्यक्तियों के स्वयं अपने बारे में व दूसरों का उनके बारे में विचारों से कई प्रकार के सामाजिक संवेगात्मक समस्याओं का जन्म होता है जो दिव्यांग व्यक्तियों के लिए कष्ट का कारण बनता है।

## दिव्यांगता के प्रकार

दिव्यांगता कई प्रकार की होती है। मुख्य रूप से दिव्यांगता के चार प्रकार बताऐ गए हैं जो इस प्रकार हैं–

1. शारीरिक दिव्यांगता
2. श्रवण दिव्यांगता
3. चक्षु दिव्यांगता
4. मानसिक दिव्यांगता

## दिव्यांग बालकों की समस्याएं

दिव्यांग बालकों की शारीरिक न्यूनता थोड़ी हो या अधिक हो, किंतु इससे ग्रसित बालक को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके कारण बालक की शारीरिक आकृति में विकृति आ जाती है। दिव्यांग बालक इच्छित क्रियाओं एवं खेलों में भाग लेने योग्य नहीं होता है। इसलिए उसे संतोषप्रद दूसरी रुचियों की आवश्यकता होती है। उसकी अयोग्यता उसकी संवेगात्मक समस्याओं के रूप में विकसित होने लगती है, जैसे– क्रोध, चिड़चिड़ापन, जिद्दीपन और हतोत्साहित होना आदि। अतः उसके समायोजन हेतु प्रयास करना चाहिए। क्योंकि मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों में सही एवं गलत तथा आंतरिक नियंत्रणों के मूल्य धीरे–धीरे समाहित होते हैं। इसी के परिणामस्वरूप वे बहुधा अनुपयुक्त एवं समाज विरोधी भी व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

श्रवण एवं वाणी संबंधी दिव्यांगता वाले व्यक्तियों में अर्थात गूंगे एवं बहरे बालकों में कई तरह की संप्रेषण की समस्याएं आती हैं जिससे सामाजिक अंतःक्रिया की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। वाणी अक्षम व्यक्तियों में अर्थात वाणी अक्षम बालकों में उच्चारण दोष पाया जाता है जो कि स्वाभाविक ही है। लेकिन बच्चों की वाणी संबंधी समस्याएं न केवल उनके सामाजिक संबंधों में बाधक होती है बल्कि उन्हें उनकी आवश्यकताओं को प्रभावी तरीके से बताने में भी विशेष कठिनाई आ जाती है।

इस प्रकार से शारीरिक अक्षमता या दृष्टि दिव्यांगता वाले लोगों की तुलना में मानसिक दिव्यांगता वाले व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं अधिक उग्र होती हैं। क्योंकि दिव्यांगता व्यक्तियों में दिव्यांगता से ग्रसित होने के कारण उनके अंदर यह भावना

जाग्रत हो जाती है कि दूसरे उसके बारे में शारीरिक दोष के कारण बहुत ही हीन विचार रखते हैं। इस तरह के विचार सदैव ही उसके मस्तिष्क में उठा करते हैं और इन्हीं के परिणामस्वरूप उसके अंदर आत्म–दैन्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। कभी–कभी तो हीनता का कारण अवांछित घर और वातावरण की दशाएं भी होती है या फिर उनको समय पर न दी गई औषधि या देर से दी गयी औषधि भी एक कारण हो सकती है।

ऐसे बालकों के लिए एक उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराना आवश्यक है ताकि उनके समायोजन की समस्याएं हल हो सके।

## दिव्यांग बालकों की शिक्षा

1. शारीरिक रूप से दिव्यांग बालकों को शिक्षित करने के लिए पूर्ण प्रयास करने चाहिए। इन बालकों को सामान्य विद्यालयों में न डालकर विशिष्ट प्रशिक्षण वाले विद्यालयों में डालना चाहिए जहां उन्हें एक व्यावसायिक शिक्षा भी प्राप्त हो और वो उनकी शारीरिक अक्षमता में बाधक न हो। उन्हें उनकी दिव्यांगता एवं रुचि के अनुसार ही कार्यों का भार दें और ये बालक उन्हें रुचि के साथ सीखें और अपना विकास करें।

   यद्यपि कम दिव्यांग बालकों की शिक्षा सामान्य विद्यालयों में भी की जा सकती है किंतु विशेष रूप से दिव्यांग बालकों, जैसे दृष्टिहीन, मूक, बधिर, मंदबुद्धि, लकवा, दिव्यांगता तथा कुरूपता से ग्रसित बालकों की शिक्षा विशेष प्रकार के विद्यालयों में की जानी चाहिए ताकि वो अपनी नित्य प्रतिदिन के कार्यों को करना सीख जाए और उसमें उन्हें हरदिन एक नये संचार का अनुभव हो और वो प्रगति कर सके।

2. दृष्टिहीन बालकों की शिक्षा के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है ताकि वो अपनी शिक्षा के रुचिकर रूप से पूर्ण कर सके। दृष्टि संबंधी दोष वाले बालकों के अध्ययन करते समय ये बताना चाहिए कि ये उचित रोशनी में पढ़ाई करें ताकि इनके आंखों पर विशेष बल न पड़े। विद्यालयों में श्यामपट्ट साफ रखा जाना चाहिए और उनकी दूरी बहुत ज्यादा नहीं होनी चाहिए जिससे बालकों को साफ–साफ दिखाई दे सके। इन बालकों को कक्षा में बहुत पीछे नहीं बैठाना चाहिए।

   ज्यादा अर्थात पूरी तरह से दृष्टिहीन बालकों को (ब्लाइंड विद्यालय) में भेजना चाहिए ताकि वहां पर उसे ब्रेल पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त करायी जाए और इन बालकों को किसी हस्तकला एवं गायन विद्या की भी शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वो अपनी जिंदगी में स्वयं पर निर्भर हो सकें और उनका आत्मसम्मान बना रहे। इन बालकों के साथ प्यार से सहयोग पूर्ण कार्य करना चाहिए।

3. कम सुनने वाले और बधिर बच्चों की भी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। कम सुनने वाले बालक को तो सामान्य विद्यालयों में भी भेजकर शिक्षा दी जा सकती है। इन बालकों को कक्षा में आगे की पंक्तियों में बिठाया जाना चाहिए क्योंकि

ये श्रवण शक्ति से कमजोर होते हैं और ऐसे बालक तो श्रवण यंत्र का भी इस्तेमाल करते हैं इसलिए ऐसे बालकों के ऊपर विद्यालय में ध्यान देना आवश्यक है।

लेकिन पूर्ण रूप से बधिर बालकों को मूक–बधिर विद्यालयों में भेजना चाहिए जहां उन्हें एक विशेष पद्धति के द्वारा पढ़ाया और समझाया जाता है। ऐसे विद्यालयों की स्थापना समाज और प्रशासन अपने शहरों में करता है और उन्हें विशेष सुविधा भी प्रदान करता है।

4. कमजोर एवं बार–बार बीमार पड़ने वाले बालकों की शिक्षा के साथ–साथ स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि ये तो शरीर से ही कमजोर होते हैं। ऐसे बालकों की विद्यालय में समय–समय पर शारीरिक परीक्षण कराना चाहिए और इनके लिए उपचारात्मक उपाय करने चाहिए। यदि आर्थिक कारणों से बालक को अपने परिवार में पौष्टिक आहार नहीं प्राप्त हो पा रहा है तो उसकी व्यवस्था विद्यालय में ही की जानी चाहिए। ऐसे बच्चों के प्रति शिक्षक का व्यवहार उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। इन बालकों के शिक्षण में शिक्षक को मदद पहुंचानी चाहिए ताकि बालक को घर और विद्यालय दोनों ही जगहों पर भय व चिंतामुक्त वातावरण प्राप्त हो सके।

5. हकलाने वाले एवं वाणी दोष वाले बालकों के साथ भी शिक्षक को सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। ऐसे बालकों को बोलने का ठीक–ठाक अभ्यास कराना चाहिए। बालक को सुवक्ताओं का अनुकरण करने के लिए और ठीक से बातों को दोहराने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए। इन बालकों के ऊपर शिक्षक को ध्यान देना चाहिए कि इनकी कमी के कारण दूसरे बच्चे इनका मजाक न बनाएं और न ही इन्हें चिढ़ाएं।

   यदि संभव एवं आवश्यक हो तो वाणी दोष को शल्य चिकित्सा द्वारा दूर किये जाने के उपाय करने चाहिए और यथा संभव प्रयास से बच्चे अपनी शिक्षण पर ध्यान देते हैं जिससे इनके आत्मसम्मान में वृद्धि होती है और इनका ये वाणी दोष कुछ कम हो जाता है।

## दिव्यांग बालकों के प्रति निर्देशक उपबोधक की भूमिका

उपबोधक को न केवल दिव्यांग बालक के प्रति बल्कि उसके माता–पिता और परिवार के दूसरे सदस्यों के प्रति भी सलाहकार की भूमिका अदा करनी चाहिए। ताकि दिव्यांग बालक के साथ काम करने वाले व्यक्ति को भी महसूस करना चाहिए कि उपबोधन देने का बुनियादी उद्देश्य दिव्यांग बालक को उसकी संभावित क्षमताओं की पहचान करने में सहायता प्रदान करना है। उपबोधक को चाहिए कि वह दिव्यांग बालक के मन में अपनी योग्यताओं के प्रति विश्वास विकसित कर सके ताकि जहां तक संभव हो सके उसे स्वावलंबी बनाने में उसकी सहायता करे।

दिव्यांग व्यक्ति भी उतना ही चुस्त और भावनात्मक जीवन जीने वाला होता है जितना कि कोई और व्यक्ति। इसलिए उपबोधक को चाहिए कि वह दिव्यांग व्यक्ति को यह महसूस कराए कि वह उपबोधक की सलाह पर विश्वास कर सकता है। उपबोधक

को यह स्मरण रखना होगा कि दिव्यांग बालक को सलाह देते समय उसका विश्वास अर्जित करना उसके लिए परम आवश्यक है। अन्यथा उसके परामर्श के प्रयास सफल ही नहीं होंगे।

**टिप्पणी**

उपबोधक को दिव्यांग बालकों के माता–पिता के साथ भी कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है जो कि वे भी अपने दिव्यांग बालक की आवश्यकताओं को जान सकें और उसे उसकी स्थिति के अनुसार स्वीकार करते हुए उसके विकास में अधिकतम संभावित सहायता कर सकें।

उपबोधन निम्न बिंदुओं पर केंद्रित होना चाहिए–

- दिव्यांग बालक की वास्तविक समस्याओं को समझने में उनकी मदद करनी चाहिए और उनके प्रति भेदभाव नहीं रखना चाहिए।
- दिव्यांग बालक के व्यवहार को समझने में उनके माता–पिता की सहायता करना चाहिए और उन्हें ये बताना चाहिए कि किस व्यवहार को विकसित होने देना चाहिए और किसे नहीं, इसके बारे में उन्हें सलाह देना चाहिए।
- दिव्यांग बच्चों के परिवारों की सामान्य व विभिन्न प्रकारों के समस्याओं का हल निकालने में भी सहायता करना।
- दिव्यांग बच्चों के लालन–पालन–पोषण व प्रबंधन में निर्देशन प्रदान कर सकने वाली सहायक पुस्तकों और पुस्तिकाओं के बारे में राय देना और उस सहायक सामग्री को उनके अध्ययन के लिए उपलब्ध कराना।
- दिव्यांग बच्चों में अधिक सफलतापूर्वक एवं अधिक स्वीकृति पूर्ण व्यवहार करने की समझ और ज्ञान विकसित करना।
- दिव्यांग बालाकों के अभिभावकों को उपलब्ध सामुदायिक संसाधन, जैसे निदान केंद्र, आश्रयी कार्यशालाओं, शैक्षिक संस्थाओं आदि के बारे में सलाह देना।

बालक–बालिका के माता–पिता को जब अपने बाधित बालक के दिव्यांग होने की जानकारी मिलती है तो उनके मन में, भावनाओं की क्रिया और वृत्ति क्रियाओं की बाढ़ सी आ जाती है जिससे उन्हें आघात का अनुभव होता है। तब वे अविश्वास, अस्वीकृति, क्रोध, अपराध, हताशा, अवसाद आदि की तरंगों में डूबने लगते हैं। ऐसे निश्चय–अनिश्चय के माहौल में उपबोधक को चाहिए कि वह इन परिस्थितियों को पार करने में माता–पिता की सहायता करे।

उपबोधक उन्हें ये बतायें कि इन परिस्थितियों में बालक और माता–पिता दोनों के लिए क्या अनुकरणीय है और क्या नहीं। उपबोधक उनको बता सकता है क्योंकि निदानात्मक मूल्यांकन करा लेने के बाद इस बात का पता चल जाता है कि बालक क्या करने योग्य है और क्या नहीं।

उपबोधक को इस तथ्य के बारे में सचेत रहना होगा कि दिव्यांग व्यक्तियों में अपने भविष्य से संबंधित आवश्यकताओं के बारे में समझ सीमित मात्रा में ही होती है। इसलिए दिव्यांग बालक के लिए भविष्य की योजना बनाने में माता–पिता को उपबोधक के सहयोग की आवश्यकता होती है।

## 2.5.1 असामान्य बालकों की समस्याओं के समाधान संबंधी प्रावधान

शिक्षा के जो उद्देश्य सामान्य बालकों के लिए हैं, वे ही असामान्य अथवा विशिष्ट बालकों के लिए भी हैं। जो निम्न प्रकार से हैं–

1. बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का अधिकतम सम्भव, सहज, स्वाभाविक तथा सर्वांगीण विकास करके उसे समाज का एक सभ्य, सुशिक्षित तथा उपयोगी नागरिक बनाना।
2. छात्रों की योग्यताओं, क्षमताओं तथा सामर्थ्य का समुचित विकास करना।
3. छात्रों की रुचियों का विकास करना तथा उचित दिशा प्रदान करना।
4. सीखने की क्षमता को विकसित करना।
5. छात्रों में अनुशासन का विकास करना।
6. बालक को शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करना।
7. बालक को उत्पादित तरीके से जीविकापोर्जन के लिए प्रेरित करना व आत्मनिर्भर जीवन के मार्ग की ओर अग्रसर करना।

साथ ही, विशेष बालकों के लिए विशेष उद्देश्य भी होते हैं जैसे बालक शारीरिक, सामाजिक या मानसिक दिव्यांगताओं के अनुरूप उनके लिए विशेष शिक्षा का आयोजन तथा बालक को स्वावलम्बन की ओर अग्रसित करना, क्योंकि उनकी शिक्षा, अध्यापक, पाठ्य सामग्री, वातावरण सहायक सामग्री भी विशेष है अतः विशेष शिक्षा के लिए विशेष दर्शन, विशेष विधि तथा विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है। इनकी शिक्षा में विस्तृत तथा नयी विचारधारा को रखना आवश्यक है।

समस्त विशिष्ट बालक एक ही समूह के नहीं होते। ये विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित होते हैं। विशेष बालकों की अक्षमताएं शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक हो सकती हैं। इन बालकों की पहचान विभिन्न परीक्षणों द्वारा भी की जाती है। इनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

– समूह सेवाएं तथा निरीक्षण
– मानसिक परीक्षण
– स्वास्थ्य परीक्षण
– नियंत्रित व स्वतंत्र परीक्षण
– व्यक्तिगत पहचान

कुछ प्रकार की दिव्यांगताएं बच्चे की अन्य बच्चों के साथ नियमित विद्यालयों में सीखने और पढ़ने की क्षमता को प्रभावित करती हैं। जैसे– एक बालक जो नेत्रहीन है नियमित विद्यालय में अन्य बच्चों के साथ नहीं पढ़ सकता क्योंकि हमारी शिक्षण प्रणाली मूलतः पढ़ पाने और लिख पाने पर आधारित है। लेकिन कुछ अन्य प्रकार की दिव्यांगताएं नियमित विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने में बाधक नहीं होती है जैसे– एक बालिका जिसकी आंशिक दृष्टि (Partial Sight) है, यदि उसे नजर ठीक करने के लिए

टिप्पणी

चश्मा/लैंस दे दिये जाएं और बड़े आकार की मुद्रित पुस्तकें उपलब्ध करा दी जाए तो वह सामान्य बालकों के साथ उचित तरीके से शिक्षा ग्रहण कर सकती है। अतः वे दिव्यांग बच्चे जिनकी दिव्यांगता शिक्षा प्राप्ति में बाधक नहीं होती है वे नियमित कक्षाओं में अन्य सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, लेकिन वे बच्चे जिन्हें गंभीर दिव्यांगता के कारण नियमित विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने में कठिनाइयां आती हैं, उन्हें शिक्षा के लिए विशेष कक्षाओं अथवा विशेष विद्यालयों की आवश्यकता होती है। सामान्य बालकों को दी जाने वाली शिक्षा से विलक्षण बालक लाभान्वित नहीं होते हैं। विद्यालय में इनके लिए काफी संख्या में कक्षाएं नहीं है और न ही प्रशिक्षित अध्यापक तथा विशिष्ट शिक्षण विधियां। अतः यह वांछनीय है कि विशिष्ट बालक को अपनी क्षमताओं के विकास का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। उनके लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। किसी भी प्रकार की निर्योग्यता वाले बालक को पढ़ाने का तरीका बिल्कुल भिन्न होता है। यह तथ्य विशेष शिक्षा के महत्व की ओर इंगित करता है। विशेष शिक्षा का अर्थ है कि विशेष प्रकार से तैयार की गई शिक्षण पद्धति जो एक विशेष बच्चे की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। इसमें पढ़ाने के विशेष तरीके, विशेष सामग्री तथा, यदि आवश्यक हो तो विशेष प्रकार की कलाएं एवं बच्चों की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार विशेष प्रकार की खेलकूद सामग्री सम्मिलित है।

विशिष्ट बालकों के पूर्ण पृथक्कीकरण (Segregation) पर विद्वानों में बहुत वाद–विवाद हुआ है। अतः विशेष शिक्षा के आयोजन पर बल दिया गया है। विशेष शिक्षा से तात्पर्य अनेक परिस्थितियों से है जो इस प्रकार हो सकती हैं–

- सामान्य बालकों के साथ, समान कक्षा में शिक्षित करना, समय–समय पर विशेषज्ञ निरीक्षण द्वारा बालकों की सहायता करना।
- सामान्य कक्षा के उपरांत, अन्य समय विशिष्ट बालकों को देना।
- विशिष्ट बालक अधिक समय विशेष अध्यापक के साथ व्यतीत करें तथा कुछ समय सामान्य छात्रों के साथ।
- बालक का पूर्णतः विशेष कक्षा में रहना।

यह विभिन्न प्रकार विशेष शिक्षा बालक की रुचि के अनुसार ही प्रदान की जानी चाहिए यदि बालक सामान्य कक्षा में भी लाभन्वित हो सकता है तो उसे वहीं रखना चाहिए। सामान्य बालकों के साथ अच्छा संचार कौशल होने के कारण उसकी उन्नति हो सकती है।

## 2.5.2 राज्य सरकारों द्वारा मुहैया करवाए जाने वाले लाभ और योजनाएं

सभी राज्यों की सरकारें विकलांग लोगों को अपने–अपने क्षेत्र में कुछ योजनाएं तथा लाभ मुहैया करवाती हैं, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है–

**कर्नाटक** : कर्नाटक में, पीडब्ल्यूडी अधिनियम 1995 के अंतर्गत, विकलांग लोगों को मुख्यधारा समाज से जोड़ने के लिए राज्य द्वारा पुनर्वसन, शिक्षा, आर्थिक अवसर, बाधा रहित पर्यावरण और अन्य सहायक सेवाएं प्रदान करना आवश्यक है।

विकलांग लोगों के लिए कर्नाटक राज्य नीति के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- विकलांग लोगों से संबंधित कानूनों का कार्यान्वयन
- विकलांगताओं की समय से पहचान और रोकथाम
- विकलांग बच्चों की स्कूलों में भर्ती और एक व्यापक शिक्षा योजना की स्थापना
- विकलांग लोगों के स्व–रोजगार हेतु प्रोत्साहन
- पुनर्वास योजनाओं की देखरेख
- विकलांग लोगों के लिए गुणात्मक सेवाओं का प्रावधान

**आंध्र प्रदेश** : आंध्र प्रदेश, उन बहुत कम राज्यों में से एक है जहां महिलाओं, बच्चों, विकलांग लोगों तथा वृद्ध नागरिकों की देखरेख के लिए एक अलग विभाग काम करता है। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य नीतियों और पहलुओं को तैयार करना और मजबूत करना है और यह सुनिश्चित करना है कि विकलांग बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हर संभव तरीके से सम्पूर्ण बजटीय सहायता प्रदान की जा रही है। इस विभाग की कुछ गतिविधियां इस प्रकार हैं–

- विकलांग लोगों की पहचान
- प्रारंभिक हस्तक्षेप और पुनर्वास
- विकलांग लोगों की शिक्षा
- मानव संसाधन विकास।
- विकलांग व्यक्तियों का प्रशिक्षण
- विकलांग लोगों के लिए रोजगार और उनका आर्थिक पुनर्वास
- बाधा रहित पर्यावरण का विकास

**गोवा** : गोवा राज्य में 1999 के राष्ट्रीय ट्रस्ट अधिनियम की योजनाओं को लागू करने के लिए इसके अंतर्गत एक स्थानीय समिति काम करती है। विकलांग व्यक्तियों के लिए राज्य नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- विकलांगताओं की शीघ्र पहचान और रोकथाम
- विकलांग लोगों के लिए पुनर्वास सेवाओं का प्रावधान
- विकलांग लोगों की शिक्षा
- विकलांग लोगों के लिए रोजगार उत्पन्न करना
- विकलांग लोगों के विकास के लिए बाधा रहित वातावरण स्थापित करना
- विकलांग लोगों के लिए आवश्यक सहायक उपकरण प्रदान करना
- विकलांग लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना
- विभिन्न प्रकार से योग्य विकलांग लोगों के बारे में जानकारी का संग्रह
- विकलांग लोगों के लिए परिवहन सुविधा की व्यवस्था करना
- विकलांग लोगों के खेल और मनोरंजन का प्रबंधन

**हिमाचल प्रदेश :** हिमाचल प्रदेश में भी विकलांग लोगों के लाभ और कल्याण के लिए राज्य नीति स्थापित की गई है। हिमाचल प्रदेश राज्य नीति का उद्देश्य है एक ऐसे समावेशी समाज का विकास जहां प्रत्येक विकलांग व्यक्ति को मुख्यधारा में शामिल किया जाता है।

हिमाचल प्रदेश में विकलांग व्यक्तियों के कल्याण के लिए बनाई गई नीतियों के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

- विकलांगताओं की रोकथाम
- विकलांग लोगों का पुनर्वास
- विकलांग लोगों को सक्षम बनाने लायक वातावरण की स्थापना।

**केरल :** केरल राज्य में विकलांग लोगों के कल्याण के लिए विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन किया गया है—

- **सहायक सामग्री और उपकरणों का निःशुल्क वितरण :** राज्य द्वारा, भिन्न प्रकार से विकलांग लोगों को गुणवत्ता सामग्री एवं उपकरण मुहैया करवाए जाते हैं। कृत्रिम अंग, तीन पहिया साइकल, व्हील चेयर, कैलीपर्स, बैसाखी, हिअरिंग एड्स, सफेद बैसाखियाम, कोलोस्मोमी बैग आदि इनके कुछ उदाहरण हैं।
- **आत्म—रोजगार सहायता योजना के लिए माली छूट (सब्सिडी) :** इस योजना का कार्यान्वयन आत्म—रोजगार मुहैया करवाने के लिए किया गया है। विकलांग लोगों को आत्म—रोजगार स्थापित करने और स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका कमाने के लिए ऋण मुहैया करवाए जाते हैं।
- **गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिए फिक्स्ड डिपॉजिट योजना :** इस योजना का उद्देश्य है, 8 वर्ष से कम उम्र के, गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिए आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना। इस योजना के अंतर्गत, 8 वर्ष से कम उम्र के, गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिए, जिनके माता—पिता की वार्षिक आय 60,000 से कम है राज्य निगम कुछ धन राशि जमा करवाता हैः लड़कों के लिए 15,000 रुपये और लड़कियों के लिए 20,000 रुपये।

**पंजाब :** पंजाब राज्य द्वारा भी विकलांग लोगों के कल्याण के लिए विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन किया गया है। जैसेकि, राज्य विकलांगता पेंशन, बस कंसेशन, शैक्षणिक छात्रवृत्ति, बेरोजगारी के लिए भत्ता आदि।

**असम :** विकलांग लोगों की देखभाल के लिए असम में सामाजिक कल्याण निदेशालय और विकलांगताओं के लिए राज्य आयुक्त स्थापित किया गया है। असम सरकार द्वारा विकलांग बच्चों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इसके अलावा, सरकार द्वारा विकलांग लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है। यह विकलांग लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा, पुनर्वास, स्वास्थ्य और मनोरंजन भी प्रदान करती है। सरकार विकलांग लोगों के लिए एक बाधा रहित वातावरण के विकास के लिए भी सहायता प्रदान करती है। असम सरकार द्वारा दो विभाग चलाए जा रहे हैं जो विकलांग लोगों के कल्याण के लिए जिम्मेदार हैं।

टिप्पणी

## मध्य प्रदेश

आज के समय में विकलांग लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है। इन विकलांग व्यक्तियों के पास आय के साधनों का अभाव होता हैं। और ये लोग काम करने में भी असमर्थ हो जाते हैं। जिससे इनको अपने दैनिक खर्चे चलाने में काफी मुश्किलों (Difficulties in Running Daily Expenses) का सामना करना पड़ता है। इस समस्या को देखते हुए राज्य सरकार ने 'मध्यप्रदेश विकलांग पेंशन योजना' 2021 को शुरू किया है।

## मध्यप्रदेश विकलांग पेंशन योजना

मध्यप्रदेश राज्य सरकार ने विकलांग पेंशन योजना का शुभारम्भ किया है। मध्य प्रदेश में रहने वाले जितने भी विकलांग व्यक्ति रहते है उन्हें राज्य सरकार द्वारा विकलांग पेंशन योजना के अंतर्गत रखा जाएगा और उन्हें विशेष सुविधा दी जाएगी। ताकि विकलांग व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूरी कर सके। सरकार द्वारा लाभार्थी को हर माह में 600 रूपये की राशि दी जाएगी जो उम्मीदवार के खाते में ट्रांसफर कर दी जाएगी। मध्य प्रदेश विकलांग पेंशन योजना का लाभ वही उठा पाएंगे जो 40 प्रतिशत से अधिक विकलांग होंगे। यदि आपकी विकलांगता 40% से कम होगी तो आप इस योजना का लाभ नहीं उठा पाएंगे।

## मुख्यमंत्री दिव्यांग शिक्षा प्रोत्साहन सहायता राशि

सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग मध्य प्रदेश सरकार ने राज्य में मुख्यमंत्री दिव्यांग शिक्षा प्रोत्साहन सहायता राशि (Mukhyamantri divyang shiksha protsahan sahayata rashi MP) चलाई हुई है। राज्य सरकार द्वारा चलाई गई इस दिव्यांग शिक्षा प्रोत्साहन सहायता राशि 2021 के तहत जो बच्चे अपंग या दिव्यांग हैं उन्हें प्रदेश की सरकार द्वारा मासिक भत्ते के रूप में 600 रूपये दिये जाएंगे। इस सरकारी योजना द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता का इस्तेमाल दिव्यांग बच्चों की शिक्षा पर खर्च किया जा सकेगा। दिव्यांग शिक्षा प्रोत्साहन सहायता राशि योजना 2021 की शुरुआत राज्य सरकार द्वारा विकलांग, अक्षम बच्चों को शिक्षा की ओर प्रोत्साहित करने के लिए की गई थी। क्योंकि सरकार का मानना है कि विकलांग होने के बाद बच्चे पढ़ाई से दूर हो जाते हैं। उन्हे पढ़ाई की ओर आकर्षित करने के लिए ही इस विकलांग शिक्षा प्रोत्साहन सहायता राशि योजना को शुरू किया गया था।

## वृत्तिकर छूट एवं विकलांग वाहन भत्ता

शासकीय सेवक 40 प्रतिशत या उससे अधिक दिव्यांग होने पर वृत्तिकर छूट एवं विकलांग वाहन भत्ता संबंधित विभाग द्वारा प्राप्त कर सकते है।

## अस्थिबाधितार्थ उ.मा.वि. बैतूल

गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले एवं 40 प्रतिशत दिव्यांग (अस्थिबाधित बालक) बालकों के लिये निशुल्क शिक्षण एवं छात्रवृत्ति।

टिप्पणी

### कृत्रिम अंग उपकरण वितरण

40 प्रतिशत से अधिक विव्यांग होना आवश्यक है एवं स्पर्श पोर्टल पर नाम अंकित किया गया हो जिनकी शर्तें निम्नानुसार हैं–

1. अस्थिबाधित दिव्यांग व्यक्ति को ट्राईसिकल, व्हील चेयर, बैसाखी, वाकर, आर्थोपेडिक स्टिक, कृत्रिम अंग, कैलीपर शूज।
2. दृष्टिबाधित दिव्यांग व्यक्ति को ब्लाइंड स्टिक।
3. श्रवणबाधित दिव्यांग व्यक्ति को श्रवण यंत्र।
4. मानसिक दिव्यांग व्यक्ति जो 0 से 18 वर्ष तक के हों, उनको एम आर किट उपलब्ध कराई जाती है।

### मंदबुद्धि/बहुविकलांग को आर्थिक सहायता

छः वर्ष से अधिक आयु के बहुविकलांग और मानसिक रूप से अविकसित निशक्तजन के लिए सहायता अनुदान योजना के अंतर्गत परिवार को आर्थिक सहायता दी जाती है।

### सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना

निःशक्त व्यक्तियों के लिए सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना में आवेदन के साथ सलंग्न किये जाने वाले दस्तावेज निम्न हैं–

1. मूल निवास प्रमाण पत्र।
2. निःशक्तता का प्रमाण पत्र।
3. प्रवेश पत्र की प्रति।
4. प्रारंभिक/मुख्य परीक्षा या अंतिम चयन के आयोग के पत्र की प्रति।
5. प्रारंभिक/मुख्य परीक्षा की अंकसूची की प्रति।
6. जाति प्रमाण पत्र।

### समग्र सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना

समग्र सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना (निराश्रित वृद्ध, कल्याणी, परित्यक्ता, दिव्यांग,वृद्वाश्रम में निवासरत अंतःवासी और गरीब लोगों) निराश्रित वृद्ध, कल्याणी, परित्यक्ता, दिव्यांग और गरीब लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए पेंशन स्वीकृत की जाती है। इसके तहत ऐसे 60 वर्ष के वृद्ध आते हैं जो अपने भरण पोषण की क्षमता नहीं रखते है।

### राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना

भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग द्वारा राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एन एफ बी एस) के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले परिवारों के ऐसे सदस्य जिसकी प्राकृतिक/अप्राकृतिक मृत्यु हो जाने पर पीड़ित परिवार को सामाजिक सुरक्षा प्रदान के उद्देश्य से आर्थिक सहायता प्रदाय की जाती है। योजना का क्रियान्वयन एवं संचालन म०प्र० शासन, सामाजिक न्याय एवं निःशक्तजन कल्याण विभाग द्वारा किया जा रहा है।

टिप्पणी

### मुख्यमंत्री कल्याणी विवाह सहायता योजना

प्रदेश शासन द्वारा कल्याणी विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए मुख्यमंत्री कल्याणी विवाह सहायता योजना प्रारंभ की गई है। प्रदेश शासन द्वारा कल्याणी विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए मुख्यमंत्री कल्याणी विवाह सहायता योजना प्रारंभ की गई है।

## 2.5.3 दिव्यांग कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रमुख योजनाएं एवं दिव्यांग जन अधिनियम–1995

1. **छात्रवृत्ति योजना**– अध्ययनरत दिव्यांग बच्चों, जिनके अभिभावकों की मासिक आय रुपये दो हजार से कम है, को कक्षा 1–5, 85 रुपये प्रतिमाह, स्नातक कक्षाओं में 125 रुपये प्रतिमाह तथा स्नातकोत्तर एवं अन्य व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं को 170 रुपये प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति प्रदान करने की व्यवस्था है।
2. **कृत्रिम अंग/सहायता उपकरण**– विभिन्न श्रेणी के दिव्यांगों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार 1000 रुपये की सीमा तक के कृत्रिम अंग देने की व्यवस्था है, जिनकी आय 300 रुपये प्रतिमाह से कम है।
3. **विभागीय संस्थाएं**– दिव्यांग कल्याण विभाग द्वारा प्रदेश में विभिन्न श्रेणी के दिव्यांगों के लिए कुल 12 विद्यालय हैं जिनमें शारीरिक रूप से दिव्यांग अक्षम बच्चों के लिए 2, दृष्टिबाधित बच्चों के लिए 4, मूकबधिर बच्चों के लिए 4 एवं मानसिक मंदित बच्चों के लिए 2 विद्यालय प्रदेश के विभिन्न जनपदों में संचालित हैं। इसी प्रकार विभाग द्वारा शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के लिए 6, मूकबधिर व्यक्तियों के लिए एक एवं दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए 3, कुल 10 प्रशिक्षण एवं उत्पादन केंद्र भी संचालित हैं।
4. **दुकान निर्माण योजना**– उद्यमी दिव्यांगों को प्रोत्साहित करने के लिए 20000 रुपये की धनराशि दुकान निर्माण हेतु दी जाती है जिसमें 5000 रुपये अनुदान एवं 15000 रुपये अल्प दर पर ऋण रूप में सम्मिलित है।
5. **विशिष्ट दिव्यांग को राज्यस्तरीय पुरस्कार**– प्रदेश के प्रतिभाशाली विशिष्ट दिव्यांगों को महामहिम राज्यपाल के करकमलों से प्रतिवर्ष विश्वदिव्यांग दिवस पर राज्य स्तरीय पुरस्कार दिये जाते हैं।
6. **दिव्यांग से विवाह करने पर पुरस्कार**– इस योजना के अंतर्गत विवाहित जोड़े में से यदि पति दिव्यांग है तो 11000 रुपये एवं पत्नी अथवा पति–पत्नी दोनों दिव्यांग हैं तो 14000 रुपये की धन राशि अनुदान के रूप में प्रोत्साहन स्वरूप प्रदान की जाती है।
7. **पेंशन योजना**– ऐसे निश्चित दिव्यांग व्यक्ति, जिनकी मासिक आय 225 रुपये से कम है, को रुपये 125 प्रतिमाह की दर से भरण–पोषण अनुदान दिया जाता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा दिव्यांगता के क्षेत्र में कार्यरत कई गैर–सरकारी संस्थाओं को भी राज्य सरकार के माध्यम से प्रस्ताव प्रेषित किये जाने पर अनुदान प्रदान किया जाता है।



## दिव्यांग जन अधिनियम–1995 : समग्र दिव्यांग कल्याण की दिशा में एक ठोस कदम

दिव्यांग व्यक्ति भी समाज का एक अंग है। जिन्हें सहानुभूति नहीं, समान अनुभूति की आवश्यकता है। दिव्यांग व्यक्ति के लिए समग्र कल्याण एवं पुनर्वास सुनिश्चित करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अगस्त, 1995 में दिव्यांग कल्याण विभाग की स्वतंत्र रूप से स्थापना की गई है। विभाग द्वारा उनके कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं, जिनमें निराश्रित दिव्यांग, भरण–पोषण अनुदान, छात्रवृत्ति, कृत्रिम अंग हेतु अनुदान आदि प्रमुख हैं। विभाग द्वारा दिव्यांग जनसमान अवसर, अधिकार संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी अधिनियम 1995 के प्रभावी क्रियान्वयन पर विशेष बल दिया जा रहा है। इस प्रकार के अधिनियम अमेरिका, ब्रिटेन जैसे देशों में भी लागू हैं। उपर्युक्त अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का सारांश निम्नवत है–

**अध्याय 1. प्रारंभिक :** इस अध्याय में अधिनियम के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दावली की परिभाषायें दी गई हैं। इसके अनुसार निम्न 7 प्रकार की दिव्यांगताओं को चिह्नित किया गया है–1. दृष्टि–बाधित, 2 अल्प–दृष्टि, 3 कुष्ठ रोग से उपचारित, 4 श्रवण दोष, 5 चलन दिव्यांगता, 6 मानसिक रुग्णता, 7 मानसिक मंदता।

**अध्याय 2. केंद्रीय समन्वय समिति :** अधिनियम के प्रावधानानुसार केंद्र सरकार के समाज कल्याण मंत्री की अध्यक्षता में एक केंद्रीय समन्वय समिति गठित किये जाने की व्यवस्था है। इस समिति के द्वारा लिये गये निर्णयों के कार्यान्वयन की समीक्षा हेतु एक केंद्रीय समिति के गठित किये जाने की भी व्यवस्था है।

**अध्याय 3. राज्य समन्वय समिति :** केंद्रीय समन्वय समिति के अनुरूप प्रत्येक राज्य में एक राज्य समन्वय समिति गठित किये जाने का प्रावधान है। राज्य समन्वय समिति द्वारा एक कार्यकारी समिति गठित की जाती है। उपर्युक्त के परिपालन में राज्य समन्वय समिति एवं राज्य कार्यकारी समिति का गठन करके इसकी नियमित बैठकें कराई जाती हैं।

**अध्याय 4. दिव्यांगता की रोकथाम तथा समय से पहचान :** इस अध्याय के अन्तर्गत सरकारी और स्थानीय प्राधिकरणों को अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं में दिव्यांगता की रोकथाम एवं समय से पहचान कर निराकरण से संबंधित प्रचार–प्रसार एवं शिक्षण–प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था की गई है।

**अध्याय 5. शिक्षा :** अधिनियम की धारा 26 से 31 तक दिये गये प्रावधानों के अनुसार अब यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि प्रत्येक दिव्यांग बच्चे को 18 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क और समुचित शिक्षा मिले। स्थानीय प्राधिकरण भी, दिव्यांग बच्चों के लिए जिन्होंने पांचवीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ दी है, अनौपचारिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करें। इसी प्रकार 16 वर्ष तथा उससे ऊपर आयु के दिव्यांग बालकों के लिए कार्यात्मक साक्षरण हेतु विशेष अंशकालिक कक्षाओं की भी व्यवस्था अधिनियम में दी

गई है। दिव्यांग बालकों को अवरोध रहित समुचित शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से उन्हें विशेष पुस्तकें व उपकरण आदि निःशुल्क दिये जाने की व्यवस्था है। संबंधित सरकारों को यह स्पष्ट रूप से निर्देशित किया गया है कि वे दिव्यांग बालकों की अवरोध रहित एवं निःशुल्क तथा आवश्यक शिक्षा प्रदान करने के सबंध में एक व्यापक शैक्षिक कार्यक्रम सुनिश्चित करें।

**अध्याय 6. रोजगार** : इस अध्याय के अन्तर्गत उपयुक्त प्रकार के पदों का चिह्नीकरण, पदों का आरक्षण, दिव्यांगों के लिए विशेष सेवा योजना केंद्र, दिव्यांग व्यक्तियों को रोजगार मुहैया कराने के लिए योजनाएं, शिक्षण संस्थानों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में कम से कम 3 प्रतिशत दिव्यांगों के आरक्षण की व्यवस्था प्रावधानिक है। साथ ही यह व्यवस्था दी गई है कि विभिन्न सरकारें अपनी आर्थिक क्षमताओं के अनुरूप सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के ऐसे नियोक्ताओं का प्रोत्साहित करें जिनकी कुल कार्य शक्ति में 5 प्रतिशत अथवा अधिक दिव्यांग व्यक्ति हैं।

**अध्याय 7. सकारात्मक कार्यवाही** : इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि सरकार दिव्यांग व्यक्तियों को सहायता उपकरण उपलब्ध कराती है। साथ ही दिव्यांगों को भवन–निर्माण, व्यवसाय एवं विशेष विद्यालयों आदि के लिए रियायती दरों पर प्राथमिकता के आधार पर भूमि का आवंटन किया जाता है।

**अध्याय 8. अभेदभाव** : दिव्यांग व्यक्तियों को अवरोध रहित वातावरण प्रदान करने के दृष्टिकोण से अधिनियम के अन्तर्गत दिव्यांग व्यक्तियों के लिए यातायात के साधनों, सड़कों, भवनों एवं राजकीय रोजगार रहित वातावरण प्रदान किये जाने का प्रावधान है।

**अध्याय 9. शोध एवं मानव शक्ति विकास** : दिव्यांगता की रोकथाम के लिए पुनर्वास के लिए दिव्यांग व्यक्तियों के लिए सहायक उपकरण के सबंध में अनुकूल संरचनात्मक विशेषताओं के विकास के लिए अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहित एवं प्रायोजित करने के सबंध में इस अध्याय के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है।

**अध्याय 10. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए संस्थाओं की मान्यता** : इस अध्याय के अन्तर्गत अधिनियम में यह व्यवस्था है कि दिव्यांगों के लिए संस्था चलाने वाले व्यक्तियों के पंजीकरण की कार्यवाही करनी होती है। राज्य सरकार को निर्देश है कि इस कार्य हेतु एक सक्षम प्राधिकारी नियुक्त करें। उपर्युक्त के परिचालन में उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा निर्देशक दिव्यांग कल्याण को सक्षम प्राधिकारी घोषित किया जा चुका है।

**अध्याय 11. गंभीर रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के लिए संस्थान** : अधिनियम में दी गई परिभाषा के अनुसार ऐसे लोग गंभीर दिव्यांग माने जाते हैं जिनमें 80 प्रतिशत या उससे अधिक दिव्यांगता हो। अधिनियम में ऐसे गंभीर दिव्यांगों के लिए संस्थानों को स्थापित करने तथा सम्पोषित करने का प्रावधान है।

**अध्याय 12. दिव्यांग बालकों के लिए मुख्य आयुक्त और आयुक्त** : केंद्र सरकार द्वारा इस अध्याय को लागू करने के लिए एक मुख्य आयुक्त की नियुक्ति का

प्रावधान है। इसी प्रकार राज्य स्तर पर भी एक दिव्यांग जन आयुक्त की नियुक्ति की भी व्यवस्था इस अध्याय में दी गई है। जन आयुक्त मुख्य रूप से दिव्यांगों के अधिकारों के हनन से संबंधित तथा विकलागों के कल्याण और अधिकारों की रक्षा के संबंध में शिकायत की सुनवाई करता है और राज्य सरकार के कार्य की समीक्षा करके यह सुनिश्चित करता है कि दिव्यांगों को उपलब्ध कराये जाने वाले अधिकार तथा सुविधाएं संरक्षित हैं तथा उनका रहन–सहन का स्तर उच्च बनाने का प्रावधान है।

**अध्याय 13. सामाजिक सुरक्षा** : इस अधिनियम में व्यवस्था है कि सरकार अपनी आर्थिक सीमाओं के आधार पर सभी दिव्यांगों के पुनर्वास का भार उठायेगी तथा जहां तक संभव हो, सरकार ऐसे दिव्यांग बेरोजगारों को विशेष रोजगार भत्ता देगी जो विशेष रोजगार कार्यालय में दो साल से अधिक समय से पंजीकृत हैं एवं जिन्हें कोई लाभकारी रोजगार प्राप्त नहीं हो सका है। इसी अध्याय में यह भी व्यवस्था है कि सरकार रोजगारशुदा दिव्यांग व्यक्तियों की और आवश्यकता पड़ने पर बेरोजगारों के लिए बीमा योजनाएं बनायेगी

**अध्याय 14. विविध** : अधिनियम का यह अंतिम अध्याय है जिसके अन्तर्गत प्रावधानित व्यवस्था के दुरुपयोग करने पर दो वर्ष की सजा और 2000 रुपये तक का जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिये जाने का प्रावधान है। इसी प्रकार संबंधित सरकारों को अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि दिव्यांग जन (समय, अवसर, अधिकार, संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 के अन्तर्गत जो व्यवस्थाएं प्राविधानित हैं, वह निश्चय ही दिव्यांग बंधुओं को समुचित अवसर प्रदान कर पूरी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए वरदान स्वरूप हैं। प्रत्येक दिव्यांग के प्रति दया की भावना के स्थान पर सहयोग की भावना का विकास किया जाए और प्रत्येक स्तर पर दिव्यांग बंधुओं को यथा वांछित सहयोग प्रदान किया जाए कि वे समाज एवं राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ सकें।

## विशिष्ट/समस्यायुक्त व्यक्तियों के लिए नीतियां एवं विधि–निर्माण

विशिष्ट/समस्यायुक्त व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु जो नीतियां एवं अधिनियम बनाये गये हैं, भारतीय संविधान यह गारंटी देता है कि दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार समाज के अन्य व्यक्तियों को प्राप्त अधिकारों के समान ही होंगे। हमारे संविधान में दिए गए राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत दिव्यांग नागरिकों पर भी समान रूप से लागू होते हैं। सरकार द्वारा बनाये गये प्रमुख अनुच्छेद निम्नलिखित हैं–

अनुच्छेद 38– राज्य को दिव्यांग दिव्यांग व्यक्तियों सहित सभी लोगों के हितों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रावधान प्रस्तुत करता है।

अनुच्छेद 39– राज्य से समस्त नागरिकों को जीवन–यापन के समुचित अधिकार सुनिश्चित करने की अपेक्षा करता है।

अनुच्छेद 41– यह निश्चित करता है कि राज्य में अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमा के अंदर काम करने व शिक्षा के अधिकार को सुरक्षित करने और

बेरोजगार, वृद्धावस्था, बीमारी एवं दिव्यांगता होने की स्थिति में राज्य द्वारा सहायता प्रदान करने तथा अनार्जित अभाव के अन्य मामलों में प्रभावशाली ढंग से व्यवस्था करने के उपाय मौजूद हैं।



अनुच्छेद 42– यह निश्चित करता है कि राज्य काम करने की यथोचित एवं मानवोचित परिस्थितियां सुनिश्चित करे।

अनुच्छेद 43– सभी कर्मचारियों को निर्वाह वेतन, उचित स्तर पर जीवनयापन को सुनिश्चित करने हेतु कार्य करने की परिस्थितियां निर्धारित करने और अवकाश एवं सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसरों का व्यापक उपभोग करने पर बल देता है।

अनुच्छेद 45– यह निश्चित करता है कि राज्य की ओर से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था है।

ये निदेशक सिद्धांत यह सुनिश्चित करने के लिए बने हैं कि विशिष्ट (दिव्यांग) नागरिकों को भी समुदाय के अन्य लोगों की भांति सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों में समान भाग लेने का अधिकार प्रदान किया जाए।

विश्व स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) एक ऐसी संस्था है जो कि प्राथमिक रूप से समाज के कमजोर वर्गो के हितों की सुरक्षा और संवर्धन से सम्बद्ध है। संयुक्त राष्ट्र में बाल अधिकारों पर हुई सभा (UN Convention on the Rights of the Child) में अक्षम बच्चे भी सम्मिलित हैं तथा यह सभा दिव्यांग व्यक्तियों की उत्तरजीविका, सुरक्षा तथा विकास की मांग करती है। तथापि संविधान तथा सभा में व्यक्त की गई चिंता के बावजूद दिव्यांगों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार तथा पुनर्वास से संबंधित विषयों के लिए बनाए गए विधान पूर्णतः उचित नहीं हैं। दिव्यांगों के लिए नीतियां बनाना तथा नए कार्यक्रम आरम्भ करना भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय की जिम्मेदारी है। कल्याण मंत्रालय ने दिव्यांगों के कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की है जो पूरे राष्ट्र के लिए नीति–निदेशात्मक नीतियां बनाता है तथा इस क्षेत्र मे प्राथमिकताएं निर्धारित करता है। जबकि कल्याण मंत्रालय ने दिव्यांगता के मुद्दे के विभिन्न पहलुओं पर कार्य करने के लिए राष्ट्रीय स्तर के निकाय शामिल करने के कई प्रस्ताव हैं। दिव्यांगों से सम्बद्ध सरकार द्वारा प्रस्तावित वैधानिक प्रस्ताव हैं तथा कुछ विशेष क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित कानून बनाये जाने की आवश्यता है।

1. एक मुख्य क्षेत्र जहां कानून बनाना आवश्यक है वह है दिव्यांगों के लिए वास्तुशिल्पीय अवरोधक एवं प्रवेश सुविधाएं देने का क्षेत्र–दिव्यांगों के समक्ष एक प्रमुख समस्या जो आती है वह है एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना–जाना। भारत में लोकभवन निर्माण के लिए वास्तुशिल्पीय अनुदेशों से संबंधित कोई कानून नहीं है और न ही दिव्यांग जनसंख्या को यातायात पद्धति में सुविधा देने से संबंधित कोई कानून है।
2. दिव्यांगों के लिए रोजगार के आश्वासन हेतु विधान अधिनियमित करना अति आवश्यक है। अनेक पश्चिमी देशों में नियोजकों को काननून योग्य अक्षम व्यक्तियों का एक विशेष प्रतिशत नौकरी पर रखना आवश्यक होता है। यदि

नियोजक ऐसा न करें तो उन पर कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। भारत में सरकारी उद्योग क्षेत्र में शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के लिए रोजगार आरक्षित हैं। केंद्र और राज्य सरकारों ने शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के लिए 'सी' एवं 'डी' श्रेणी में 3 प्रतिशत स्थान/पद सुरक्षित कर रखे हैं, लेकिन इन प्रावधानों को लागू करने में कानून का सहारा नहीं लिया जा सकता। ये कानूनी तौर पर बाध्य नहीं हैं तथा यदि नियोजक/संस्था दिव्यांगों को आरक्षित कोटा नहीं देते, तो उनके विरूद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। कार्यकारी आदेशों के साथ आरक्षण की नीति कार्यान्वित की जाती है। प्रायः यह देखा गया है कि सरकार हमेशा आरक्षित कोटा पूरा नहीं भरती, जहां तक गैर–सरकारी उद्योग क्षेत्र का सम्बन्ध है वहां पर रोजगार आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं है।

3. दिव्यांग व्यक्तियों के अनिवार्य पंजीकरण, उनकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार एवं अन्य कल्याणकारी उपायों की व्यवस्था हेतु एक विधान बनाने की मांग है। वैधानिक उपायों के अभाव में दिव्यांगों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन पर चिंतन कर, उन्हें जांच करने और जीवन सक्षम प्रक्रियाएं सुझावित करने की आवश्यकता है।

## 2.5.4 प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालक

भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र प्रतिभा के दमन पर प्रगति नहीं कर सकता बल्कि इसके उल्टे, इसका विकास विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभाशाली बच्चों की उचित शिक्षा पर निर्भर करता है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में श्रेष्ठ बनेंगे और नेतृत्व करके, देश के भाग्य के निर्धारण की जिम्मेदारी को बखूबी निभाएंगे।

यह कहना अनावश्यक है कि वर्तमान समय में जबर्दस्त तकनीकी विकास और परिवर्तन की तेज दर की वजह से समाज में न केवल विज्ञान और गणित बल्कि और क्षेत्रों में भी अच्छे नेतृत्व की बड़ी आवश्यकता है। यह नेतृत्व न केवल आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने की ओर निर्देशित होना चाहिए बल्कि अंतर्राष्ट्रीय समझ और समाज कल्याण की बढ़ोतरी की ओर भी होना चाहिए। इन सब उद्देश्यों के लिए समाज को अविष्कारकों, अन्वेषकों, प्रशासकों और राजनेताओं की आवश्यकता होती है। प्रतिभाशाली बच्चों में इन विभिन्न ज्ञान के क्षेत्रों में श्रेष्ठ बनने के लिए अधिकतम संभावना होती है बशर्ते उनकी शिक्षा के लिए उचित प्रावधान बनाया जाए।

शिक्षाविदों द्वारा विशेष प्रावधान बनाने के लिए बहुत सारे तर्क प्रस्तुत किये गए। उदाहरण के लिए, बड़ी कक्षा के वर्तमान ढांचे में इन बच्चों को इनकी योग्यताओं के लिए कोई प्रेरणा और चुनौती नहीं मिलती और उनकी प्रतिभाओं का उचित उपयोग नहीं हो पाता। यही नहीं बल्कि कुछ मामलों में वर्तमान कक्षा शिक्षा पद्धति उनकी क्षमताओं को असामाजिक गतिविधि की तरफ निर्धारित करती है। प्रतिभाशाली बच्चा समाज के लिए बेहिसाब मूल्य की निधि है, इसलिए सभी शिक्षाविदों की तरफ से सलाह है कि इन बच्चों को उनकी मानसिक क्षमताओं के अधिकतम उपयोग के लिए उत्तम प्रबंध अवश्य देना चाहिए।

## परिभाषा

प्रतिभावान की परिभाषा विभिन्न दृष्टिकोणों से दी गयी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बेहतर वृत्तियों के महत्व पर बल दिया है, दूसरों ने व्यक्ति विशेष के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण प्रदर्शन पर। हम मोटे तौर पर सारी परिभाषाओं को बुद्धि–लब्धि, सामाजिक संभावना और सांख्यिकीय संबंध के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। यहां हम, संक्षेप में, तीनों तरह की परिभाषाओं का परीक्षण करेंगे।

1. **बुद्धि–लब्धि (आई.क्यू.)**– (क) प्रतिभावान को सामान्यतः बुद्धि–लब्धि के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रतिभावान बच्चों के लिए अलग–अलग रेंज निर्धारित करते हैं जैसे कि एल.एम. तेरमन प्रतिभावान बच्चों के अपने प्रसिद्ध अध्ययन में आई.क्यू. 140 को प्रतिभावान की निचली सीमा मानते हैं। (ख) दूसरे प्राधिकारी मनोविज्ञान में आई.क्यू. की निचली सीमा 110 से 140 और उसके ऊपर निर्धारित करते हैं।

2. **सामाजिक संभावना**– प्रतिभावान की द्वितीय परिभाषा बच्चे की सामाजिक संभावना के संबंध में है। विट्टी के अनुसार, "प्रतिभाशाली बच्चे वे हैं जिनका प्रदर्शन संगीत, कला, सामाजिक नेतृत्व और अभिव्यक्ति के अन्य रूपों में लगातार उत्कृष्ट है।"

   आर.डब्लू. टाइलर के अनुसार प्रतिभावान बच्चा वह है जो उत्पादन की मात्रा, दर और उसके उत्पादन के गुण में असाधारण हो।

3. **सांख्यिकीय**– तीसरी तरह की परिभाषा प्रतिशत की अवधारणा से संबंधित है। कुछ शिक्षाविद कहते हैं कि प्रतिभावान बच्चे वे हैं जो सबसे ऊपर के 2 प्रतिशत से 4 प्रतिशत की बुद्धिमत्ता में पड़ते हैं। एल.एक्स. मॅग्निफिसे ने प्रतिभावान बच्चों को दो वर्गों में विभाजित किया : (क ) एक, बच्चा जिसकी क्षमता बुद्धि परीक्षा के हिसाब से ऊपरी सीमा के 2 से 3 प्रतिशत जनसंख्या के बीच में पड़ती है और (ख ) दो, बच्चे की ज्ञान के विशिष्ट क्षेत्र जैसे– कला और विज्ञान में उत्कृष्ट क्षमता।

## प्रतिभावान बच्चों की खोज

प्रतिभावान बच्चों की पहचान का इतिहास प्लेटो के समय तक जाता है जिसने अत्यधिक क्षमता वाले व्यक्तियों की पहचान करने के लिए एक योजना का प्रस्ताव किया और अपने आदर्शवादी राज्य में देश पर शासन करने के लिए सही प्रशिक्षण का समर्थन किया।

रोमन लोगों ने युद्ध, उपासनागृह और सरकार में नेताओं को विशिष्ट प्रशिक्षण देने के लिए प्लेटो के कुछ विचारों को आत्मसात किया। 16वीं शताब्दी में, सुलैमान महाप्रतापी ने विशेष शिक्षा के लिए सबसे ज्यादा मेधावी नौजवानों को चुनने के लिए एशिया माइनर में निर्देश के साथ गुप्तचर भेजे।

प्रतिभावान बच्चों की व्यवस्थित शिक्षा 17वीं और 18वीं शताब्दी में लगभग समाप्त हो गयी। यहां वहां कुछ बेहतर बच्चों पर उत्कृष्ट परिणामों के लिए विशेष ध्यान दिया गया।

## प्रतिभावान बच्चों की पहचान

यह अभिभावकों, अध्यापकों, मनोवैज्ञानिकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का प्रतिभावान बच्चों की जल्दी पहचान में मदद करने का सामूहिक प्रयास है।

प्रतिभावान बच्चों की पहचान करने के लिए बहुत सारे तरीके हैं। एक व्यवस्थित पद्धति निम्नांकित है–

1. चिकित्सक और स्वास्थ्य निर्देशक उच्च प्रतिभासंपन्न बच्चों की पहचान में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। अभिभावक प्रतिभावान बच्चों की पहचान घर और घर के बाहर विभिन्न अवस्थाओं में उनके व्यवहार को ध्यान से देखकर कर सकते हैं। प्रतिभावान बच्चों की व्यावहारिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं :
   - पूर्व भाषा विकास
   - खाने की जांच–पड़ताल और तंग करना
   - अजनबियों से विचारपूर्वक मेल–जोल
   - 10 और 11 महीने में चलना
2. (क) बुद्धि का समूह परीक्षण प्राथमिक जांच विधि के तौर पर उपयोगी है किंतु समूह परीक्षण पढ़ाई में दिक्कत वाले बच्चों को पहचान नहीं पाये। बुद्धि के सामूहिक परीक्षण के आधार पर प्रतिभावान बच्चों की छंटनी के बाद बुद्धि का एकल परीक्षण किया जा सकता है।

   (ख) एक प्रामाणिक सफलता परीक्षण प्रतिभावान बच्चों का पता लगाने में उपयोग किया जा सकता है।
3. स्कूल अंकों और छात्रों की सफलताओं के संचित रिकॉर्ड से प्रतिभा सम्पन्नता की तरफ कुछ संकेत दे सकते हैं।
4. शिक्षक, कक्षा और कक्षा के बाहर अपने अवलोकन के आधार पर, बच्चे की क्षमता का कुछ आकलन कर सकते हैं। किंतु कुछ शिक्षाविद सही प्रतिभावान बच्चा चयन करने के संबंध में शिक्षक की योग्यता पर संदेह करते हैं। यहां बहुत सारे मत हैं। तरमन अपने अध्ययन में पाते हैं कि शिक्षक 3 में से 1 प्रतिभावान बच्चा पहचान पाये।

## प्रतिभावान बच्चों के गुण

तरमन और उनके सहयोगियों ने 1528 प्रतिभावान बच्चों का एक गहन लम्बा अध्ययन किया है। उन्होंने प्रतिभावान बच्चों के एक समूह के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक गुणों का अध्ययन किया। उनके अध्ययन का परिणाम निम्नांकित है :

1. **शारीरिक** : प्रतिभावान बच्चों के समूह का औसत सदस्य औसत बुद्धि के बच्चों की तुलना में शारीरिक गुणों में थोड़ा बेहतर था। औसत बच्चों की तुलना में प्रतिभावान बच्चों में बीमारी की घटनाएं कम हैं।

2. **मानसिक :** प्रतिभावान बच्चों ने पढ़ने, भाषा, अंकगणितीय, तर्क, विज्ञान, साहित्य और कला में बेहतर प्रदर्शन किया। वे तर्क क्षमता, सामान्यीकरण और समझ बूझ में बेहतर थे। वे साधारण बच्चों के विपरीत ज्ञान की बड़ी प्रणालियों के संचालन को देख सकने की क्षमता रखते थे।

3. **रुचियां :** प्रतिभावान बच्चों की रुचियां बहुमुखी थीं, वे भावात्मक विषयों में रुचि लेने वाले थे।

4. **सामाजिकता :** प्रतिभावान बच्चे अपने ज्ञान की शेखी मारते या बढ़ा–चढ़ा कर बताते कम देखे गये। वे ज्यादा विश्वसनीय और निष्कपट पाये गये। उनका चरित्र और सामाजिक रुझान ज्यादा स्वस्थ था। उन्होंने भावुकता परीक्षण में ज्यादा अंक प्राप्त किये।

हाल के वर्षों में प्रतिभावान बच्चों के गुणों पर कई शोध किये गये। ये अध्ययन निरपवाद रूप से औसत बच्चों की तुलना में प्रतिभावान बच्चों के निम्न गुणों की तरफ इशारा करते हैं :

(i) उच्च ग्रेड प्राप्त किये, (ii) ज्यादा सकारात्मक प्रवृत्ति, (iii) पढ़ने की ज्यादा क्षमता, (iv) पाठ्यक्रम गतिविधि में ज्यादा भाग लेना, (v) भावनात्मक विचारों के साथ ज्यादा संबंध, (vi) खेल में ज्यादा सफल, (vii) संतुलित, (viii) साथियों के साथ बेहतर संबंध, (ix) ज्यादा आत्मविश्वासपूर्ण, (x) अधिक अहम शक्ति, (xi) अधिक वैयक्तिक स्वातंत्र्य, (xii) बाहरी दुनिया के अपने प्रतिवाद में ज्यादा परिपक्व।

पॉल विट्टी ने, अपने प्रतिभावान बच्चों की किताब हमारे महान संसाधनों (1955) में, निम्नलिखित क्षेत्र प्रस्तुत किये हैं जिनमें कि प्रतिभावान बच्चों के तीव्र विकास का पता ये विद्यालय में जाने से पहले अभिभावकों या पारिवारिक दोस्तों द्वारा लगाया जा सकता है :

1. अच्छा शब्दकोश
2. भाषा निपुणता, पूरे वाक्य का प्रयोग और कम उम्र में कहानी बनाने की क्षमता
3. तेज अवलोकन
4. किताबों में अभिरुचि
5. कम उम्र में कैलेंडर और घड़ी में रुचि
6. आम बच्चों से ज्यादा समय तक केंद्रित करने की क्षमता या फिर लम्बी अवधि के लिए उपस्थित रहना
7. चित्रकारी, संगीत और दूसरे कला के रूपों में निपुणता का प्रदर्शन
8. कारण–प्रभाव संबंध अन्वेषन और खोज में रुचि
9. पढ़ने की क्षमता का जल्दी विकास।

जेम्स एम. डनलप ने प्रतिभावान बच्चों के सकारात्मक और नकारात्मक गुणों को बताया है। ये निम्नानुसार हैं :

## क. सकारात्मक गुण

1. शीघ्र और आसानी से सीखना
2. जो वे सीखते हैं उसे बिना कठिन अभ्यास के याद रखना
3. प्रश्न करने में ज्यादा उत्सुकता दिखाना
4. समृद्ध शब्दकोश मौलिक पहचान के साथ
5. पढ़ने का आनंद लेना
6. शब्दों और विचारों में रुचि दिखाना
7. चीजों के कारण जान सकना
8. सामान्यीकरण की अधिक क्षमता
9. ऐसी चीजों को जानना और सराहना जो कि सामान्य बच्चे नहीं जानते
10. कम उम्र में मनुष्य और संसार की प्रकृति में रुचि का होना
11. बड़ों की मित्रता तलाशना
12. हास्य की अच्छी समझ रखना
13. उत्तम करने की आकांक्षा रखना

## ख. नकारात्मक गुण

1. बेचैन, अशांत, लापरवाह
2. लेखनी में लापरवाह
3. कक्षा काम के प्रति उदासीन
4. खुले रूप से आलोचनात्मक

## प्रतिभावान बच्चे को शिक्षित करना

शिक्षाविदों के सामने सबसे बड़ी समस्या है कि प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा के लिए प्रावधान कैसे बनायें ताकि उनकी कार्यक्षमता का अधिकतम विकास किया जा सके। प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा बहुत से महत्वपूर्ण सवाल उठाती है, जैसे कि किस तरह के शिक्षक की प्रतिभावान बच्चों को आवश्यकता होगी? कौन–सी विधियां उनके लिए सबसे ज्यादा कारगर होंगी और प्रतिभावान बच्चों के पाठ्यक्रम का क्या स्वरूप होगा? यह बताना निरर्थक होगा कि प्रतिभावान बच्चों के लिए शिक्षकों में कुछ विशेष गुण अवश्य होने चाहिए। शिक्षक भावनात्मक तौर पर अवश्य परिपक्व होना चाहिए और उसके पास एक स्वस्थ संकल्पना हो ताकि वह प्रतिभावान बच्चे को अपनी प्रतिष्ठा के लिए खतरा न माने। वह उच्च बुद्धि का होना चाहिए। उसके पास ज्ञान की व्यापक पृष्ठभूमि होनी चाहिए और वह सहयोगी, अधिक गंभीर और अपने काम के प्रति समर्पित होना चाहिए।

सभी शिक्षक प्रतिभावान बच्चों को क्या और कैसे सिखाया जाए में रुचि लेते हैं। अधिकारी सहमत होते हैं कि प्रतिभावान बच्चे को नियमित कक्षा या विशेष कक्षा में पढ़ाया जाए, उसे बहुत समृद्ध पाठ्यक्रम चाहिए। पाठ्यक्रम गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों ही रूपों से समृद्ध होना चाहिए। पाठ्यक्रम की गुणात्मक समृद्धि से मतलब है कि प्रतिभावान बच्चों को विषय के सूक्ष्म और अमूर्त पहलुओं में गहराई से खोज के लिए औसत बच्चों से बेहतर अवसर मिलना चाहिए। उन्हें नए विचारों को उत्पन्न करने और नयी ढंग की सोच को पैदा करने के लिए तथ्यों का मूल्यांकन और सूक्ष्म रूप से बहस करने की छूट मिलनी चाहिए।

मात्रात्मक समृद्धि से मतलब काम का विस्तार, काम की इकाइयों या विषय में वृद्धि, विद्यालय पत्रिका निकालने जैसी गतिविधियों में भागीदारी, नाटक, संग्रहालय की यात्रा, सार्वजनिक पुस्तकालय ले जाना, नियमित पाठ्यक्रम के अलावा शौक और रुचियों का विकास।

प्रतिभावान बच्चे का निम्नांकित कार्यक्रम होना चाहिए :

1. सामान्य शैक्षिक उद्देश्यों के विस्तार को प्रदर्शित करना।
2. प्रेरणादायी अध्ययन का परिवेश उपलब्ध कराना।
3. रचनात्मक क्षमता और सामाजिक जिम्मेदारियों पर खास जोर देना।
4. मूलभूत बुनियादी कौशल, ज्ञान, प्रशंसा को बढ़ावा देना। शिक्षक को यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रतिभावान बच्चों को सामान्य बच्चों की तरह समाज में सफलतापूर्वक काम करने के लिए भाषा और गणित में निश्चित कुशलता चाहिए। इन क्षमताओं को मंद तरीके से नहीं सिखाया जाना चाहिए।

संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रतिभावान के लिए कक्षा कार्य अधिकतम बौद्धिक विकास के लिए चुनौतीपूर्ण होना चाहिए।

## प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा के लिए प्रशासनिक प्रावधान

प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा के लिए प्रशासनिक प्रावधान शीघ्रता के साथ अनियंत्रित प्रयोग की अनंत मात्रा, समूह क्षमता, विशिष्ट कक्षाएं, आंशिक विशिष्ट कक्षाएं, उन्नत नियुक्ति और विशेष मार्गदर्शन है। इन विकल्पों के बीच में प्रावधान का चुनाव अकसर अत्यधिक भावुक और निराधार राय पर आधारित होता है।

अब आइए, प्रमुख विकल्पों की पड़ताल करते हैं :

1. गतिवर्धन को उस प्रगति के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो किसी शैक्षणिक कार्यक्रम के जरिए कम उम्र में परंपरागत तरीके की तुलना में तीव्र गति से चलाया जाता है। गतिवर्धन अनेक स्तरों पर विभिन्न रूपों में हो सकता है, उदाहरण के लिए, विद्यालय में जल्दी दाखिला, प्राथमिक या जूनियर हाईस्कूल स्तर पर गतिवर्धन, कॉलेज में जल्दी दाखिला और योग्य छात्रों को अंडर ग्रेजुएट कोर्स निर्धारित अवधि से कम में या एक साल में पूरा करने की अनुमति देना।

   गतिवर्धन के पक्ष में मुख्य रूप से तीन कारण दिए जाते हैं :

1. बच्चों को तेज रफ्तार और उन्नत कार्य करने की चुनौती मिलती है। उसकी योग्यताओं को तीव्र गति और उन्नत कार्यों से चुनौती मिलती है। उनकी योग्यताओं को चुनौती मिलती है और उनकी क्षमता के अधिकतम विकास के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं।
2. छात्रों, अभिभावकों और विद्यालय के समय और धन की बचत होती है।
3. और, अंत में, प्रतिभावान बच्चे अपने अभिवृत्ति में आगे बढ़ते हैं और जल्द ही अपना योगदान करने लगते हैं।

कई शिक्षक इस तरह के गतिवर्धन के विरुद्ध हैं और इस आधार पर इसकी आलोचना करते हैं कि गतिवर्धन की प्रक्रिया बच्चे पर कई तरह के दबाव डालती है। यह दबाव तब और बढ़ जाता है जब बच्चा अपनी उम्र से बड़े और तुलनात्मक रूप से अधिक भावनात्मक और सामाजिक परिपक्व बच्चों के साथ शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से कदम से कदम नहीं मिला पाता। बच्चे को अपने सहपाठियों के साथ समायोजित कर पाना कठिन हो जाता है। प्रतिभाशाली बच्चों को नई कक्षा के बच्चों के साथ तालमेल बैठाने में कठिनाई होती है और उनमें कुछ समाज–विरोधी रुझान पैदा हो सकता है। दूसरा तर्क यह है कि बच्चे को ऊंची कक्षा में पहुंचा दिया जाता है और उसे उन विधियों से पढ़ाया जाता है जो चुनौतीपूर्ण और प्रेरक नहीं होतीं क्योंकि वे सामान्य बच्चों के हिसाब से तैयार की जाती हैं। ऐसी कक्षा में समीक्षात्मक, रचनात्मक और मूल्यांकनात्मक सोच पर कम जोर हो सकता है और बच्चे की पढ़ाई में दिलचस्पी खत्म हो सकती है।

गोल्डबर्ग ने ताजा अध्ययनों को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया हैः ऐसा कोई एक शोध अध्ययन ढूंढ पाना मुश्किल है जिसमें यह पाया गया हो कि गतिवर्धन बच्चों के किसी समूह के लिए नुकसानदायक रहा हो। इसके विपरीत, अध्ययनों से साबित हुआ है कि गतिवर्धन चुनौतियों का सामना करने वाले योग्य छात्रों के लिए बहुत संतोषजनक विधि है। टर्मन ने अनुशंसा की है कि कम से कम एक साल और संभवतः दो साल से कम का गतिवर्धन प्रतिभाशाली बच्चों के लिए सबसे अधिक संतोषजनक प्रक्रिया है।

यह एक सामान्य राय है कि प्रतिभाशाली बच्चों के लिए कुछ विशिष्ट स्थितियों में गतिवर्धन के कुछ स्वरूप सबसे अच्छा उपलब्ध तरीका है। हालांकि, चयन हमेशा व्यक्तिगत परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए और बच्चे के शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक विकास के स्तर के सभी पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए, उसकी विद्यालयी उपलब्धियों और प्रेरणा को ध्यान में रखना चाहिए।

### रचनात्मक बालक

रचनात्मकता, जैसे कि हम इस शब्द का प्रयोग करते हैं, का मतलब चीजों और विचारों के बीच नए संबंध देखना और अभिव्यक्त करना है। हर बच्चा शब्द के अर्थ में कुछ हद तक रचनात्मक है। रचनात्मकता की मात्रा और इसका फलक एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक बदलता है। रचनात्मक बच्चे समाज की सम्पति हैं। राष्ट्रीय जिंदगी,

विभिन्न क्षेत्रों में विकास और उन्नति रचनात्मक बच्चों पर निर्भर करती है। हमें सभी बच्चों में रचनात्मकता का विकास करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि वे अपनी पसंद के क्षेत्रों में श्रेष्ठ कर सकें और देश को आगे ले जा सकें। वे अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभा सकें।

हमारे विद्यालयों को राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेताओं को तैयार करने के लिए विद्यालयी बच्चों में रचनात्मकता के विकास पर केंद्रित होना चाहिए। विद्यालय को रचनात्मक बच्चों को अलग कर लेना चाहिए और उनकी प्रतिभाओं के विकास के लिए हर संभव सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।

गिल्फोर्ड के अनुसार, रचनात्मकता चिंतन के प्रवाह, लचीलापन और नवीनता लक्षणों के संबंध में भिन्न सोच को शामिल करती है।

गिल्फोर्ड के अनुसार, रचनात्मक सोच का मतलब भिन्न सोच और अरचनात्मक सोच का मतलब अभिसारी सोच से है। भिन्न सोच बुद्धिमत्ता परीक्षणों के द्वारा मापी जाती है जिसमें याद रखना, बोध और कुछ ठोस सामग्री में हेर–फेर शामिल होता है। मनोवैज्ञानिकों ने, पिछले कुछ वर्षों में रचनात्मक बच्चों की क्षमता को मापने के लिए परंपरागत परीक्षणों की सीमाओं को स्वीकार किया है।

टोर्रेंस, जिन्होंने बच्चों में रचनात्मकता को पहचानने का प्रयास किया, ने रचनात्मकता पर बहुत व्यावहारिक काम किया है। उन्होंने रचनात्मकता को परिभाषित किया है, "परेशानियों के प्रति संवेदनशील होने की एक प्रक्रिया के रूप में, अभावों, ज्ञान के अंतरों, खोये हुए तत्वों, असंगतियों इत्यादि परेशानियों का पता लगाना, समाधानों की खोज करना, अनुमान लगाना या अभावों के बारे में परिकल्पनाओं को तैयार करना, परिकल्पनाओं का परीक्षण और पुनःपरीक्षण और संभवतः उनको संशोधित और पुनःपरीक्षण करना और अंत में परिणाम बताना।" रचनात्मकता को परिभाषित करने का दूसरा प्रयास रूस के मनोवैज्ञानिक बिगनिव पिएत्रासिंस्की ने जिन्होंने रचनात्मक काम के सामाजिक महत्व पर बल दिया। उनके अनुसार, रचनात्मकता एक ऐसी क्रिया है जो एक निश्चित सामाजिक गुण के नए उत्पादनों में परिणत होती है।

## रचनात्मक बच्चों की विशेषताएं

टोर्रेंस ने दो चीजों की मदद से रचनात्मक बच्चों की विशेषताओं पर एक सर्वेक्षण करवाया। उसने पाया कि विशेषज्ञों ने रचनात्मक बच्चे की अग्रलिखित विशेषताओं को चुना है–

1. दृढ़निश्चयी– एक रचनात्मक बच्चा अपने मान्यताओं और मूल्यों में दृढ विश्वास प्रदर्शित करता है। वह सामाजिक मान्य व्यवहार से परे जा सकता है ।
2. उत्सुक रचनात्मक– बच्चा अपने वातावरण के बारे में अधिक से अधिक जानने को उत्सुक रहता है।
3. स्वतंत्र निर्णय– रचनात्मक बच्चा महत्वपूर्ण मामलों में स्वतंत्र निर्णय ले सकता है।
4. स्वतंत्र सोच– वह विभिन्न प्रकार की परेशानियों के बारे में सोचने के लिए स्वतंत्र है।

**टिप्पणी**

5. एकाग्र– रचनात्मक बच्चा अपने कामों में तल्लीन हो जाता है। जब वह कोई काम शुरू करता है, वह उस काम में खुद को डुबा लेता है। वह हाथ में आए काम पर अपनी सारी मानसिक ऊर्जा लगा देता है।
6. सहज– वह अपनी दिक्कतों में सहज ज्ञान पैदा करता है।
7. आज्ञा स्वीकार करने को अनिच्छुक– वह आसानी से समस्याओं के सामान्य समाधान को नहीं मानता है। वह अनुसारक नहीं है।
8. साहस– इन बच्चों में खतरा उठाने की क्षमता होती है।
9. दूरदर्शी रचनात्मक– बच्चे के पास भविष्य की परेशानी के लिए दृष्टि होती है। वह भविष्य में होने वाली परेशानियों का पूर्वानुमान कर सकता है।

## रचनात्मकता विकास के चरण

रचनात्मक सोच के विकास में कलाकारों, संगीतकारों और उपन्यासकारों द्वारा निम्नलिखित चरणों को सूचित किया गया हैः

1. **तैयारी का चरण**– यह चरण रचनात्मकता के विकास में समस्या पर ध्यान, आंकड़ों के आयोजन, समस्या को परिभाषित करने और उपयुक्त विचार पैदा करने या उस तरफ ध्यान केंद्रित करता है। यह पढ़ने, सीखने या विभिन्न तरीकों से तथ्यों को संबंधित करने के प्रयास का समय है। हर व्यक्ति में सृजन करने की आतंरिक तीव्र इच्छा होती है।
2. **ऊष्मायन चरण**– दूसरा चरण ऊष्मायन है जब व्यक्ति समस्या को अकेला छोड़ देता है और चेतन 'विचार' या तो 'कुछ' और 'पर' या फिर 'कुछ नहीं' पर चला जाता है। किन्तु अनजाने में वह अपने विचारों को संगठित और असंगठित करता है जो कि किसी तरह से मानस के प्रति सचेत स्तर से नीचे एकत्रित हैं। यह अवधि समस्या के प्रतिनिधि अनुभव को शामिल करती है। समस्या अचेतन तौर पर हल की जा रही है।
3. **प्रदीप्ति चरण**– इस चरण में व्यक्ति अचानक विषय और समस्या के विभिन्न कारकों के बीच संबंध जान जाता है। बहुत से रचनात्मक चिंतक दावा करते हैं कि उनके रचनात्मक विचार अचानक से निकले।
4. **संशोधन**– यह रचनात्मकता के विकास का अंतिम चरण है। इस चरण पर, व्यक्ति आलोचनात्मक समीक्षा के लिए चिंतन, मूल्यांकन करता है। काम के पूरा होने को देखने के लिए बहुत दृढ़ इच्छा होती है ।

## बच्चों में रचनात्मकता विकसित करने के उपाय

सारे शिष्यों को रचनात्मक बनने में मदद की जा सकती है, ऐसे वातावरण में रखकर जो कि रचनात्मक व्यवहार के लिए सहायक हों। विद्यालय बच्चों में रचनात्मकता के विकास के लिए सकारात्मक नजरिया विकसित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। विद्यालयी वातावरण जो कि विचार–स्वातंत्र्य और अन्य व्यावसायिक गतिविधियों के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकता है, एक महत्वपूर्ण कारक हो

सकता है। शिक्षक कक्षा और कक्षा के बाहर बच्चों में वैज्ञानिक जांच की भावना को प्रोत्साहित कर सकता है। नए विचारों के साथ प्रयोग करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। शिक्षकों को मान्य व्यवहारों पर जोर न देकर नये विचारों, नयी योजनाओं और समस्याओं के समाधान की तरफ रुझान को प्रोत्साहित और पोषित करना चाहिए। रचनात्मकता, सोचने और तर्क की उच्च स्तर की बौद्धिक गतिविधियों का परस्पर गहरा संबंध है। सोचने और तर्क को जीवन के बहुत शुरू में विकसित किया जा सकता है। ऑसबॉर्न ने रचनात्मकता के पोषण के लिए एक नयी तकनीक प्रस्तुत की "विचार–विमर्श"। इसके पास दो तरह की मानसिक गतिविधियां हैंः रचनात्मक और न्यायिक। रचनात्मक दिमाग का काम, विचारों का आविष्कार, समस्याओं के नये समाधानों को ढूंढ़ना है। न्यायिक दिमाग का काम रचनात्मक दिमाग से निकले विचारों को सूक्ष्म रूप से जांचना है। विचार–विमर्श की तकनीक छोटे बच्चों के समूह में आराम से उपयोग की जा सकती है। एक समस्या विमर्श के लिए रखी जाती है और शिष्यों को पूर्ण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ अपने मतों को रखने को कहा जाता है। फिर शिक्षक की सहायता से किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है।

1. **विस्तार** : रचनात्मक सोच का एक महत्वपूर्ण पक्ष "विस्तार" है। व्यक्ति को समस्या की सूक्ष्म रूपरेखा दी जाती है और अपनी कल्पना के प्रयोग से वह समस्या को पूरा करता है। विस्तार की यह प्रक्रिया व्यक्ति को तर्क, सोच और समस्या–समाधान की क्षमताओं को विकसित करने का अवसर देती है जो कि रचनात्मकता के महत्वपूर्ण घटक हैं। कक्षा शिक्षक अपनी नियमित शिक्षा की रुपरेखा के भीतर इस तकनीक का उपयोग कर सकते हैं।

2. **कल्पना** : शिष्यों को अपनी कल्पना के विकास के लिए पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए क्योंकि कल्पना रचनात्मकता के विकास में सहायता करती है।

3. **रचनात्मक अभिव्यक्ति और कलाएं** : तीन साल के बच्चे को कोयले के टुकड़ों या पेंसिल को हाथ में लेकर बैठक की दीवारों, फर्श या किसी किताब जो उसकी पकड़ में आ जाए, पर लिखते देखिये। लिखने का यह काम कुछ नया सृजन करने की तीव्र इच्छा की अभिव्यक्ति है। नवजात बच्चों की यह इच्छा अवरुद्ध नहीं होनी चाहिए बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रोत्साहित की जानी चाहिए। विद्यालय सामग्री प्रदान करके कलात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा रचनात्मकता को विकसित कर सकते हैं। प्रोफेसर रीड ने कला के जरिये शिक्षा का सम्पूर्ण समाधान दिया है। कलात्मक अभिव्यक्ति नये विचारों को पैदा करने का अवसर देती है।

4. **उपमा का प्रयोग** : कभी–कभी बच्चे समस्याओं को सीधे समझने में असफल हो जाते हैं किंतु जब समस्या तुलनीय स्थिति की मदद से सिखायी जाती है, यह साफ और समझने योग्य हो जाती है। शिक्षकों को शिक्षा में कठिन संकल्पनाओं को समझाने के लिए उपमाओं का उपयोग करना चाहिए।

5. **परिणामों पर सोचने की प्रवृत्ति** : बच्चों को किसी भी काम के परिणामों पर सोचने लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। मानसिक श्रम रचनात्मक सोच के विकास में मददगार है।

6. **विभिन्न सोच** : बच्चों को समस्या के विभिन्न तरीकों के बारे में सोचने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। विभिन्नता सोच विकसित करती है।

## स्कूलों में रचनात्मक काम के लिए सहायक वातावरण

1. **आत्मविश्वास** : शिक्षकों को ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जो काम में उनका आत्मविश्वास बढ़ाये। बच्चों को अपने लिए दिए गये काम को करने के लिए अपनी क्षमताओं पर पूरा विश्वास होना चाहिए।

2. **अभिव्यक्ति के अवसर** : बच्चों को विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अवसर दिया जाना चाहिए। उसे बच्चों को विभिन्न प्रकार की रुचियों में लगाना चाहिए। शिक्षक को अपने शिष्यों में रचनात्मकता को महत्व देना सीखाना चाहिए और उन्हें रचनात्मक रूप से सोचने और काम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें अपनी रुचियों को सक्रिय प्रयोग द्वारा जारी रखने के लिए बहुत सारी गतिविधियों जैसे संग्रहण, शौक और विशेष ज्ञान के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। शिक्षकों को किसी समस्या पर अपने मतों को अभिव्यक्त करने में छात्रों के विरोध को अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

3. **मानसिक स्वास्थ्य** : रोजर्स ने सुझाव दिया है कि रचनात्मकता के आविर्भाव के लिए दो शर्तें आवश्यक हैं, मनोवैज्ञानिक सुरक्षा और मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता। बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए ताकि वे अपना समय रचनात्मक कामों में लगा सकें।

4. **आत्म–मूल्यांकन** : शिक्षकों को छात्रों को अपने प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

5. **निरंतरता** : शिक्षकों द्वारा बच्चों की निरंतर गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

6. **विशेष कार्यक्रम** : विभिन्न सोच को आगे बढ़ाने के लिए बनाये गये कार्यक्रमों और रचनात्मक सोच के दूसरे पक्षों को शिक्षक द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। ऑल्टन और सहयोगी द्वारा उत्पादक सोच कार्यक्रम पांचवीं या छठी कक्षा का स्व–अनुदेशात्मक कार्यक्रम है।यह कार्यक्रम छात्रों की विभिन्न सोच की क्षमता को बढ़ाता है। हम अपने छात्रों की रचनात्मक क्षमता बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम विकसित कर सकते हैं।

7. **विचार–विमर्श** : यह ऐसी तकनीक है जो विभिन्न सोच के महत्व पर जोर देती है। यह समूह में समस्या के प्रति विचारों को पैदा करती है। छात्र को जो भी

विचार आए उसे कहने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। ये विचार बाद के मूल्यांकन के लिए रखे जाते हैं। यह पाया गया कि यह तकनीक विभिन्न सोच को बढ़ाती है।

टिप्पणी

8. **आत्म–अवधारणा** : अभिभावकों और शिक्षकों को बच्चों की आत्म–अवधारणा विकसित करनी चाहिए।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. मुख्य रूप से दिव्यांगता के कितने प्रकार बताए गए हैं?
   (क) 3 (ख) 5
   (ग) 4 (घ) 6
8. असामान्य बालकों की समस्याओं के समाधान हेतु निम्न में से कौन–सा उद्देश्य है?
   (क) योग्यताओं, क्षमताओं तथा सामर्थ्य का समुचित विकास
   (ख) रुचियों का विकास तथा उचित दिशा प्रदान करना
   (ग) अनुशासन का विकास करना
   (घ) उपर्युक्त सभी

## 2.6 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं : सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं

उपर्युक्त विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

### 2.6.1 छात्रों की व्यवहार संबंधी समस्याएं

#### व्यवहारात्मक समस्या वाले बालक

विद्यार्थियों का व्यवहार प्रायः अध्यापकों एवं माता–पिता को चिंतित करता है। विद्यार्थी जीवन में बालक में बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था दोनों ही विकासात्मक काल सम्मिलित होते हैं। ये विकास आरंभिक अवस्था होने के कारण चुनौतियां अनेक प्रकार की होती हैं जिनका उपर्युक्त समाधान आवश्यक होता है। विद्यार्थियों की व्यवहारगत समस्याओं का प्रतिकूल प्रभाव उनकी शैक्षिक प्रगति पर देखा जाता है और इनके इन व्यवहार से माता–पिता, शिक्षक तथा समाज के व्यक्ति परेशान होते हैं।

वेलेन्टाइन ने लिखा है– "समस्यात्मक बालक शब्द का प्रयोग साधारणतः उन बालकों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनका व्यवहार या व्यक्तित्व किसी बात में गंभीर रूप से असामान्य होता है।"

टिप्पणी

## विद्यार्थियों की व्यवहारात्मक समस्याएं

क्वारी (Quary) 1972–1975 ने व्यवहारात्मक समस्याओं को चार उपवर्गों में वर्गीकृत किया है–

1. **चारित्रिक विकार**– चारित्रिक विकार वाले बालकों में अवज्ञा, झगड़ा करना, रौब जमाना, चिड़चिड़ापन, बदमिजाजी की प्रवृत्ति जैसे व्यवहार वाले बालकों को सम्मिलित किया गया है।
2. **व्यक्तित्व विकार**– व्यक्तित्व विकार वाले श्रेणी में उन बालकों को रखा गया है जिनमें सामाजिक प्रत्याहार, हीन भावना, आत्मग्लानि, लज्जालु प्रवृत्ति और अप्रसन्नता जैसी प्रवृत्तियां होती हैं।
3. **अपरपिक्वता**– अपरपिक्वता की श्रेणी में वो बालक आते हैं जो अवधान न्यूनता, अत्यधिक निष्क्रियता, फूहड़पन, भद्दगी, दिवास्वप्न जैसी प्रवृत्तियां जिनके अंदर होती हैं।
4. **सामाजिक अपराध वृत्ति**– इस श्रेणी में वो बालक आते हैं जो विद्यालय से भागना, गोलबंदी, गैंग की सदस्यता ग्रहण करना, चोरी जैसी आपराधिक प्रवृत्तियों आदि में लिप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त बालकों की समस्याओं को सामान्य तौर पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है जो इस प्रकार हैं–

1. **कक्षा में उत्पात**– ऐसे बालक अपने सहपाठियों को चिढ़ाते हैं, परेशान करते हैं और उनके कार्यों में व्यवधान डालते हैं एवं शोर मचाते हैं। ऐसे विद्यार्थी अध्यापकों के लिए चिंतनीय विषय होते हैं।
2. **अधैर्य**– कुछ विद्यार्थी जिनमें अधैर्य होता है वो अपना कार्य अतिशीघ्रतापूर्वक आरंभ करते हैं और जल्दी–जल्दी पूरा करते हैं जिससे उसमें अनेक त्रुटियां रह जाती हैं।
3. **असम्मान एवं अवज्ञा**– ये विद्यार्थी कक्षा एवं विद्यालय में नियमों को तोड़ते हैं तथा अध्यापकों के साथ असम्मानजनक व्यवहार करते हैं।
4. **आत्मनिर्भरता का अभाव**– ऐसे विद्यार्थी स्वयं निर्णय नहीं ले पाते हैं। इन्हें बाहर से स्पष्ट निर्देश एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
5. **अनुपयुक्त प्रतिक्रिया प्रवृत्ति**– ये विद्यार्थी शिक्षक के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर बेतुके रूप में देते हैं और शिक्षक के अध्यापन के समय व्यवधान डालते हैं या अनुचित टिप्पणी करते हैं।
6. **ध्यान का अभाव**– ऐसे विद्यार्थी ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते। निर्देश का अनुपालन नहीं करते और इन्हें शांत एवं स्थिर रहने में कठिनाई होती है।
7. **सामाजिक प्रत्याहार**– इस प्रकार के विद्यार्थी अत्यधिक शांत होते हैं। सहपाठियों से दूर अलग होकर कक्षा में बैठते हैं जो कि अध्यापक एवं माता–पिता के लिए चिंतनीय विषय बन जाते हैं।

टिप्पणी

8. **चिंता एवं विषाद**– विद्यार्थियों के जीवन में टेस्ट और परीक्षाएं बार–बार संपन्न होने वाली क्रियाएं हैं। ये उससे चिंतित हो जाते हैं और किसी विद्यार्थी द्वारा आलोचना किए जाने पर ये उसे स्वीकार नहीं करते बल्कि उस आलोचना पर उत्तेजित हो जाते हैं। ये इनके व्यवहार का दोष है।
9. **विद्यालय से पलायन**– कुछ विद्यार्थी विद्यालय में असहज रहते हैं और छोटी–छोटी बातों पर अनेक प्रकार के बहाने बनाकर विद्यालय से प्रायः अनुपस्थित रहते हैं और विद्यालय का समय समाप्त होने पर लौट आते हैं।
10. **आक्रामकता एवं हिंसा**– इन विद्यार्थियों की अल्प आयु में ही दूसरे सहपाठियों को चोट पहुंचाने या तोड़–फोड़ करने की शिकायतें आती हैं और यही आगे जाकर बहुत अधिक बढ़ जाती है।
11. **गोलबंदी**– ये बालक ऐसे समूहों के साथ जुड़ जाते हैं जिनका व्यवहार सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं होता है। ऐसे बच्चे इन समूहों में रहते हुए चोरी करने लगते हैं, दूसरे बच्चों की पिटाई करने लगते हैं।
12. **मूडीपन**– ऐसे बच्चे बिना किसी कारण के अथवा किन्हीं बेतुके कारणों से अचानक उदास, चिड़चिड़े या अप्रसन्न हो जाते हैं।
13. **नाखून कुतरना, अंगूठा चूसना और बेतुके ढंग से चेहरा बनाना**– तनाव, असुरक्षा एवं घबराहट की अवस्था। इस तरह के व्यवहार भी कुछ बालकों में पाए जाते हैं।
14. **बदमिजाजी**– ऐसे बच्चे जब उनकी मांग की पूर्ति नहीं होती है तब वे रोने, चीखने, चिल्लाने, वस्तुओं को फेंकने, पटकने, जमीन पर लोटने लगते हैं। अपनी आवश्यकता पड़ने पर बार–बार वो ऐसा करते हैं।
15. **विद्यालय जाने से मना करना**– बच्चों के लिए तो घर अत्यंत स्नेहपूर्ण एवं सुरक्षित परिवेश होता है। इसे छोड़कर विद्यालय के अनजान, अनुशासन, कठोर ढांचे वाले विद्यालय, कार्य के दबाव एवं दंड का भय संचारित करने वाले परिवेश में जाना बालक को अच्छा नहीं लगता इसलिए बच्चे विद्यालय जाने के नाम से रोने लगते हैं। इसलिए विद्यालय का परिवेश घर के स्थानापन्न स्थल के रूप में होना, विद्यालय के परिवेश में स्नेह, प्यार, सुरक्षा एवं समुचित देखभाल विद्यमान होना चाहिए।
16. **लज्जालु एवं डरपोक स्वभाव**– इस श्रेणी में वो बच्चे आते हैं जो कक्षाओं में उत्तर देने अथवा कोई प्रश्न पूछने में संकोच करते हैं और शिक्षणेतर गतिविधियों में भागीदारी से दूर भागते हैं। ऐसे बच्चे मूलतः भयग्रस्त होते हैं। उक्त समस्याओं के अतिरिक्त बालकों में फोबिया, विषाद, दिवास्वप्न, ईर्ष्या, अत्यधिक संवेदनशील एवं मित्र बनाने या उनके साथ संबंध बनाये रखने की विफलता आदि ये सभी बालकों की व्यवहारगत समस्याएं हैं।

## बच्चों के व्यवहारगत समस्याओं के कारण

बच्चों के व्यवहारगत समस्याओं का कारण हमारे आस–पास ही निहित होता है। ज्यादातर पारिवारिक परिवेश, विद्यालय का परिवेश और सामाजक परिवेश ही उसकी समस्याओं का कारण बनता है। लेकिन कुछ और व्यक्तिगत बाधाएं भी समस्या का कारण हो सकती हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है–

### 1. बच्चों की विकासात्मक बाधाएं

बच्चों की व्यवहार संबंधी समस्याओं से संबंधित कारणों का एक समूह स्वयं बच्चों के अंदर विद्यमान रहता है। कुछ व्यवहारगत समस्याएं प्रत्यक्ष होती हैं तथा कुछ व्यवहारगत समस्याएं अप्रत्यक्ष होती है एवं ये अनुवांशिकी भी होती है। यदि किसी बच्चे की बुद्धि अनुवांशिक रूप से कम है तो उसे उचित व्यवहार के अधिगम में कठिनाई होगी। कुछ बच्चे अपनी अपरिपक्वता के कारण आत्मनियंत्रण स्थापित नहीं कर पाते हैं, जैसे– लंबे–चौड़े बच्चे या मोटे बच्चों की अपने सहपाठियों में एक पृथक पहचान बन जाती है और उनके मित्र/सहपाठी उनसे अलग प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। तब ऐसे ही बच्चे अनुचित व्यवहार करने लगते हैं।

इसी तरह कुछ सांवेदिक विकृतियां, हल्के मस्तिष्क विकार या गंभीर बीमारियों के कारण उत्पन्न विकार व्यवहारात्मक समस्याओं का कारण हो सकती है। बच्चों की आयु भी महत्वपूर्ण विकासात्मक परिवर्तनों की अवस्था वाली होती है। इस अवधि में बच्चों में अनेक परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था में प्रकट होने वाली अनेक व्यवहारात्मक समस्याएं, शारीरिक परिवर्तनों या हार्मोन संबंधी परिवर्तनों के साथ समायोजित होने में विफलता की परिचायक होती है।

बच्चों में भी सम्मान, प्रेम/स्नेह, ध्यानाकर्षण जैसे आवश्यकताएं महत्वपूर्ण होती है। जब बच्चों की इन आवश्यकताओं की पूर्ति सहजतापूर्वक नहीं होती है तब वे विकृत व्यवहारों के माध्यम से इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं क्योंकि उन्हें बेहतर उचित तरीके ज्ञात ही नहीं होते हैं।

### 2. माता–पिता एवं पारिवारिक परिस्थितियां

बच्चों की व्यवहार संबंधी समस्याओं का कारण उनके माता–पिता, परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार अथवा घर की अन्य दशाओं में भी निहित हो सकता है क्योंकि बच्चों पर सभी प्रकार के व्यवहारों का असर पड़ता है।

माता–पिता के आपसी संबंधों में तनाव, उनका बार–बार झगड़ते रहना बच्चों पर प्रतिकूल सांवेगिक प्रभाव डालता है। माता–पिता द्वारा बच्चों को पर्याप्त स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान नहीं किये जाने पर उनके कार्य, व्यवहार, अनुभूति, विचार आदि पर ध्यान नहीं दिये जाने पर अथवा अत्यधिक प्यार दिये जाने पर समस्याएं प्रकट होती हैं। प्रेम का अभाव या आपसी तनाव बच्चों में असुरक्षा बोध उत्पन्न करता है। बच्चों के कार्य या व्यवहार पर ध्यान नहीं दिये जाने पर वे अनुपयुक्त व्यवहार द्वारा ध्यान आकर्षित करने

का प्रयास करते हैं। बहुत अधिक प्यार अतिसंरक्षण प्राप्त होने पर भी बच्चों के अंदर आत्मनियंत्रण एवं जिम्मेदारी की भावना के विकास में बाधा डालती है।

आधुनिक युग में ज्यादातर माता–पिता अपने बच्चों पर उच्च स्तरीय सफलता के लिए दबाव डालते हैं जिससे उनके बच्चों में चिंता, विषाद, असंतोष एवं विद्रोह की भावना विकसित होती है। आज के बच्चों में नैतिक प्रशिक्षण नाममात्र का रह गया है। और हम अपने बच्चों से जैसे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं वैसा हमें स्वयं भी करना चाहिए।

कितने ही परिवारों में बच्चों के पालन–पोषण में दंड का अधिकाधिक उपयोग किया जाता है क्योंकि उनका यह विश्वास होता है कि बच्चों को दंड के द्वारा सुधारा जा सकता है। इस भ्रांतिपूर्ण विश्वास से अपने व्यवहार के साथ जब दोहरे मानक, अनिश्चित मानक, प्रेम की कमी, अच्छे व्यवहार की प्रशंसा नहीं किया जाना आदि सारे तत्व भी जुड़ जाते हैं तब बच्चों में आक्रामकता एवं अन्य व्यवहारात्मक समस्याएं विकसित हो जाती हैं। बच्चों में स्पर्धा भी एक स्वाभाविक विशेषता है। वो पास–पड़ोस या विद्यालय के अन्य बच्चों के साथ अपनी बराबरी चाहते हैं और जब घर में आर्थिक समस्याएं हों तो उनके लिए अपने मित्रों के साथ बराबरी संभव नहीं हो पाती है तो भी उनमें आक्रोश, विषाद, असुरक्षा उत्पन्न होती है जिससे उनका व्यवहार अनुचित हो जाता है।

### 3. विद्यालय का परिवेश

बच्चे जब विद्यालय जाना आरंभ करते हैं तब वे घर के अत्यंत सुरक्षित एवं प्यार भरे माहौल से बाहर जाते हैं इसलिए उन्हें विद्यालय में एक ऐसे परिवेश की आवश्यकता होती है जो शिक्षण कार्य को करते हुए उनकी प्यार, स्नेह, सम्मान जैसी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करे। यदि अध्यापक बच्चों के सम्मान की आवश्यकता की अनदेखी करते हुए उनको समूह रूप से अपमानित करते हैं तब भी उनमें बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है जो कि विस्थापित होकर अन्य लक्षणों के प्रति अभिव्यक्त हो सकती है। विद्यालय परिवेश में बच्चों की व्यवहार संबंधी समस्याओं का कारण अध्यापकों के व्यवहार के अतिरिक्त सहपाठी बच्चों पर भी निर्भर करता है। जब किसी बच्चे पर कोई अन्य सहपाठी या वरिष्ठ कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थी धौंस जमाता है या उसे चिढ़ाता है या उससे झगड़ता है तब बच्चा विद्यालय जाने से भागता है अर्थात विद्यालय नहीं जाना चाहता और वह संवेदनशील एवं चिड़चिड़ा भी हो जाता है।

विद्यालयों में अकसर जिन बच्चों में शारीरिक दिव्यांगता होती है अथवा मंदबुद्धि विकार होता है या फिर शारीरिक गठन संबंधी कोई समस्या होती है या फिर किसी प्रकार का वाणी विकार पाया जाता है उन्हें प्रायः अन्य बच्चे चिढ़ाते हैं जिससे कि ये बच्चे प्रभावित होते हैं और विद्यालय जाने के नाम पर रोने लगते हैं या फिर इन व्यवहारगत समस्याओं के कारण अपने आपको अन्य बच्चों में सम्मिलित नहीं कर पाते हैं जिससे अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

### 4. सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश

बच्चों की व्यवहारगत विकृति में घर एवं विद्यालयी परिवेश के अतिरिक्त पास–पड़ोस के सामाजिक परिवेश एवं व्यापक सांस्कृतिक परिवेश की भी भूमिका होती है। बच्चे का

परिवार अपने आसपास के सामाजिक परिवेश के संबंध में बेमेल हो सकता है जिसका आधार धार्मिक, जातीय, भाषायी एवं आर्थिक विभेद हो सकता है। ऐसी दशा में बच्चे को अपने पड़ोस में सामाजिक सहमति या अनुमोदन नहीं प्राप्त हो पाता, उसके मित्र भी नहीं बन पाते। ऐसी स्थिति में बच्चों में सामाजिक समायोजन स्थापित कर पाना असंभव हो जाता है एवं विषादात्मक विकृतियां उत्पन्न होती हैं।

बच्चों के जीवन में सामाजिक सांस्कृतिक प्रभाव उत्पन्न होने के माध्यम आधुनिक युग में परिवर्तित हो गए हैं। पहले बच्चों के जीवन में सामाजिक सांस्कृतिक प्रभाव की उत्पत्ति माता–पिता एवं परिवार के माध्यम से होती थी किंतु अब पारिवारिक माध्यम की अपेक्षा टेलीविजन फिल्म, कॉमिक्स एवं पत्रिकाएं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इंटरनेट सामाजिक प्रभाव का नवीनतम माध्यम बन गया है। इन्हीं माध्यमों से बच्चों के जीवन में हिंसा एवं पड़पीड़क प्रवृत्ति का विकास हो रहा है। जीवन के आदर्श, सादगी, ईमानदारी, नैतिक आचरण एवं परोपकार जैसे सिद्धांत ध्वस्त होते जा रहे हैं। इन्हीं सभी कारणों से बच्चों में एक अनैतिक व्यवहारिकता ज्यादा उत्पन्न हो रही है।

## 5. व्यवहारात्मक बालकों की विशेषता

व्यवहारात्मक बालकों में कुछ प्रमुख व्यावहारिक विशेषताएं होती हैं जो व्यवहार से ही समझ आ जाती है। ये इस प्रकार हैं–

1. ऐसे बालक घर समाज की नजरों में गिर जाते हैं। इनका कहीं भी आदर नहीं होता है।
2. चोरी व झूठ बोलने वाले बालकों का जीवन बर्बाद हो जाता है।
3. ये क्रोधी प्रवृत्ति के बालक कभी–कभी क्रोधवश असामाजिक कार्य करते हैं।
4. शैक्षिक कठिनाई वाले बालक कक्षा में सुस्त रहते हैं तथा हीनता की भावना से ग्रसित होते हैं।
5. निष्क्रिय बालकों का स्वास्थ्य ठीक नहीं होता है और वे जीवन में हीनता और असफलता महसूस करते हैं।
6. वैसे बालक जो एकांत प्रिय होते हैं उन बालकों के कोई दोस्त नहीं होते और विभिन्न प्रकार की सामाजिक व शैक्षिक क्रियाओं में भाग लेने से डरते हैं।
7. विद्यालय से दूर भागने वाले बालक जो शैक्षिक प्रगति नहीं कर सकते और विद्यालय छोड़ने के पश्चात पछताते भी हैं।
8. कक्षा में अनुशासन हीनता प्रदर्शित करने वाले बालक के प्रति कक्षा के अन्य छात्र व शिक्षक की सहानुभूति व प्रेम से वंचित रहते हैं।
9. कक्षा में देर से आने वाले तथा गृहकार्य न करने वाले बालक शैक्षिक उपलब्धियों में पिछड़ जाते हैं और जीवन में निराशा का अनुभव करते हैं।
10. समस्यात्मक बालकों में संवेगात्मक परिपक्वता नहीं होती है।
11. इन बालकों में आत्मविश्वास का अभाव होता है।
12. इन बालकों को समायोजन संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे– परिवार, विद्यालय तथा समाज में समायोजन की समस्या।

13. ऐसे बालक स्वतंत्र रूप से किसी कार्य को नहीं कर सकते।
14. ऐसे बच्चों को घर, विद्यालय तथा समाज में अवहेलना का सामना करना पड़ता है।
15. ऐसे बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को भी बहुत क्षति पहुंचती है।



## बच्चों की व्यवहारात्मक समस्याओं का निदान

बच्चों की व्यवहारात्मक समस्याओं का समाधान एवं प्रबंध तथा निदान करने में माता–पिता अभिभावक, अध्यापक एवं विद्यालय में कार्यरत परामर्शदाता इन सभी का प्रत्यक्ष भूमिका होती है तथा इनके संयुक्त प्रयास के बिना आपेक्षित परिणाम की प्राप्ति कठिन होती है।

पहले प्रायः माता/पिता अध्यापक एवं अभिभावकों का यह विश्वास होता था कि दंड के बिना कुछ भी संभव नहीं है और इसलिए व्यवहार का परिमार्जन करने में दंड का योगदान सहजतापूर्वक देखा जा सकता है किंतु जहां दंड का उपयोग तात्कालिक रूप में व्यवहार नियंत्रण के लिए प्रभावी हो सकता है वहीं इसके दीर्घकालिक कुप्रभाव भी होते हैं। जो कि माता–पिता या अध्यापक के समक्ष प्रकट नहीं हो पाता है। क्योंकि इससे मानसिक स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक कुप्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसके अनेक तत्कालीन अनुपयुक्त प्रभाव भी पड़ते हैं। इसलिए दंड का उपयोग अत्यंत मितव्ययी शैली में किया जाना चाहिए तथा दंड का स्वरूप सांकेतिक होना चाहिए। व्यवहारात्मक समस्याओं के प्रबंध में सफलता कोई नकारात्मक लक्ष्य नहीं होना चाहिए अर्थात यह कि बच्चों को ऐसा नहीं करना है, मात्र ही हमारा उद्देश्य नहीं हो सकता है। इसका वास्तविक लक्ष्य सकारात्मक होना चाहिए और इस हेतु बच्चे को अच्छे कार्य एवं व्यवहार की दिशा में अग्रसर करना होगा। सकारात्मक दिशा में दंड द्वारा नहीं ले जाया जा सकता है। सकारात्मक दिशा में प्रगति अभिप्रेरणा द्वारा ही संभव है।

## माता–पिता की भूमिका

माता–पिता ही बच्चों के जीवन के आरंभिक वर्षों में उनके व्यवहार की दिशा को निर्देशित करते हैं। आरंभिक विकास के दिनों में माता–पिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि इस आयु में ही परवर्ती जीवन में होने वाले व्यवहार की आधारशिला रखी जाती है। इसलिए माता–पिता के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जो इस प्रकार हैं–

1. बच्चों के साथ समय बिताएं, उसकी बातों को सुनें, उनके अनुचित मत विश्वास का तार्किक रूप में विरोध करें, उनकी समझ के विकास में माता–पिता सहायक बनें।
2. बच्चों में स्वयं के बारे में या विद्यालय और वहां कार्यरत अध्यापकों के प्रति अथवा परिवेश के विषय में नकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित नहीं करनी चाहिए और उनके समक्ष अध्यापकों की आलोचना नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उनके मन में अध्यापक का सम्मान घटता है तथा बच्चा अनुचित एवं असम्मानजनक व्यवहार कर सकता है।

3. बच्चों को हमेशा माता–पिता प्यार ही दें लेकिन इसकी मात्रा अति संरक्षणवादी नहीं हो। उनकी गलती पर उनसे वार्ता करें, उन्हें गलती का बोध कराएं किंतु उन्हें तिरस्कृत कभी न करें।
4. माता और पिता दोनों का ही प्यार बच्चों के लिए महत्वपूर्ण होता है, अतः आपस में लड़–झगड़कर बच्चों में असुरक्षा का बोध विकसित नहीं करना चाहिए।
5. माता–पिता को हमेशा ही बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति का उपाय करना चाहिए किंतु यह कार्य सतर्कतापूर्वक करना चाहिए जिससे बच्चों में धैर्य का विकास होना चाहिए। क्योंकि उनकी आवश्यकता प्रकट होते ही अतिशीघ्रतापूर्वक मांग की पूर्ति कर देने से उनमें सहनशीलता विकसित नहीं हो पाती है।
6. बच्चों की मांग कभी–कभी अनुचित भी हो सकती है, जिसकी पूर्ति माता–पिता के लिए कठिन हो सकती है। इसलिए जब बच्चे को कुछ देने से इनकार कर दिया तब उसके रोने–चीखने व चिल्लाने के बाद भी वह मांग पूरी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे बच्चे का स्वभाव जिद्दी हो जाता है।
7. बच्चों की छोटी–मोटी त्रुटियों को अनदेखा किया जाना चाहिए। बच्चे को यह बोध हो जाना चाहिए कि उनकी गलती देखी गयी है और उस गलती को अच्छे रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। उन्हें माफ कर दिया गया है किंतु उस गलती की पुनरावृत्ति होने पर दंड संभव है।
8. माता–पिता द्वारा बच्चों पर अत्यधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दबाव नहीं डालना चाहिए क्योंकि अनुपयुक्त लक्ष्य एवं अनुचित दबाव से पहले काल्पनिक कुंठा और बाद में अनावश्यक कुंठा की उत्पत्ति होती है।
9. बच्चों में अंतर्निहित अभिक्षमताओं को विकसित होने का भी अवसर देना चाहिए ताकि उनके अंदर का पेंटर, गायक, नायक और फोटोग्राफर जैसे कलाकार का भी पूर्ण विकास संभव हो सके।
10. बच्चों को घर पर नियमित रूप से उनकी क्षमता के अनुरूप कुछ कार्य करने का निर्देश दें, जैसे– सभी के लिए पानी का गिलास रखना, अपने जूठे बर्तन हटाना और अपनी चीजों को जगह पर रखना इत्यादि। जिससे उनके अंदर जिम्मेदारी की भावना प्रवृत्त हो सके।
11. बच्चों के साथ उनके अध्ययन में रुचि लेनी चाहिए। स्वयं को अध्यापक जैसी भूमिका में रखें और उनकी सभी क्रियाओं में भाग लें।

### अध्यापकों की भूमिका

माता–पिता के बाद बच्चों के जीवन में दूसरा महत्वपूर्ण स्थान अध्यापक का होता है जो उसके व्यवहार के विकास को प्रभावित करता है। अच्छे, लोकप्रिय अध्यापक बच्चों की दृष्टि में माता–पिता से भी अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और उनकी कही बातों पर बच्चे अमल भी करते हैं और उन्हें अगर अपना आदर्श मानते हैं तो उनकी कुछ क्रियाओं को अपनाने की कोशिश भी करते हैं और वो उन्हें जीवन भर याद भी रखते हैं। इसलिए एक अध्यापक की जिम्मेदारी मात्र विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति ही नहीं होती है अपितु

उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास हेतु कार्य करना भी उनकी मौलिक जिम्मेदारी होती है। इसलिए विद्यालय में बच्चों के व्यवहार संबंधी अधिकतर समस्याएं ऐसी होती हैं जिनका समाधान अध्यापक अपने स्तर पर कक्षाओं में ही अध्यापन कार्य संपन्न किए जाने की अवधि में ही कर सकता है। इसलिए अध्यापकों के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव जो इस प्रकार हैं–

1. अध्यापक का शिक्षण कार्य किसी भी स्तर पर संपन्न हो रहा हो, पूर्व तैयारी आवश्यक होती है जिससे शिक्षण कार्य अत्यंत रुचिकर हो सके और बच्चे मन लगाकर ध्यानपूर्वक पाठ को समझें।
2. अध्यापक की वाणी और निर्देशन में स्पष्टता होनी चाहिए। हमें बच्चों को यह बताना चाहिए कि वह क्या–क्या करें। मात्र यह बताने से वह क्या–क्या न करें, से उनके सम्मुख स्पष्ट कार्य विकल्प प्रस्तुत नहीं हो पाता है जिससे बालक के भी मन में असमंजस की स्थिति होती है। इसलिए जब बालक से यह कहा जाए कि वह क्या–क्या न करे तो यह समझाया जाना चाहिए कि वैसा करने से उन्हें क्या नुकसान होगा।
3. किसी भी बच्चे के विरुद्ध व्यंग्यात्मक, अपमानजनक टिप्पणी नहीं करें। ऐसा करने से उनके मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचती है।
4. नियमों की एकरूपता एवं स्पष्टता बनाये रखनी चाहिए जिससे कि विद्यार्थियों को दुविधा न हो।
5. विद्यार्थियों के अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए और उनके अच्छे कार्य एवं व्यवहार की प्रशंसा भी करनी चाहिए।
6. जब बच्चे कक्षा में बात कर रहे हों तो पढ़ाते एवं समझाते समय उनके समीप से कक्षा की प्रत्येक पंक्ति में घूमते रहना चाहिए जिससे कक्षा में शांति बनी रहे और सभी विद्यार्थियों का ध्यान पढ़ने में ही लगाए हो। यह नहीं कि एक जगह बैठकर पढ़ाये और बात करने वाले बच्चों को चॉक या डस्टर से प्वाइंट करके मारे। ऐसा करने से उन्हें चोट लग सकती है।
7. सभी बच्चों को प्रश्न पूछने, उत्तर देने, वार्ता करने, अध्यापक के साथ अंतर्क्रिया करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। हर बच्चे की कक्षा में सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए।
8. बच्चों के साथ मित्रवत व्यवहार करना चाहिए। उन्हें अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। क्योंकि आज के इस आधुनिक जीवन में तो माता–पिता भी इतने व्यस्त रहते हैं कि वे बच्चों को अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान नहीं कर पाते हैं। ऐसे में अध्यापक यदि विद्यार्थियों को सांवेगिक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करता है तो अध्यापक ही उन विद्यार्थियों के लिए अधिक समीप एवं सम्माननीय हो जाता है और अध्यापक एवं विद्यार्थी के मध्य अच्छे लगावपूर्ण संबंध से विद्यार्थी को सकारात्मक सहयोग प्राप्त होता है।
9. यह हमेशा ही स्मरण रखना चाहिए कि सभी बच्चों का बौद्धिक स्तर एवं सीखने की क्षमता एक जैसी नहीं होती है। मंद बुद्धि वाले विद्यार्थियों के साथ धैर्यपूर्वक

कार्य करना चाहिए। यदि बच्चा थोड़ी प्रगति करता है तो उसे थोड़ी प्रशंसा एवं सराहना भी अवश्य प्रदान करनी चाहिए और उसे थोड़ा और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।



10. बच्चों में स्वयं के बारे में परिवेश या भविष्य के विषय में नकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित नहीं करनी चाहिए। ऐसी टिप्पणियों से बचना चाहिए जिससे नकारात्मक सोच की उत्पत्ति होती है। इससे आत्मविश्वास भी घटता है।

## परामर्शदाता की भूमिका

परामर्शदाता की भूमिका होती है कि–

1. वो विद्यार्थी, माता–पिता एवं अध्यापक सभी के साथ संपर्क स्थापित करके विद्यार्थी के समस्याओं को दूर करे एवं बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रयासरत रहें।
2. परामर्शदाता के संज्ञान में किसी भी बच्चे की व्यवहारात्मक समस्या लाने पर वह उसका व्यापक विश्लेषण करके उसके कारण को समझने का प्रयत्न करता है। तत्पश्चात उसके माता–पिता एवं अध्यापक तथा विद्यार्थी से मिलकर वार्ता करके उन कारकों को दूर करने का प्रयत्न करता है।
3. परामर्शदाता विद्यालय में सभी अध्यापकों के साथ समय–समय पर समूह वार्ता एक सेमिनार आयोजित करते रहना चाहिए।
4. और यह आवश्यक होने पर परामर्शदाता को विद्यालय प्रबंधन को आवश्यक परिवर्तन के लिए सुझाव भी देना चाहिए ताकि वहां पर अभिभावक परामर्शदाता अध्यापक एवं मनोवैज्ञानिकों से मिलकर मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श भी करना चाहिए।

## व्यवहारात्मक समस्या वाले बालकों की शिक्षा व्यवस्था

व्यवहारात्मक समस्या वाले बालकों की शिक्षा के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए जिससे उनकी शिक्षा सुचारु रूप से चल सके–

- व्यवहारात्मक समस्या वाले बालकों के साथ घर तथा विद्यालय में प्रेम व सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।
- ऐसे बच्चों को जो चोरी करते हैं या झूठ बोलते हैं उनको बताना चाहिए कि चोरी करना व झूठ बोलना ये सारी खराब बाते हैं।
- बच्चों को उचित अनुचित कार्यों में अंतर बताना चाहिए।
- समस्यात्मक बालकों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें प्यार व सहानुभूति पूर्ण समझना चाहिए।
- ऐसे बालकों की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए।
- ऐसे बालकों को खेल–कूद तथा अन्य सामाजिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।
- बालकों पर ध्यान देना चाहिए और उन्हें गलत संगति से दूर रखना चाहिए।

- सत्य बोलने वाले तथा निर्भय व साहसी कार्य करने वाले बालकों की प्रशंसा करनी चाहिए।
- ऐसे बालकों के साथ कभी भी कठोरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए।
- ऐसे बालकों को शिक्षा के साथ अच्छे स्वास्थ्य की विशेषताएं भी बतानी चाहिए ताकि ये बच्चे अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग रहें।
- ऐसे बालकों को भ्रमण यात्रा पर ले जाना चाहिए ताकि इनका वातावरण बदले।
- इन्हें कोई भी उत्तरदायित्व वाला कार्य सौंपना चाहिए और इन पर विश्वास करना चाहिए।
- ऐसे बालकों की शिक्षा में रुचि जाग्रत करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।
- ऐसे बालक जब अच्छे कार्य करें तो उनकी प्रशंसा करनी चाहिए व उन्हें उचित पुरस्कार द्वारा सम्मानित करना चाहिए ताकि उनके आत्मसम्मान की वृद्धि हो।

इस प्रकार के बच्चों एवं विद्यार्थियों की व्यवहारात्मक समस्याओं के समाधान एवं प्रबंधन हेतु निर्देशन एवं परामर्श सेवा के द्वारा प्रदान करने के लिए संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक एवं रोजर्स के व्यक्ति केंद्रित उपगाम की प्रविधियों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे इनमें सुधार एवं बदलाव लाया जा सकता है।

संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक उपागम के अंतर्गत व्यवहार परिमार्जन एवं प्रतिरूप अधिगम की प्रयुक्त की जाती है जिससे बच्चे के लिए विभिन्न स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त करते हुए अनुचित संज्ञात्मक संरचनाओं का विकास कर सकते हैं जिससे संज्ञानात्मक पुनर्गठन किया जा सकता है और बच्चे का सर्वाधिक विकास भी हो सकता है।

रोजर्स द्वारा व्यक्ति केंद्रित उपागम के अंतर्गत यह स्वीकार किया गया है कि यदि–

- कोई व्यक्ति अप्रतिबंधित सकारात्मक सम्मान प्राप्त हो,
- सांवेगिक अभिव्यक्ति के लिए परिवेश का गठन हो,
- व्यक्ति के बारे में परामर्शदाता को परानुभूतिपूर्ण बोध प्राप्त हो तथा इस तथ्य का व्यक्ति तक संप्रेषण हो रहा हो तो,
- व्यवहार संबंधी विकृतियां और समस्याएं समाप्त हो जाती हैं और व्यक्ति का अधिकतम विकास हो पाता है।

विद्यालय की दशा में थोड़े प्रशिक्षण द्वारा अध्यापकों में उक्त विशेषताएं विकसित की जा सकती हैं और विद्यालय के समूचे परिवेश का ही गठन इस प्रकार हो कि छोटे–छोटे बच्चों के लिए विद्यालय प्रांगण एक आकर्षक स्थल हो जाएं। उसे प्यार, स्नेह तथा सम्मान मिले और जहां भय, चिंता, अपमान, तिरस्कार एवं दबाव का संचार न हो। तभी बच्चे भयमुक्त होकर प्यार और स्नेह के साथ रहकर विद्या ग्रहण कर सकते हैं और उनकी समस्याओं का निदान भी हो सकता है।

## 2.6.2 सामाजिक भावनात्मक समस्याएं और वंचित छात्रों की समस्याएं, वंचित समूहों जैसे एससी, एसटी और लड़कियों की सामाजिक–भावनात्मक समस्याएं



इस विषय का निम्न प्रकार से अध्ययन प्रस्तुत है।

भारतीय समाज में वंचित समूहों जैसे एससी, एसटी की समस्याओं के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है–

1. **निरक्षरता** (Literacy) – दलितों की समस्याओं के मूल में अशिक्षा ही है। अशिक्षित व्यक्ति बहुत जल्द अंधविश्वास और परंपराओं पर विश्वास कर लेते हैं। अनपढ़ व्यक्ति को आज भी देखा जा सकता है कि बीमार होने पर वह डॉक्टर के पास जाने की अपेक्षा देवताओं के पास मनौती के लिए चले जाते हैं अथवा झाड़–फूंक करनेवाले ढोंगियों के पास चले जाते हैं और अंधविश्वास के शिकार हो जाते हैं। व्यवहारिक तौर पर भी देखें तो समाज के धनी और चालाक लोग कम मजदूरी देकर इन अशिक्षित लोगों से अधिक काम लेते हैं और किसी विशेष समय इनको कर्ज देकर सदैव के लिए सूद के नाम पर इनका शोषण करते रहते हैं। चूंकि अधिकांश दलित अशिक्षत थे, इसलिए इन परंपराओं और अंधविश्वासों पर आसानी से विश्वास कर लेते थे। जाति प्रथा के तहत उच्च जाति यानी ब्राह्मणों ने चालाकी से यह प्रतिपादित कर दिया कि दलितों का प्रमुख दायित्व उच्च वर्णों की सेवा करना है और यही उसके मुक्ति का मार्ग है। पिछले जन्म के पाप कर्मों के कारण मानव का जन्म दलित में हुआ है और यदि इस जन्म में भी वो उच्च जातियों के सेवा का अपना दायित्व पूरा नहीं करेंगे तो उन्हें अगले जन्म में भी दलित की योनि से मुक्ति नहीं मिलेगी और अशिक्षित दलितों ने अंधविश्वास के कारण ब्राह्मणों के इस कथन को सत्य मान सेवा करना अपनी नियति मान लिया और यह परंपरा चल पड़ी। दलित अपने भाग्य के भरोसे बैठ गये और अपनी दुर्गति को अपनी नियति मान लिया। इस प्रकार समाज के चालाकों और धूर्त मानवों द्वारा दलितों को हमेशा से शोषित किया जाता रहा है।
2. **गरीबी** (Poverty)– दलितों के पास धन के नाम पर अपने शारीरिक श्रम के अलावा और कुछ भी नहीं था और गरीबी के कारण उनको अनेक बीमारियां भी आकर जकड़ लेती है, ऐसे में दो समय की रोटी को तरसने वाला आदमी अपना इलाज कैसे करवा सकता है। ऐसे दलित घुट–घुट कर मरने को मजबूर हो जाते हैं। दलितों की निर्धनता इतनी अधिक होती थी कि वे अपने शरीर को बेचने तक को मजबूर हो जाते थे और ऐसी विकट स्थिति में भी कोई दलित यदि आत्मसम्मान के साथ रहना चाहता था, तो गांव के धनी लोग उसके रास्ते में बाधाएं डालने से पीछे नहीं हटते थे, उनका स्पष्ट उद्देश्य था कि दलित अपने निर्धन स्थिति से उबर नहीं सकें। दलितों में निर्धनता होने के प्रमुख कारणों को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

- बच्चों की बढ़ती संख्या अथवा अधिक बच्चे पैदा करना,
- गरीबी से निपटने की दृढ़ इच्छा की कमी होना,
- तकनीकी और प्रौद्योगिक ज्ञान का नहीं होना,
- आर्थिक नियोजन करने की पूरी समझ का ज्ञान नहीं होना,
- पैसों की बचत नहीं करना,
- आत्मसम्मान की कमी होना और दूसरों की दया पर पलना,
- लगातार कर्ज लेना और समय पर नहीं चुकाने के कारण कर्जे के बोझ से दब जाना,
- नशीली वस्तुओं, जैसे– शराब, बीड़ी, तंबाकू, सिगरेट, अफीम, आदि की लत के कारण पैसों की बर्बादी करना,
- मृत्युभोज और दान–दहेज में जरूरत से अधिक पैसों की बर्बादी करना,
- कार्यकुशलता की कमी होना अथवा अपनी आजीविका के लिए सही से काम नहीं कर पाना।

यदि दलित शिक्षित होकर अधिक इच्छाशक्ति के साथ अपनी आजीविका के लिए कार्य करें, व्यसनों का परित्याग कर दें और अपने आत्मसम्मान के लिए सतर्क रहें तो उनकी निर्धनता और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हो सकता है। अपने कठोर परिश्रम के बल पर दलित अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं।

3. **भेदभाव** (Discrimination)– हमारा समाज हमेशा से भेदभाव पर आधारित दलितों के शोषण पर कायम रहा है। भले ही संविधान में दलितों के साथ भेदभाव और छूआछूत को कनूनन अपराध घोषित कर दिया गया है, परंतु व्यवहार में जहां–तहां आज भी उनको अपमानित किया जा रहा है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। सरकारी संस्थानों के आरक्षण की बात छोड़ दी जाए तो निजी क्षेत्र की नौकरियों में भी इन्हें रोकने की कोशिश की जाती है।

4. **जाति प्रथा** (Caste System)– मानव मात्र प्रारंभ से ऊंच अथवा नीच प्रकृति का नहीं होता है, निम्न जाति का वाल्मीकि भी अपने गुणों के कारण महर्षि बन गया तो ब्राह्मण जाति का रावण भी अपनी निशाचर प्रकृति के कारण नीच कहलाया। इसका अर्थ है मनुष्य जन्म से नहीं बल्कि कर्म से उच्च अथवा नीच होता है। दलितों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उच्च जाति के लोग बिना उनके आचरण पर विचार किये उन्हें नीच मान लेते हैं। दलित आदिकाल से ही इस तरह के शोषण और तिरस्कार के अभ्यस्त हो गये हैं। दलितों के साथ इस प्रकार का व्यवहार उनके मानसिक विकास में बाधक होता है।

5. **अस्पृश्यता** (Untouchability)– भारतीय संस्कृति में विदेशों से आये लोगों जैसे– ईसाई, मुसलमान, पारसियों तक को अपना लिया गया, विभिन्न धर्मों को माननेवालों को भी अपना लिया गया और उनके साथ इंसानियत का

व्यवहार किया जाता है, परंतु अपने ही धर्म के दलित लोगों से घृणा की जाती रही और उनसे दूरी बनायी गयी। हिंदू धर्म के तथाकथित संभ्रांत लोगों ने इन लोगों के साथ खान–पान और उठना–बैठना कर लिया, लेकिन अपने पास और अपने ही धर्म के लोगों से अधिक दूरी बनाये रखी। इस कारण स्वयं दलितों के भी मन में अपने लिए हीनता की भावना घर गयी कि वे इस धरा के सबसे निकृष्टतम व्यक्ति हैं और इस कारण उनका पूर्ण विकास नहीं हो सका। यह हमारी सबसे बड़ी कमजोरी कही जा सकती है कि मानव को मानव के समान व्यवहार करने अथवा मानव को छूने के लिए हमें कानून का सहारा लेना पड़ रहा है।

राष्ट्र के विकास के लिए, किसी भी असमानता के बिना दोनों लिंगों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यूनेस्को द्वारा प्रदान किए गए आंकड़े बताते हैं कि लड़कों की तुलना में लड़कियों को समान शैक्षणिक अवसरों तक कम पहुंच है। नामांकन दर लगभग तुलनात्मक है लेकिन लड़कों की तुलना में लड़कियों के लिए निरंतरता की दर बहुत कम है। परिणामस्वरूप, पूरी दुनिया में लड़कियों को कम शिक्षा प्राप्त होती है। असमानता के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। बेहतर समझने के लिए, इन कारकों पर निम्न शीर्षकों के तहत चर्चा की गई है।

### 1. आर्थिक कारण

- **अभिभावकों का रवैया** : माता–पिता कभी–कभी एक लड़की की शिक्षा पर धन खर्च करने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। यद्यपि उनके पास बच्चों के लिए समान स्नेह होता है, उनके लिंग के बावजूद, उन परिवारों में जहां माता–पिता के धन में बाधाएं होती हैं, शिक्षा में निवेश करते समय माता–पिता लड़के के समर्थक होते हैं। बच्चों के कल्याण में माता–पिता का निवेश कभी–कभी लिंगीय पक्षपातपूर्ण हो सकता है। आम धारणा यह है कि वृद्धावस्था में बेटे अपने माता–पिता की देखभाल करते हैं।
- **विद्यालय का शुल्क** : उच्च विद्यालय की फीस लड़कियों को पर्याप्त शिक्षा तक पहुंचने से रोकती है, क्योंकि कुछ अवसरों पर माता–पिता अपना धन खर्च करने के लिए तैयार नहीं हैं। नतीजतन, या तो लड़की को शिक्षा से वंचित किया जाता है या स्कूल को बीच में छोड़ने के लिए कहा जाता है। माता–पिता परिवार के लड़के के लिए पर्याप्त शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए अपने धन का प्रबंध करते हैं। शोवन गोश और सुष्मिता सेनगुप्ता ने एक लड़की की स्कूली शिक्षा की कीमत पर केस स्टडी आयोजित करते हुए महसूस किया कि यह अंतर बड़ा है और ग्रामीण भारत के गरीब परिवार इकाइयों में अधिक दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि इन क्षेत्रों में माता–पिता एक बच्चे को एक सुरक्षित भविष्य के लिए एक निवेश के रूप में शिक्षित करने पर विचार करते हैं। अधिकतर परिवारों में, बच्चों को शिक्षा की मात्रा तय करने में कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि वे अपने बच्चों को शिक्षित करने के खर्चों को सहन करते हैं, न कि स्कूल की फीस पर न केवल यात्रा पर भी लेकिन कई अप्रत्यक्ष लागतें और कई अन्य/अतिरिक्त गैर–शैक्षणिक गतिविधियों की लागत शामिल हैं। इसके

अलावा, लड़कियों के मामले में, माता–पिता को सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं को बनाए रखने और सुरक्षा की गारंटी देने की अतिरिक्त लागत का सामना करना पड़ता है। इसलिए, एक लड़की की शिक्षा को शिक्षित करने की लागत लड़कों की तुलना में अधिक हो जाती है।

### 2. घरेलू कारण

- **घरेलू कार्य** : ग्रामीण क्षेत्रों में यह देखा गया है कि लड़कियां बहुत ही कम आयु में दैनिक घरेलू गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर देती हैं। बड़ी लड़की को कई मामलों में छोटे भाई बहनों की देखभाल करनी होती है, जबकि माता अपने खेतों में काम करते हैं या अन्य नियमित कार्य करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि इस जिम्मेदारी को ज्यादातर बेटियों द्वारा लिया जाता है, न कि परिवार के पुत्रों के द्वारा।
- **माता–पिता की इच्छा** : सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर फुलर और लिआंग के अनुसार, यदि घर का नेतृत्व करने वाली महिला होती है तो लड़की को शिक्षित होने की संभावना अधिक होगी क्योंकि महिला प्रमुख को निर्णय लेने का अधिकार होगा। एकल माता–पिता के परिवारों में वित्तीय संकट भी अधिक हो सकता है जिस वजह से बालिकाओं की शिक्षा अवरूद्ध हो सकती है।

### 3. विद्यालयी कारक

- **गैर–शैक्षणिक गतिविधियों में नगण्य भागीदारी** : स्कूल में बहुत ही कम लड़कियां गैर–शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्कूलों में लड़कियों को ऐसी गतिविधियों का एक हिस्सा बनने के लिए पर्याप्त सुविधाएं नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए, इनमें से अधिकतर गतिविधियां स्कूल के बाद होती हैं और कभी–कभी छात्रों को ऐसी गतिविधियों में भाग लेने के लिए परिवहन प्रदान नहीं किया जाता है। इसलिए, माता–पिता अकसर अपनी परवरिश को ऐसी गतिविधियों में शामिल होने से हतोत्साहित करते हैं। लड़कों की तुलना में खेल में लड़कियों की भागीदारी बहुत कम होती है। मुस्लिम लड़कियों को सांस्कृतिक प्रतिबंधों को भुगतना पड़ता है, जिससे उन्हें शॉर्ट परिधान पहनने से रोक दिया जाता है; उन्हें कपड़े बदलने या अपने घरों के अलावा किसी भी जगह में नहाने से रोका जाता है।
- **महिला शिक्षिकाओं की स्कूलों में कमी** : विकासशील देशों में, लड़कियों को महिला प्रशिक्षक की अनुपस्थिति के कारण लैंगिक असमानता का शिकार होना पड़ता है। माता–पिता प्राथमिक स्कूल के बाद लड़कियों की शिक्षा को बंद करने की प्रवृत्ति रखते हैं। अन्य क्षेत्रों में लिंग की समानता नहीं हो रही है जिससे महिलाओं की आबादी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- **गैर उपस्थिति** : लड़कियां स्कूल में अधिक अनियमित होती हैं, जो खराब ग्रेड की ओर ले जाता है। इसके लिए जिम्मेदार कारक कभी–कभी घर के कामकाज से संबंधित होते हैं, जिससे उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ता है। कुछ मामलों में उचित स्वच्छता और शौचालयों की कमी को एक कारक माना जा सकता है क्योंकि

मासिक धर्म चक्र के दौरान लड़कियों को शौचालय की सुविधा की आवश्यकता होती है।

- **स्कूलों में लड़कियों के लिए सुविधाएं** : माता–पिता लड़कियों के लिए स्कूल में सुरक्षित वातावरण चाहते हैं और वे सुविधाओं की कमी के बारे में लगातार चिंता करते हैं। कभी–कभी विद्यालय बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने में विफल होते हैं, जैसे साफ शौचालय या परिवहन। लड़कियों को कुछ पहलुओं पर अतिरिक्त सहायता और मार्गदर्शन और गोपनीयता की आवश्यकता होती है, जो स्कूल अकसर प्रदान करने में विफल रहते हैं। यह कम उपस्थिति की ओर जाता है। इससे कक्षाओं में छात्राएं पिछड़तीं हैं और उनका पढ़ाई में खराब प्रदर्शन दिखाना इसका परिणाम बनता है। यूनिसेफ मानकों के अनुसार, सभी छात्रों के लिए अलग–अलग और स्वच्छ शौचालय उपलब्ध कराना स्कूल के लिए अनिवार्य है।
- **शिक्षक का व्यवहार** : छात्रों के प्रति शिक्षक का रवैया एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक के रूप में है। जब छात्र स्कूल में अपने शिक्षकों के साथ सबसे ज्यादा बात करते हैं। यह देखा गया है कि कई अवसरों पर शिक्षक लैंगिक पूर्वाग्रहों का अभ्यास करते हैं। कुछ शिक्षक छात्रों के साथ बातचीत करते समय उपयोग की जाने वाली भाषा के प्रति सचेत नहीं होते हैं। शिक्षक कभी–कभी कक्षा में विशेष छात्रों की तरफ ध्यान देते हैं। कुछ कक्षाओं में लड़कियों के प्रति शिक्षकों के रुखे व्यवहार के कारण छात्राओं द्वारा स्कूल छोड़ दिया जाता है।
- **घर के आसपास के क्षेत्र में स्कूलों की कमी** : एक और पहलू है, जो छात्राओं के लिए शिक्षा तक पहुँच कम कर देता है वह है स्कूल की दूरी। ग्रामीण क्षेत्रों में, माता–पिता स्कूल जाने के लिए दूरदराज के स्थानों की यात्रा करने के इच्छुक नहीं हैं। जब लड़कियों की बात आती है तो विद्यालय छोड़ने के लिए दूरी एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। इस मुद्दे पर किए गए कई अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि स्कूल की दूरी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि उनकी बेटी को दूर तक यात्रा करना पड़ता है तो माता–पिता अच्छा महसूस नहीं करते हैं। मनोवैज्ञानिक मैरी एन्सवर्थ के अनुसार, आसपास के स्कूलों में लड़कियों के नामांकन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

### 4. सांस्कृतिक कारक

- **कम उम्र में शादी** : माता–पिता अकसर अपनी बेटियों की एक बहुत कम उम्र में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शादी करते हैं। वे उनकी शिक्षा पूरी करने की अनुमति देने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। वास्तव में, यदि लड़की शिक्षित होती है जो अधिकांश गांवों में माता–पिता असुरक्षित महसूस करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि वह अधिक योग्य होती है, तो इसे एक उपयुक्त लड़का पाने के लिए अधिक मुश्किल का सामना करना होगा। भारत की प्रोबई टीम (1999) ने पाया कि माता–पिता को लगता है कि उनकी बेटी के शिक्षित होने पर शादी की लागत बढ़ जाएगी। उनके अनुसार, गरीब परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई भी प्रस्ताव प्राप्त करने की संभावना नहीं है। बांग्लादेश जैसे देशों में भी ऐसा ही मामला है।

- **किशोर गर्भावस्था** : कई शोधकर्ताओं ने लड़कियों के लिए शिक्षा की कम पहुँच के लिए काफी हद तक किशोर गर्भावस्था को कारण बताया है। अध्ययनों ने यह बताया है कि जो लड़कियां स्कूल में बुरा प्रदर्शन करती हैं या छोड़ने वाली होती हैं या निचली आर्थिक स्थिति से संबंधित होती हैं, वे किशोर गर्भावस्था के लिए अधिक ज़िम्मेदार होते हैं।
- **सांस्कृतिक विश्वास** : 2005 में एक गैर सरकारी संगठन सेव द चिल्ड्रन द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, धार्मिक विश्वासों और पारंपरिक मानदंड अकसर सबसे विकासशील देशों में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने से लड़कियों को रोकने के कारण हैं। कई संस्कृतियों में, यहां तक कि वर्तमान समय में, यह माना जाता है कि महिला की भूमिका घर का ख्याल रखना और बच्चों को संभालना है; और इन कार्यों को करने के लिए स्कूल शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है। प्रोफेसर जेन फाल्किंगहेम और एग्नाला बेस्छेरी के अनुसार, ताजिकिस्तान जैसे देशों में, लड़कियों को आध्यात्मिक कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति है, जो उन्हें एक आदर्श पत्नी बनने के लिए कौशल प्रदान करता है। मुस्लिम समुदायों में 'पर्दा' या महिलाओं के एकांत की परंपरा, शिक्षा में लिंग असमानता के लिए योगदान करने वाला एक और महत्वपूर्ण कारक होता है। 2010 में यूनेस्को द्वारा किए गए शोध के अनुसार, अधिकांश विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मूल्यों की मजबूत उपस्थिति है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज में कई जुड़े कारक होते हैं जिनका महिलाओं की आबादी के लिए शिक्षा की पहुंच पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कुछ मामलों में, लिंग दोनों के लिए कारक बनता हैं। यह अध्ययन इस तथ्य को उजागर करता है कि शहरी आबादी की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों की लड़कियों पर इन कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

## अपनी प्रगति जांचिए

9. 'क्वारी' ने व्यवहारात्मक समस्याओं को कितने उपवर्गों में वर्गीकृत किया है?

   (क) 4 (ख) 5

   (ग) 6 (घ) 3

10. बच्चों की व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान में निम्न में से किसकी भूमिका महत्वपूर्ण है?

   (क) माता–पिता (ख) अध्यापक

   (ग) परामर्शदाता (घ) उपर्युक्त सभी की

11. वंचित समूहों की समस्याओं में से प्रमुख कारण कौन–सा है?

   (क) अशिक्षा (ख) गरीबी– जाति प्रथा

   (ग) भेदभाव– अस्पृश्यता (घ) उपर्युक्त सभी

## 2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (क)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (घ)
6. (ख)
7. (ग)
8. (घ)
9. (क)
10. (घ)
11. (घ)

## 2.8 सारांश

जीविकोपार्जन की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए किसी न किसी व्यवसाय में संलग्न होना अति आवश्यक होता है। इन समस्त कार्यों (व्यवसायों) के विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता का विशेष महत्व होता है। व्यवसाय से संबंधित नवीन संभावनाओं, वांछित कुशलताओं, व्यवसायों की परिवर्तित परिस्थितियों तथा समस्याओं की जानकारी विश्लेषणात्मक अध्ययन के द्वारा संभव हो सकती है। इस प्रकार किसी कार्य (व्यवसाय) से संबंधित विशिष्ट पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ही व्यावसायिक विश्लेषण के रूप में जाना जाता है।

कार्य विश्लेषण के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि हम किसी कार्य विश्लेषण को पूर्ण अथवा अंतिम विश्लेषण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। कोई भी कार्य विश्लेषण एक सुनिश्चित परिस्थिति से ही संबंधित होता है और उस परिस्थिति में ही उसकी सार्थकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त इसके विश्लेषण की पद्धति में भी परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन होते रहते हैं। कार्य क्षेत्र में होने वाले सतत परिवर्तन, इस विश्लेषण को लोचनीय बनाने तथा उसमें यथानुरूप परिवर्तन करने पर बल देते हैं।

व्यवसायों के अध्ययन के अंतर्गत, व्यावसायिक दशाओं एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं की जानकारी अपेक्षित होती है। इस जानकारी के आधार पर ही यह ज्ञात किया जाता है कि किस विशिष्ट व्यवसाय के लिए किस प्रकार की योग्यताएं एवं कौशल अपेक्षित हैं। व्यवसायों से संबंधित आवश्यकताओं एवं अपेक्षित योग्यताओं आदि का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ ढंग से किया जा सकता है।

विभिन्न व्यवसायों के लिए कुशल व्यक्तियों के चयन हेतु प्रमाणिक प्रवणता परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। इनके नियोजन के सोपान में रोजगार विश्लेषण

किया जाता है। यह प्रवणता परीक्षण निर्माण एवं व्यवसाय निर्देशन प्रक्रिया हेतु एक वैज्ञानिक प्रविधि है।

दिव्यांग बालक शारीरिक रूप से अक्षम होते हैं। बालक के ये शारीरिक दोष कम भी हो सकते हैं या अधिक भी हो सकते हैं। कुछ दिखाई पड़ सकते हैं और कुछ नहीं भी। जैसे– गूंगे बालक, बहरे बालक, हकलाने वाले बालक, कम दिखाई देने वाले बालक या दृष्टिहीन बालक। इन सभी में शारीरिक अक्षमता पायी जाती है और ये सभी दिव्यांग बालक की श्रेणी में आते हैं। शारीरिक अक्षमता वाले बालक में यद्यपि मानसिक दृष्टि से कोई न्यूनता नहीं होती है फिर भी अपनी शारीरिक विकृति या अंग भंग के कारण उसे उपहास का पात्र बनना पड़ता है। उसे समाज के सामने खुद को प्रस्तुत करने में एक झिझक महसूस होती है। ऐसे बालक सामान्य बालकों की तरह समाज के भिन्न–भिन्न कार्यों में सहजता से भाग नहीं ले सकते हैं। इसी कारण से उनमें आत्म दैन्य की भावना घर कर जाती है। सभी प्रकार से दिव्यांग व्यक्ति की भी वही शारीरिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक आवश्यकताएं होती हैं जो अबाधाग्रस्त यानी किसी सामान्य व्यक्ति की होती है।

दिव्यांग बालकों की शारीरिक न्यूनता थोड़ी हो या अधिक हो, किंतु इससे ग्रसित बालक को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके कारण बालक की शारीरिक आकृति में विकृति आ जाती है। दिव्यांग बालक इच्छित क्रियाओं एवं खेलों में भाग लेने योग्य नहीं होता है। इसलिए उसे संतोषप्रद दूसरी रुचियों की आवश्यकता होती है। उसकी अयोग्यता उसकी संवेगात्मक समस्याओं के रूप में विकसित होने लगती है, जैसे– क्रोध, चिड़चिड़ापन, जिद्दीपन और हतोत्साहित होना आदि। अतः उसके समायोजन हेतु प्रयास करना चाहिए। क्योंकि मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों में सही एवं गलत तथा आंतरिक नियंत्रणों के मूल्य धीरे–धीरे समाहित होते हैं। इसी के परिणामस्वरूप वे बहुधा अनुपयुक्त एवं समाज विरोधी भी व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

शारीरिक अक्षमता या दृष्टि दिव्यांगता वाले लोगों की तुलना में मानसिक दिव्यांगता वाले व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं अधिक उग्र होती हैं। क्योंकि दिव्यांगता व्यक्तियों में दिव्यांगता से ग्रसित होने के कारण उनके अंदर यह भावना जाग्रत हो जाती है कि दूसरे उसके बारे में शारीरिक दोष के कारण बहुत ही हीन विचार रखते हैं। इस तरह के विचार सदैव ही उसके मस्तिष्क में उठा करते हैं और इन्हीं के परिणामस्वरूप उसके अंदर आत्म–दैन्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। कभी–कभी तो हीनता का कारण अवांछित घर और वातावरण की दशाएं भी होती है या फिर उनको समय पर न दी गई औषधि या देर से दी गयी औषधि भी एक कारण हो सकती है। ऐसे बालकों के लिए एक उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराना आवश्यक है ताकि उनके समायोजन की समस्याएं हल हो सके।

विद्यार्थियों का व्यवहार प्रायः अध्यापकों एवं माता–पिता को चिंतित करता है। विद्यार्थी जीवन में बालक में बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था दोनों ही विकासात्मक काल

**टिप्पणी**

सम्मिलित होते हैं। ये विकास आरंभिक अवस्था होने के कारण चुनौतियां अनेक प्रकार की होती हैं जिनका उपर्युक्त समाधान आवश्यक होता है। विद्यार्थियों की व्यवहारगत समस्याओं का प्रतिकूल प्रभाव उनकी शैक्षिक प्रगति पर देखा जाता है और इनके इन व्यवहार से माता–पिता, शिक्षक तथा समाज के व्यक्ति परेशान होते हैं।

बच्चों की व्यवहारात्मक समस्याओं का समाधान एवं प्रबंध तथा निदान करने में माता–पिता अभिभावक, अध्यापक एवं विद्यालय में कार्यरत परामर्शदाता इन सभी का प्रत्यक्ष भूमिका होती है तथा इनके संयुक्त प्रयास के बिना आपेक्षित परिणाम की प्राप्ति कठिन होती है।

पहले प्रायः माता/पिता अध्यापक एवं अभिभावकों का यह विश्वास होता था कि दंड के बिना कुछ भी संभव नहीं है और इसलिए व्यवहार का परिमार्जन करने में दंड का योगदान सहजतापूर्वक देखा जा सकता है किंतु जहां दंड का उपयोग तात्कालिक रूप में व्यवहार नियंत्रण के लिए प्रभावी हो सकता है वहीं इसके दीर्घकालिक कुप्रभाव भी होते हैं। जो कि माता–पिता या अध्यापक के समक्ष प्रकट नहीं हो पाता है। क्योंकि इससे मानसिक स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक कुप्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसके अनेक तत्कालीन अनुपयुक्त प्रभाव भी पड़ते हैं। इसलिए दंड का उपयोग अत्यंत मितव्ययी शैली में किया जाना चाहिए तथा दंड का स्वरूप सांकेतिक होना चाहिए। व्यवहारात्मक समस्याओं के प्रबंध में सफलता कोई नकारात्मक लक्ष्य नहीं होना चाहिए अर्थात यह कि बच्चों को ऐसा नहीं करना है, मात्र ही हमारा उद्देश्य नहीं हो सकता है। इसका वास्तविक लक्ष्य सकारात्मक होना चाहिए और इस हेतु बच्चे को अच्छे कार्य एवं व्यवहार की दिशा में अग्रसर करना होगा। सकारात्मक दिशा में दंड द्वारा नहीं ले जाया जा सकता है। सकारात्मक दिशा में प्रगति अभिप्रेरणा द्वारा ही संभव है।

## 2.9 मुख्य शब्दावली

- **अवमन्दन** – धीमा होना, कमी होना
- **अधिगम** – योग्यता का विशेषता अर्जित करने की क्रिया
- **दुरनुकूलित** – सही अनुकूलन का न होना
- **अनुरूपण (Simulation)** – असल की नकल का अभ्यास हेतु प्रयोग
- **आत्म–अभिव्यक्ति** – स्वस्थापन, स्वयं को अभिव्यक्त करना
- **विशिष्टीकरण** – विशेषज्ञता, विशिष्ट रूप से पारंगत होना
- **संक्रमण** – एक स्थिति से धीरे–धीरे बदलते हुए दूसरी स्थिति में पहुंचना
- **क्रिस्टलीकरण** – किसी विषय को लेकर स्पष्टता की स्थिति होना
- **कार्योन्मुखी** – कार्य की ओर उन्मुख व्यक्ति
- **यादृच्छिक** – ऐच्छिक, इच्छानुसार
- **संज्ञानात्मक** – सूचना या तथ्यों की प्राप्ति, प्रक्रिया और परिणाम
- **इंटरलॉकिंग** – अन्तःपाशी, अंतर्ग्रथन, अंतःबद्ध

## 2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण का अभिवृत्ति विकास में योगदान का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. अभिवृत्ति और अभिवृत्ति विकास में प्रमुख अंतर बताइए।
3. विशिष्ट बालकों की प्रमुख समस्याओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. विशिष्ट बालकों की समस्याओं के प्रमुख समाधानों का वर्णन कीजिए।
5. वंचित छात्रों की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
6. सामाजिक–भावनात्मक समस्याओं से क्या तात्पर्य है? बताइए।
7. बालकों की व्यवहारगत समस्याओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अभिवृत्ति विकास में कार्य की प्रकृति तथा दृष्टिकोण के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. अभिवृत्ति प्रारूप तथा अभिवृत्ति विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए व्याख्या कीजिए।
3. छात्रों की विशिष्ट समस्याओं को विस्तार से समझाइए।
4. छात्रों की व्यवहारगत तथा सामाजिक–भावात्मक समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।
5. वंचित छात्रों की समस्याओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

## 2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. प्रो. एस.पी. गुप्ता, शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद (उ.प्र.)
2. प्रो. एस.पी. गुप्ता (2019), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान : सिद्धांत एवं व्यवहार, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद (उ.प्र.)
3. प्रो. अरुण कुमार सिंह, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी (उ.प्र.)
4. प्रो. अरुण कुमार सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी (उ.प्र.)
5. प्रो. के.पी. पांडेय, नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (उ.प्र.)
6. डॉ. एस.सी. ओबेराय, (2019) शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन और परामर्श, आर. लाल पेपरबैक्स
7. डॉ. एस.सी. ओबेराय (2019), निर्देशन एवं परामर्श, बुकमैन पब्लिसर्स
8. डॉ. हंसराज पाल, (2009) मापन आकलन एवं मूल्यांकन, शिप्रा पब्लिकेशन

टिप्पणी

9. Bengalee, M.D. (1999). Guidance and Counselling: A trend report. In Buch, M.B. (ed.), Fourth survey of research in education, 1983-1988 (vol.I), New Delhi: NCERT
10. Bhatnagar, Asha (1997) a trend report. In fifth survey,1988-1992 (vol. I)
11. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Conselling, Rex Printing company phillipines.
12. Nayak, A.K. (1997). Guidance and Counselling, Delhi: APH Publishing.
13. Narayan. Rao, S. (1991). Counselling and Guidance, New Delhi: Tata Mcgraw Hill.
14. Naik, P.S. (2013). Conselling Skills for Educationsists Soujanya Books.
15. Pal. O.B. (2011). Educational and Vocational Guidance and Counselling, Soujanya Books.
16. Rao, V.K. and Reddy, R.S. (2003). Academic Environment: Advice, Cousel and Activities, Soujanya Books.
17. Shah, A. (2008). Basics in Guidance and Couselling, Global vision Publishing House.
18. Sharma, V.K. (2005). Education and Training of Educational and Vocational Guidance, Soujanya Books.
19. Bhatnagar, Asha and Gupta, Nirmala (1999). Guidance and Counselling, volume II: A Practical approach, New Delhi: Vikas Publishing House.